उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

MA(JMC)-116

विकास संचार

खण्ड

01

विकास का स्वरूप

इकाई-1 5
विकास : अर्थ, परिभाषा एवं प्रक्रिया

इकाई-2 23
विकास मॉडल एवं सिद्धान्त

इकाई-3 42
विकास एवं सामाजिक परिवर्तन

इकाई-4 61
पंचवर्षीय योजनाएं एवं विकास

इकाई-5 78
परम्परागत माध्यम एवं विकास

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

1- प्रो0 जे0 एस0 यादव	पूर्व निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली
2- प्रो0 राममोहन पाठक	निदेशक, मदन मोहन मालवीय, हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
3- प्रो0 सुधाकर सिंह	हिन्दी (प्रयोजनमूलक) विभाग, बी0एच0यू0, वाराणसी
4- डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय	जनसम्पर्क अधिकारी, बी0एच0यू0, वाराणसी
5- डॉ0 पुष्पेन्द्र पाल सिंह	अध्यक्ष-पत्रकारिता विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता, विश्वविद्यालय भोपाल

सम्पादक

डॉ0 अर्जुन तिवारी- वरिष्ठ परामर्शदाता, उ0प्र0रा0ट0ं0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक मंडल

1- प्रो0 राम दरश राय	- निदेशक पत्रकारिता, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
2- श्री अनुराग दवे	- पत्रकारिता विभाग, बी0 एच0 यू0, वाराणसी
3- श्रीमती विनयपुरी पाण्डेय	- हिन्दुस्तान दैनिक, वाराणसी
4- श्री दिलेश तिवारी	- मीडिया सेन्टर, वाराणसी
5- श्री शैलेन्द्र प्रताप सिंह	- विद्या भवन, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कुलसचिव विनय कुमार द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित 2024

मुद्रकः चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा0लि0 42/7 जवाहर लाल नेहरु रोड प्रयागराज

खण्ड-01 खण्ड-परिचय : विकास का स्वरूप

इस ब्लाक में निम्नलिखित इकाईयाँ हैं :-

1- विकास : अर्थ, परिभाषा एवं प्रक्रिया

2- विकास माडल एवं सिद्धान्त

3- विकास एवं सामाजिक परिवर्तन

4- पंचवर्षीय योजनाएं एवं विकास

5- परम्परागत माध्यम एवं विकास

व्यक्तियों, समुदायों, राष्ट्रों का सार्वभौमिक उत्थान ही विकास है। जीवन में रचनात्मक परिवर्तन का यही एक सेतु है। संवृद्धि, प्रगति से बढ़कर विकास समग्र परिवर्तन का सूचक है। यह सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन का कारण और परिणाम है। भारत में सामाजिक परिवर्तन परम्परा और आधुनिकता दोनों पर आधारित है।

अपने राष्ट्र के विकास में पंचवर्षीय योजनाओं की महती भूमिका है। इस भूमण्डलीकरण के युग में भारतीय अर्थ व्यवस्था को उन्नत बनाने में पंचवर्षीय योजनाएँ कारगर सिद्ध हुई हैं। परम्परागत, माध्यमों ने विकास के हर पहलू को सर्वत्र प्रचारित प्रसारित किया है।

इकाई 1 - विकास : अर्थ, परिभाषा एवं प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

..0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 विकास की परिभाषा एवं अर्थ

1.2.1 विकास और संवृद्धि के मध्य अन्तर

1.2.2 विकास के मूल तत्व

1.3 विकास का मापन

1.3.1 प्रति व्यक्ति आय

1.3.2 प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय

1.3.3 सामुदायिक सुविधाओं पर प्रति व्यक्ति सार्वजनिक व्यय

1.4 विकास के वैकल्पिक सूचक

1.4.1 जीवन के भौतिक गुण सूचक

1.4.2 मानव विकास सूचकांक

1.5 विकासशील देशों की प्रमुख विशेषताएं

1.6 विकास प्रक्रिया और उसके मुख्य पहलू

1.6.1 संवृद्धि बनाम वितरण

1.6.2 कृषि बनाम औद्योगिक विकास

1.6.3 पूँजी बनाम श्रम प्रधान तकनीक

1.6.4 शहरी बनाम ग्रामीण विकास

1.6.5 स्वतः स्फूर्त बनाम प्रेरित विकास

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 प्रश्नावली

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- विकास के अर्थ को समझ सकेंगे।
- विकास की अवधारणा की जटिलता और उसकी प्रकृति को समझ सकेंगे।
- विकास के घटकों की पहचान कर सकेंगे।
- विकास के मापन और सूचकांकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- विकासशील देश की प्रमुख समस्याओं से अवगत हो सकेंगे।
- विकास की प्रक्रिया और उसके विरोधाभासों को समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में विकास शब्द अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बेहद लोकप्रिय रहा है। विकास के आधार पर ही विश्व के देशों को विकसित, विकासशील, अल्पविकसित आदि अनेक नामों से बांटा गया है। इन देशों में विकास के संदर्भ में नवीन अवधारणाओं को जन्म दिया गया है। इस इकाई में हम विकास को परिभाषित करने और समझने का प्रयास करेंगे।

विकास की अवधारणा अनेक जटिलताओं से युक्त है। विकास का अर्थ महज प्रगति से नहीं लगाया जा सकता। अतः विकास और उसके समानार्थी प्रतीत होने वाली संकल्पना के मध्य अन्तर को समझाते हुए विकास के मूल अवयवों की व्याख्या की गयी है। विकास के विविध आयामों को देखते हुए सर्वाधिक कठिन कार्य विकास के मापन का है। इस दिशा में कुछ सूचकांकों का निर्माण किया गया है जो विकास के कुछ महत्वपूर्ण घटकों के आधार पर बनाये गये हैं। चूंकि विकास एक तुलना प्रस्तुत करता है। अतः विकासशील देशों की कुछ प्रमुख विशेषताओं को समझाया गया है और विकसित देशों के साथ तुलनात्मक जानकारी उपलब्ध करायी गयी है।

विकास के अर्थ और अवधारणा को समझाने के पश्चात् विकास की प्रक्रिया की विवेचना की गयी है। विकास प्रक्रिया के दौरान राष्ट्र और समाज को कुछ विरोधाभासों का सामना करना पड़ता है। उन विरोधाभासों को समझाया गया है जिनसे गुजर कर हर राष्ट्र विकास की नयी राह बनाता है।

1.2 विकास का अर्थ

विकास विश्व के कभी व्यक्तियों, समुदायों, परिवारों और राष्ट्रों का सार्वभौमिक

लक्ष्य है। विकास प्रकृति प्रदत्त भी है क्योंकि पृथ्वी पर समस्त जीवों में अपने अस्तित्व की रक्षा तथा अपने विकास की स्वाभाविक इच्छा होती है। इन्हीं दोनों आधारों अर्थात् श्रेष्ठता की स्वाभाविक इच्छा होती है। इन्हीं दोनों आधारों अर्थात् श्रेष्ठता हासिल करने का लक्ष्य तथा प्राकृतिक घटना पर वेकास का वैज्ञानिक अध्ययन तथा विश्लेषण किया जाना चाहिए। अतः अलग-अलग विश्वासों, विचारधाराओं और विषयों के विद्वानों ने विकास को अलग-अलग रूप में अध्ययन कर उसे समझाने का प्रयास किया है।

स्पष्टतः विकास एक सापेक्षिक अवधारणा है अतः इसके अर्थ को लेकर मतैक्य नहीं है। इस अवधारणा का अलग-अलग सन्दर्भ में भिन्न-भिन्न रूप में प्रयोग होता है। विकास का मूलतः अर्थ है उद्घाटित करना, खोलना, विस्तार करना। जब इसे मानव समुदाय के संदर्भ में लागू किया जाता है तो इसका अर्थ निकलता है कि अपनी सम्भाव्य क्षमताओं को उजागर करना, उनका विस्तार करना। सामान्य रूप में विकास का अर्थ अपनी क्षमताओं को पहचान कर अपनी स्थिति में वांछित दिशा में रचनात्मक परिवर्तन लाना है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह के अनुसार "समाज के सदस्यों में वांछनीय दिशा में नियोजित सामाजिक परिवर्तन लाने के उपाय को विकास कहते हैं। "चूंकि वांछित दिशा समय, स्थान और संस्कृति के आधार पर भिन्न-भिन्न होती है। अतः विकास की धारणा सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और राजनैतिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न पायी जाति है।

जीवन के रचनात्मक परिवर्तन में आर्थिक तथा सामाजिक पहलू दोनों सम्मिलित होते हैं। विकास के व्यापार, वाणिज्य, कृषि, उद्योग, शिक्षा स्वास्थ्य आदि विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के साथ-साथ कमजोर वर्ग, स्त्रियों, बच्चों बीमार लोगों, बेरोजगारों, वृद्धजन, अल्पसंख्यकों आदि का कल्याण भी शामिल किया जाता है। यही कारण है कि विकास को मूल्य धारित अवधारणा माना जाता है।

विकास पर चर्चा करते समय हम कुछ राष्ट्रों को अन्य राष्ट्रों की तुलना में विकसित कुछ को अल्पविकसित और कुछ को विकासशील राष्ट्र की संज्ञा देते हैं। स्पष्टतः विकास की अवधारणा 'सापेक्षिक' भी है जो तुलना पर आधारित है।

विकास के अर्थ को और भी बेहतर ढंग से समझने के लिए विकास और उससे जुड़ी अन्य अवधारणा संवृद्धि के मध्य अन्तर को समझना आवश्यक है।

1.2.1 संवृद्धि और विकास के मध्य अन्तर

सामान्यतः आर्थिक संवृद्धि तथा विकास को पर्यायवाची मान लिया जाता है लेकिन ऐसा नहीं है। आर्थिक संवृद्धि अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमताओं में लगातार वृद्धि के रूप में परिभाषित की जाती है। आर्थिक संवृद्धि से तात्पर्य है अर्थव्यवस्था में

उत्पादित समस्त वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में वृद्धि अर्थात सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि। दूसरी ओर विकास का अर्थ भौतिक कल्याण में लगातार सुधार से है। विशेषतः उन लोगों के आर्थिक कल्याण में सुधार जो गरीब हैं, कमजोर हैं और समाज के हाशिये पर हैं। अर्थशास्त्री डी बाइट के अनुसार "आर्थिक विकास बहुमुखी प्रवृत्ति का द्योतक है। जिसमें केवल मौद्रिक आय में वृद्धि सम्मिलित नहीं होती बल्कि सामाजिक आदतों, शिक्षा, जन स्वास्थ्य, अधिक आराम और वास्तव में उन समस्त सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में वृद्धि सम्मलित होती है जोकि पूर्ण और सुखी जीवन का निर्माण करती है।

काफी समय तक यह माना जाता रहा कि विकास आर्थिक संवृद्धि पर टिका है। अतः आर्थिक संवृद्धि पर ध्यान दिये जाने से विकास स्वतः ही हो जायेगा। किन्तु यह मान्यता लागू नहीं हो सकी। उदाहरणार्थ भारत ने स्वतंत्रता के पश्चात् खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली और उत्पादन में तीन गुणा से ज्यादा वृद्धि कर ली किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक भारतीय को पेट भर पर्याप्त अनाज प्राप्त हो रहा है। विकास के लिए आर्थिक संवृद्धि के न्यायपूर्ण वितरण को ध्यान में रखा जाना चाहिए। आर्थिक संवृद्धि और विकास के मध्य अन्तर इस तालिका द्वारा समझे जा सकते हैं-

आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth)	**विकास (Development)**
1. संवृद्धि केवल आर्थिक वृद्धि पर ध्यान देती हैं अतः यह एकपक्षीय अवधारणा है।	विकास बहुआयामी अवधारणा है जिसके राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक आदि अनेक पहलू हैं।
2. यह उत्पादन में वृद्धि से सम्बन्धित है।	यह अत्पादन के वितरण से सम्बन्धित है।
3. इसके लक्ष्य अल्पकालीन हैं।	इसके लक्ष्य दीर्घकालीन हैं।
4. यह मात्रात्मक संकल्पना है।	यह गुणात्मक संकल्पना है।
5. यह केवल सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि की मांग करता है।	यह सकल घरेलू अत्पाद में वृद्धि के साथ संस्थाओं, प्रशासन और समाज में संरचनात्मक परिवर्तन की मांग करता है।
6. इसका सम्बन्ध विकसित देशों की समस्या से है।	इसका सम्बन्ध विकासशील देशों की समस्याओं से है।
7. इसके लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती।	यह विशेष नियोजित प्रयास की मांग करता है।

1.2.2 विकास के मूलभूत तत्व

विकास की विस्तृत व्याख्या और विकास तथा संवृद्धि के मध्य अन्तर को समझ लेने के पश्चात विकास की अवधारणा के कुछ मूलभूत तत्व उभर कर सामने

आते हैं जिन्हें मिशेल टोडारो ने तीन बिन्दुओं में सम्मिलित किया है-

(अ) जीवन की मूलभूत आवश्यकतायें :-जीवन को सानंद जीने के लिए मनुष्य को कुछ मूलभूत सुविधाओं की आवश्यकता होती है। इन मूलभूत अवश्यकताओं में शामिल है रोटी, कपड़ा, मकान, प्राथमिक साक्षरता, बुनियादी स्वास्थ्य सुविधायें और जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा। यदि इन आवश्यकताओं में से कोई पूरी न हो तो वह अल्पविकास की अवस्था है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था की यह प्राथमिक जिम्मेदारी है कि वह सुविधायें सभी के लिए उपलब्ध करायें। ये सुविधायें जीवन की गुणवत्ता का द्योतक है।

(ब) आत्मसम्मान - हर व्यक्ति तथा हर राष्ट्र का अपना आत्म सम्मान आत्म गौरव तथा प्रतिष्ठा होती है। इस आत्मगौरव को बनाये रखा जाये और उसका सम्मान हो। आत्म गौरव की अनुभूति का आव तथा हीनता का बोध विकास के अभाव को दर्शाता है।

(स) स्वतंत्रता - स्वतंत्रता से यहाँ तात्पर्य है राजनैतिक अथवा वैचारिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक दासता से स्वतंत्रता। दूसरे व्यक्तियों, संस्थायों, रूढ़िवादी विचारधारा की दासता या निर्भरता अल्पविकास को व्यक्त करती है। विकास ऐसे संस्थागत ढाँचे के निर्माण की मांग करता है जिसमें निर्णय लेने के सभी स्तरों के योगदान की अनुमति हो, सबको समान अवसर प्राप्त हों तथा (चयन) चुनाव की सीमा विस्तृत हो।

1.3 विकास का मापन

विकास को परिभाषित करना जिस प्रकार मुश्किल कार्य है उसी तरह विकास का मापन भी कठिनाइयों से युक्त है। किन्तु फिर भी विकास का संख्यात्मक मापन महत्वपूर्ण है क्योंकि-

(अ) यह विकास की वर्तमान दशा और दिशा को व्यक्त करता है।

(ब) भविष्य के नियोजन हेतु मापदण्ड निर्धारित करता है।

(स) विभिन्न विकास कार्यक्रमों के मूल्यांकन, नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण का महत्वपूर्ण साधन उपलब्ध कराता है

(द) विकास की तुलना का आधार प्रदान करता है।

विकास का मापन निम्नलिखित आधारों पर किया जा सकता है-

प्रतिव्यक्ति आय

प्रतिव्यक्ति उपभोग व्यय

सामुदायिक सेवाओं तथा सुविधाओं पर प्रति व्यक्ति सार्वजनिक व्यय।

1.3.1 प्रति व्यक्ति आय

किसी भी राष्ट्र में एक वर्ष के अन्दर उत्पादित समस्त वस्तुओं तथा सेवाओं से बाजार मूल्य को सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GDP) कहते हैं। यदि इस आय में से उपकरणों तथा मशीनों का घिसावट मूल्य अर्थात मूल्य ह्रास घटा दें तो शेष शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन कहलाता है। इसमें जनसंख्या का भाग देने पर प्रति व्यक्ति आय प्राप्त होती है। ऊंची प्रति व्यक्ति आय से तात्पर्य है ऊंचा जीवन स्तर। प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में वद्धि इस बात को भी उजागर करती है कि भले ही जनसंख्या में वृद्धि हो रही हो किन्तु उत्पादन में उससे अधिक वृद्धि हो रही है, और यह बात विकास के लिए आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1950 में इसे विकास के मापन का मुख्य आधार माना गया तथा आर्थिक सहायता के निर्धारण हेतु 200 डालर से कम प्रति व्यक्ति आय वाले राष्ट्रों को अल्पविकसित राष्ट्र का दर्जा प्रदान किया।

लेकिन प्रति व्यक्ति आय को विकास का मापक मानने में कुछ कठिनाइयाँ हैं जो निम्ननांकित हैं-

- प्रति व्यक्ति आय की गणना में गैर भुगतान कार्यों का मूल्य शामिल नहीं किया जाता है। जैसे पत्नी द्वारा किया गया गृहकार्य, स्वयं के उपभोग हेतु किसान द्वारा उत्पादित अनाज, घरेलू कार्यों में लगा श्रम आदि। भारत जैसे विकासशील देशों में इन कार्यों के माध्यम से अच्छे अनुपात में वस्तुएँ तथा सेवाएं प्रदान की जाती हैं जिनकी गणना न होने से इन राष्ट्रों की राष्ट्रीय आय कम हो जाती है।
- राष्ट्रीय आय में वृद्धि उत्पादन संरचना तथा राष्ट्रीय आय के वितरण की व्याख्या नहीं करती। जैसे कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात आदि की राष्ट्रीय आय काफी अधिक है। किन्तु यहाँ की राजनैतिक तथा सामाजिक व्यवस्था को देखकर इन्हें विकसित नहीं कहा जा सकता। इन राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था उन संसाधनों पर टिकी है जिनकी पुनः भरपाई सम्भव नहीं है अर्थात् उनकी समाप्ति पर यहाँ की अर्थव्यवस्था भी चरमरा जायेगी। अतः इस प्रकार का विकास खोखला और अंशकालिक है।
- यह मापक आर्थिक गतिविधियों के विस्तार के साथ समाज तथा वातावरण पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को गणना में शामिल नहीं करता जैसे औद्योगीकरण के फलस्वरूप जल, वायु शोर प्रदूषण, भीड़भाड़ युक्त शहर, मलिन बस्तियाँ आदि।
- सामान्यतः माना जाता है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि बेरोजगारी में कमी लाती

है किन्तु राष्ट्रीय आय में वृद्धि श्रम को प्रतिस्थापित कर पूँजी गहन तकनीक से की जाती है तो आय में वृद्धि के साथ बेरोजगारी में वृद्धि भी देखी जा सकती है।

- प्रतिव्यक्ति आयु की गणना अत्यन्त दुरूह कार्य है। यह और भी कठिन हो जाता है जब समाज में वस्तु विनिमय, स्वयं के उपभोग हेतु उत्पादन, अशिक्षा आदि की स्थिति हो।

इन सभी कमियों के बावजूद प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय विकास का एक महत्वपूर्ण मापक माना जाता है।

1.3.2 प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय

जीवन स्तर का सही मापक आय की अपेक्षा उपभोग होता है। अनेक विद्वान प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय को विकास का उचित मापक मानते हैं प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन हेतु स्थान और समय के साथ कीमत सूचकांक में परिवर्तन को समायोजित किया जाना आवश्यक होता है। भारत में उपभोग व्यय के आंकड़ें राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे संगठन (NSSO) द्वारा सर्वे पद्धति से एकत्र किये जाते हैं। जो आकलन (Estimate) पर आधारित होते हैं। प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय की गणना में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि आय की अपेक्षा उपभोग के आंकड़े एकत्र करना और भी कठिन कार्य है। उपभोग की विविधता को देखते हुए सभी व्यक्तियों के उपभोग व्यय सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित नही किये जा सकते। इसीलिए इस हेतु सेम्पल की सहायता से आकलन किया जाता है। प्रतिव्यक्ति उपभोग व्यय द्वारा अलग-अलग क्षेत्रों में उपभोग व्यय की गणना भी की जा सकती है जैसे शिक्षा या स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय आदि।

1.3.3 सामुदायिक सुविधाओं और सेवाओं पर प्रतिव्यक्ति सार्वजनिक व्यय

विकासशील तथा कल्याणकारी राष्ट्र में सरकार द्वारा अपनी जनता को विभिन्न प्रकार की सुविधाएं तथा सेवायें प्रदान की जाती हैं। जैसे-स्कूल, अस्पताल, सड़के, पार्क, सुरक्षा, मोहल्लों पर रोशनी आदि। सरकार की ये सुविधायें और सेवायें वास्तविक आय है जो लोगों के जीवन स्तर को प्रभावित करती है। निर्धन लोगों के लिए इन सेवाओं का अत्यधिक महत्व होता है। अतः इन सुविधाओं और सेवाओं पर किया गया प्रतिव्यक्ति सार्वजनिक व्यय सामाजिक आर्थिक कल्याण का एक अच्छा मापक है। उदारीकरण तथा भूमण्डलीकरण के इस युग में सरकार विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं से अपने हाथ खींच रही है जिससे निर्धनता में वृद्धि हो रही है और आय की असमानता बढ़ रही है।

1.4 विकास के वैकल्पिक सूचक

उपरोक्त सभी मापदण्डों में प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय उत्पाद को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण मापक माना जाता है। किन्तु इन सभी मापदण्डों में कुछ महत्वपूर्ण कमियां देखी जाती हैं। जैसे यह आय की असमान वितरण की उपेक्षा करते हैं और इनमें वस्तुओं तथा सेवाओं की वास्तविक उपलब्धि और उनके प्रयोग के पहलुओं की भी उपेक्षा होती है।

अतः विकास के लिए कुछ अन्य वैकल्पिक सूचकांक भी प्रस्तुत किये गये हैं। इन वैकल्पिक सूचकांकों में दो सूचकांक सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं-

जीवन का भौतिक गुण सूचकांक (PQLI)

मानव विकास सूचकांक (HDI)

1.4.1 जीवन का भौतिक गुण सूचकांक (PQLI)

मोरिस तथा मेक एल्विन द्वारा प्रतिव्यक्ति आय के स्थानापन्न के रूप में जीवन का भौतिक गुण सूचकांक प्रस्तुत किया गया। इस सूचकांक द्वारा आर्थिक और सामाजिक दोनों विकास का मापन सम्भव है। इस सूचकांक में तीन महत्वपूर्ण विकाससूचक शामिल किये जाते हैं वे हैं-शिशु मृत्यु दर, एक साल की उम्र पर जीवन की प्रत्याशा तथा साक्षरता। प्रत्येक सूचक के अन्तर्गत राष्ट्रों को उनके निष्पादन के आधार पर शून्य से 100 तक अंक दिये जाते हैं। शून्य से तात्पर्य पूर्णतः खराब निष्पादन तथा 100 से तात्पर्य सर्वोत्तम निष्पादन होता है। तीनों सूचकों को मिलाकर उनके औसत की गणना कर सभी को समान गुरूत्व प्रदान करने वाला संयुक्त सूचकांक बनाया जाता है। अतःवह भी शून्य से 100 की स्केल होता है।

मोरिस तथा मेक एल्विन द्वारा इस पद्धति के आधार पर 150 राष्ट्रों के लिए जीवन के भौतिक गुण सूचकांक की गणना की गयी। इस सूचकांक में 15 वर्ष से अधिक आयु वालों में साक्षरता दर का विस्तार शून्य से शत प्रतिशत के बीच, शिशु मृत्युदर का विस्तार प्रति हजार जन्मे बच्चों पर सात से 229 बच्चों तक तथा एक वर्ष की आयु पर जीवन प्रत्याशा का विस्तार 38 वर्ष से 77 वर्ष तक था।

जीवन के भौतिक गुण सूचकांक तथा प्रति व्यक्ति आय के आधार पर विकास के स्तर के मापन की तुलना करने पर पता चला कि विकास के ऊंचे स्तर पर दोनों अनुरूप हैं लेकिन विकास के निचले स्तर पर विकासशील देशों के मध्य ये दोनों समान परिणाम नहीं देते। जैसे 1981 में ब्राजील में प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद 2214 डालर था तथा चीन में यह 304 डालर था। चीन की आय ब्राजील की तुलना में सात गुना कम होने पर भी चीन का भौतिक गुण सूचकांक ब्राजील की तुलना में अधिक था।

1.4.2 मानव विकास सूचकांक

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 1990 में विकास के मानवीय पहलुओं पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। इस रिपोर्ट में यह माना गया कि विकास के मूल में मानव है तथा विकास का तात्पर्य लोगों के सम्मुख चुनाव और विकल्पों में वृद्धि से है। विकास को इस नये रूप में परिभाषित करने पर उसे सिर्फ आय के आधार पर मापना सम्भव नहीं था अतः विकास के माप हेतु एक नया सूचकांक बनाया गया जिसे मानव विकास सूचकांक कहते हैं। प्रतिवर्ष यू0एन0डी0पी0 द्वारा मानव विकास रिपोर्ट तैयार की जाती है जिसमें मानव विकास सूचकांक की गणना की जाती है। मानव विकास सूचकांक के अन्तर्गत चार चरों को शामिल किया जाता है ये चर हैं-

- लम्बे और स्वस्थ जीवन के मापन के लिए जन्म पर जीवन की प्रत्याशा।
- ज्ञान के मापन के लिए 15 वर्ष से अधिक आयु पर प्रौढ़ साक्षरता और प्राथमिक, सैकण्डरी और सीनियर सैकण्डरी स्कूल तक का संयुक्त सकल नामांकन अनुपात शामिल किया जाता है। इसमें प्रौढ़ साक्षरता को दो तिहाई भार तथा सकल नामांकन अनुपात को एक तिहाई भार दिया जाता है।
- एक बेहतर जीवन स्तर के मापन के लिए प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद को लिया जाता है, जिसकी गणना क्रय शक्ति तुल्यता के आधार पर अमेरीकी डालर में की जाती है।

इन तीनों मापदण्डों के अलग-अलग सूचकांक तैयार किये जाते हैं और फिर एक संयुक्त मानव विकास सूचकांक तैयार किया जाता है। मानव विकास सूचकांक के अन्तर्गत राष्ट्रों को शुन्य से एक के मध्य अंक दिये जाते हैं। 0.5 से नीचे सूचकांक मानवीय विकास के निम्नस्तर को दर्शाता है। 0.5 से 0.8 के मध्य मान मध्यम स्तर को तथा 0.8 से अधिक मान मानवीय विकास के उच्च स्तर को दर्शाता है। सूचकांक की गणना दशमलव के बाद तीन अंकों तक की जाती है। यू0एन0डी0पी0 की मानवीय विकास रिपोर्ट,2003 के अनुसार कुछ देशों के मानव विकास सूचकांक निम्न तालिका में दर्शाये गये हैं।

राष्ट्र	HDI रेंक	जीवन प्रत्याशा सूचक	शिक्षा स्तर सूचक	प्रतिव्यक्ति GDP सूचक	मानव विकास सूचकांक का मूल्य
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	7	0.86	0.97	0.97	0.937
जापान	9	0.94	0.94	0.92	0.932
चीन	104	0.76	0.79	0.62	0.721
भारत	127	0.64	0.57	0.56	0.590
केन्या	146	0.36	0.73	0.38	0.489

स्रोत : यू0एन0डी0पी0, मानव विकास रिपोर्ट, 2003

1.5 विकासशील देशों की प्रमुख विशेषतायें

जैसा कि पहले कहा गया है विकास एक सापेक्षिक संकल्पना है। इसलिये क्षेत्र ख की अपेक्षा क्षेत्र 'क' अधिक विकसित हो सकता है और वह क्षेत्र 'ग' की अपेक्षा कम विकसित हो सकता है। अतः जब हम विकासशील देशों की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा करेंगे तो वह विकसित देशों की तुलना के संदर्भ में होगी। अधिकांश विकासशील देशों में निम्नलिखित विशेषतायें देखने को मिलती है-

(i) व्यापक निर्धनता

(ii) निम्न आय स्तर और आय की असमानता

(iii) निम्न जीवन स्तर

(iv) बेरोजगारी और अल्परोजगार की अधिकता

(v) प्राकृतिक संसाधनों का अल्प प्रयोग

(vi) प्राथमिक क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता

(vii) स्त्रियों का निम्न स्तर

अल्पविकसित देशों की ये विशेषताएँ कुछ उन समस्याओं को बताने में मदद करेगी जो इन अधिकांश देशों में प्रायः एक जैसी होती हैं। इससे हम विकासशील समाजों को प्रभावित करने वाले मुख्य विषयों को भी जान सकेंगे :-

(i) विकासशील देशों व्यापक पैमाने पर निर्धनता देखी जा सकती है। विश्व बैंक की रिपोर्ट (2004) के अनुसार दुनिया में तकरीबन एक बिलियन लोग व्यापक निर्धनता में जीवन गुजार रहे हैं जिनके पास प्रतिदिन एक डालर भी खर्च करने के लिए नहीं है। इन लोगों का लगभग 31 प्रतिशत भाग दक्षिण एशिया में और सर्वाधिक हिस्सा सहारा अफ्रीका क्षेत्र में निवास करता है। भारत में कुल जनसंख्या का 35 प्रतिशत हिस्सा ऐसा है जिसके पास प्रतिदिन खर्च के लिए 1 डालर भी नहीं है। वर्ष 1999-2000 के आकलन के अनुसार) (UNDP एक अन्य अनुमान के अनुसार मानव विकास रिपोर्ट, 1998) दुनिया की उच्च आय वाले राष्ट्रों से सम्बन्धित 15.1 प्रतिशत जनसंख्या का विश्व की आय में 81 प्रतिशत हिस्सा है जब कि 37 प्रतिशत जनसंख्या वाले विकासशील देशों का विश्व आय में हिस्सा मात्र 3 प्रतिशत है।

(i) विकासशील देशों की एक महत्वपूर्ण विशेषता उनकी निम्न आय है। 2003 के अनुमान के अनुसार स्विट्जरलैण्ड की प्रतिव्यक्ति आय 39,880 डालर, जापान की प्रतिव्यक्ति आय 34,510 डालर, स्वीडन के लिए 28,840, अमेरीका के लिए 30,600 डालर और ब्रिटेन में प्रतिव्यक्ति आय 22,640 डालर थी। इसके विपरीत विकासशील देशों की आय अविकसित देशों के

आगे कहीं नहीं ठहरती है जो बांग्लादेश के लिए 400 डालर, चीन के लिए 11,00 डालर भारत के लिए 520 डालर तथा श्रीलंका के लिए 930 डालर थी। आय में कमी के साथ-साथ विकासशील देशों में आय की असमानता भी काफी गहरी है। इसे निम्न तालिका द्वारा समझा जा सकता है।

राष्ट्र/वर्ष	निम्नतम् 10 प्रतिशत	निम्नतम् 20 प्रतिशत	उच्चतम 10 प्रतिशत	उच्चतम् 20 प्रतिशत
विकसित देश				
संयुक्त राज्य अमेरिका (1997)	1.8	5.2	30.5	46.4
ब्रिटेन (1995)	2.1	6.1	22.5	43.2
फ्रांस (1995)	2.8	7.2	25.5	40.2
जापान (1993)	4.8	10.6	21.7	35.8
विकासशील देश				
भारत (1997)	3.5	8.1	33.5	46.1
ब्राजील (1998)	0.7	2.2	48.0	64.1
चिली (1998)	1.1	3.2	45.4	61.3
नाइजीरिया (1993)	0.8	2.6	35.4	53.3

स्रोत :- यू0एन0डी0पी0, मानव विकास रिपोर्ट, 2003

(iii) निम्न जीवन स्तर की दशाऐं अल्प विकसित देशों की एक अन्य विशेषता है। इन देशों में स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छ जल, चिकित्सा सुविधाएं जैसी आधारभूत सुविधाओं की काफी कमी पायी जाती है। निम्न तालिका द्वारा विकसित और विकासशील देशों के मध्य जीवन स्तर की भिन्नता को समझा जा सकता है।

राष्ट्र	बाल मृत्युदर (5 वर्ष से कम) प्रति हजार जीवित बच्चों पर	जन्म पर जीवन की प्रत्याशा		सफाई सुविधाओं तक पहुँच का अभाव	निरक्षरता की दर (15 वर्ष और अधिक	
		पुरुष	महिलाऐं		पुरुष	महिलाऐं
निम्न आय वाले राष्ट्र	121	58	60	44%	28%	47%
मध्यम आय वाले राष्ट्र	37	68	72	23%	8%	17%
उच्च आय वाले राष्ट्र	7	75	81	लगभग शून्य	लगभग शून्य	

स्रोत : वर्ल्ड बैंक वर्ल्ड डेवलपमेन्ट रिपोर्ट, 2003

(iv) बड़े स्तर पर व्याप्त बेरोजगारी व अल्प बेरोजगारी विकासशील देशों का लक्षण है। इन देशों में बेरोजगारी तथा अल्प बेरोजगारी लगातार बढ़ रही है क्योंकि औद्योगिकरण का स्तर निम्न है तथा कृषि क्षेत्र में समस्त श्रम शक्ति को रोजगार नहीं दिया जा सकता है। भारत में रोजगार के अवसरों पर टास्क फोर्स (2001) की रिपोर्ट के अनुसार देश में बेरोजगारी की संख्या 1999-2000 में 897 लाख व्यक्ति आंकी गयी है जिसके 2006-07 में बढ़कर 1972 लाख व्यक्ति हो जाने का अनुमान लगाया गया है। इन देशों में कृषि क्षेत्र में अल्प बेरोजगारी और छिपी हुई बेरोजगारी की दशा भी देखने को मिलती है।

(v) प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से विकासशील राष्ट्र धनी होने के बावजूद वे इनका पूर्ण और वैज्ञानिक विदोहन करने में असमर्थ रहते हैं। इन राष्ट्रों के पास जल, जमीन, जंगल तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के सम्भाव्य उपयोगों की जानकारी का अभाव होता है। इन राष्ट्रों में एक और कमजोरी पर्याप्त तकनीकी सुविधाओं का न होना भी है जिसके चलते ये नये संसाधनों की खोज और विद्यमान संसाधनों का आर्थिक प्रयोग नहीं कर पाते हैं। इसीलिए इन राष्ट्रों के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि ये प्राकृतिक संसाधनों से एक धनी राष्ट्र हैं लेकिन उनका ठीक से विदोहन, उपयोग और संरक्षण न कर पाने के कारण आर्थिक दृष्टि से निर्धन हैं।

(vi) देश के आर्थिक क्षेत्र में प्राथमिक क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता विकासशील देशों का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। स्थापित विकास प्रतिमानों के अनुसार देश के विकास को आगे बढ़ाने के लिए प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक क्षेत्र की ओर फिर द्वितीयक क्षेत्र से तृतीयक क्षेत्र की ओर गति होनी चाहिए।

प्राथमिक क्षेत्र का इन देशों में प्रभाव दो रूपों में देखने को मिलता है। पहला इन देशों में घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान 25 से 50 प्रतिशत के बीच देखा जाता है जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी आदि औद्योगिक देशों में यह हिस्सा 2 से 4 प्रतिशत के बीच होता है। दूसरा विकासशील देशों की श्रमशक्ति का अधिकांश हिस्सा प्राथमिक क्षेत्र में कार्यरत होता है। 1990 के प्रारम्भ में कृषि क्षेत्र में संलग्न कार्यशील जनसंख्या का अनुपात ब्रिटेन में 2 प्रतिशत, संयुक्त राज्य अमेरिका में 3 प्रतिशत, कनाडा में 3 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया में 6 प्रतिशत और फ्रांस में 5 प्रतिशत था वहीं पाकिस्तान में 52 प्रतिशत, बांग्लादेश में 65 प्रतिशत, भारत में 64 प्रतिशत, चीन में 72 प्रतिशत आंका गया।

(vii) विकसित देशों की अपेक्षा अल्पविकसित देशों में महिलाओं की दशा अधिक दयनीय है। इन्हें पुरुषों की अपेक्षा नीचा दर्जा प्राप्त होता है। महिलाओं के स्वास्थ्य और पोषण की सुविधाएं असंतोषजनक होती है तथा यहाँ महिलाओं

और पुरुषों के मध्य समाज के प्रत्येक स्तर पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष भेदभाव देखा जाता है। महिलाओं को पुरूषों के बराबर मजदूरी नहीं दी जाती।

1.6 विकास प्रक्रिया और उसके मुख्य पहलू

विकास की परिभाषा और उसके मापन के अध्ययन से स्पष्ट है कि विकास की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है। विकास प्रक्रिया राष्ट्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक दशाओं सांस्कृतिक ताने-बाने आदि से निर्धारित होती है। अतः प्रत्येक राष्ट्र की विकास रणनीति भिन्न होती है। विकास प्रक्रिया के तहत कुछ ऐसे विरोधाभासों को देखा जाता है जिनके मध्य निर्णय लेने में असमंजस की स्थिति पैदा हो जाती है। विकास प्रक्रिया के कुछ ऐसे ही विरोधाभासी पहलू जिन्हें लेकर विकास के विद्वानों में विवाद देखा जाता है, की यहाँ चर्चा की गयी है-

1.6.1 संवृद्धि बनाम वितरण

विकास प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण विरोधाभास यह है कि संवृद्धि पर ध्यान दिया जाये या वितरण पर। विकास के परम्परागत सिद्धान्तों में इस बात पर जोर दिया गया कि आर्थिक संवृद्धि ही विकास का इंजन है, अतः विकास प्रक्रिया में इस बात पर जोर हो कि किस प्रकार आर्थिक संवृद्धि को गति प्रदान की जाय। यह विचार 'टपकन धारा सिद्धान्त' में विश्वास रखता था जिसके अनुसार आर्थिक संवृद्धि के फलस्वरूप विकास के लाभ समस्त समाज में रिस-रिस कर पहुँच जायेंगे। अतः समाज को विकास के लाभ के वितरण की चिंता नहीं करनी चाहिए।

भारत में भी प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भारी मात्रा में पूंजी निवेश पर बल दिया गया ताकि आर्थिक संवृद्धि की गति तीव्र की जा सके। किन्तु तीन योजनाओं के बाद यह महसूस किया गया कि आर्थिक संवृद्धि के लाभ समाज के प्रत्येक सदस्य तक नहीं पहुँचे हैं। इससे असमानता कम होने की अपेक्षा बढ़ी है। इससे वितरण का प्रश्न विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण माना जाने लगा। इसके लिए सरकार से यह अपेक्षा की जाने लगी कि वह ऐसी नीतियों, कार्यक्रमों और उपकरणों को क्रियान्वित करें जिनसे विकास के लाभ हाशिये पर खड़ें लोगों तक पहुँच सके अर्थात् न्यायपूर्ण वितरण के साथ विकास हो सके।

1.6.2 कृषि बनाम औद्योगिक विकास

विकास प्रक्रिया में इस बात को लेकर को लेकर भी बहस चलती है कि विकास का आधार क्या हो कृषि या उद्योग। पाश्चात्य देशों के विकास स्तर को ध्यान में रखते हुए विकासशील देशों का भी यह मानना रहा कि औद्योगीकरण ही तीव्र गति से विकास ला सकता है अतः कृषि क्षेत्र की उपेक्षा कर इन देशों ने विकसित देशों की तर्ज पर

भारी उद्योग स्थापित किये। किन्तु विकास में इन उद्योगों का योगदान अत्यन्त अल्प और कुछ मामलों में ऋणात्मक देखा गया। इसका पहला कारण तो यह था कि औद्योगिकरण के लिए भारी मात्रा में पूंजी विनियोग की आवश्यकता थी और ऐसा लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं की कीमत पर किया गया था। दूसरा इन राष्ट्रों को अनाज की कमी का सामना करना पड़ा जिसका परिणाम यह निकला कि इन राष्ट्रों को भारी मात्रा में विदेशी पूंजी व्यय कर अनाज का आयात करना पड़ा। तीसरा कारण यह था कि ये उद्योग आयातित पूंजी, तकनीक तथा प्रबन्धन पर आधारित थे जिनके अनुरूप कृषि की दशा, मानक पोषण तथा जीवन स्तर का विकासशील देशों में अभाव था।

दूसरी ओर कृषि पर अत्यधिक जोर देने वाले यह मानते हैं कि जब प्रति व्यक्ति आय का स्तर निम्न हो तब कृषि ही विकास का पथ प्रदर्शक हो सकती है जिसमें निवेश बढ़ाकर राष्ट्रीय आय बढायें तभी उद्योग धन्धे भी फलेंगे-फूलेंगे। लेकिन यह विचार भी कुछ तथ्यों को भूल जाता है जैसे औद्योगिकरण केवल आर्थिक संवृद्धि के लिए ही नहीं स्वयं कृषि क्षेत्र के विकास के लिए भी आवश्यक है। साथ ही विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र में छिपी बेरोजगारी के रूप में अतिरिक्त श्रम होता है जिन्हें नवीन उद्योगों की स्थापना द्वारा ही खपाया जाता है। अतः उद्योग और कृषि के मध्य बेहतर तालमेल और संतुलन की आवश्यकता होती है तभी विकास सम्भव है।

1.6.3 पूंजी बनाम श्रम प्रधान तकनीक

प्रौद्योगिकी अथवा तकनीक वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु का निर्माण किया जाता है। किसी भी वस्तु के निर्माण की अनेक प्रक्रियाएं हो सकती हैं, किन्तु प्रौद्योगिकी विकास के द्वारा वस्तु का निर्माण अपेक्षाकृत कम लागत पर, शीघ्रता से और अधिक कुशलता से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए पहले कपड़ा परम्परागत रूप से खड्डी पर बुना जाता था लेकिन वर्तमान में पावरलूम में बड़े-बड़े कारखानों में कपड़ों का निर्माण किया जाता है।

प्रौद्योगिकी में सुधार और व्यवहारिक प्रयोग हेतु विनियोग की आवश्यकता होती है। प्रोद्योगिकी सुधार दो प्रकार से होता है। प्रथम जो उत्पादन में श्रम की मात्रा को कम कर दे। इस प्रकार की प्रौद्योगिकी श्रम प्रतिस्थापन प्रौद्योगिकी मानी जाती है। दूसरा श्रम को प्रतिव्यक्ति किये बगैर कम लागत पर उत्पादन सम्भव बनाने वाली तकनीक श्रम गहन या श्रम प्रधान तकनीक कहलाती है।

पूंजीगहन तकनीक तीव्र आर्थिक विकास में सहायक होती है किन्तु यह मंहगी होती है। विकासशील देशों में एक ओर पूंजी की कमी होती है और दूसरी ओर उनकी अत्यधिक जनसंख्या से श्रम बाहुल्य की स्थिति रहती है, जिन्हें रोजगार प्रदान करना

इन देशों के लिए प्रमुख चुनौती है।प्रौद्योगिकी के संदर्भ में एक और नयी अवधारणा भी प्रचलित है वह है 'उपयुक्त प्रौद्योगिकी। इस अवधारणा में इस बात पर जोर दिया गया है कि विकासशील देश पश्चिमी देशों की प्रौद्योगिकी का अंधानुकरण छोड़कर स्वयं की ऐसी तकनीक और प्रौद्योगिकी अपनायें जो वहाँ की आवश्यकताओं, उपलब्ध संसाधनों, विशिष्टताओं और वहाँ के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल हो।

अतः प्रौद्योगिकी का चुनाव विकास प्रक्रिया का एक पेचीदा मसला है। उत्पादन में तीव्र वृद्धि की आवश्यकता और बेरोजगारी तथा निर्धनता निवारण हेतु रोजगार में वृद्धि, दोनों लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए प्रौद्योगिकी चयन आवश्यक है।

1.6.4 शहरी बनाम ग्रामीण विकास

पाश्चात्य देशों का विकास शहरीकरण के साथ जुड़ा हुआ है। अतः अनेक विचारक शहरीकरण को विकास का एक पैमाना मानते हैं। शहरी विकास से तात्पर्य है शहर में आधाभूत संरचना का विकास और पूंजीगहन उद्योगों की वृद्धि। किन्तु विकासशील देशों में अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास करती हैं। वहाँ शहरीकरण को बढ़ावा देने का अर्थ है गांवों में रोजगार के अवसरों की कमी और ग्रामीण जनसंख्या का शहरों की ओर पलायन। इससे ग्रामीण क्षेत्र के साथ-साथ शहरों में भी विकास की अनेक समस्या उत्पन्न हो जायेगी। चूंकी ग्रामीण और शहरी क्षेत्र की अपनी अलग-अलग समस्याऐं और आवश्यकताएं होती हैं अतः विकास प्रक्रिया में दोनों क्षेत्रों के लिए साधन आवण्टन में और विकास रणनीति में संतुलन रखना आवश्यक है।

1.6.5 स्वतः स्फूर्त बनाम प्रेरित विकास

प्रत्येक राष्ट्र में समय के साथ कुछ विकास प्राकृतिक रूप से होता रहता है लेकिन उसका स्तर और गति इतनी नहीं होती कि वह राष्ट्र को संतोषजनक जीवन स्तर तक ले जायें। अतः ऐसी परिस्थितियों में प्राकृतिक विकास में कुछ हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक होता है। विकासात्मक नियोजन वह उपकरण है जिसका प्रयोग कर विकासशील राष्ट्र प्राकृतिक विकास को वांछित दिशा और तेज गति प्रदान कर सकते हैं। यहाँ तक कि विकसित देश भी विकास प्रक्रिया में सरकार के कुछ हस्तक्षेप को उचित मानते हैं। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि विकास हेतु केवल सरकार के भरोसे ही बैठा जाय। नियोजन के सकारात्मक वांछित लाभ प्राप्त करने हेतु सरकार के साथ निजी क्षेत्र, सहकारी क्षेत्र, तृतीयक क्षेत्र अर्थात गैर-सरकारी संगठनों तथा इन सबसे ऊपर जनता को स्वयं प्रयास करने होंगे। सरकार की भूमिका सहयोगात्मक तथा पूरक के रूप में होती है।

1.7 सारांश

विकास एक सापेक्षिक संकल्पना है जिसमें देश या क्षेत्र में लोगों के जीवन के भौतिक स्तर में सकारात्मक तथा व्यवस्थित परिवर्तन होते हैं। विकास की संकल्पना सामाजिक, राजनैतिक पृष्ठ भूमि और राजनैतिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर भिन्न-भिन्न पाई जाती है। विकास और संवृद्धि पर्यायवाची नहीं है। विकास संवृद्धि के साथ न्यायपूर्ण वितरण से जुड़ा है। विकास की संकल्पना बहुआयामी है जिसके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक अनेक पहलू हैं। विकास संकल्पना में तीन अवयव महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं- जीवन की मूलभूत सुविधाएं, आत्म सम्मान तथा स्वतंत्रता। विकास का मापन आवश्यक है क्योंकि यह विकास की विद्यमान दशा और दिशा को व्यक्त करता है और साथ ही तुलना का आधार प्रदान करता है। प्रति व्यक्ति आय के अलावा अब विकास मापन के कई सूचकांक भी विकसित किए गये हैं। विकासशील देशों की कुछ सामान्य विशेषताएं हैं जो सभी विकासशील राष्ट्रों में सामान्य रूप से पाई जाती है। विकास की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है जिसके साथ कुछ जटिल प्रश्न जुड़े हैं। आर्थिक प्रगति मात्र से विकास हासिल नहीं हो सकता अतः उचित वितरण भी आवश्यक है। विकास के लिए कृषि और उद्योग दोनों क्षेत्रों में विकास होना आवश्यक है श्रम की बाहुल्यता के चलते विकासशील देशों के मध्य श्रम गहन तथा पूंजी गहन तकनीक के मध्य उचित तालमेल होना आवश्यक है। शहरों और गांवों की प्राथमिकताएं तथा आवश्यकताएं भिन्न होने के कारण विकास प्रक्रिया में दोनों क्षेत्रों पर समान ध्यान दिया जाना आवश्यक है। विकास एक गतिशील अवधारणा है अतः यह प्राकृतिक रूप से निरन्तर चलता रहता है लेकिन उसके स्तर और गति को दिशा देने के लिए कुछ हस्तक्षेप आवश्यक होता है। विकासात्मक नियोजन द्वारा विकास को निर्देशित तथा प्रेरित किया जा सकता है।

1.8 शब्दावली

सकल घरेलू उत्पाद	:	एक राष्ट्र की सीमाओं के भीतर उत्पादित समस्त वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य।
सकल राष्ट्रीय आय	:	सकल घरेलू उत्पादन और विदेशों से प्राप्त शुद्ध कारक आय।
प्राथमिक क्षेत्र	:	प्राथमिक क्षेत्र प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन से सम्बन्धित होता है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत उत्पादन के क्षेत्र में प्रकृति की भागीदारी रहती है। इस क्षेत्र के कार्यकलापों में खेती, वानिकी, मछली पालन, आखेट, खनन, उत्खनन आदि शामिल किये जाते हैं।

द्वितीयक क्षेत्र : द्वितीयक क्षेत्र में वे कार्य-कलाप आते हैं जिसमें प्रारम्भिक-सामग्री को पण्य वस्तु या माल का स्वरूप दिया जाता है। जैसे कपास से धागा बनाना, लौह अयस्क से इस्पा: बनाना आदि। इस क्षेत्र में विनिर्माण, निर्माण, विद्युत गैस आपूर्ति आदि से सम्बन्धित क्रिया-कलाप आते हैं।

तृतीयक क्षेत्र : यह सेवा क्षेत्र भी कहलाता है। इसमें परिवहन, संचार वित्त, स्थावर सम्पदा, सामुदायिक तथा व्यक्तिगत सेवाएँ शामिल की जाती है।

शिशु मृत्यु दर : किसी निर्धारित वर्ष में प्रति हजार जीवित जन्मे बच्चों के पीछे शिशुओं (एक वर्ष से कम) की मृत्यु संख्या।

जन्म पर जीवन की प्रत्याशाः बच्चे के जन्म के समय लोगों के लिए मौजूद मृत्यु जोखिम के जारी रहने की स्थिति में नवजात बच्चे के कितने वर्ष तक जीवित रहने की सम्भावना।

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- बर्नेट, टी, सोशियोलॉजी एण्ड डेवलपमेन्ट, लंदन, 1988
- मिश्रा, आर. पी., डेवलपमेन्ट इश्यूज ऑफ ऑवर टाइम, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 1985
- टोडारो मिचेल पी., इकॉनानिक डेवलपमेन्ट इन द थर्ड वर्ड, लॉग मेन, लंदन
- किण्डलबर्गर चेरीस पी, हेरिज ब्रूस, इकनामिक डेवलपमेन्ट, मेग्राहिल लि0, नई दिल्ली, 1977
- सेन ए.के., हैण्डबुक ऑफ डेवलपमेन्ट, सं. एच. चेनरी और टी. एन.श्रीनिवासन भाग-1, एलसेविअर, एम. सेप्टम, 1988

2.10 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विकास और संवृद्धि के मध्य कोई तीन अन्तर बताइये।
2. प्रति व्यक्ति आय किन कारणों के आधार पर विकास का उचित माध्यम नहीं माना जा सकता ? कोई दो कारण बताओ।
3. कृषि बनाम उद्योग के विरोधाभास को समझाइये

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. विकास का क्या अर्थ है? उसके मूल अवयवों को समझाइये ?
2. विकासशील देशों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. मानव विकास सूचकांक क्या है? इस सूचकांक में विकास के किन चरों को शामिल किया जाता है।
4. विकास प्रक्रिया में संवृद्धि के साथ वितरण का प्रश्न कितना महत्वपूर्ण है। समझाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1- विकास के संदर्भ में कौनसा कथन सही है?

(अ) विकास का अर्थ केवल आर्थिक वृद्धि है

(ब) इसका सम्बन्ध विकसित देशों से है

(स) इसके लिए विशेष प्रयास आवश्यक नहीं है।

(द) इसका सम्बन्ध उत्पादन और उचित वितरण से है।

2- प्रतिव्यक्ति आय की गणना में शामिल नहीं किया जाता-

(अ) अध्यापक का वेतन

(ब) श्रमिकों की मजदूरी

(स) दुकानदारों का लाभ

(द) गैर भुगतान कार्यों का मूल्य

3- जीवन के भौतिक गुण सूचकांक में शामिल नहीं है-

(अ) प्रति व्यक्ति आय

(ब) शिशु मृत्युदर

(स) साक्षरता

(द) एक साल की उम्र पर जीवन की प्रत्याशा

4- टपकन धारा सिद्धान्त कहता है?

(अ) आर्थिक संवृद्धि के लाभ रिस-रिस कर समाज में फैल जायेंगे।

(ब) कृषि से अतरिक्त श्रम हटाकर उद्योगों में लगाया जाय।

(स) विकासशील देशों में अधिक पानी बरसना एक समस्या है।

(द) विकासशील देशों को सिंचाई सुविधा पर ध्यान देना चाहिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर-

1- (द) 2-(द) 3-(अ) 4- (अ)

इकाई 2 - विकास मॉडल एवं सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विकास के सिद्धान्त की आवश्यकता और उपादेयता

2.3 विकास के सिद्धान्तों का वर्गीकरण

2.3.1 एक रेखीय दृष्टिकोण

2.3.2 गैर एक रेखीय दृष्टिकोण

2.4 विकास के प्रमुख सिद्धान्त

2.4.1 रोस्टोव की संवृद्धि की अवस्थाऐं

2.4.2 रोगन का बड़े धक्के का सिद्धान्त

2.4.3 आर्थर लुइस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त

2.4.4 संतुलित बनाम असंतुलित विकास सिद्धान्त

2.4.5 लेवन्सटीन का न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सिद्धान्त

2.4.6 गांधीजी की विकास सिद्धान्त

2.4.7 निर्भरता का सिद्धान्त

2.4.8 विकास का मानव पूंजी निर्माण मॉडल

2.4.9 विकास के गैर आर्थिक सिद्धान्त

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 प्रश्नावली

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप-

- विकास सिद्धान्त की आवश्यकता और महत्व समझ सकेंगे।
- विकास प्रक्रिया तथा उनके निर्धारकों पर विभिन्न दृष्टिकोण से परिचित हो सकेंगे।

- विकास के विभिन्न सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- विकास के उन पहलुओं को समझ सकेंगे जिन पर विभिन्न सिद्धान्तों के अन्तर्गत बल दिया गया है।
- विकास पर पूर्व और पश्चिम के दृष्टिकोण की भिन्नता को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

हमने पिछली इकाई में जाना कि विकास एक जटिल तथा बहुमुखी प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का पुनर्गठन शामिल है। विभिन्न विद्वानों ने विकास के भिन्न-भिन्न आर्थिक-सामाजिक कारकों का समर्थन किया है। कुछ विद्वान आर्थिक विकास पर ही ध्यान केन्द्रित करते हुए बचत और विनियोग को विकास का मुख्य निर्धारक मानते हैं वहीं कुछ विद्वान गैर-आर्थिक चरों को अधिक महत्ता प्रदान करते हैं। कहीं पाश्चात्य विकसित देशों की विकास यात्रा की ऐतिहासिक व्याख्या कर उसे अविकसित देशों पर लागू करने का प्रयास किया गया है तो कहीं विकास को अपनी संस्कृति और अपनी जड़ों में खोजने की मुहिम चलाई गयी है। इस प्रकार विकास के संदर्भ में अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों, राजनेताओं, विचारकों ने अनेक मॉडल प्रतिपादित किये, कुछ मॉडल विकास को कुछ दूरी तक ले जाने में सफल रहे तो कुछ अवधारणाओं के समुद्र में खो कर रह गये।

प्रस्तुत इकाई में विकास के विभिन्न सिद्धान्तों और मॉडलों की व्याख्या की गयी है। सिद्धान्तों और मॉडलों की इस भीड़ में आप भ्रमित न हो जायें इसलिए विभिन्न सिद्धान्तों और मॉडलों को उनके मूल दृष्टिकोण के आधार पर समूहबद्ध कर वर्गीकृत किया गया है। यह वर्गीकरण सरल रूप में विकास पर विभिन्न वैचारिक दर्शन को समझाने में सहायक होगा। अगले खण्ड में उन व्यक्तिगत सिद्धान्तों और माडलों की विस्तार से व्याख्या की गयी है जिन्हें विकास अध्ययन में अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इन सिद्धान्तों ने केवल वैचारिक रूप में विकास अध्ययन को समृद्ध नहीं किया बल्कि अनेक देशों की विकास रणनीति को भी प्रभावित किया। लेकिन इन सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि विकास सिद्धान्त से तात्पर्य क्या है? और उनकी क्या उपादेयता है?

2.2 विकास के सिद्धान्त और मॉडल की आवश्यकता एवं उपादेयता

किसी सिद्धान्त या मॉडल से दो मुख्य कार्यों की आशा की जाती है-प्रथम किसी भी घटना या तथ्य का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना और दूसरा भविष्य के संदर्भ में

अनुमान तथा प्रत्याशा लगाना। विकास सिद्धान्त और मॉडल भी इस बात की व्याख्या करते हैं कि कुछ राष्ट्र अन्य राष्ट्रों की तुलना में अविकसित क्यों है? और वे राष्ट्र किस प्रकार विकास प्राप्त कर सकते हैं?

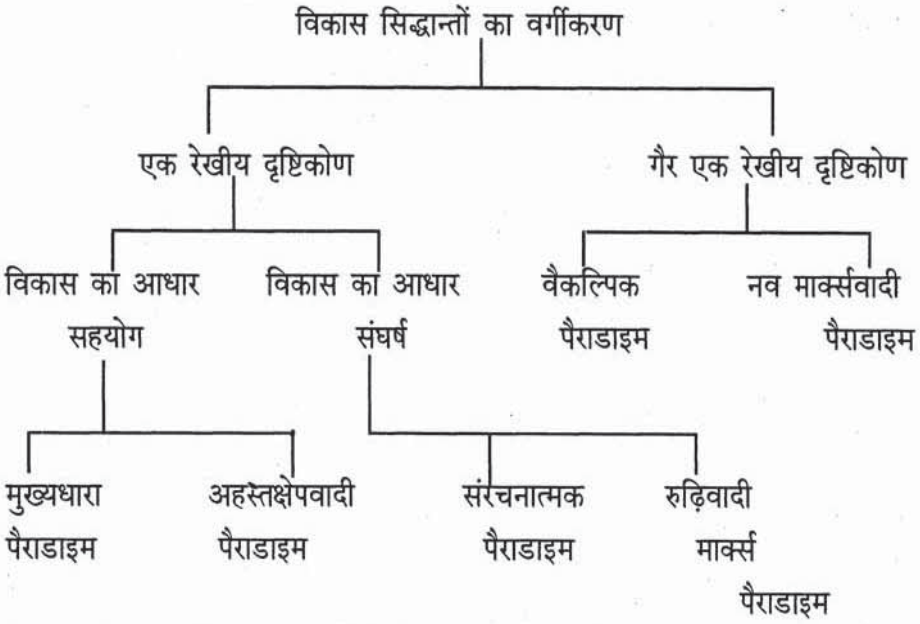
विकास के सिद्धान्तों और मॉडलों का कार्य है कि वे-

- समय के साथ अर्थव्यवस्था और समाज के विकास (या अविकास) की व्याख्या प्रस्तुत करें।
- विकास के मार्ग की बाधाओं को पहचान कर उनके निवारण के उपाय सुझायें।
- सरकार और नीति निर्माताओं को, विकास को बनाये रखने और उसे त्वरित करने के लिए उचित विकास नीतियों के निर्धारण में मार्गदर्शन प्रदान करें।

विकास के सिद्धान्त और मॉडल का अध्ययन करते समय हमें इस तथ्य को नही भूलना चाहिए कि विकास का ऐसा कोई सार्वभौमिक सिद्धान्त नहीं है जो विकास के सभी विद्यमान तथ्यों की व्याख्या कर सके और उस सुनहरे मार्ग का निर्धारण कर सके जिस पर चल कर कोई भी राष्ट्र या समाज विकसित हो सके। विकास सिद्धान्त और मॉडल कुछ परिकल्पनाओं, प्रतिज्ञप्तियों और मान्यताओं के आधार पर विकास के क्षेत्र में उच्च स्तरीय सामान्यीकरण प्रस्तुत करते हैं। ये परिकल्पनाऐं काफी विस्तृत होती हैं जो विकास के आर्थिक और गैर आर्थिक दोनों निर्धारकों पर बल देती है। सामान्यीकरण के चलते ये सिद्धान्त सभी राष्ट्र और समाज में एक जैसा परिणाम नहीं देते क्योंकि हर राष्ट्र और समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भिन्न-भिन्न होती है। कुछ सिद्धान्तकारों द्वारा प्रस्तुत परिकल्पनाऐं ऐसी हैं जो पूर्णतः क्रियाशील नहीं हो सकती अर्थात् उनका परीक्षण करना अत्यंत कठिनाईमय कार्य है। प्रत्येक सिद्धान्त या मॉडल विकास पर एक नयी दृष्टि प्रदान करता है जो इसकी जटिलतम प्रक्रियाओं को समझने में सहायक होती है।

2.3 विकास के सिद्धान्तों का वर्गीकरण

विकास अध्ययन के क्षेत्र में इतने अधिक सिद्धान्त और मॉडल प्रस्तुत किये गये हैं कि यदि उन सभी की संक्षेप में जानकारी भी उपलब्ध करायी जाये तो भी इस पुस्तिका का स्थान कम पड़ जायेगा। साथ ही ये सिद्धान्त अनेक भ्रम भी पैदा कर देंगे। अतः बेहतर होगा कि पहले विकास के विभिन्न सिद्धान्तों और मॉडलों को उनके दर्शन और दिशा को ध्यान में रखकर समूहबद्ध कर मोटे रूप में वर्गीकृत कर दिया जाये।



विकास सिद्धान्त के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण की व्याख्या निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझी जा सकती है-

2.3.1 एक रेखीय दृष्टिकोण

विकास का एक रेखीय दृष्टिकोण विकास के एक समान रास्ते की बात करता है जिससे गुजर कर ही कोई राष्ट्र विकास की सीढ़ियाँ चढ़ सकता है। इस दृष्टिकोण को मानने वाले सभी सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करते हैं कि किस प्रकार पश्चिम के राष्ट्रों ने अपना विकास अर्जित किया उसी का अनुसरण कर विकासशील राष्ट्र विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं इस दृष्टिकोण के अनुसार विकास का अर्थ है पश्चिम के समान हो जाना। यह दृष्टिकोण आधुनिकीकरण के सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है जो पश्चिम की जीवन शैली, तकनीकी कौशल तथा विवेकशीलता को विकास का मापदण्ड मानता है। यह दृष्टिकोण कुछ मान्यताओं पर टिका है जो निम्नलिखित हैं-

- विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उत्पादन में वृद्धि जरुरी है और इसके लिए पश्चिम के विज्ञान और तकनीक का प्रयोग किया जाना आवश्यक है।
- विकास की प्रक्रिया को विभिन्न चरणों में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्येक समाज को विकास हेतु इन चरणों से गुजरना होता है।
- विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत परम्परागत, सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थानों को आधुनिक संस्थानों से प्रतिस्थापित किया जाना जरुरी है।

एक रेखीय विकास दृष्टिकोण के अन्तर्गत भी दो मुख्य विचारधारा देखी जा सकती है। प्रथम वे सिद्धान्त जो विकास को समन्वय तथा सद्भाव का परिणाम मानते हैं। दूसरी विचारधारा के समर्थक विकास के संघर्ष के रूप में देखते हैं। वे समाज में वर्गों के मध्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रों के मध्य संघर्ष को विकास का

आधार मानते हैं।

सद्भाव और समन्वय विकास प्रक्रिया के समर्थक भी दो भागों में बँटे हैं- प्रथम मुख्यधारा पैराडाइम और दूसरा गैर-हस्तक्षेपवादी पैराडाइम। संघर्ष तथा विरोध को विकास का आधार मानने वाली विचारधारा भी दो भागों में विभक्त है पहला संरचनात्मक पैराडाइम तो दूसरा रूढ़ीवादी मार्क्स पैराडाइम इन चारों पैराडाइम को निम्न प्रकार समझा जा सकता है-

मुख्यधारा पैराडाइम

मुख्यधारा पैराडाइम पाश्चात्य देशों के समतुल्य जीवन पद्धति को विकास का मानक मानता है। इस पैराडाइम के तहत विकास के अनेक प्रसिद्ध सिद्धान्त और मॉडल प्रस्तुत किये गये हैं, जिनमें से कुछ की आगे विस्तार से चर्चा की गयी है। यह पैराडाइम बचत तथा पूंजीनिर्माण पर बल देता है। इस पैराडाइम के अनुसार यदि किसी अर्थव्यवस्था में बचत अनुपात सकल घरेलू उत्पाद को 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 12 प्रतिशत कर दिया जाये तो वह अविकसित अवस्था से विकसित अवस्था की ओर बढ़ने लगेगी।

यह पैराडाइम मानता है कि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था दुश्चक्र में फंसी होती है। इन राष्ट्रों में आय कम होती है। जिससे बचत कम होती है, कम बचत से विनियोग कम होता है, इससे उत्पादकता कम होती है परिणामतः पुनः आय कम होती है। अतः विकास के लिए यह आवश्यक है कि ये देश निम्न बचत सिण्ड्रोम से बाहर निकलें।

विनियोग बढ़ाने के लिए मुख्यधारा सिद्धान्त सरकारी हस्तक्षेप का भी समर्थन करता है। सरकारी नियोजन और विनियोग के माध्यम से अल्पविकास के दुश्चक्र को तोड़ा जा सकता है। अधिकतर नव स्वतंत्र विकासशील राष्ट्रों ने अपने विकास रणनीति के तहत मुख्यधारा पैराडाइम के सिद्धान्तों को ही स्वीकार किया।

अहस्तक्षेपवादी पैराडाइम

मुख्यधारा पैराडाइम के विपरीत इस पैराडाइम के समर्थक विकास प्रक्रिया में सरकार के हस्तक्षेप को अवांछनीय तथा अकार्यकुशल मानते हैं। इस पैराडाइम के अनुसार सरकारी हस्तक्षेप के चलते संसाधनों का दुरूपयोग होता है, अनुत्पादकता बढ़ती है, लाइसेंस राज से भ्रष्टाचार तथा लालफीताशाही बढ़ती है। यह विचारधारा सरकार की भूमिका को सीमित रखकर बाजार को मुक्त रूप से काम करने देने की वकालत करता है। बाजार द्वारा साधन आवण्टन से कार्य-कुशलता में वृद्धि होती है तथा तेजी से विकास होता है। यह विचारधारा वर्ल्ड बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा समर्थित है। इस विचारधारा का प्रसार 1980 में शुरू हुए उदारीकरण के दौर में

तेजी से हुआ है।

संरचना पैराडाइम

संरचनात्मक पैराडाइम अल्पविकसित देशों के विकास के लिए संरचना में परिवर्तन तथा सुधार की आवश्यकता पर बल देता है। संरचनात्मक सुधार के अन्तर्गत दो प्रकार के सुधार आवश्यक हैं पहला राष्ट्र के भीतर संरचना में और दूसरा वैश्विक संरचना में। वैश्विक संरचना के अन्तर्गत इस पैराडाइम का मानना है कि विकसित देश इसके केन्द्र में है तथा विकासशील देश इसकी परिधि पर स्थित है। वैश्विक व्यवस्था में श्रम विभाजन इस प्रकार है कि केन्द्र विनिर्मित वस्तुओं का उत्पादन और निर्यात करता है जबकि परिधि पर स्थित राष्ट्र प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन और निर्यात करते हैं।

उच्च स्तरीय तथा उच्च उत्पादकता वाली विनिर्मित वस्तुओं की मांग की आय लोच अधिक होती है, जबकि प्राथमिक वस्तुओं की कम होती है। परिणामतः विनिर्मित वस्तुओं की मांग तेजी से बढ़ती है और साथ ही उनके आयात की कीमत भी बढ़ती है। प्राथमिक वस्तुओं की मांग धीरे-धीरे बढ़ती है और उनकी कीमत में भी अधिक वृद्धि होती है। इस प्रकार परिधि पर स्थित राष्ट्रों के लिए दीर्घकाल में व्यापार की शर्तें प्रतिकूल हो जाती है और विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य खाई और चौड़ी होती चली जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की इस संरचना को तोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि विकासशील राष्ट्र अपने उद्योगों को संरक्षण प्रदान करें तथा आयात की जाने वाली वस्तुओं के उद्योग अपने यहाँ स्थापित करें। इस नीति को आयात प्रतिस्थापन नीति कहा गया। आयात प्रतिस्थापन द्वारा पूंजी का विकसित देशों की ओर प्रवाह रोकने की इस नीति का प्रयोग लैटिन अमेरीका में अत्यधिक लोकप्रिय रहा।

रूढ़ीवादी मार्क्स पैराडाइम

मार्क्स का विचार था कि प्रत्येक समाज विकास के कुछ चरणों से होकर गुजरता है। ये चरण पाँच हैं। (1) आदिम साम्यवाद (2) प्राचीन गुलाम राज्य (3) सामंतशाही (4) पूंजीवाद (5) समाजवाद। मार्क्स का यह विभाजन उत्पादन प्रणालियों में भिन्नता के आधार पर है। मार्क्स के इस फ्रेमवर्क में सामंतशाही से पूंजीवाद की ओर प्रस्थान विकास है। उनका मानना था कि पूंजीवाद में स्वभावतः संघर्ष और विरोधाभास के बीज छिपे हैं। अतः यह संघर्ष उसे समाजवाद की ओर ले जायेगा। मार्क्स के यह विचार यद्यपि विकसित देशों के अध्ययन पर आधारित थे तथापि उनका मानना था कि विकासशील देश भी इन्हीं चरणों से होकर गुजरेंगे। इसलिए वे उपनिवेश के विस्तार का परिणाम विकासशील देशों में पूंजीवाद के विकास के रूप में देखते थे। लेकिन विकासशील देशों के अनुभव इसके विपरीत रहे। विकसित देशों का विकास विकासशील देशों की गरीबी और बदहाली की कीमत पर हुआ। विकासशील

देशों में पूंजीवाद के प्रसार और फैलाव को अपेक्षा ये देश मंदी और गतिहीनता की अवस्था में फंस गये। अतः मार्क्स का यूरोप केन्द्रित पैराडाइम लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के उपनिवेश राष्ट्रों के अल्पविकास को नहीं समझा सका।

2.3.2 गैर एकरेखीय दृष्टिकोण

विकास के गैर एकरेखीय दृष्टिकोण में पश्चिम में अंधानुकरण का विरोध किया गया है। यह दृष्टिकोण विकास वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार पूर्व और पश्चिम में राष्ट्रों की ऐतिहासिक परिस्थितियों में अनेक भिन्नताऐं हैं, जिस कारण इन्हें विकास का अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करना चाहिए। इस विचारधारा को भी दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम, वैकल्पिक विकास पैराडाइम और दूसरा, नवमार्क्सवादी पैराडाइम।

वैकल्पिक विकास पैराडाइम

यह पैराडाइम पश्चिम के विकास मॉडल को अस्वीकार करता है और विकास हेतु देश की संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था और दर्शन में विकास की राह खोजता है। यह विचारधारा पश्चिमी विकास मॉडल के अनुरूप भारी औद्योगिकरण, शहरीकरण, अत्यधिक उत्पादन और अत्यधिक उपभोग का विरोध करता है और ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था का समर्थन करता है। गांधी जी की ग्राम स्वराज की अवधारणा इसी विचारधारा का समर्थन करती है जिसका आगे विस्तार से वर्णन किया गया है। गांधीजी के विचारों के समतुल्य ई0 एफ0 शूमेकर भी अपनी पुस्तक 'स्माल इज ब्यूटिफुल' में यह मानते हैं कि वकासशील देशों के सम्मुख विकास की सबसे बड़ी चुनौती व्यापक बेरोजगारी और शहर की ओर प्रव्रजन है: अतः विशाल पूंजी आधारित उद्योगों की स्थापना की अपेक्षा इन देशों को ग्राम आधारित छोटे लघु उद्योगों का नेटवर्क स्थापित करना चाहिए। यह पैराडाइम पश्चिमी तकनीक की अपेक्षा स्थानीय आवश्यकताओं, संसाधनों और वातावरण के अनुकूल तकनीक पर बल देता है, जिसे उपयुक्त प्रोद्योगिकी की संज्ञा दी जाती है। इस विचारधारा के अनुसार पश्चिम का अंधानुकरण कर विकासशील देशों ने अपने यहाँ द्वैत अर्थव्यवस्था खड़ी कर दी है जिसमें एक ओर साधन सम्पन्न, उच्च जीवन स्तर और अत्यधिक उपभोग वाला छोटा शहरी वर्ग है तो दूसरी और अपनी मूलभूत सुविधाओं के लिए भी जूझता बड़ा ग्रामीण वर्ग है।

नव मार्क्सवादी पैराडाइम

नव मार्क्स पैराडाइम ने एकरेखीय विकास दृष्टिकोण को गम्भीर चुनौती प्रस्तुत की। इस सिद्धान्त के अनुसार विकासशील देश पश्चिमी देशों के समान नहीं हो सकते क्योंकि विकसित और विकासशील देश आपस में गहरे रूप में जुड़े हैं। विकसित राष्ट्रों की समृद्धि तथा गरीब राष्ट्रों की बदहाली आपस में सह-सम्बन्धित है। यह पैराडाइम

ऐतिहासिक तथ्यों का हवाला देते हुए स्पष्ट करता है कि तृतीय विश्व को अविकसित अवस्था की ओर धकेला गया है और इसके लिए विकसित देश जिम्मेदार है। यह विचारधारा विकास प्रक्रिया के तहत हितों के संघर्ष और टकराव पर बल देती है जो राष्ट्रों के मध्य भी है और राष्ट्र के भीतर सामाजिक वर्गो में भी है। इस विचारधारा का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त 'निर्भरता का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त की आगे विस्तार से चर्चा की गयी है।

2.4 विकास के प्रमुख सिद्धान्त

पिछले खण्ड में हमने विकास पर विभिन्न दृष्टिकोणों को समझा। विचार और दर्शन के आधार पर विकास अध्ययन का वर्गीकरण स्थूल रूप में विकास विचारधाराओं को समझाता है। इन विभिन्न विचारधाराओं के अन्तर्गत प्रस्तुत कुछ सिद्धान्त अध्ययन की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इस खण्ड में हम ऐसे ही कुछ प्रमुख विकास सिद्धान्तों को विस्तार से जानने का प्रयास करेंगे-

2.4.1 रोस्टोव की संवृद्धि की अवस्थाऐं

डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 रोस्टोव ने अपने सिद्धान्त में इस बात की व्याख्या की कि कोई भी राष्ट्र विकास की अवस्था में यूं ही नहीं पहुँच जाता। उसे विकसित अवस्था तक आने में चरणों से होकर गुजरना पड़ता है। इन विभिन्न चरणों अथवा अवस्थाओं को समझकर ही कोई राष्ट्र दीर्घकालीन नियोजन में यह निर्णय ले सकता है कि वे कब, किस अवस्था में, किस प्रकार पहुँचेंगे तथा उन्हें उपयुक्त और आवश्यक अवस्था प्राप्त करने हेतु क्या प्रयत्न करने होंगे। रोस्टोव ने विकास की चार अवस्थाओं का वर्णन किया है-

(1) परम्परागत समाज की अवस्था

(2) आत्मस्फूर्ति से पूर्व की स्थिति की अवस्था

(3) आत्मस्फूर्ति की अवस्था

(4) परिपक्वता की अवस्था की ओर अग्रसर होने की अवस्था

(5) विशाल उपभोग की अवस्था

रोस्टोव के अनुसार विकसित देश इन्हीं अवस्थाओं से गुजरकर विशाल उपभोग की अवस्था में पहुँचे हैं, जबकि अविकसित और विकासशील राष्ट्र प्रथम और द्वितीय अवस्था में है। रोस्टोव के अनुसार आत्मस्फूर्ति की अवस्था विकास के चरण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जब कोई राष्ट्र अविकसित पुरातन अवस्था से निकलकर विधिवत् विकास की प्राप्ति हेतु तैयार हो जाता है। रोस्टोव के अनुसार "यह प्रगति की

एक ऐसी अवस्था है जिसमें अर्थव्यवस्था इस योग्य हो जाती है कि वह अपने पैरों पर खड़े होने तथा आत्मनिर्भर होने की अवस्था में प्रवेश कर सके और विभिन्न प्रकार के विकास कार्यों के लिए आवश्यक सामग्रियों हेतु दूसरे देशों पर निर्भर न रहे।'' इस अवस्था में विकास में बाधा पहुँचाने वाली रूढ़ीवादी शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती है और विकास में सहयोग करने वाली शक्तियाँ अधिक बलवती हो जाती है। रोस्टोव विकास की इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त मात्रा में विनियोग की आवश्यकता पर बल देते हैं। रोस्टोव का तो यहाँ तक मानना है कि यदि सकल घरेलू उत्पाद का 15 से 20 प्रतिशत तक बचा लिया जाये तो स्वतः ही विकास की अवस्था प्राप्त की जा सकती है।

अपने तमाम दावों के बावजूद रोस्टोव का सिद्धान्त महज एक यांत्रिक दृष्टिकोण ही रहा जो विकास की जटिल प्रक्रिया को समझाने में असफल रहा। भारत के संदर्भ में, देखा जाये तो बचत दर लगातार बढ़ती रही है तथा रोस्टोव के अनुसार भारत 1952 से ही आत्मस्फूर्ति की अवस्था में प्रवेश कर चुका है, किन्तु आज भी भारत विकास के कई लक्ष्यों को हासिल नहीं कर पाया है।

2.4.2 रोगन का 'बड़े धक्के' का सिद्धान्त

रोजेन्सटीन रोगन के इस सिद्धान्त के अनुसार विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिए साधनों की एक न्यूनतम मात्रा का प्रयोग अनिवार्य है। इस सिद्धान्त के अनुसार देश को किसी विकास पथ पर लाभ और स्वयं स्फूर्ती अवस्था में पहुँचाना एक वायुयान को भूमि से 'उठान अवस्था' में भेजने की भांति है। वायुयान को हवा में उड़ने से पूर्व भूमि पर एक निश्चित गति प्राप्त करना अनिवार्य है, उसी प्रकार विकास के लिए एक न्यूनतम मात्रा भी अनिवार्य है।

रोगन का मत है कि अविकसित राष्ट्र में धीरे-धीरे विकास करना संभव नहीं है, यह केवल 'बड़े धक्के' से ही सम्भव हो सकता है। 'बड़ा धक्का' ही अर्थव्यवस्था को प्रारम्भिक जड़ता से बाहर निकाल सकता है। अतः छिटपुट विनियोग करने की अपेक्षा विभिन्न पूरक परियोजनाओं में एक साथ विनियोग किया जाना चाहिए।

बड़े धक्के का सिद्धान्त तीन प्रकार की अविभाज्यताओं और मितव्यताओं पर टिका हुआ है। ये अविभाज्यताएं हैं-

1) मांग की अविभाज्यता :- इसके अनुसार वृहद पैमाने पर उत्पादन से लागत कम हो जाती है तथा मांग में वृद्धि होती है।

2) सामाजिक ऊपरी पूंजी की अविमान्यताः सामाजिक ऊपरी पूंजी से तात्पर्य आधारभूत संरचना से हैं जिसमें संचार, ऊर्जा, सड़क, रेल आदि शामिल है, इनके विकास के लिए अधिक विनियोग की आवश्यकता होती है।

3) बचत की पूर्ति की अविभाज्यता :- बचत की ऊंची दर आय के ऊंचे स्तर पर निर्भर करती है और इसके लिए भारी मात्रा में विनियोग आवश्यक है।

इस प्रकार यह सिद्धान्त बताता है कि विकास प्रक्रिया असतत् झटकों की एक श्रृंखला है और प्रत्येक झटके के लिए बड़े धक्के की आवश्यकता है, इसके लिए न्यूनतम मात्रा में आवश्यक निवेश किया जाना चाहिए।

सिद्धान्त के आलोचकों का यह मानना है कि 'बड़े धक्के' के लिए जिस आवश्यक न्यूनतम निवेश की बात रोगन कहते हैं वह इतना ज्यादा है कि उतने संसाधन जुटा लेने वाला राष्ट्र गरीब या अविकसित नहीं होगा।

किन्तु फिर भी यह सिद्धान्त नियोजकों और विद्वानों को काफी आकर्षक लगता है। भारत में भी प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही, देश की अर्थव्यवस्था को निम्नस्तरीय संतुलन जाल से मुक्त कराने हेतु बड़े धक्के की आवश्यकता को स्वीकार किया जाय।

2.4.2 आर्थर लुइस का श्रम की असीमित पूर्ति का सिद्धान्त

छठे दशक में आर्थर लुइस ने विकास का एक भिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किया। लुइस के अनुसार अर्ध-विकसित देशों में जनसंख्या आधिक्य की अवस्था रहती है। वहाँ कृषि क्षेत्र में बड़ी संख्या में छिपी हुई बेरोजगारी देखी जा सकती है। अतः इन देशों में श्रम की पूर्ति इनकी मांग की अपेक्षा अत्यधिक होती है। इसे असीमित श्रम की पूर्ति कह सकते हैं। लुइस का मानना है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में द्वैत अर्थव्यवस्था होती है। इन देशों में एक ओर पूंजीवादी क्षेत्र होता है जिसमें पूंजी, उत्पादकता और आय अधिक होती है और दूसरी ओर पिछड़ा प्राथमिक क्षेत्र जहाँ उत्पादकता तथा आय अधिक होती है। लुइस के शब्दों में **''इन देशों में पिछड़ेपन के समुद्र में विकास के कुछ द्वीप मौजूद रहते हैं।''**

लुइस के सिद्धान्त के अनुसार पिछड़े कृषि आधारित प्राथमिक क्षेत्र से बेरोजगार श्रम शक्ति को औद्योगिक पूंजीवादी क्षेत्र में स्थानांतरित कर दिया जाये तो इससे बिना मजदूरी पर श्रमिकों की असीमित पूर्ति की जा सकेगी। इससे नये उद्योगों की स्थापना की जा सकेगी और वर्तमान उद्योगों का विस्तार हो सकेगा। यद्यपि प्राथमिक क्षेत्र का श्रमिक अकुशल होता है और पूंजीवादी क्षेत्र को कुशल श्रमिक की आवश्यकता होती है। लेकिन लुइस इसे अस्थायी गतिरोध करार देते हैं और उनके अनुसार इसे श्रमिकों को शिक्षा तथा प्रशिक्षण देकर दूर किया जा सकता है।

लुइस का यह सिद्धान्त विकासशील देशों की अवस्था का उचित चित्रण तो करता है लेकिन इसमें कुछ समस्याऐं भी है। लेकिन कल्याणकारी समाज में जीवन

निर्वाह स्तर पर मजदूरी सम्भव नहीं है, मजदूरी इससे अधिक होगी। अतिरिक्त श्रम का स्थानान्तरण भी सामाजिक, अकुशलता आदि बाधाओं के चलते इतना आसान नहीं है।

2.4.4 संतुलित बनाम असंतुलित विकास सिद्धान्त

विकास हेतु कार्यनीति के संदर्भ में दो प्रकार के सिद्धान्त देखे जा सकते हैं। प्रथम संतुलित विकास दृष्टिकोण जिसके समर्थक रोजेन्सटीन रोडान, रेगनर नर्क्से आदि हैं और दूसरा असंतुलित विकास सिद्धान्त इसके समर्थक अर्थशास्त्री प्रो0 फ्लेमिंग, सिंगर, हर्षमैन आदि हैं। संतुलित विकास सिद्धान्त के अनुसार विकासशील अर्थव्यवस्था के सभी अंगों और क्षेत्रों का एक साथ विकास किया जाना चाहिए। रोडन के बड़े धक्के के सिद्धान्त में हम पढ़ चुके हैं कि एक साथ बहुत सारे उद्योग में निवेश करने से वे एक-दूसरे के लिए बाजार का निर्माण करते हैं। इसके विपरीत यदि किसी एक ही उद्योग में समस्त पूंजी का विनियोग कर दिया जाये तो उस उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग कम होने के कारण उसका चलना भी कठिन हो जायेगा। नर्कसे इस विचार को एक रोचक उदाहरण से समझाते हैं। माना एक राष्ट्र अपनी समस्त पूँजी जूता उद्योग में लगा देता है तो इस उद्योग के श्रमिक अपनी समस्त आय जूता खरीदने पर तो व्यय करेंगे नहीं, वे अन्य वस्तुओं की माँग करेंगे जिन्हें वे जूता बेच कर खरीद सकते हैं। परन्तु अर्थव्यवस्था में अन्य उद्योगों और क्षेत्र में उत्पादन में वृद्धि नहीं हो रही है (क्योंकि समस्त विनियोग जूता उद्योग में कर दिया गया है) तो लोगों की क्रय शक्ति नहीं बढ़ेगी। परिणामतः जूता उद्योग में उत्पादन बढ़ने पर भी उसकी माँग नहीं बढ़ेगी। अनबिके माल से जूता उद्योग भी बैठ जायेगा।

संतुलित विकास के समर्थक भारी मात्रा में निवेश, जोखिम तथा भविष्य के लाभ की प्रत्याशा न लगा पाने के कारण निजी क्षेत्र पर अधिक विश्वास नहीं रखते हैं। वे सरकारी हस्तक्षेप तथा नियोजित अर्थव्यवस्था का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार सरकार को

-- श्रम को प्रशिक्षित करना चाहिए।

-- भारी मात्रा में विनियोग कार्यक्रमों का संचालन और नियोजन करना चाहिए।

-- आवश्यक वित्त उपलब्ध कराना चाहिए।

-- आधारभूत संरचनाओं के विकास में राष्ट्रीयकरण की नीति अपनानी चाहिए।

-- टैरिफ तथा कोटा नीतियों के माध्यम से शिशु घरेलू उद्योगों को संरक्षण देना चाहिए।

दूसरी ओर अर्थशास्त्रियों की एक खेप असंतुलित आर्थिक विकास में विश्वास रखती है। इस नीति के अनुसार चूँकि विकासशील राष्ट्रों के पास पूंजी और कौशल का

अभाव होता है अतः उन्हें अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में विनियोग करने की अपेक्षा कुछ विशिष्ट और महत्वपूर्ण उद्योगों तथा क्षेत्रों में विनियोग करना चाहिए जो विकास को नेतृत्व प्रदान करें। अर्थव्यवस्था में असंतुलन पैदा करने पर उसका प्रभाव धीरे-धीरे अन्य क्षेत्रों पर भी पड़ेगा। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में क्रिया-प्रक्रिया द्वारा श्रृंखलाबद्ध तरीके से आर्थिक विकास सम्भव हो पायेगा। इस प्रक्रिया के अंत में संतुलन अपने आप आ जाता है। यह संतुलन प्रक्रिया का अंग न होकर उसका फल है।

असंतुलित विकास भी संतुलित विकास की भांति स्वतंत्र बाजार को विकास के लिए पर्याप्त नहीं मानता और सरकारी नियोजन तथा हस्तक्षेप का समर्थन करता है लेकिन चुनिंदा महत्वपूर्ण उद्योगों में। रणनीतिक दृष्टि से उद्योगों का चयन उसकी अग्रगामी तथा अद्योगामी कड़ियों के अनुसार किया जाना चाहिए। यदि एक उद्योग का उत्पादन दूसर उद्योगों में कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होता है तो इस उद्योग के विस्तार से लागत में आई कमी से उससे जुड़े उद्योगों के लाभ में वृद्धि होगी और उनका भी विस्तार होगा। यह अग्रगामी कड़ी या सम्बन्ध है। इसके विपरीत किसी उद्योग के विस्तार से वह अधिक कच्चे माल की मांग करता है जिससे इन उद्योगों का भी विस्तार होता है यह पश्चगामी कड़ी या सम्बन्ध कहलाता है। विनियोग हेतु ऐसे उद्योगों का चयन करना चाहिए जिनकी अग्रगांमी और पश्चगामी कड़िया सर्वाधिक हो। ऐतिहासिक आधार पर भी देखा जाये तो इंग्लैण्ड में कपड़ा उद्योग, अमेरीका में रेल तथा जापान में लौह तथा इस्पात उद्योग ने विकास को नेतृत्व प्रदान किया था।

2.4.5 लेबनस्टीन का न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सिद्धान्त

भारत, इण्डोनेशिया आदि विकासशील देशों का अध्ययन कर प्रो० हाइवे लेबनस्टीन ने अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के अनुसार तृतीय विश्व के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती तीव्र जनसंख्या वृद्धि की है। लेबनस्टीन के अनुसार जनसंख्या वृद्धि दर आय के स्तर का फलन है। प्रारम्भ में आय में वृद्धि जनसंख्या वृद्धि दर को बढ़ाती है। किन्तु ऐसा एक सीमा तक ही होता है और उसके बाद प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि होने से जन्म दर घटने लगती है। अतः सतत् विकास के लिए यह आवश्यक है कि इतना न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न अवश्य किया जाये कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि इतनी हो जाये कि जनसंख्या वृद्धि की दर घटने लग जाये।

लेबनस्टीन का मत है कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था में दो प्रकार की शक्तियाँ क्रियाशील रहती है।एक तो कुछ उत्तेजक तत्व होते हैं जो प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाते हैं दूसरे तत्व पीछे धकेलने वाले होते हैं। अर्द्धविकसित देशों में पहले तत्व की अपेक्षा दूसरे प्रकार के तत्व अधिक प्रभावशाली होते हैं। अतः उत्तेजक तत्वों को बढ़ाने पर ही अर्थव्यवस्था विकास कर सकती है और इसके लिए अपने सिद्धान्त में रोडान के बड़े धक्के की अपेक्षा अधिक व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं कि एक बार में एक मुश्त

विनियोग किया जाये। लेकिन विनियोग का पहला इंजेक्शन इतना आवश्यक न्यूनतम मात्रा में हो कि अर्थव्यवस्था जकड़न से बाहर निकल कर सतत् आर्थिक विकास प्रक्रिया में पहुँच जाये। इसके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा-विनियोग इंजेक्शन की श्रृंखला से अर्थव्यवस्था विकास पथ पर दौड़ने लगेगी। लेबनस्टीन के अनुसार विनियोग का हर इंजेक्शन पूर्व इंजेक्शन के प्रभाव समाप्त होने से पहले लगा देना चाहिए।

2.4.6 महात्मा गांधी का विकास सिद्धान्त

पूर्व में वर्णित समस्त सिद्धान्त आर्थिक विकास पर अधिक जोर देते हैं और पश्चिम को रोल मॉडल मानकर प्रस्तुत किये गये हैं। गाँधी जी का विकास सिद्धान्त वैकल्पिक विकास दृष्टिकोण से सम्बन्धित है जो अपनी जड़ों में विकास में खोजता है।

गांधी जी का विकास सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर टिका है—

1) असली भारत शहरों की अपेक्षा गांवों में निवास करता है गांवों के विकास में ही देश का विकास है। शहरों द्वारा गांवों का शोषण समाप्त किया जाना चाहिए।

2) विकास का मापदण्ड केवल आर्थिक नहीं है। विकास के लिए नैतिक तथा आध्यात्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति और भौतिक आवश्यकताओं में स्वैच्छिक कमी आवश्यक है।

3) श्रम अत्यधिक सम्मानित है। सभी को भौतिकश्रम अवश्य करना चाहिए। श्रमिक को अपने श्रम का उचित मूल्य मिलना चाहिये।

4) विकास के लिए देशज तकनीक, उत्पादन, सेवाओं और संस्थाओं को प्राथमिकता देनी चाहिए।

5) साधन और साध्य की पवित्रता में विश्वास रखना चाहिए।

गाँधी जी के मॉडल के महत्वपूर्ण अवयव :

आत्म निर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था : गाँधी जी के अनुसार प्रत्येक गांव अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करने में सक्षम हो। यह आत्मनिर्भरता संकुचित अर्थ में नहीं है। गांधी जी के अनुसार जिन चीजों का उत्पादन गांव में सम्भव नहीं है उन्हें बाहर से प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन गांव को अपनी मूलभूत सुविधाऐं अपने यहाँ जुटाने का प्रयास करना चाहिए।

विकेन्द्रीकरण : गांधी जी के अनुसार समाज का उद्देश्य खुशहाली के साथ मानसिक और नैतिक विकास प्राप्त करना है। इसके लिए राजनैतिक तथा आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया जाना आवश्यक है।

खादी एवं ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहनः बड़े और विशाल उद्योगों का गांधीजी विरोध करते थे। वे आत्मनिर्भर ग्रामीण समाज के लिए खादी, कुटीर और ग्रामीण उद्योगों का समर्थन करते थे। खादी गांधी जी के लिए ग्रामीण समाज के आत्म सम्मान का प्रतीक था। श्रम को पूंजी से प्रतिस्थापित करने की तकनीक का वे विरोध करते थे।

संस्थागत संरचना :-गाँधी जी अपने विकास मॉडल के क्रियान्वयन के लिए निम्न संस्थागत उपाय सुझाते हैं-

पंचायत राज :- गाँधी जी प्रत्येक गांव को गणराज्य के रूप में देखते थे अतः वे पंचायतों को गांव के मामले में पूरी शक्तियाँ प्रदान करने के हिमायती थे। शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्यों के ग्राम पंचायत के अधीन रखना चाहते थे। गांधी जी के इन्हीं विचारों के अनुरूप 73वें संविधान संशोधन द्वारा देश में पंचायतों को अनेक शक्तियाँ प्रदान की गयी।

सहकारिता :- गांधी जी के अनुसार ग्रामीण गतिविधियों के लिए सहकारी प्रयास अधिक सार्थक हो सकते हैं। वे मानते थे कि कताई, बुनाई, साख व्यवस्था, कृषि, दुग्ध उत्पादन आदि क्षेत्र में सहकारिता महत्वपूर्ण परिणाम दे सकती है। इन्हीं विचारों के अनुरूप देश में आपरेशन फ्लड चलाया गया जिसने दुग्ध सहकारिता के क्षेत्र में अनुकरणीय उदाहरण पेश किया।

ट्रस्टीशिप :-गांधी जी के अनुसार इस धरा पर उपलब्ध भूमि और समस्त प्राकृतिक संसाधन किसी एक के नहीं बल्कि समस्त समाज के हैं और सभी के कल्याण के लिए हैं। गांधी जी के अनुसार प्रत्येक भू-मालिक,उद्योगपति, प्राकृतिक संसाधनों तथा भौतिक सम्पदा के मालिक और पूंजीपतियों को ट्रस्टी के समान व्यवहार करना चाहिए अर्थात् उन्हें अपनी सम्पदा का प्रयोग जनकल्याण और समाज हित में करना चाहिए। गांधी जी का यह विचार सामाजिक संघर्ष के बिना सामाजिक न्याय की प्राप्ति का प्रयास था।

नई तालीम - गांधी जी शिक्षा को विकास का मूल आधार मानते थे। लेकिन उनका आधुनिक शिक्षा व्यवस्था पर विश्वास नहीं था जो केवल मस्तिष्क में सूचनाओं के भण्डारण का कार्य करतीं है। वे ऐसी शिक्षा के हिमायती थे जो बच्चों की पूर्ण सम्भाव्यताओं को उजागर करे तथा उनके मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक विकास में सहायक हो। गांधी जी इसे नई तालीम नाम देते थे। नई तालीम में बौद्धिक शिक्षा के साथ व्यवसायिक तथा शारीरिक शिक्षा का भी समावेश था।

2.4.7 निर्भरता का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त नव मार्क्सवादी पैराडाइम से सम्बन्धित है जो 1970 में काफी

लोकप्रिय हुआ था। इसकी शुरूआत लैटिन अमेरिका से हुई थी और इसके प्रणेताओं में पाल बरन, ए0जी0 फ्रेक तथा लैटिन अमेरीका पर आर्थिक कमीशन से जुड़े राउल प्रेबिस प्रमुख हैं। यह सिद्धान्त मानता है कि विकसित तथा विकासशील देशों के आपसी संबन्ध विकासशील देशों के हितों के प्रतिकूल है। इस सिद्धान्त के समर्थक चिली तथा ब्राजील की ऐतिहासिक केस स्टडी का हवाला देते हैं। यह सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर टिका है।

1) विकसित देश विकास के इस स्तर को प्राप्त नहीं कर पाते यदि उन्होंने विकासशील देशों का व्यवस्थित तरीके से शोषण नहीं किया होता और यह शोषण आज भी कायम है।

2) विकास की सीढ़ियाँ या चरण एक छलावा है। शोषण पर आधारित वैश्विक व्यवस्था जब तक कायम है कि विकासशील देशों का विकास सम्भव नहीं है।

3) जो राष्ट्र आज गरीब हैं वे हमेशा ऐसे नहीं थे। उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवादी शोषक व्यवस्था ने ऐसी अवस्था के लिए मजबूर किया है।

4) विकासशील देशों का विकास तभी सम्भव है जब वे पश्चिम का अनुकरण बंद कर दें।

निर्भरता सिद्धान्त हितों के संघर्ष को विकास प्रक्रिया का हिस्सा मानता है। यह एंकाधिकारवादी पूंजीवादी व्यवस्था को अल्पविकास के लिए दोषी मानता है। ए0 जी0 फ्राँक का मानना है कि विकासशील होने का मतलब विकास का अभाव नहीं है। तथाकथित विकास से पहले इन विकासशील राष्ट्रों में अविकास नहीं था। फ्राँक के अनुसार विकास तथा अल्पविकास तुलनात्मक धारणाऐं है।

यद्यपि यह सिद्धान्त गरीब देशों में निर्धनता और जड़ता की स्थिति और कारणों की व्याख्या तो करता है लेकिन विकास किस प्रकार, किया जाये इसका कोई मार्ग नहीं सुझाता। अस्सी के दशक में यह सिद्धान्त अपनी लोकप्रियता खोने लगा।

2.4.8 विकास का मानव पूंजी निर्माण मॉडल

यह मॉडल आर्थिक तथा सामाजिक विकास हेतु मानव में पूंजी विनियोग का समर्थन करता है। यह सिद्धान्त मानता है कि विकास का तात्पर्य केवल समृद्धि ही नहीं है वरन् यह मानवीय क्षमताओं का विस्तार है। अतः मानव पूंजी निर्माण से तात्पर्य शिक्षा, स्वास्थ्य प्रशिक्षण, पोषक आहार, मानसिक शांति आदि में विनियोग कर मानव की मानसिक तथा शारीरिक क्षमताओं का विस्तार करना है। थियोडोर स्लट्ज (1964) ने आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व के रूप में मानवीय पूंजी निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया। यह मॉडल मानवीय क्षमताओं पर विश्वास रखता हैं और साथ ही

लोगों के धर्म, आस्था,संस्कृति तथा मूल्यों का सम्मान करता है। इस सिद्धान्त की दो प्रमुख मान्यताएँ हैं-

1) मानवीय भौतिक तथा अभौतिक क्षमताऐं आंशिक रूप से वंशानुगत तथा आंशिक रूप से अर्जित होती है और वे हर व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न होती है। इस प्रकार यह क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की एक समान श्रम की मान्यता के विपरीत है।

2) मानव पूँजी निर्माण विकास से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित है। इससे उत्पादकता बढ़ती है, परिवर्तन का विरोध घटता है और नयी तकनीक की स्वीकार्यता बढ़ती है।

इस प्रकार यह मॉडल भौतिक पूंजी निर्माण की अपेक्षा मानवीय पूंजी निर्माण पर अधिक बल देता है।

2.4.9 विकास के गैर आर्थिक सिद्धान्त

विकास की जटिल प्रक्रिया में आर्थिक चरों के साथ-साथ गैर आर्थिक चरों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः अर्थशास्त्र से भिन्न समाज विज्ञान के अन्य क्षेत्रों से भी विकास पर महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये।

समाजशास्त्री बोइके ने अल्पविकास की सामाजिक द्वैतवाद के रूप में व्याख्या की। उनके अनुसार विकासशील राष्ट्रों में आयातित सामाजिक व्यवस्था तथा स्वदेशी सामाजिक व्यवस्था के मध्य संघर्ष चलता है। इण्डोनेशिया के अनुभव के आधार पर बोइके ने इस बात पर बल दिया किं पश्चिमी देशों को चाहिए कि वे विकासशील देशों को उनके हाल पर छोड़ दें।

मनोविज्ञान के विद्वान एवर्ट हेगन सामाजिक व्यवस्था को पर्सनलटी (व्यक्तित्व) का फलन मानते हैं। उनके अनुसार परम्परागत समाज के साथ रूढ़ीवादी और दकियानूसी व्यक्तित्व जुड़ा है। यह व्यक्तित्व निम्न आत्म सम्मान, तानाशाही, नवीनता विरोधी जैसे चरित्रवाला होता है। दूसरी ओर आधुनिक समाज में रचनात्मक,नव प्रवर्तक, उद्यमशील व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है। हेगन के अनुसार घरेलू वातावरण में आधारभूत परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन ला सकता है।

मनोविज्ञान के ही अन्य विद्वान मैकलैण्ड सामाजिक आर्थिक विकास के लिए वैयक्तिक उद्यमशीलता को आवश्यक मानता है और उनके अनुसार वैयक्तिक उद्यमशीलता के लिए उपलब्धि की आकांक्षा प्रेरणास्त्रोत है अपने इस अध्ययन के आधार पर मैकलैण्ड यह सुझाव देते हैं कि यदि हम विकास चाहते हैं तो वैयक्तिक मूल्यों और प्रेरणाओं को पहले बदलना होगा। इसके लिए वे तीन उपाय सुझाते हैं- 1) प्रेरित करना और शिक्षा । 2) सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना। 3) आरम्भिक चरित्र निर्माण

इसमें मैकलैण्ड तीसरे सुझाव अर्थात आरम्भिक चरित्र निर्माण पर अधिक बल देते हैं। और इसके लिए नर्सरी तथा प्राइमरी शिक्षा में अध्यापकों की नियुक्ति में सावधानी बरतने की सलाह देते हैं।

2.5 सारांश

विकास मॉडल एवं सिद्धान्त कुछ मान्यताओं और परिकल्पनाओं के आधार पर विकास के संदर्भ में उच्च स्तरीय व्यापीकरण प्रस्तुत करते हैं। इस रूप में वे सभी संदर्भों में समान परिणाम नहीं देते। विकास का प्रत्येक मॉडल या सिद्धान्त विकास को नये नजरिये से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। ये सभी सिद्धान्त विकास की जटिल प्रक्रिया को समझाने में मदद करते हैं। वैचारिक दृष्टिकोण के आधार पर विकास सिद्धान्तों का वर्गीकरण किया जा सकता है। यह वर्गीकरण उन आधारों और दर्शन सिद्धान्तों पर आधारित है जो कुछ सिद्धान्तों में समान रूप में पाये जाते हैं। विकास सिद्धान्तों का यह वर्गीकरण केवल मोटे रूप में समूहबद्ध तरीके से विकास को समझाता है लेकिन साथ ही प्रत्येक व्यक्तिगत विकास सिद्धान्त व मॉडल विकास के अलग-अलग पहलू और तत्वों पर बल देता है। अतः कुछ प्रमुख विकास सिद्धान्तों और मॉडलों की आपको जानकारी दी गयी। इन सिद्धान्तों का विस्तार विशुद्ध आर्थिक संवृद्धि से लेकर मानवीय मूल्यों और चयन की स्वतंत्रता तक है। यह विस्तार इस बात को इंगित करता है कि विकास एक बहुआयामी अवधारणा है।

2.6 शब्दावली

पैराडाइम : सिद्धान्तों, विश्वासों, मूल्यों, तकनीकों आदि का समूहन जो सामान्यतः एक समान दृष्टिकोण या स्पष्टीकरण वाले होते हैं।

विनियोग : संसाधनों का इस धारणा के साथ प्रयोग कि भविष्य में उत्पादन, आगत या आय में वृद्धि हो।

जीवन निर्वाह मजदूरी : सिद्धान्त जिसके अनुसार मजदूरों को इतनी ही मजदूरी दी जाती है जो उनकी न्यूनतम आवश्यकताऐं पूरी कर सके अर्थात् उनके जीवन को चलाने के लिए आवश्यक है।

प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद : प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद का औसत अर्थात् सकल घरेलू उत्पाद में जनसंख्या के भाग से भागफल।

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- किण्डलबर्गर चेरीस पी, हैरिक बूस, इकॉनौमिक डेवलपमेन्ट, मैकग्रा हिल लि0, नई दिल्ली, 1977

- सेन ए0 के0, हैण्डबुक ऑफ डेवलपमेन्ट, संपादित एच0 चेनरी, और टी0 एन0 श्रीनिवासन, भाग-1 एलसेविअर एमर्सटडम, 1988
- टोडारो मिचेल पी-, इकॉनामिक डेवलपमेन्ट इन द थर्ड वर्ड,लॉग मेन लंदन।
- बर्नेट, टी, सोशियोलाजी एण्ड डेवलपमेन्ट, लंदन, 1988
- मिश्रा आर0 पी0, डेवलपमेन्ट इश्यूज ऑफ ऑवर टाइम, कन्सेप्ट पब्लिशिग कम्पनी, नई दिल्ली, 1985

2.8 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न

1) विकास के एक रेखीय सिद्धान्त से क्या तात्पर्य है?

2) रोस्टोव द्वारा बताई गई संवृद्धि की अवस्थाएं कौन-कौन सी हैं ?

3) उपयुक्त प्रौद्योगिकी को समझाइये।

4) गांधी जी के 'ट्रस्टीशिप' पर विचार बताइये?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1) विकास पर विभिन्न पैराडाइम की व्याख्या कीजिए।

2) निर्भरता सिद्धान्त द्वारा मुख्यधारा पैराडाइम को दी गई चुनौतियों की विवेचना कीजिए।

3) विकास का वैकल्पिक पैराडाइम क्या है ? गांधी जी के विकास मॉडल के प्रमुख बिन्दुओं की चर्चा कीजिए।

4) 'बड़े धक्के का सिद्धान्त' समझाइये। यह संतुलित विकास को क्यों आवश्यक मानता है?

5) विकास का मानव पूँजी निर्माण मॉडल अन्य मॉडल की तुलना में किस प्रकार भिन्न है। समझाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1) निम्न में से कौन असंतुलित विकास का समर्थक नहीं है ?

(अ) हर्षमेन (ब) नर्कसे

(स) प्रो- सिंगर (द) प्रो0 फ्लेमिंग

2) 'स्माल इज ब्यूटीफुल' के लेखक हैं

(अ) ई0 एफ0 शूमेकर (ब) महात्मा गाँधी

(स) रोस्टोव (द) आर्थर लुइस

3) विकास के लिए 'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न' का विचार है।

(अ) रोजेन्सटीन रोडान का (ब) आर्थर लुइस

(स) हार्वे लिबिस्टीन (द) प्रो0 सिंगर

4) निम्न में से कौन सा विचार गाँधी जी के विकास मॉडल से मेल नहीं खाता?

(अ) खादी तथा ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिए।

(ब) भौतिक श्रम सर्वाधिक सम्मानित है।

(स) उद्योगपति और पूंजीपति अपनी सम्पदा के मालिक नहीं ट्रस्टी है।

(द) विकास के लिए शहरीकरण अनिवार्य है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न के उत्तर

1) (ब)

2) (अ)

3) (स)

4) (द)

इकाई 3 - विकास एवं सामाजिक परिवर्तन

इकाई की रूप-रेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 विकास एवं सामाजिक परिवर्तन मे अन्तर्सम्बन्ध

3.3 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ और विशेषताएं

3.4 सामाजिक परिवर्तन का स्पष्टीकरण

- 3.4.1 धर्मशास्त्रीय
- 3.4.2 विकासवादी
- 3.4.3 चक्रीय
- 3.4.4 भौगोलिक
- 3.4.5 विसरणवादी
- 3.4.6 संतुलन बनाम संघर्ष
- 3.4.7 आर्थिक राजनैतिक
- 3.4.8 संस्कृति

3.5 सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारक

- 3.5.1 भौतिक पर्यावरण
- 3.5.2 जनांकिकीय कारक
- 3.5.3 प्रौद्योगिकी कारक
- 3.5.4 सामाजिक-सांस्कृतिक कारक
- 3.5.5 कानून तथा सरकार
- 3.5.6 राजनैतिक कारक
- 3.5.7 सूचना एवं संचार माध्यम
- 3.5.8 स्वैच्छिक एजेन्सियां और समूह
- 3.5.9 शिक्षा

3.6 भारतीय संदर्भ मे सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया

- 3.6.1 संस्कृतिकरण
- 3.6.2 पश्चिमीकरण

3.6.3 धर्मनिरपेक्षीकरण

3.6.4 आधुनिकीकरण

3.7 सामाजिक परिवर्तन की बाधाएं

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 प्रश्नावली

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप

- सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं को जान सकेगे।
- उन कारकों को समझ सकेंगे जो सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है।
- सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और उसके मुख्य उपागमों से अवगत हो सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन की राह में आने वाली बाधाओं को जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

प्रथम इकाई मे हमने इस बात को समझा कि विकास केवल आर्थिक कारणों पर ही निर्भर नही करता। उस पर सामाजिक, सांस्कृतिक तथा संस्थागत तत्वों का भी प्रभाव पड़ता है। विकासशील देशो के संद ं मे प्रायः यह कहा जाता है कि वहाँ का समाज नवप्रवर्तन तथा परिवर्तन का विरोधी होता है। इस प्रकृति के कारण वहाँ संसाधनों का पर्याप्त उपयोग नही होता है और प्रौद्योगिकी का सीमित प्रयोग होता है जिससे वे विकास की दौड़ में पीछे रह जाते हैं। अतः विकास के लिए सामाजिक रीतिरिवाज, विश्वास, संस्थाओं, मूल्यों और रवैये में परिवर्तन आवश्यक होता है। अतः सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन आवश्यक है। यह अध्ययन इसलिए भी आवश्यक हो गया है कि प्राचीन आदिम समाज मे समाज के छोटे आकार, उत्पादन की परम्परा तकनीक, आत्मनिर्भरता, प्रकृति पर सीमित नियन्त्रण, बाह्य प्रभावों से बेखबर, बदलाव की चाह के अभाव आदि के कारण सामाजिक परिवर्तन की गति अत्यन्त धीमी थी। वर्तमान के शहरी और औद्योगिक समाज मे परिवर्तन की गति बहुत ही तेज है और वह अनेक आन्तरिक और बाह्य कारणों से प्रभावित है। सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन के संदर्भ में प्रसिद्ध समाजशास्त्री कुछ प्रमुख प्रश्नों का उल्लेख करते है कि सामाजिक परिवर्तन की दिशा क्या है? सामाजिक परिवर्तन की दर क्या है? सामाजिक परिवर्तन के स्रोत और कारण क्या है? क्या सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति बहुत अधिक निर्धारणवादी है? क्या सामाजिक परिवर्तन को इच्छित दिशा मे नियंत्रित किया जा सकता है/ स्पष्टतः

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया वृहद और जटिल है।

इस इकाई में सामाजिक परिवर्तन की व्यापक जानकारी से आपको अवगत कराया जायेगा, यह आपको विकास की गतिशीलता समझाने मे सहायक होगी।

3.2 विकास एवं सामाजिक परिवर्तन मे अन्तर्सम्बन्ध

विकास सामाजिक परिवर्तन का कारण और परिणाम दोनों है। इनके मध्य दो तरफा सम्बन्ध है अर्थात विकास सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित भी करता है और उससे प्रभावित भी होता है। परिवर्तन से तात्पर्य भौतिक, तकनीकी, सामाजिक, आर्थिक, संस्थागत अभिवृत्तियों , राजनैतिक परिवर्तन से है। सामाजिक परिवर्तन सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों हो सकता है। सकारात्मक परिवर्तन ही विकास की श्रेणी मे आता है। विकास के लिए सामाजिक परिवर्तन एक उपकरण का कार्य करता है जो उसे प्रोत्साहित करे। भारतीय संदर्भ मे देखा जाय तो साठ के दशक के मध्य कृषि के क्षेत्र मे नये तकनीकी परिवर्तन प्रारम्भ किये गये। नये अधिक उपज वाले संकर बीजों का प्रयोग, रासायनिक खाद का प्रयोग, कृषि का मशीनीकरण आदि। इन सभी का परिणाम हरित क्रान्ति के रूप मे देखने को मिला। यह भारतीय विकास यात्रा मे महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। इसी प्रकार दुधारू जानवरों की नई नस्ल तैयार कर, दुग्ध उत्पादन के नये प्लांट लगा कर, संस्थागत नवप्रवर्तन के रूप मे आणंद के समान सहकारी डेरी की शुरूआत कर आपरेशन फ्लड चलाया गया जिसने दुग्ध उत्पादन मे भारत को लम्बी छलांग प्रदान की। इसी प्रकार चीन के कृषि विकास मे संस्थागत सुधारों का बड़ा हाथ रहा विशेष रूप से भूमि सुधार और तकनीक मे सुधारों का। सामाजिक परिवर्तन, स्वायत्त तथा प्राकृतिक भी हो सकता है और प्रेरित भी। विकास के प्रवर्तक व्यवस्था मे वांछित परिवर्तन परिवर्तन प्रेरित कर अथवा स्वायत्त परिवर्तन को उचित दिशा-निर्देशन देकर विकास की गति को त्वरित कर सकते हैं। विकास तथा सामाजिक परिवर्तन के गहरे अन्तर-सम्बन्ध को देखते हुये सामाजिक परिवर्तन को विस्तार से जानना और समझना आवश्गक है।

3.3 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ और विशेषताएं

सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा बहुत ही वृहद है। स्थान, समय, तथा संदर्भ के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक संरचना के अन्दर होने वाले परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन कहलाते है। समाज में मूलतः दो प्रकार की प्रक्रियाएं होती है - (1) वह प्रक्रियाएं जो सामाजिक व्यवस्था को कायम रखती है और (2) वह प्रकियाएं जो व्यवस्था के भीतर और व्यवस्था का परिवर्तन लाती है। प्रथम प्रक्रियाएं यथास्थिति, निरन्तरता तथा अनुरूपता आदि नामों से जानी जाती है तो दूसरी प्रक्रियाओं को सामाजिक और संरचनात्मक परिवर्तनों की प्रक्रियाएं कहा जाता है। अतः सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य है समाज की भौतिक तथा गैर-भौतिक संस्कृति मे रद्दोबदल। सामाजिक संरचना वर्तमान सम्बन्धों का अंतर्बन्धन हैं। सामाजिक संरचना की परिरक्षा वे लोग करते है जो सामाजिक सम्बन्धों में सहभागी होते हैं। सामाजिक परिवर्तन का अभिप्राय सामाजिक

संरचना मे हुए परिवर्तन से है। ये परिवर्तन निम्न रूपों में देखे जा सकते हैं -

- सामाजिक संरचना और उसमें कार्यरत संस्थाएं
- सामाजिक मूल्य और मानदण्ड
- व्यक्तियो के मध्य सामाजिक संबंध
- विभिन्न समूहों, संगठनों और संस्थाओं के कार्य और भूमिका
- सामाजिक अन्तःक्रिया।

सामाजिक परिवर्तन समय, स्थान तथा संदर्भ के आधार पर सदैव सापेक्षिक होते है। इन तीनों तत्वो के आधार पर परिवर्तन के प्रतिमानों की तुलना की जा सकती है। इसे हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं कि नवीन प्रौद्योगिकी और उत्पादन प्रक्रिया से पूर्व भारत मे आर्थिक गतिविधियाँ जाति अथवा पुश्तैनी आधार पर आधारित थी। उत्पादक और प्रयोगकर्ता के मध्य जो व्यवस्था थी उसे जजमानी व्यवस्था के नाम से जाना जाता था। किन्तु नये आर्थिक सम्बन्धों में जाति और व्यक्ति विशेष का कोई स्थान नहीं है वरन् वह नियोक्ता तथा मजदूर वर्ग के संविदात्मक सम्बन्धों पर टिका है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन एक गतिशील प्रक्रिया है।

सामाजिक परिवर्तन की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है -

1) सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक प्रकिया है अर्थात सामाजिक परिवर्तन सभी समाज मे और सामाजिक विकास के सभी चरणों में पाया जाता है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। सामान्यतः ये परिवर्तन इतने मामूली होते है कि हमारा ध्यान इस ओर नहीं जाता। किन्तु कभी-कभी ये परिवर्तन व्यवस्था में भारी बदलाव लाते है जिनके सार्थक प्रभाव अन्तः सम्बन्धों तथा मूल्यों पर पड़ते है। ये परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

2) सामाजिक परिवर्तन उन्हें ही माना जाता है जो समाज के अधिकांश वर्ग को प्रभावित करते हों। किसी सामाजिक घटना या प्रक्रिया से समाज का व्यापक हिस्सा प्रभावित होता है वही सामाजिक परिवर्तन कहलाता है। प्रतिदिन होने वाले मामूली परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन नहीं कहलाते ।

3) सामाजिक परिवर्तन का सूत्र-पात आन्तरिक तथा बाह्य दोनो स्रोतों द्वारा होता है। आन्तरिक कारकों (जैसे समाज में स्वयं परिवर्तन की चाह तथा बाह्य कारकों जैसे औद्योगीकरण, शहरीकरण आदि की तुलनात्मक महत्व भिन्न-भिन्न परिस्थितियों मे भिन्न-भिन्न होता है। बाह्य कारक सामाजिक संरचना के किसी एक तत्व को प्रभावित कर सकता है जिससे उस तत्व पर निर्भर अन्य तत्वों की अन्तःक्रिया और प्रक्रिया की एक श्रृंखला शुरू हो जाती है। यह सामाजिक परिवर्तन के मार्ग को प्रशस्त करती है। सामाजिक संरचना के इन कारकों में अन्तःक्रिया के फलस्वरूप संघर्ष, प्रतियोगिता, समायोजन, सहयोग, अनुकूलन आदि प्रवृत्तियों को जन्म मिलता है और ये ही समाज को परिवर्तित दिशा में ले जाते हैं।

4) सामाजिक परिवर्तन का निश्चित पूर्वानुमान लगाना मुश्किल कार्य है। पिछले अनुभवों और अन्य राष्ट्रों तथा समाजों के अनुभवों के आधार पर कुछ अनुमान लगाये जा सकते हैं।

5) सामाजिक परिवर्तन की गति और दिशा सदैव एक समान नहीं होती है। स्थान और समय के आधार पर परिवर्तन की गति और दिशा भिन्न-भिन्न होती है, जैसे औद्योगिक शहरी समाज मे परिवर्तन की गति परम्परागत ग्रामीण समाज की तुलना मे अधिक होती है।

6) यह आवश्यक नही है कि सामाजिक परिवर्तन सदैव समाज के सदस्यों की सहमति से ही हो। परिस्थितियां तथा समय न चाहते हुए भी परिवर्तन को आवश्यक बना देता है।

7) सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप गुणात्मक तथा मात्रात्मक दोनों है। मात्रात्मक पहलू परिवर्तन के आकार की व्याख्या करता है तो गुणात्मक पहलू उसकी संरचना की व्याख्या करता है। ये दोनों स्वरूप आपस मे गुथे हुए हैं, और एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। औद्योगिकरण के फलस्वरूप बढ़ता ठत्पादन मात्रात्मक परिवर्तन है तो बढ़ता श्रम विभाजन गुणात्मक परिवर्तन है।

8) सामाजिक परिवर्तन गैर-योज़नाबद्ध स्वतः स्फूर्त भी हो सकता है तथा योजनाबद्ध और निर्देशित भी। गैर-योजनाबद्ध परिवर्तन जहाँ अव्यवस्थित और किसी भी दिशा में हो सकता है वही योज़नाबद्ध परिवर्तन निर्दिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित तरीके से लाया जाता है। निर्दिष्ट परिवर्तन मे परिवर्तन कारक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है जो सरकार, गैर-सरकारी संगठन, संस्था या कोई व्यक्ति भी हो सकते हैं योजनाबद्ध परिवर्तन अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करे ही यह आवश्यक नहीं है कई बार वे भटक भी जाते हैं और कई बार परिवर्तन से अप्रत्याशित तथा अवांछनीय प्रभाव भी दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

9) सामाजिक परिवर्तन एक मूल्य तटस्थ अवधारणा है अर्थात सामाजिक परिवर्तन विकास का पर्यायवाची नहीं है। परिवर्तन की प्रक्रिया ऊर्ध्वमुखी अथवा अधोमुखी हो सकती है। औद्योगीकरण से बढ़ती आय की असमानता इसका उदाहरण है।

3.4 सामाजिक परिवर्तन का स्पष्टीकरण

सामाजिक परिवर्तन क्यों होते हैं? यह बहुत ही जटिल और पेचीदा प्रश्न है। परिवर्तन के स्पष्टीकरण में अनेक विद्वानों और समाज वैज्ञानिकों ने अलग-अलग व्याख्या प्रस्तुत की। लेकिन ये सिद्धान्त परिवर्तन के स्वरूप और दिशा को पूर्णतः स्पष्ट करने मे असमर्थ रहे। आज के युग मे परिवर्तन की तीव्र गति और अधिक परिष्कृत सिद्धान्तों की अपेक्षा रखता है। सामाजिक परिवर्तनों के कुछ स्पष्टीकरणों को हम संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे।

3.4.1 धर्मशास्त्रीय

संसार के सभी धर्म अपने-अपने ढंग से सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करते हैं और ईश्वर को परिवर्तन का स्रोत तथा नियामक मानते हैं। धर्मशास्त्रों के अनुसार ईश्वर ही संसार का जन्मदाता, पालक और संहारक है। धार्मिक नेता और अधिकांश लोग ईश्वर को ही सामाजिक परिवर्तन का कारक मानते हैं।

3.4.2 विकासवादी

सामाजिक परिवर्तन की विकासवादी व्याख्या समाज और शरीर रचना में सादृश्य देखती है और उसी के अनुरूप सामाजिक और जैविक वृद्धि के बीच समरूपता स्थापित करती है। यह विचार परिवर्तन के सन्दर्भ मे डार्विन के सिद्धान्त को लागू करता है। जैवकीय क्षेत्र की तरह सामाजिक परिवर्तनों में संघर्षों और अनुकूलनो का आधिपत्य रहता है और इसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक चयन होता है। इस प्रकार विकास सिद्धान्त की प्रकृति एकरेखीय है और इसलिए परिवर्तन साधारण से जटिल की ओर होता है। ऐसे परिवर्तन की प्रक्रिया को पूर्व से अधिक ताकत, क्षमता और पर्यावरण के साथ अनुकूलनपूर्ण होता है। विकासवादियों का यह मानना है कि प्रत्येक समाज निश्चित क्रम मे कुछ चरणों से गुजरता है और वास्तव मे उसे कुछ चरणों से गुजरना भी चाहिए। औद्योगिक समाज के अनुभव के आधार पर यह सिद्धान्त परिवर्तन की प्रागनुभविक दिशा भी तय करता है जो परम्परा से आधुनिकता की ओर है।

3.4.3 चक्रीय

चक्रीय सिद्धान्त विकास की एक-रेखीय व्याख्या के विपरीत है और प्रगति की दिशा मे लगातार परिवर्तन को स्वीकार करता है। इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि ह्रास तथा क्षय अवश्यंभावी है। अतः प्रत्येक समाज और संस्कृति अपने जन्म, उत्थान, चरम उन्नति और फिर ह्रास के चक्र से होकर गुजरती है।

3.4.4 भौगोलिक

इस सिद्धान्त मे सामाजिक परिवर्तनों को पर्यावरण तथा प्रकृति प्रदत्त माना जाता है। इस विचारधारा के अन्तर्गत कुछ मान्यताओं को लेकर भौगोलिक कारणो के आधार पर जातियों के प्रवास और सामाजिक संगठनों की व्याख्या की गयी है।

3.4.5 विसरणवादी

विसरण से तात्पर्य किसी संस्कृति के तत्वों का एक समूह से दूसरे समूह या एक समाज का दूसरे समाज अथवा संसार के किसी एक भाग से अन्य भाग में प्रसार और फैलाव से है। नृविज्ञानी मानते है कि सामाजिक परिवर्तन विश्वासों सामाजिक संगठन के स्वरूप, प्रौद्योगिकी आदि के विसरण के फलस्वरूप होते हैं। इस विचारधारा के कुछ समर्थक तो सम्पूर्ण मानव संस्कृति का उद्गम स्थल एक ही मानते हैं जहाँ से छितराव द्वारा

अलग-अलग संस्कृतियां पनपी तथा विकसित हुई।

3.4.6 संतुलन बनाम संघर्ष

संतुलन का सिद्धान्त संरचनात्मक तथा कार्यत्मक दृष्टिकोण पर आधारित है। यह सिद्धान्त व्यक्ति तथा परिवार की अपेक्षा समान और उसमे कार्यरत संस्थाओं के अन्तः सम्बन्धों पर बल देता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक समाज संतुलन बनाये रखने का प्रयास करता है। अतः जब कभी समाज का संतुलन आन्तरिक अथवा बाह्य कारकों से बिगड़ता है तो समाज की कुछ शक्तियां स्वतः समायोजन की दशा में सक्रिय हो जाती है ताकि संतुलन बनाये रखा जा सके।

संतुलन के विपरीत संघर्षवादी विचारधारा संतुलित स्थैतिक समाज को अस्वीकार कर संघर्ष को सामाजिक विकास का आधार मानती हैं। इनका मानना है कि सामाजिक जीवन की बुनियादी स्थिति मतैक्य की अपेक्षा मतभेद है यह मतभेद ही विभिन्न समूहों के बीच शक्ति तथा लाभ के लिए प्रतियोगिता द्वारा उभरता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त का मानना है कि प्रभावी सामाजिक प्रक्रिया सुसंगति अथवा संतुलन बनाये रखने का सतत् प्रयास न होकर दो पक्षो के बीच अंतहीन संघर्ष है।

3.4.7 आर्थिक राजनैतिक

यह सिद्धान्त संघर्ष को ही परिवर्तन का आधार मानता है लेकिन इसके लिए आर्थिक, राजनैतिक कारकों को उत्तरदायी मानता है। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या तथा द्वंद्वात्मक भौतिकतावाद इस विचार का आधार है जो समाज के भौतिक परिवर्तनों और संघर्ष से सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज मे उत्पादन और विनिमय के तरीकों में परिवर्तन आता है जिससे समाज का अलग-अलग वर्गों में विभाजन होता है और इन वर्गों में संघर्ष ही समाज मे परिवर्तन का प्रेरणा स्रोत है। उदाहरणार्थ मशीनों के उच्च प्रयोग और व्यापार वाणिज्य के विस्तार ने सामंती समाज को पूंजीवादी समाज में परिवर्तित कर दिया।

3.4.8 संस्कृति

संस्कृति के अन्तर्गत समस्त लोकाचार,प्रतिमान, विश्वास, मूल्य, भाषा, कला, रीति-रिवाज आदि सम्मिलित किये जाते हैं। जो किसी समाज को विशिष्टता प्रदान करते हैं और जिसके आधार पर कोई समाज अन्य समाज से भिन्न प्रकट होता है। समाज मे संस्कृति तथा सामाजिक तत्व भिन्न-भिन्न गति से तय भिन्न-भिन्न समय पर विसरित होते रहते हैं जो नये परिवर्तनों को और उनके अनुकूलन को जन्म देते हैं। संस्कृति के प्रौद्योगिकी पहलुओं में परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत तेज होती है जबकि प्रतिमान विश्वास मूल्य आदि की परिवर्तन गति धीमी होती है समाज के भौतिक संस्कृति में परिवर्तन तेजी से आते हैं जबकि उसकी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन देरी से होते हैं। उदाहरणार्थ औद्योगिकरण ने रोजगार तथा कार्य क्षेत्र में जाति बन्धनों को खत्म कर दिया है किन्तु सामाजिक जीवन में अभी भी जाति-बंधन हावी है तथा निर्णायक है।

3.5 सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख कारक

सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या मे प्रमुख विभिन्न स्पष्टीकरणों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया जटिल है और अनेक कारकों से प्रभावित होती है । सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित है -

3.5.1 भौतिक पर्यावरण

भौतिक पर्यावरण से तात्पर्य भौगोलिक परिवर्तन से है जो धीरे-धीरे किन्तु निरन्तर चलते रहते हैं। मानव को भूकम्प, बाढ़, अकाल आदि के रूप में अनेक प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है क्योंकि परिवर्तनों के अनुकूलन में सामाजिक परिवर्तन होते हैं। प्रौद्योगिकी तथा औद्योगिक उन्नति के परिणाम स्वरूप प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से पृथ्वी के स्वरूप में भी परिवर्तन आते हैं जो अन्य सामाजिक परिवर्तनों को जन्म देता है।

3.5.2 जनांकिकीय कारक

जैविक तथा जनांकिकीय कारक भी सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। जनसंख्या मे वृद्धि या ह्रास, जनसंख्या का आकार, जनसंख्या की संघटना, पुरूष-महिला अनुपात, ग्रामीण और शहरी जनसंख्या अनुपात आदि वे घटक हैं जो परिवर्तन की दिशा और स्वरूप को प्रभावित करते हैं। जनांकिकीय कारक अन्य कारकों यथा पर्यावरण, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि कारकों के साथ परस्पर क्रिया कर परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करते है।

3.5.3 प्रौद्योगिकीय कारक

आधुनिक समाज मे परिवर्तन का सबसे तीव्र कारण प्रौद्योगिकी है। प्रौद्योगिकी से तात्पर्य है कि ''वैज्ञानिक नियमों को ठोस उद्देश्य प्राप्त करने के लिए, विशिष्ट जरूरतों को पूरा करने के लिए अथवा व्यवहारिक उददेश्यों के लिए पर्यावरण में जोड़-तोड़ करने के लिए मशीनों औजारों यांत्रिक युक्तियों यंत्रों, नवप्रवर्तनों, प्रक्रियाओं और तकनीकों में परिणत करना''। प्रौद्योगिकी में परिवर्तन समाज मे व्यापक विचलन तथा परिवर्तन लाता है। औद्योगिक क्रान्ति से नई तकनीक तथा आविष्कारों ने सम्पूर्ण मानव समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया। इसके परिणामस्वरूप नये मजदूर वर्ग का उदय हुआ, अत्यधिक उत्पादन ने बाजार की सीमा को राष्ट्र की परिधि से बाहर निकाल कर अन्तर्राष्ट्रीय कर दिया। औद्योगीकरण के साथ ही शहरीकरण, नाभकीय परिवार, महिलाओं के अधिकार, लोकतंत्र के विस्तार जैसे कई विचारों को बल मिला।

वर्तमान मे संचार क्रान्ति के युग में परिवर्तनों की गति और तीव्र हो गई है। यद्यपि तकनीकी विकास सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख साधन है। किन्तु तकनीक अल्पविहीन नहीं होती है और यह सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक उद्देश्ययों से युक्त

होती है। अतः विकासशील देशों में प्रौद्योगिकी परिवर्तन की अनेक सामाजिक उलझनें भी है। जैसे विकसित देशों की पूँजी प्रधान तकनीक जिससे उत्पादकता में सुधार द्वारा मजदूरों की संख्या में कमी लाकर लागत घटायी जाती है विकासशील देशों के लिए परेशानी का सबब बन सकती है। जो पहले ही श्रम आधिक्य के चलते बेरोजगारी की ऊँची दर से परेशान है। तकनीक का समाज पर प्रभाव अनेक कारको पर निर्भर करता है जो निम्न है-

- उत्पादन सम्बन्धों का वर्तमान स्वरूप
- व्यवसायिक वितरण का स्वरूप
- सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश
- तकनीक की लागत
- तकनीकी परिवर्तन के विरोध का स्तर
- प्रतियोगिता तथा बाजार का स्वरूप
- तकनीक के साथ जुड़ी शर्तें तथा अन्तर्राष्ट्रीय दबाव

विकासशील देशों में ग्रामीण आबादी तथा जनाधिक्य को देखते हुए अनेक विचारक विकसित देशों की पूँजी बाहुल्य युक्त,पश्चिमी समाज के अनुकूल तकनीक को उचित नही मानते हैं और वे 'उपयुक्त प्रौद्योगिकी' का नारा देते हैं जिसे हम पिछली इकाई मे विस्तार से समझ चुके हैं।

3.5.4 सामाजिक-सांस्कृतिक कारक

परिवर्तन की दशा और दिशा तय करने में सामाजिक-सांस्कृतिक घटक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अनेक विद्वान परम्पराओं को अध्ययन का केन्द्र बिन्दु मानते हैं। उनकी मुख्य दलील यह है कि विचारों, मानकों, मूल्यों, धार्मिक कृत्यों और अनुपालना में परिवर्तन द्वारा ही आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन सम्भव है। मैक्स वेबर का मानना है कि प्रोटेस्टैन्ट धर्म में ही कुछ ऐसे गुण हैं जिनसे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिला है मिल्टन सिंगर के एक अध्ययन के अनुसार भारत में जाति तथा संयुक्त परिवार ने व्यापार और उद्यमशीलता में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। संस्कृति के घटक भी दो प्रकार के होते हैं एक भौतिक संस्कृति और दूसरा गैर-भौतिक संस्कृति। भौतिक संस्कृति में रहन-सहन, पहनावा, उत्पादन प्रणाली, उपभोग आदि सम्मिलित रहते हैं तो गैर-भौतिक संस्कृति में मूल्य प्रतिमान, विश्वास, प्रयास आदि शामिल किये जाते हैं। संस्कृति परिवर्तन की दर गैर भौतिक संस्कृति की तुलना में भौतिक संस्कृति में अधिक होती है। इसे संस्कृति पश्चता कहते हैं जिसकी हम पूर्व में भी व्याख्या कर चुके हैं। गैर-भौतिक संस्कृति सामान्यतः भौतिक संस्कृति से प्रभावित होती है। किन्तु गैर-भौतिक संस्कृति जब स्वतंत्र रूप से कार्य करती है तो परिवर्तन के प्रभाव काफी व्यापक होते हैं। जैसे- धार्मिक सुधार आन्दोलन।

3.5.5 कानून तथा सरकार

कानून तथा सरकार सामाजिक परिवर्तन के सबसे बड़े माध्यम हैं। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के उदय के पश्चात् राज्य की भूमिका केवल शान्ति व्यवस्था कायम रखने तक सीमित नहीं है बल्कि वह समाज के प्रत्येक कार्य को निर्देशित और प्रभावित करता है। सरकार विधि निर्माण, प्रशासनिक कार्यवाही, नीति-निर्माण विकासात्मक कार्यक्रमों के संचालन आदि से समाज में परिवर्तन को निर्देशित करती है। समाज में परिवर्तन लाने का सरकार का सबसे बड़ा उपकरण कानून निर्माण है। भारत जैसे जटिल और विषम समाज में कानून द्वारा विभिन्न वर्गो में समरूपता और आत्मसातीकरण लाने का प्रयास किया जाता है।प्रख्यात समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह के अनुसार कानून के तीन प्रकार्य उल्लेखनीय है- (1) परिवर्तन के सूचक के रूप में (2) परिवर्तन के प्रवर्तक के रूप में (3) परिवर्तन के समन्वयक के रूप में।

कानून के द्वारा सामाजिक रूपान्तरण, अनुशासन और वैज्ञानिक तंत्र विवेकपूर्ण मनोवृत्तियां लाना सम्भव है। लेकिन कानून बना लेने मात्र से वांछित परिवर्तन या बदलाव नही आता । समाज की संरचना तथा लोगों की भौतिक प्रकृति मे कानून के अनुरूप परिवर्तन आवश्यक है। जैसे दहेज निरोधक कानून होने पर भी दहेज का लेन-देन समाज में जारी है। जाति तथा अस्पृश्यता के लिए कानून होने पर भी वे व्यवहार में बने हुए है।

कानून को कारगर होने के लिए राजनैतिक इच्छाशक्ति का होना भी आवश्यक है। 1950 के दशक में देश में भूमि सुधार हेतु कानून बनाये गये, किन्तु देश के अधिकांश राज्यों ने उन्हें सही ढंग से लागू नहीं किया जिससे आवश्यक परिणाम प्राप्त नहीं हो सके।

भारत मे आधुनिक कानूनी व्यवस्था का आधार देश का संविधान है। संविधान मे समानता, सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता के मानकों का समावेश किया गया है। संविधान में नीति निर्देशक तत्वो के माध्यम से आर्थिक विकास लाने और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने में सरकार की वांछित भूमिका का उल्लेख किया गया है।

3.5.6 राजनैतिक कारक

राजनैतिक व्यवस्था भी सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण घटक है। भारत में ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक चुनावों में मताधिकार प्राप्त होने के कारण बहुत अधिक सामाजिक और राजनैतिक चेतना उत्पन्न हुई है। राजनैतिक दल केवल चुनाव जीतने तक ही सीमित नहीं रहते बल्कि वे राष्ट्रीय हितों और सैद्धान्तिक मुद्दे भी उठाते है। गांव और शहरों में प्रत्येक कार्य और मुद्दे दलगत आधार पर प्रतिमानित होते है। जातियो, समुदायो, विशिष्ट मुद्दो और समस्याओं को राजनैतिक दल विशेष के नजरिये से देखा जाता है। जातियों तथा अन्य सामाजिक इकाइयों के राजनीतिकरण के परिणाम-स्वरूप चुनावों में सामाजिक जुटाव हुआ है। उच्च जातियों की तुलना मे सामाजिक और

सांस्कृतिक पिछड़ेपन के बावजूद भी प्रमुख कृषक जातियाँ चुनावों में बहुत प्रभावकारी रही है। कभी-कभी परम्परागत रूप से शक्तिशाली जातियाँ राजनीति और सत्ता के खेल में कमजोर भी रही हैं।

3.5.7 सूचना एवं संचार माध्यम

वर्तमान युग मे सूचना प्रदान करने और सामाजिक जागरूकता लाने में सूचना एवं संचार माध्यमों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गयी है। समाचार पत्र-पत्रिकाएं आकाशवाणी, दूरदर्शन, केबल चैनल, फिल्म आदि संचार के सभी माध्यम जनता को विभिन्न जानकारी उपलब्ध कराते हैं और ज्ञान का प्रचार करते हैं। आधुनिक सूचना एवं संचार माध्यमों के चलते स्थान और समय की दूरियाँ कम हो गयी है। व्यक्ति को प्रातः काल से लेकर रात तक संचार साधनों के निरन्तर सम्पर्क में रहने के कारण ये माध्यम परिवर्तन के महत्वपूर्ण वाहक बन गये हैं।

3.5.8 स्वैच्छिक एजेन्सियाँ और समूहों की भूमिका

स्वैच्छिक एजेन्सियाँ या गैर-सरकारी संगठन जिन्हें सरकार और बाजार से भिन्न तृतीय क्षेत्र की संज्ञा दी जाती है सामाजिक परिवर्तन लाने के महत्वपूर्ण साधन है। गैर सरकारी संगठन समाज के विभिन्न वर्गों को एकजुट करने, अपनी समस्याओं और आवाज को मंच प्रदान करने और उन्हें अपनी स्थिति में सुधार हेतु प्रेरित करने का कार्य करते हैं। स्वैच्छिक संगठनों के कार्य सरकारी प्रयासों के पूरक के रूप मे भी हो सकते हैं और उन क्षेत्रो में भी हो सकते हैं जहाँ या तो सरकारी प्रयास पहुंचे नहीं हैं या वे प्रयास पर्याप्त नहीं हैं। स्वैच्छिक संगठन परिवर्तन के अनुरूप जन-मानस तैयार करने, लोगों को लामबंद करने और जन सहभागिता को पुष्ट करने में महती भूमिका निभाते हैं। इनकी गतिविधियाँ सुधारात्मक, नवप्रवर्तक तथा व्यवस्था में आमूल परिवर्तनवादी हो सकती है।

3.5.9 शिक्षा

शिक्षा भी परिवर्तन और विकास का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह ज्ञान, कौशल तथा क्षमता बढ़ाने का साधन है। शिक्षा आर्थिक दृष्टि से मानव पूंजी को राष्ट्र निर्माण में कारगर निवेश के लिए विकसित करती है । राजनैतिक दृष्टि से यह राजनैतिक प्रक्रियाओं में जन सहभागिता को प्रभावी बनाती है और सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से बेहतर और उददेश्यपूर्ण जीवन बिताने में सहायक होती है। शिक्षा वैचारिक क्षितिज को विस्तृत करने के साथ-साथ विभिन्न घटनाओं और स्थितियों को संभालने, उनका आकलन करने और आवश्यक निर्णय निर्धारण करने में सहायक होती है।

3.6 भारतीय संदर्भ में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया

भारत के संदर्भ में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को निम्नलिखित रूप मे वर्णित किया जा सकता है :-

- संस्कृतिकरण
- पश्चिमीकरण
- धर्मनिरपेक्षीकरण
- आधुनिकीकरण

3.6.1 संस्कृतिकरण

एम. एन. श्रीनिवास ने भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं की व्याख्या संस्कृतिकरण तथा पश्चिमीकरण की अवधारणाओं के द्वारा की है। श्रीनिवास के अनुसार संस्कृतिकरण एक प्रकिया है जिसके द्वारा एक निम्न जाति या जनजाति या अन्य समूह उच्च जाति और विशेषतः द्विज जाति की प्रथाओं धार्मिक कृत्यों आस्थाओं विचारधारा और जीवन प्रणाली को अपनाता है।'' अतः जाति के ढांचे के अन्तर्गत ही निम्न जाति के लोग उच्च जातियों के जीवन-तरीकों का अनुकरण अपनी परिस्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से करते हैं। इस प्रक्रिया में या तो स्थानीय वर्ण अधिक्रम में उस सम्बन्धित समूह की आर्थिक या राजनैतिक स्थिति में सुधार होता है या ऐसे सम्पर्क से उस समूह में आत्म चेतना जागृत होती है । भारतीय समाज में उच्च वर्ग का अनुसरण सामाजिक प्रतिष्ठा का विषय माना जाता था, और उच्च वर्ण को प्रमाण समूह!

संस्कृतिकरण की अवधारणा संदर्भात्मक भी है अर्थात संस्कृतिकरण सापेक्षिक भाव में परिवर्तन की एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया का महत्व हर क्षेत्र मे भिन्न भिन्न पाया जाता है क्योकि यह संदर्भ में सम्बन्धित आन्तरिक तथा बाह्य कारकों पर निर्भर करता है। स्थानीय कारकों के दबाव में कई क्षेत्रो में संस्कृतिकरण के विपरीत असंस्कृतिकरण और जनजातीयकरण की प्रक्रियाएं भी पाई गई है।

संस्कृतिकरण द्वारा प्रभुजातियों के वर्चस्व पर प्रहार होता है। श्रीनिवास के अनुसार गांवों के स्तर पर प्रभुजातियों को लोगों की आर्थिक, धार्मिक कृत्य और सामाजिक स्थिति के आधार पर परिभाषित किया जाता है। इस प्रक्रिया का प्रभाव भाषा साहित्य, संगीत, नाटक विचारधारा, जीवन शैली और अनुष्ठान सभी जगह देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया का प्रभाव हिन्दुओं तक ही सीमित नही रहा अपितु यह हिन्दू धर्म के बाहर अन्य धार्मिक समूहों में भी देखा गया। इस प्रक्रिया द्वारा केवल स्थितिगत परिवर्तन आते हैं। स्थितिगत परिवर्तन जाति के भीतर आते हैं उनसे व्यवस्था परिवर्तित नहीं होती अर्थात जाति परिवर्तित नहीं होती है, परिवर्तन जाति के अन्दर होते हैं।

3.6.2 पश्चिमीकरण

पश्चिमी संस्कृति (विशेषतया ब्रिटिश संस्कृति) के साथ सम्पर्क के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों को पश्चिमीकरण कहा जाता है। भारत मे ब्रिटिश शासन के प्रभाव के कारण विज्ञान प्रौद्योगिकी, शिक्षा, वैचारिकी और मूल्य आदि के क्षेत्र में नवीन परिवर्तन आये। विभिन्न जातियों ने विशेषतः उच्च जातियों ने ब्रिटिश लोगों की वेशभूषा, खान-पान, जीवन शैली को स्वीकार कर लिया। सांस्कृतिक अनुकरण के अतिरिक्त

पश्चिमीकरण ने दो महत्वपूर्ण मूल्यों को स्थापित किया वे है मानवतावाद और तर्कबुद्धिवाद। श्रीनिवास इन दो मूल्यों के आधार पर ही पश्चिमीकरण को आधुनिकीकरण से पृथक करते है। किन्तु यह मानना कि ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में मानवतावाद और औचित्यवाद के मूल्यो की उत्पत्ति हुई, ऐतिहासिक आधार पर पुष्ट नहीं होती है। ब्रिटिश शासकों की 'फूट डालो और राज करें' की नीति इसके विपरीत प्रमाण देती है।

पश्चिमीकरण ने नए आधारों पर एक अखिल भारतीय संस्कृति के पुनः प्रादुर्भाव में योगदान दिया है। पश्चिमीकरण का प्रभाव शिक्षा, कानून, विज्ञान और तकनीक, नगरीकरण, औद्योगीकरण, प्रेस, यातायात और संचार के क्षेत्रो मे हुआ। अंग्रेजी शिक्षा का भी दोहरा प्रभाव देखा गया - (1) शिक्षित लोगों मे पश्चिमी मूल्यों और विचारधाराओं का अन्तर्निवेशन (2) सामाजिक और सांस्कृतिक सुधार आन्दोलनों का आरोह।

3.6.3 धर्मनिरपेक्षीकरण

परम्परागत वर्ण व्यवस्था से बाहर कारकों को पहचानने की तलाश में एक अन्य दृष्टिकोण में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया पर बल दिया गया है। अंग्रेजी शासन के दौरान आये परिवर्तनों और आर्थिक अवसरों का फायदा उच्च वर्णों को ही हुआ क्योंकि वे शिक्षित थे । परिणामतः समाज में असमानता और बढ़ गयी।

इस स्थिति में पिछड़ी जातियो में शक्तिशाली आन्दोलनों की शुरूआत हुई जिसमें प्रचलित सामाजिक व्यवस्था और वर्ण क्रम को चुनौती दी गयी। यह माना गया कि विकास के लिए आर्थिक अवसर, शिक्षा और राजनैतिक सहभागिता तक पहुँच बनाना आवश्यक है। इस प्रक्रिया ने सामाजिक गतिशीलता के संस्कृतिकरण के ढांचे को अस्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रक्रिया मे देखा गया कि

– निम्न वर्ण के लोगो में उच्च वर्ण के अनुसरण की प्रवृत्ति, उनके कुलनाम, जनेऊ आदि प्रतीकों को अपनाने की ललक और उच्च वर्ग के अनुरूप स्वीकार किये जाने की प्रवृत्ति समाप्त होने लगी।

– परम्परागत हिन्दू समाज के प्रभाव क्षेत्र से कुछ समूह अलग होने लगे। इस हेतु कुछ ने धर्म परिवर्तन का सहारा लिया तो कुछ अलग समूह बनाकर वर्णक्रम के विरूद्ध संघर्ष छेड़ा।

देश के संविधान ने धर्मनिरपेक्षवाद को और अधिक बढ़ावा दिया। अस्पृश्यता उन्मूलन और आरक्ष सुविधाओं के द्वारा वंचित समूहों को समान अवसर उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया । इन प्रयासों से अनुसूचित जाति, जन-जाति और पिछड़ा वर्ग के लोगों को समाज मे उच्चता प्राप्त करने के लिए संस्कृतिकरण का विकल्प प्राप्त हो सका।

3.6.4 आधुनिकीकरण

आधुनिकीकरण में वे सभी सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तन समाविष्ट हैं जो पाश्चात्य देशों में औद्योगीकरण के साथ-साथ हरित हुए। आधुनिकीकरण में पूंजीवाद का

विकास, शहरीकरण, व्यवसायिक संरचना में परिवर्तन सामाजिक गतिशीलता, शिक्षा का विकास, प्रजातंत्र का विस्तार आदि परिवर्तन शामिल है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् औपनिवेशिक शासन से मुक्त हुये नव स्वतंत्र राष्ट्रों के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती राष्ट्र निर्माण की थी। राष्ट्र निर्माण के लिए वे परम्परागत समाज और सैनिक सामाजिक व्यवस्था से बाहर निकल कर गतिशील सामाजिक व्यवस्था और औद्योगिकरण की तरफ बढ़े। उनके सम्मुख आधुनिकीकरण के दो मार्ग थे। पहला पूँजीवादी व्यवस्था और दूसरा समाजवादी व्यवस्था। इस प्रकार आधुनिकीकरण के सिद्धान्त में अधिक विशेषताएं थी और इसमें परिवर्तन प्रक्रिया का पश्चिमीकरण से बिल्कुल भिन्न अपेक्षाकृत अधिक यथार्थवादी मूल्यांकन लिया गया था।

आधुनिकीकरण के कुछ प्रमुख लक्षण निम्न रूप में अपनाये जा सकते हैं।

- परम्परावाद से भिन्न वैज्ञानिक स्वभाव एवं चिंतन
- सामाजिक गतिशीलता
- उपलब्धि उन्मुखता
- समस्त गतिविधियों में उच्च कोटि की सहभागिता
- परिवर्तन की वांछनीयता और सम्भाव्यता में विश्वास
- परम्परागत तकनीक के स्थान पर उच्च प्रौद्योगिकी का प्रयोग
- कृषि का वाणिज्यीकरण । निर्वाहन खेती के स्थान पर वाणिज्यिक खेती अपना।
- पारिवारिक तथा घरेलू उत्पादन के स्थान पर बड़े कल-कारखानों द्वारा अधिक उत्पादन
- हित संयोजन
- अधिकाधिक लाभ, अभिप्रेरणा, बचत जोखिम की प्रवृत्ति आदि की अभिवृत्तियाँ
- अल्पकाल की अपेक्षा दीर्घकालीन हितों को तवज्जो
- कृषि पर जनसंख्या की निर्भरता में कमी।

आधुनिकीकरण सिद्धान्त के दो मुख्य घटक हैं औद्योगिकरण और शहरीकरण इन्हें भी समझना आवश्यक है ताकि आधुनिकीकरण की अवधारणा अधिक स्पष्ट हो सके।

औद्योगीकरण

औद्योगीकरण के अन्तर्गत उत्पादन के परम्परागत तरीकों के स्थान पर आधुनिक विकसित प्रणालियों का इस्तेमाल किया जाता है। अर्थात औद्योगीकरण वह प्रकिया है जिसके द्वारा मानव और पशु शक्ति की जगह मशीन शक्ति, स्थानीय उपभोग हेतु उत्पादन के स्थान पर अत्यधिक उत्पादन, परिवारिक उद्योगों के स्थान पर वृहद कल / कारखानों का परिवर्तन देखा जाता है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया विनिर्माण के क्षेत्र में

मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन लाती है। उसके परिणाम-स्वरूप परम्परागत नियोक्ता और कर्मचारी के वैयक्तिक सम्बन्ध का स्थान अवैयक्तिक संविदात्मक सम्बन्ध ले लेते है। अर्थव्यवस्था मे प्राथमिक क्षेत्र का योगदान कम होने लगता है और द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र का अंश बढ़ने लगता है। औद्योगीकरण से समाज में वर्ण और धर्म की पकड़ कमजोर होने लगती है और नवीन वर्ग जैसे मजदूर वर्ग का उदय होता है।

औद्योगीकरण प्रक्रिया में यह भाव भी निहित है कि इसमें विस्तार के साथ आधुनिकता का भी विस्तार होगा और आधुनिकता का विस्तार यानी परम्पराओं मे कमी किन्तु यह विचार संकुचित दृष्टिकोण पर आधारित है। आधुनिकता और परम्परा अनन्य हो यह आवश्यक नही है। आधुनिकता और परम्परा सहवर्ती भी हो सकती है जैसा हमारे समाज मे है।

शहरीकरण

आधुनिकीकरण से जुड़ी एक अन्य अवधारणा है शहरीकरण या नगरीकरण। शहरीकरण की प्रक्रिया में उन परिवर्तनों को शामिल किया जाता है, जो लोगों के गांवों को छोड़कर शहर आ बसने के कारण आते हैं। यह महज लोगों का स्थानिक संचलन नहीं है। बल्कि यह एक प्रक्रिया है जिसका आशय आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन से है। पश्चिमी समाज के अनुभवों के आधार पर यह माना गया कि नगरीकरण से परम्परागत सामाजिक संस्थाओ और मूल्यों में बिगाड़ उत्पन्न हो जाता है अर्थात वे भंग हो जाते है। भारतीय संदर्भ मे यह विचार पूर्णतः लागू नही होता है। भारत में नगरीकरण के चलते जाति प्रथा वर्ग व्यवस्था में, संयुक्त परिवार बाकी परिवार में और धार्मिक मूल्य निरपेक्ष मूल्य में परिवर्तित नही हुए है। पाश्चात्य या आधुनिक नगरीकरण के साथ भारत में परम्परागत नगरीकरण के तथ्यों को भी नजरअंदाज नही किया जाना चाहिए। प्राचीन भारत में शहर पूजा वार्षिक धार्मिक सम्मेलनों, व्यापक और जहाजरानी के महत्वपूर्ण केन्द्र थे। इन शहरों की जनसंख्या स्थिर थी। आधुनिक शहर औद्योगिक केन्द्र, जिले या राज्य के मुख्यालय या शिक्षा के केन्द्र बने हुये हैं। जैसे पूना, मुम्बई, बैगलोर, चण्डीगढ़, भिलाई आदि। कुछ शहरों का परम्परागत महत्व समाप्त हो गया है जबकि आर्थिक और राजनैतिक कारणों से कुछ शहरों का महत्व बढ गया है।

भारत में शहरीकरण के संदर्भ में कुछ मूलभूत प्रश्न उठाए जाते हैं जो निम्न हैः-

- क्या नगरीकरण की प्रकिया पश्चिमीकरण से जुड़ी हुई है?
- क्या शहरों और गांवो मे वैध अन्तर किया जा सकता है?
- नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन का स्वतंत्र चर है या आश्रित चर?
- नगरीकरण के फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था और संगठन के स्वरूप में क्या बदलाव आये हैं।

इन प्रश्नों के उत्तर के स्वरूप में कहा जा सकता है कि चूँकि भारत में जाति, संयुक्त परिवार और जन संस्कृति गांव तथा शहरों में दोनों जगह विद्यमान है। अतः हम

नगरीकरण को केवल पश्चिमीकरण से जोड़ कर नहीं देख सकते । जीवन के लोकाचार सांस्कृतिक प्रतिमानों, सामाजिक-सांस्कृतिक समूह करण और जीवनयापन के तरीकों में गांव तथा शहरों में स्पष्ट भिन्नता दिखाई देती है। किन्तु जाति,बंधुता, विवाह के नियमों, धार्मिक व्यवहारों की अमुपालना आदि के सम्बन्ध में गांव और शहर मे संरचनात्मक समानता देखी जा सकती है। अतः गांव और शहरों को केवल द्विभाजीय इकाई नहीं माना जा सकता। ये दोनों का दूसरे से अन्तर संबंधित भी हैं और एक-दूसरे से अलग भी हैं। तीसरे प्रश्न के संदर्भ में कहा जा सकता है कि नगरीकरण स्वयं में विज्ञान और प्रौद्योगिकी में प्रगति और अन्य कारणो का परिणाम है अतः वह स्वतंत्र चर नहीं है।। लेकिन एक बार नगरीकरण तथ्य के रूप मे घटित हो जाता है तो औपचारिक संगठन और संस्थाएं, यातायात और संचार के साधन, गंदी बस्तियां भीड़-भाड़ और अपराध आदि कई नई समस्याएं और परिस्थितियां उभर आती है। अतः प्रारम्भ में शहरीकरण एक आश्रित चर है, परन्तु आगे चलकर यह सामाजिक परिवर्तन का एक निर्णयात्मक चर बन गया है। शहरीकरण की प्रक्रिया मे एक चक्राकार कार्योत्पादन पाया जाता है।

3.7 सामाजिक परिवर्तन की बाधाएं

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के अध्ययन के साथ साथ चिंतन का एक महत्वपूर्ण बिन्दु परिवर्तन का विरोध भी है। सामाजिक परिवर्तन सदैव स्वीकार्य नहीं होते। समाज मे अनेक तत्व और घटक सामाजिक परिवर्तन के मार्ग मे बाधाएं पैदा करते है।। ये घटक समाज मे परम्परागत शक्ति संतुलन सामाजिक स्तरीकरण (जैसे भारत मे वर्णव्यवस्था), पारिवारिक सम्बन्ध आदि के साथ साथ स्वयं परिवर्तन की आत्मविन्यास और मूल्यो के रूप मे भी हो सकते है। उदाहरण के लिए कृषि के यंत्रीकरण और आधुनिकीकरण के लिए किसानो को तैयार कर लेने पर भी पर्याप्त वित्त सुविधाएं आवश्यक कौशल, विपणन सुविधाएं, भण्डारण की व्यवस्था आदि कृषि के आधुनिकीकरण के साथ जुडी है। इतना अभाव परिवर्तन मे बाधा पैदा करता है।

परिवर्तन का विरोध उस समय उग्ररूप ले लेता है जब लोगां को यह महसूस होता है कि उनके जीवन के नियामक विश्वास और मूल्य प्रस्तावित परिवर्तन से खतरे मे है। अतः बडे परिवर्तनों से पहले लोगो के विश्वास और रीतिरिवाजो मे बदलाव लाना आवश्यक है।

सामाजिक परिवर्तन सदैव बाहय कारको से ही प्रभावित नही होता सामाजिक संरचना के भीतर भी परिवर्तन चलते रहते है।सामाजिक संरचना और रिवाज जिन परिस्थितियो मे बने थे उनके परिस्थितियो पर समाप्त हो जाने के पश्चात भी बने रहते है। जिसका विकास पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनो प्रभव पडते है। जैसे जाति का जजमानी आधार समाप्त हो जाने पर भी वृहद अर्थव्यवस्था और राजनैतिक व्यवस्था के प्रभाव के कारण जाति आज खान पान, विवाह और पवित्रता तथा अपवित्रता की धारणाओ तक सीमित न रहकर एकहित समूह और सामाजिक सांस्कृतिक गतिशीलता का साधन बन गयी है।

इस प्रकार समाज मे परिवर्तन की विरोधी और सहयोगी शक्तियां निरन्तर क्रियाशील रहती है।इन शक्तियो की क्रिया प्रतिक्रिया ही परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करती है। एक कार्य क्षेत्र का परिवर्तन सामाजिक जीवन के अन्य कार्य क्षेत्रो को प्रभावित करता है। इसी लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न कारको तथा विभिन्न शक्तियो की क्रियाशीलता को स्पष्ट कर सके।

3.8 सारांश

सामाजिक परिवर्तन एक सर्वदेशीय प्रघटना है। सामाजिक.परिवर्तन से तात्पर्य समाज की यौगिक तथा गैर यौगिक संस्कृति मे बदलाव से है व्यवस्था मे परिवर्तन तथा व्यवस्था का परिवर्तन दोनो सर्वदेशीय है लेकिन व्यवस्था का परिवर्तन दुर्लभ प्रशंसा है। व्यवस्था मे परिवर्तन निरन्तर है और लगभग सभी समाजो मे सदैव पाया जाता है। अतः परिवर्तन एक व्यापक अवधारणा है।

इस इकाई मे हमने सामाजिक परिवर्तन का अर्थ और उसकी विशेषताओ को समझा। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को स्पष्ट करने वाले विभिन्न उपागमो को समझने का प्रयास किया। सामाजिक परिवर्तन की जटिल प्रकिया अनेक कारको से प्रभावित होती है। इन कारको मे प्रकृति, जननांकिकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, कानूनी,राजनैतिक आदि प्रमुख है जिनकी हमने विस्तार से जानकारी प्राप्त की।

भारत मे सामाजिक परिवर्तन परम्परा और आधुनिकता तथा निरन्तरता और परिवर्तन के सहअस्तित्व के संदर्भ मे समझा जा सकता है। अतः भारत मे सामाजिक परिवर्तन वास्तव मे एक बहुत जटिल प्रघटना है। इसके विभिन्न स्वरूप और अभिव्यक्तियां है।

3.9 शब्दावली

सांस्कृतिक वितरण	:	सांस्कृतिक विशेषताओं का एक समूह से अन्य समूह अथवा समाज मे प्रसार होना ।
जातीय समूह	:	ऐसा समूह जो अन्य समूहों से सामाजिक दृष्टि से भिन्न हो और उसने अपनी स्वयं की उपसंस्कृति विकसित कर ली हो तथा उसमे तदीयत्व की भावना हो ।
जजमानी प्रथा	:	जाति आधारित सामाजिक आर्थिक व्यवस्था जिसमें प्रत्येक जाति का निर्धारित व्यवसाय होता है जिसमे उनका एकाधिकार होता है। इसमे प्रत्येक जाति अन्य जातियो पर आश्रित थी।
अनुकूलन	:	अनुकूलन से तात्पर्य उस तरीके से है जिसके द्वारा कोई सामाजिक तथा भौतिक परिवेश से जुड जाता है।

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- बरजर पीटर एल एण्ड बरजर, ब्रीगीटे, सोसियोलाजी : ए बायोग्राफिकल एप्रोच, पेगुइन इण्डिया, 1976
- बोटमोर, टी बी, सोशियोलॉजी एज सोशियल क्रिटिसिजम, जार्ज एसेन एण्ड अनविन लंदन, 1975
- इनकेलेस, एलेक्स, व्हाट इज सोशियोलॉजी :एन इण्ट्रोडक्शन टू द डिसिप्लेन एण्ड प्रोफेशन, प्रिंन्टिस हाल आफ इण्डिया प्रा.लि. नई दिल्ली, 1981
- मैक आइवर, आर एच एण्ड पेज सी एच, सोसायटी द मेकमिलन कम्पनी लंदन 1967
- श्रीनिवास एम.एन. सोशियल चेज इन मार्डन इण्डिया, बर्कले कैलिफोर्निया युनिवर्सिटी प्रेस, बर्कले, 1966
- सिंह योगेन्द्र, एसेज आफ मार्डनाइजेशन इन इण्डिया, मनोहर प्रकाशन नई दिल्ली , 1978

3.11 प्रश्नावली

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. विकास एवं सामाजिक परिवर्तन के मध्य अन्तरसम्बन्ध बताइये।
2. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समझाइये।
3. सामाजिक परिवर्तन के कोई तीन कारण लिखो ।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए ।
2. भारतीय संदर्भ मे सामाजिक परिवर्तन की विवेचना कीजिए।
3. सामाजिक परिवर्तन के कारण के रूप मे संतुलन बनाम संघर्ष के विरोधाभाष को समझाइये।
4. सामाजिक परिवर्तन के मार्ग मे आने वाली बाधाओ की व्याख्या कीजिए।
5. सामाजिक परिवर्तन की प्रकिया के विभिन्न स्पष्टिकरणो की संक्षेप मे विवेचना कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन कुछ निश्चित चरणों से होकर गुजरता है। यह किस उपागम का विचार है।

(अ) धर्मशास्त्रीय (ब) विसरणवादी

(स) विकासवादी (द) भौगोलिक

2. संस्कृतिकरण है

(अ) पश्चिम के समान जीवन पद्धति स्वीकार करना

(ब) धर्म परिवर्तन करना

(स) निम्न जातियों द्वारा द्विज जातियों की जीवन प्रणाली को अपनाना

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. निम्नलिखित कथन में कौनसा कथन गलत है ?

(अ) विकास में परिवर्तन समाविष्ट होता है ।

(ब) प्रारम्भिक समाजों की तुलना में समकालीन समाज में परिवर्तन की गति बहुत अधिक है ।

(स) सामाजिक परिवर्तन प्रौद्योगिकी परिवर्तन से पिछड़ जाता है।

(द) सामाजिक परिवर्तन सदा विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. स
2. द
3. स

खण्ड-1 इकाई 4 - पंचवर्षीय योजनाएं एवं विकास

इकाई की रूप-रेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 नियोजन का अर्थ एवं विशेषताएं

4.3 भारत में आर्थिक नियोजन

4.4 विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएं और उनके उद्देश्य

- 4.4.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना
- 4.4.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना
- 4.4.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना
- 4.4.4 वार्षिक योजनाएं
- 4.4.5 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना
- 4.4.6 पंचम पंचवर्षीय योजना
- 4.4.7 छठी पंचवर्षीय योजना
- 4.4.8 सातवीं पंचवर्षीय योजना
- 4.4.9 आठवीं पंचवर्षीय योजना
- 4.4.10 नवीं पंचवर्षीय योजना
- 4.4.11 दसवीं पंचवर्षीय योजना

4.5 योजनाओं में देश की आर्थिक प्रगति की समीक्षा

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 प्रश्नावली

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

1) विकास नियोजन का अर्थ समझ सकेंगे ।

2) विकास नियोजन की प्रमुख विशेषताएं जान सकेंगे ।

3) भारत में विकास नियोजन की पृष्ठभमि और आवश्यकता से परिचित होंगे ।

4) विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं, उनके दर्शन और उद्देश्यों से परिचित हो सकेंगे ।

5) पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों और लक्ष्यों तथा वास्तविक उपलब्धियों के मध्य अन्तर को जान सकेंगे ।

6) योजनाओं के तहत भारत में हुई प्रगति और विकास को समझ सकेंगे ।

7) उन क्षेत्रों को जान सकेंगे जहाँ योजनाओं के दौरान विशेष सफलता नहीं मिली और जहाँ विशेष प्रयास किये जाने की आवश्यकता है ।

4.1 प्रस्तावना

प्रथम इकाई में हमने जाना कि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था अनेक दुष्चक्रों में फंसी होती है। निर्धनता और पूँजी की कमी इन देशों की प्रमुख विशेषता है। दूसरी इकाई में अध्ययन किए गये सिद्धान्तों में हमने देखा कि चाहे संतुलित विकास नीति अपनाई जाये या असंतुलित, विकासशील देशों को अपने कुचक्र तोड़ने और अर्थव्यवस्था को जड़ता से बाहर निकालने के लिए भारी विनियोग का सहारा लेना आवश्यक है। अतः सीमित पूँजी का समुचित उपयोग कर राष्ट्र को विकास की पटरी पर लाने के लिए सबसे बेहतर तरीका नियोजन पद्धति है। हमने विकासशील देशों की सामाजिक स्थिति के बारे में भी पढ़ा कि वहाँ का समाज रूढ़ीवादी और परम्परागत होता है जिसके चलते उपलब्धि की आकांक्षा, जोखिम की क्षमता, नवप्रर्वतन, आधुनिक जानकारी एवं कौशल जैसे गुणों की कमी देखी जाती है। परिणामतः निजी क्षेत्र में विकास के नेतृत्व की क्षमता नहीं देखी जाती। ऐसे में बाजार तथा कीमत तंत्र पर भरोसा कर विकास अपने आप प्रारम्भ कर द्रुतगति से चलना सम्भव नहीं हो पाता । इसके लिए विभिन्न दिशाओं से एक साथ प्रयास किये जाने की आवश्यकता है जिसमें सरकार की अहम् भूमिका हो। यह सब तथ्य भी 'नियोजन' की आवश्यकता और महत्व को इंगित करते है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था भी अत्यन्त जर्जर अवस्था में थी। अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान और ग्रामीण थी तथा औद्योगिक ढाँचा बिकृत एवं असंतुलित था ऐसे में देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए नियोजन पद्धति का सहारा लिया गया और पंचवर्षीय योजनाओं का सूत्रपात किया गया। वर्तमान में हम अपनी दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) की समाप्ति की कगार पर है।

इस इकाई में आप नियोजन की विस्तार से जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ भारत में पंचवर्षीय योजनाओं की विकास में भूमिका को परख सकेंगे ।

4.2 नियोजन का अर्थ एवं विशेषताएं

आन्दोलन या नियोजन से आशय उस विधि या प्रणाली से है जिसमें किसी अर्थव्यवस्था का संचालन स्वतंत्र रूप से बाजार या कीमत तंत्र द्वारा न होकर सरकार अथवा केन्द्रीय प्राधिकारी द्वारा निर्धारित सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रभावपूर्ण ढंग से योजना के अनुसार होता है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम भावी विकास के आर्थिक,

सामाजिक लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं फिर एक निश्चित समय के भीतर उनकी प्राप्ति हेतु बचत, निवेश, उत्पादन, व्यापार, उपभोग आदि विभिन्न आर्थिक क्रियाओं को समुचित रूप से आयोजन प्राधिकारी द्वारा प्रभावपूर्ण ढंग से संचालित तथा नियमित किया जाता है।

श्री एल. लार्विन के अनुसार, आर्थिक नियोजन से तात्पर्य ''ऐसे आर्थिक संगठन से है जिसमें सभी अलग-अलग लोगों, उद्योगों और औद्योगिक संस्थानों को एक समन्वित इकाई के रूप में संचालित किया जाता है और जिसके द्वारा निश्चित अवधि में जनता की आवश्यकताओं को अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने के लिए सभी उपलब्ध साधनों का नियंत्रित उपयोग होता है ।''

इस प्रकार नियोजन द्वारा अर्थव्यवस्था का सम्पूर्ण सर्वेक्षण कर उसकी क्षमताओं को पहचान कर नियोजन प्राधिकारियों द्वारा विस्तृत नियोजन रूपरेखा का निर्माण किया जाता है जिसमें अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण प्रश्न का निर्णय लिया जाता है कि क्या, कब कितना, कहाँ और कैसे उत्पादन किया जाये तथा उत्पादन का समाज में वितरण किस प्रकार हो। भारतीय योजना आयोग द्वारा प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारूप पत्र में नियोजन को इस प्रकार परिभाषित किया गया कि ''नियोजन अनिवार्य रूप से परिभाषित सामाजिक लक्ष्यों के अनुसार विभिन्न साधनों को अधिकतम सामाजिक लाभ के लिये संगठित करने और उपयोग करने की एक प्रणाली है । नियोजन के दो मुख्य अंग है (अ) लक्ष्यों के लिए अपनाई गयी पद्धतियाँ (ब) प्राप्य साधनों और उनके अनुकूलतम आवण्टन के सम्बन्ध में ज्ञान।''

उपरोक्त सभी परिभाषाओं और विश्लेषणों के आधार पर नियोजन की कुछ सामान्य विशेषताएं सामने आती हैं जो निम्नलिखित हैं :-

- नियोजन आर्थिक संगठन की एक पद्धति है।
- नियोजन में आर्थिक संसाधनों का विवेकपूर्ण आवण्टन किया जाता है।
- नियोजन के उद्देश्य पूर्व निर्धारित और सुविचारित होते हैं ।
- निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति एक पूर्व निर्धारित समय में किये जाने की अपेक्षा की जाती है।
- साधनों का अधिकांशतः नियन्त्रण राज्य का होता है ।
- नियोजित अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय साधनों का तांत्रिक समन्वय होता है।
- नियोजन में साधनों का आवण्टन एवं प्रयोग प्राथमिकता के आधार पर होता है।
- नियोजन का संचालन किसी विभाग या प्राधिकारी द्वारा होता है जो प्राथमिकता, उद्देश्यों का निर्धारण, साधनों की उपलब्धता, उनके मांग एवं पूर्ति के मध्य समन्वय आदि पर विचार कर निर्णय लेता है।
- नियोजन के कशल क्रियान्वयन के लिए जनता का पूर्ण सहयोग आवश्यक है।

4.3 भारत में आर्थिक नियोजन

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही राष्ट्रवादी विचारकों ने देश के आर्थिक विकास के लिए नियोजन पद्धति को अपनाये जाने के पक्ष में विचार प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने उपनिवेशवाद की गहन आर्थिक समीक्षा कर यह निष्कर्ष निकाला कि भारत में आर्थिक पिछड़ेपन व अल्प विकास को नियोजित विकास द्वारा ही दूर किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा 1938 में राष्ट्रीय नियोजन समिति गठित की गयी जिसने नियोजित आर्थिक विकास के संदर्भ में महत्वपूर्ण सिफारिशें दी। इस समिति के अध्यक्ष पंडित जवाहर लाल नेहरू थे। इसी क्रम में 1944-45 में 'बम्बई योजना' प्रकाशित की गयी, जिसे देश के तत्कालीन प्रमुख उद्योगपतियों और पूंजीपतियों ने बनाया था और जिसे 'टाटा-बिड़ला योजना' के नाम से भी जाना जाता है। इस रिपोर्ट ने भी देश के तीव्र विकास के लिए नियोजन पद्धति का समर्थन किया। 1944 में ही देश के विकास के लिए भारतीय श्रम संघ ने एम.एन. राय की प्रेरणा से 'जनता की योजना' प्रस्तुत की। प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक श्रीमन्ना नारायण ने भी 'गांधीवादी योजना' का प्रारूप तैयार किया। यद्यपि आर्थिक नियोजन से सम्बन्धित उपर्युक्त सभी योजनाएं कभी लागू नहीं की जा सकी, किन्तु इन विचारों से स्पष्ट है कि देश में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही आर्थिक नियोजन के पक्ष में एक स्पष्ट और सबल वातावरण बन चुका था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की बागडोर संम्भालने वाले प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू का यह स्पष्ट मत था कि देश के तीव्र विकास के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है और इस हेतु नियोजन ही बेहतर मार्ग हो सकता है। समाजवादी विचारधारा से प्रभावित पं. नेहरू के प्रयासों से 1950 में योजना आयोग का गठन किया गया। इस आयोग का कार्य देश के पूँजीगत, मानवीय और भौतिक संसाधनों की जांच करना और उनसे सर्वाधिक प्रभावपूर्ण व संतुलित उपयोग के लिए योजनाएं तैयार करना रखा गया है। 1951 में योजना आयोग द्वारा प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार किया गया, तब से वर्तमान तक देश में दस पंचवर्षीय योजनाएं लागू की जा चुकी हैं।

स्मरणीय है कि योजना आयोग एक परामर्शदात्री संस्था है। इसके पीछे कोई वैधानिक स्वीकृति नहीं हैं । योजना आयोग द्वारा योजना का प्रारूप तैयार कर राष्ट्रीय विकास परिषद् के सम्मुख रखा जाता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा स्वीकृति मिलने पर ही योजना पर कार्य प्रारम्भ होता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् की अध्यक्षता प्रधानमंत्री करते हैं तथा इसमें कुछ अन्य केन्द्रीय मंत्री, समस्त राज्यों के मुख्यमंत्री, संघीय क्षेत्रों के मुख्य पार्षद, योजना आयोग के उपाध्यक्ष और योजना आयोग के पूर्णकालिक सदस्य शामिल होते हैं ।

4.4 विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएं एवं उनके उद्देश्य

देश में विकास, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता व सामाजिक न्याय के मूलभूत उद्देश्यों के साथ आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया गया। उद्देश्यों के इस विस्तृत ढाँचे तथा फ्रेमवर्क के अर्न्तगत प्रत्येक योजना में नई परिस्थितियां नई सम्भावनाओं के अनुरूप विकास लक्ष्य निर्धारित किये गये। इन उद्देश्यों की पूर्ति पर ही भारत में सामाजिक, आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना निर्भर करती है। अतः यह जानना आवश्यक है कि विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत कौन-कौन से उद्देश्य व लक्ष्य निर्धारित किये गये और व्यवहार में उन्हें कहाँ तक प्राप्त किया जा सका ।

4.4.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56)

प्रथम पंचवर्षीय योजना के मसौदे में स्पष्टतः उद्देश्यों का निर्धारण नहीं किया गया था किन्तु फिर भी योजना के अध्ययन से निम्नलिखित उद्देश्यों का पता चलता है -

(1) देश के विभाजन और द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न आर्थिक असंतुलन को दूर करना ।

(2) संतुलित विकास प्रक्रिया कों एक साथ प्रारम्भ करना ।

इस हेतु आर्थिक आधारभूत संरचना जैसे सड़क निर्माण,रेल के इंजन, सिंचाई व जल विद्युत परियोजनाएं आदि पर बल दिया जाय।

(3) कृषि एवं सिंचाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। कुल प्रस्तावित व्यय का एक चौथाई हिस्सा इस हेतु निर्धारित किया गया। वृहद सिंचाई परियोजनाओं से सम्बद्ध विद्युत शक्ति सृजन को भी प्राथमिकता दी गयी। कुल व्यय का एक चौथाई हिस्सा परिवहन तथा संचार के लिए निर्धारित किया गया ।

(4) सभी प्रशासनिक तथा अन्य सस्थाओं का निर्माण करना जो कि भारत के विकास प्रोग्रामों को लागू करने के लिए आवश्यक है।

योजना का मूल्यांकन :

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि, सिंचाई तथा शक्ति को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गयी थी। इस योजना में यह रणनीति तैयार की गयी थी कि कृषि में विकास सम्भाव्यताओं को बढ़ा कर औद्योगिक विकास के लिए मजबूत आधार तैयार किया जाये। इस हेतु कुल परिव्यय का लगभग 45 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र पर व्यय किया गया। उद्योग को मात्र 4.9 प्रतिशत हिस्सा ही हासिल हो सका। योजना के अन्तर्गत 2,069 करोड़ रूपये के सार्वजनिक व्यय का प्रावधान रखा गया था जिसे बाद में संशोधित कर 2,378 करोड़ रूपये कर दिया गया था किन्तु वास्तविक व्यय 1,960 करोड़ रूपये ही हो पाया। प्रथम योजना अवधि में विनियोग की दर राष्ट्रीय आय की 5 प्रतिशत से बढ़ कर 7 प्रतिशत हो गयी। राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत की वृद्धि दर देखी गयी जबकि लक्ष्य 12 प्रतिशत ही था। प्रति व्यक्ति आय 11

प्रतिशत, उपभोग 9 प्रतिशत बढ़ गया इस प्रकार प्रथम पंचवर्षीय योजना यद्यपि जल्दीबाजी में लागू की गयी थी और योजनाबद्ध विकास का यह प्रथम प्रयास था किन्तु यह अपनी लक्ष्य प्राप्ति में अत्यधिक सफल योजना रही ।

4.4.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61)

प्रथम पंचवर्षीय योजना की आशातीत सफलता से प्रभावित होकर योजनाकारों ने बड़े ही व्यवस्थित तथा सुनियोजित तरीके से द्वितीय पंचवर्षाय योजना का निर्माण किया। इस योजना में निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये ।

1) राष्ट्रीय आय में इतनी अधिक वृद्धि करना कि लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठ सके। इसके लिए 5 वर्षों में राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

2) देश के औद्योगीकरण की गति को तीव्र करना । इसके लिए आधारभूत तथा भारी उद्योगों के विकास को प्राथमिकता देना ।

3) रोजगार के अवसरों का विस्तार करना । श्रम आधिक्य का लाभकारी उपयोग कर बेरोजगारी और अर्धबेरोजगारी की स्थिति को समाप्त करना । योजनावधि में 12 मिलियन व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार दिलाने का लक्ष्य रखा गया ।

4) आय व सम्पत्ति की असमानता को कम करना और आर्थिक शक्ति का समान वितरण करना ।

मूल्यांकन

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 'समाजवादी ढंग से समाज' की स्थापना का सपना संजोया गया था जो 1956 में घोषित औद्योगिक नीति में लक्षित समाजवाद के अनुरूप था। इस योजना में उद्योगों की स्थापना पर अत्यधिक बल दिया गया । इस योजना से भारत में औद्योगीकरण की शुरूआत मानी गयी । इस योजनाकाल में देश में भिलाई, राउरकेला, और दुर्गापुर में तीन लौह-इस्पात कारखाने, चितरंजन में रेल इंजन बनाने के कारखाने का विस्तार तथा रेल के डिब्बे बनाने वाली इण्टीग्रल कोच फैक्ट्री परियोजना शुरू किये गये। योजनाकाल में लौह तथा इस्पात कोयला, उर्वरक, भारी इंन्जीनियरिंग के सामान, रसायन आदि उद्योगों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई ।

द्वितीय योजना में प्रारम्भ में ही देश के समक्ष विदेशी विनिमय का संकट खड़ा हो गया जिस कारण दो वर्ष बाद ही योजना के लक्ष्यों को मुनः निर्धारित किया गया। इस योजना में राष्ट्रीय आय में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 25 प्रतिशत निर्धारित किया गया था। इस दौरान वार्षिक विकास की दर 4.2 प्रतिशत रही किन्तु मुद्रास्फीति की दर तेज रही । कुल मिला कर द्वितीय पंचवर्षीय योजना एक महत्वाकांक्षी योजना थी, किन्तु विपरीत मानसून के चलते कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव, स्पेन संकट से विदेशी सामान की आमद पर रोक और अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में उछाल के चलते यह योजना आंशिक सफलता ही प्राप्त कर सकी ।

4.4.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-66)

एक दशक तक नियोजन का अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् तृतीय पंचवर्षीय योजना में निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये -

1) राष्ट्रीय आय में योजना के पांच वर्षों में 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करना ।

2) खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और कृषि उत्पादन में इतनी वृद्धि करना, जिससे उद्योगों एवं निर्यात की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

3) आधारभूत उद्योगों, जैसे इस्पात, रासायनिक उद्योग, ईंधन व शक्ति का विस्तार करना और मशीन निर्माण की क्षमता स्थापित करना जिससे आगामी लगभग दस वर्षों में देश के स्वयं के साधनों से औद्योगीकरण की आवश्यकताएं पूरी की जा सकें ।

4) देश की मानवीय शक्तियों का अधिकतम उपयोग करना तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना ।

5) अवसर की समानता को अधिकाधिक रूप से बढ़ाना और आय व धन के वितरण की असमानता को कम करना।

उपलब्धियां एवं मूल्यांकन

तृतीय योजना में पुनः कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता दी गयी, क्योंकि यह महसूस किया गया कि आर्थिक संवृद्धि की निम्न दर कृषि उत्पादों की नीची वृद्धि दर का परिणाम है। इस योजना में 8.577 करोड़ रूपये का सार्वजनिक व्यय किया गया। विद्युत क्षेत्र को भी इस योजना में प्राथमिकता दी गयी उस पर कुल व्यय का 14.6 प्रतिशत खर्च किया गया। दो युद्धों (1962 में चीन युद्ध तथा 1965 में पाकिस्तान युद्ध) तथा 1965-66 में अभूतपूर्व अकाल और सूखे के चलते यह योजना अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकी । तृतीय योजना काल में विकास की दर 2.5 प्रतिशत रही जो लक्ष्य के आधे से भी कम थी। औद्योगिक उत्पादन प्रतिवर्ष 9 प्रतिशत से बढ़ा किन्तु कृषि उत्पादन में 1 प्रतिशत की वार्षिक दर से कमी देखी गयी। इस योजना में प्रति व्यक्ति आय लगभग स्थिर रही । निर्यात प्रतिस्थापन पर अत्यधिक जोर दिया गया किन्तु उसकी अवसर लागत को नजरअंदाज कर दिया गया। औद्योगिक का विचार खत्म करने तथा पिछड़े क्षेत्रों में आर्थिक विकास प्रेरित करने के जोश में इस योजना में अकुशल प्लांट को सब्सिडी द्वारा प्रोत्साहित किया गया।

तृतीय योजना अपने किसी भी निर्धारित उद्देश्य और लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकी ।

4.4.4 वार्षिक योजनाएँ (1966-69)

तृतीय पंचवर्षीय योजना की असफलता से फैले निराशाजनक वातावरण में चौथी पंचवर्षीय योजना के स्थान पर तीन वार्षिक योजनाएं चलायी गयीं। इस तीन वर्ष

की अवधि को योजनावकाश के नाम से जाना जाता है। इस दौरान देश की अर्थव्यवस्था जो पहले से ही मंदी के दौर से गुजर रही थी। 1966-67 के अकाल से और अधिक बदहाल हो गयी। कृषि उत्पाद की निम्न मात्रा का प्रतिकूल प्रभाव औद्योगिक क्षेत्र पर भी देखा गया। 1967-68 में कृषि क्षेत्र में सुधार देखा गया जिसके पीछे दो कारण थे- पहला अच्छा मानसून और दूसरा हरित क्रान्ति का प्रादुर्भाव जिसके चलते उच्च उत्पादन देने वाले बीजों और बहु-फसल तकनीक का प्रारम्भ हुआ ।

1.4.5 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74)

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के मसौदे में लगभग उन्हीं उद्देश्यों पर बल दिया गया जो द्वितीय और तृतीय योजनाओं में घोषित किये गये थे किन्तु चतुर्थ योजना में इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक कार्यक्रम तथा नीतियां सुनाई गयी थी । चतुर्थ योजना में निम्न उद्देश्यों पर बल दिया गया -

1) आर्थिक विकास मूल्य स्थिरता के वातावरण में किया जाये ।

2) विदेशी सहायता पर निर्भरता कम करके राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा जाए और विकास के लिए आन्तरिक साधनों का उपयोग किया जाए ।

3) औद्योगिक इकाइयों को देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैलाया जाय ।

4) समाज के अपेक्षाकृत निर्धन, दुर्बल और पिछड़े हुए व्यक्तियों के लिए रोजगार के साधन उत्पन्न किये जायें।

5) एकाधिकार कानून व अन्य उपायों द्वारा आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण कम किया जाय।

6) स्थानीय नियोजन मे पंचायती राज संस्थाओं व सहकारिता का अधिक उपयोग किया जाये ।

7) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की प्रबन्ध-व्यवस्था में सुधार लाया जाये ।

8) निर्णय प्रक्रिया का यथासम्भव विकेन्द्रीकरण किया जाये ।

उपलब्धियाँ एवं मूल्यांकन :

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में इस बात को महसूस किया गया कि केवल सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि तथा पूँजी निर्माण की ऊँची दर जीवन स्तर में सुधार लाने में सक्षम नहीं हैं इस कारण गरीब, पिछड़े तथा समाज के दलित वर्ग पर विशेष ध्यान दिया गया। योजना में कृषि क्षेत्र पर भी विशेष जोर रहा और उस पर कुल सार्वजनिक परिव्यय का 23.3 प्रतिशत व्यय किया गया। वहीं उद्योग, यातायात तथा संचार पर व्यय में कमी की गयी। परिवार कल्याण कार्यक्रम पर इस योजना में विशेष जोर दिया गया । चतुर्थ योजना में विदेशी सहायता में भारी कमी लायी गयी और इसका कुल सार्वजनिक परिव्यय में हिस्सा 12.9 प्रतिशत पर आ गया जो पूर्व योजनाकाल में 28.2 प्रतिशत था। किन्तु इस योजनाकाल में घाटे की वित्त व्यवस्था अपने लक्ष्य से 2.5 गुना अधिक रही। यह योजना भी अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल नहीं रही । योजनाकाल

के अंतिम तीन वर्षों में बांग्लादेश से शरणार्थियों के भारत में आने तथा बाद में भारत-पाक युद्ध से काफी प्रतिकूल प्रभाव आर्थिक प्रगति पर पड़ा । कृषि विकास दर अपने लक्ष्य 5 प्रतिशत प्रति वर्ष की अपेक्षा 2.8 प्रतिशत रहा जिसका एक कारण लगातार दो वर्ष खराब मानसून रहा। औद्योगिक विकास दर भी अपने लक्ष्य 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष से कम 3.9 प्रतिशत प्रति वर्ष रही । इस योजनाकाल में देश ने गम्भीर मुद्रास्फीति का दबाव महसूस किया ।

4.4.6 पंचम पंचवर्षीय योजना (1974-79)

पांचवीं पंचवर्षीय योजना में दो उद्देश्यों का निर्धारण किया गया ।

1) निर्धनता का उन्मूलन

2) आत्मनिर्भरता की प्राप्ति

इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पंचम पंचवर्षीय योजना में ऊँची विकास दर, आय का उचित वितरण व बचत की घरेलू दर में वृद्धि को आवश्यक माना गया।

उपलब्धियाँ एवं मूल्यांकन :

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में मुद्रास्फीति को काबू में रखने और आर्थिक व्यवस्था में स्थिरता लाने की गम्भीर चुनौती थी। इस योजना में जीवन स्तर की गुणवत्ता में सुधार (विशेषतः समाज के हाशिये पर स्थित लोगों) पर अधिक जोर दिया गया। विकास के कई नए आर्थिक और गैर-आर्थिक चरों को शामिल किया गया जैसे पोषण, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन आदि। इस योजनाकाल में उद्योग पर सर्वाधिक परिव्यय आवंटित किया गया जो कुल योजना परिव्यय का 24.3 प्रतिशत रहा जो लक्ष्य 4.4 प्रतिशत से अधिक था । समस्त संसाधनों में विदेशी सहायता का अंश इस योजना के दौरान और कम होकर 7.5 प्रतिशत पर आ गया। कृषि उत्पादन में वार्षिक वृद्धि दर 4 प्रतिशत और उद्योग में 6.2 प्रतिशत रही । इस योजना को नयी जनता सरकार ने एक वर्ष पूर्व ही 31 मार्च 1978 को समाप्त कर दिया ।

4.4.7 छठी पंचवर्षीय योजना : (1980-85)

छठी पंचवर्षीय योजना में निम्न दस उद्देश्य निर्धारित किये गये -

1. अर्थव्यवस्था के विकास की दर में महत्वपूर्ण वृद्धि एवं साधनों के उपयोग की कार्य-कुशलता में वृद्धि और अधिक उत्पादकता ।
2. आर्थिक व टेक्नोलॉजिकल आत्मनिर्भरता की प्राप्ति के लिए आधुनिकीकरण की शक्तियों को सुदृढ़ करना ।
3. निर्धनता और बेरोजगारी के प्रभाव को उत्तरोत्तर कम करना ।
4. ऊर्जा के स्वदेशी साधनों का तीव्र विकास तथा इसके संरक्षण व उपेयोग की कार्यकुशलता पर उचित बल देना ।

5. लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना तथा आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों को न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के माध्यम से लाभ पहुँचाना ।

6. सार्वजनिक नीतियों व सेवाओं में पुनर्वितरण के प्रति झुकाव को सुदृढ़ करना और आय व धन की असमानता को कम करना।

7. विकास में प्रादेशिक असमानता को कम करने के लिए निर्धन वर्ग के पक्ष में नीतियाँ अपनाना ।

8. लघु परिवार के नार्म को ऐच्छिक स्वीकृति के जरिये लागू करना तथा जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रित करने की नीतियों को प्रोत्साहित करना ।

9. विकास के अल्पकालीन व दीर्घकालीन लक्ष्यों में तालमेल स्थापित करना तथा इसके लिए पर्यावरण और परिवेश सम्बन्धी परिसम्पत्तियों के संरक्षण व सुधार को प्रोत्साहित करना ।

10. विकास की प्रक्रिया में सभी प्रकार के लोगों को शामिल करना तथा उचित शिक्षा, संचार व संस्थागत नीतियों के माध्यम से इस कार्य को आगे बढ़ाना।

उपलब्धियाँ एवं मूल्यांकन :

छठी पंचवर्षीय योजना पहले 1978 से 1982 के लिए जनता सरकार द्वारा बनायी गयी थी। इस योजना में परम्परागत नियोजन प्रक्रिया को समाप्त कर पंचवर्षीय योजना में प्रतिवर्ष अवलोकन एवं उसके अनुसार पाई गई त्रुटियों में सुधार के आधार पर नया नियोजन कार्यक्रम बनाया गया । 1980 में पुनः सत्ता में आयी कांग्रेस सरकार ने इस योजना को समाप्त कर नयी पंचवर्षीय योजना प्रस्तुत की । इस योजना में ग्रामीण विकास पर विशेष जोर दिया गया, जिस पर कुल योजना परिव्यय का पिछली योजना के 2 प्रतिशत से बढ़ाकर 5 प्रतिशत हिस्सा निर्धारित किया गया। इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराने, असंगठित क्षेत्र में रोजगार उपलब्ध कराने और लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए क्रमशः एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम संचालित किये गये । छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान आर्थिक विकास की दर 5.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही जो लक्ष्य के अनुरूप थी। शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, परिवार नियोजन, निर्धनता उन्मूलन आदि क्षेत्रों में इस योजनाकाल में उपलब्धियां उल्लेखनीय रही। इस योजना में नियोजन के प्रति नया उत्साह और विश्वास पैदा किया ।

4.4.8 सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

सातवीं पंचवर्षीय योजना रोटी, रोजी और उत्पादकता पर प्रमुखता से ध्यान देकर बनायी गई । इस योजना में निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये :-

1. कृषिगत उत्पादन और विशेषतः खाद्यान्न उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि करना।

इसके लिस सिंचाई की वर्तमान क्षमता का भरपूर उपयोग करने तथा कृषिगत उत्पादन बढ़ाने के लिए आवश्यक औद्योगिक ढाँचा तैयार करने पर विशेष बल दिया जायेगा ।

2. नीची कृषि उत्पादकता वाले प्रदेशों तथा क्षेत्रों पर विशेष रूप से ध्यान देना और ग्रामीण रोजगार व गरीबी दूर करने के विभिन्न कार्यक्रम जारी रखना ।

3. उत्पादन की वर्तमान क्षमता का गहरा उपयोग करना तथा आधुनिकीकरण व पूरक सुविधाएं बढ़ा कर उत्पादन व उत्पादकता में सुधार करना ।

उपलब्धियाँ एवं मूल्यांकन :

सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान विकास की वार्षिक दर 5.9 प्रतिशत रही जो 5 प्रतिशत के लक्ष्य से अधिक थी। योजनाकाल में प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय 3.6 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ी । इस योजना के प्रारम्भिक तीन वर्षों पर सूखे की काली छाया रही फिर भी खाद्यान्न उत्पादन 3.2 प्रतिशत बढ़ा। इस योजना में रोजगार वृद्धि हेतु विशेष कार्यक्रम चलाये गये, जैसे जवाहर रोजगार योजना । जन कल्याण, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, रोजगार आदि क्षेत्र से सम्बन्धित सामाजिक क्षेत्र पर सर्वाधिक सार्वजनिक परिव्यय किया गया जो कुल परिव्यय का 21.6 प्रतिशत था। इस दौरान औद्योगिक उत्पादन की दर 8.7 प्रतिशत प्रति वर्ष रही । इस योजना में ग्रामीण विद्युतीकरण पर भी विशेष ध्यान दिया गया। योजना के अंत तक 81 प्रतिशत गांव विद्युतीकृत हो गये । गांवों में निर्धूम चूल्हों को बढ़ावा देने का भी कार्य किया गया। इस योजनाकाल में देश पर विदेशी कर्ज का बोझ काफी बढ़ गया था और विदेशी मुद्रा भण्डार काफी कम हो गया था।

4.4.9 आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)

आठवीं पंचवर्षीय योजना के निम्न छः उद्देश्य निर्धारित किये गये -

1. रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराना ताकि इस सदी के अंत में पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त की जा सके ।

2. लोगों के सक्रिय सहयोग व प्रेरणाओं तथा हतोत्साहित करने वाले उपायों के द्वारा जनसंख्या की वृद्धि पर रोक लगाना ।

3. प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वभौमिकीकरण करना और 15 से 35 वर्ष के आयु समूह में निरक्षरता को पूर्णतः समाप्त करना ।

4. सुरक्षित पेयजल व प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं को सभी गांवों और सम्पूर्ण जनसंख्या तक पहुँचाना और मैला ढोने की वर्षों पुरानी कुप्रथा को समाप्त करना ।

5. कृषि में विविधता लाना, खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना तथा इसके निर्यात के लिए उत्पादन बढ़ा कर बचतें उत्पन्न करना।

6. इन्फ्रास्ट्रक्चर (ऊर्जा, परिवहन संचार व सिंचाई) को मजबूत करना ताकि सुस्थिर व सुदृढ़ विकास की प्रक्रिया लागू की जा सके।

उपलब्धियाँ एवं मूल्याँकन :

आठवीं पंचवर्षीय योजना उस दौर में लागू की गयी जब देश भुगतान संतुलन के गम्भीर दौर से गुजर रहा था । देश का विदेशी विनिमय कोष बहुत नीचे आ गया था जो केवल दो सप्ताह के आयात की व्यवस्था कर सकता था। ऐसे कठिन समय में सरकार ने नई आर्थिक नीतियों का दौर चालू किया। रूपये के मूल्य का अवमूल्यन किया गया, लाइसेंस राज समाप्त किया गया, व्यापार की बाधाओं को हटाया गया, कर व्यवस्था और वित्तीय क्षेत्र में अनेक सुधार लागू किये गये । इस योजना से भारत में नियोजन अधिकाधिक संकेतात्मक हो गया। सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी आर्थिक और सामाजिक आधारभूत ढाँचे के विकास की होती जा रही है, कृषि, उद्योग व खनन का विकास निजी क्षेत्र के दायरे में आता जा रहा है। इस योजनाकाल में मुद्रा-स्फीति पर नियंत्रण रखते हुए विकास की दर 6.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही जो निर्धारित लक्ष्य 5.6 प्रतिशत से अधिक थी। औद्योगिक विकास की दर भी 7.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही। योजना के अन्तिम वर्षों में मुद्रास्फीति को भी काफी नियन्त्रित कर लिया गया । यद्यपि सामाजिक क्षेत्र में निर्धारित लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा सके फिर भी अन्य क्षेत्रों में योजना की उपलब्धियाँ संतोषजनक रही। समस्त संसाधनों में घाटे की वित्त व्यवस्था का हिस्सा 4.6 प्रतिशत पर आ गया जो पूर्व में 15.8 प्रतिशत था।

4.4.10 नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002)

नवीं पंचवर्षीय योजना में सामाजिक न्याय व समानता के साथ विकास पर बल दिया गया । इसके निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये :-

1. कृषि तथा ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना तथा पर्याप्त मात्रा में उत्पादन रोजगार सृजित करना ताकि निर्धनता दूर की जा सके।
2. स्थिर मूल्यों की स्थिति में विकास की दर को तेज करना ।
3. खाद्य व पोषण की सुरक्षा उपलब्ध कराना ।
4. सुरक्षित पेयजल, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं, सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा, रिहायशी सुविधा व सड़कों की समयबद्ध रूप में सेवायें उपलब्ध कराना।
5. जनसंख्या की वृद्धि दर को नियंत्रित करना ।
6. पर्यावरण की सुरक्षा करना ।
7. महिलाओं, एस.सी./एस.टी. व ओ.बी.सी. तथा अल्पसंख्यकों को विकास के साधन उपलब्ध कराना ।
8. पंचायती राज संस्थाओं, सहकारी संस्थाओं व स्वयं सहायता समूहों को प्रोत्साहन देना ।
9. आत्मनिर्भर विकास के प्रयासों को सुदृढ़ करना ।

उपलब्धियाँ व मूल्यांकन :

जब देखा गया कि आठवीं पंचवर्षीय योजना से अर्थव्यवस्था ने बेहतर परिणाम दिये किन्तु उसके लाभ रिस कर नीचे गरीब और पिछड़े लोगों तक नहीं पहुँचे। इस तथ्य को ध्यान में रखंकर नवीं पंचवर्षीय योजना में गरीब लोगों तक मूलभूत सुविधाएं और रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने पर विशेष जोर दिया गया। इस समय आर्थिक सुधार के मानवीय चेहरे को आवश्यक माना गया । इस योजना में ऊर्जा क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी और उस पर योजना का एक चौथाई हिस्सा (25.9 प्रतिशत) व्यय किया गया । सामाजिक सेवाओं पर भी 1/5 राशि व्यय की गयी। इस योजनाकाल में छोटे, मध्यम और सीमान्त किसानों तथा भूमिहीन श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार पर विशेष ध्यान दिया गया । इस योजना में राज्य के विकास में योगदान को कम करने की अपेक्षा नया रूप प्रदान किया गया । राज्य की भूमिका अधिक पारदर्शी और स्पष्ट बनायी गयी। नवीं योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर 5.5 प्रतिशत रही, घाटे की वित्त व्यवस्था में कमी लायी गयी तथा विदेशों पर भी निर्भरता कम की गयी। औद्योगिक तथा कृषि विकास की दर में योजनाकाल के दौरान भारी उतार-चढ़ाव देखा गया ।परिणामों की दृष्टि से नवीं पंचवर्षीय योजना मिश्रित परिणामदायक रही।

4.4.11 दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007)

दसवीं पंचवर्षीय योजना 2002 से लागू की गयी जो 2007 तक चलेगी। इस योजना के दृष्टिकोण पत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि यह एक 'साधन योजना' न होकर 'सुधार योजना' है। इसका अर्थ यह है कि यह योजना विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में व्यय की राशि पर जोर देने की अपेक्षा उन क्षेत्रों में आवश्यक सुधारों पर अधिक बल देगी ताकि योजना के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। सरकार द्वारा सबल व सक्षम निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने की बात कही गयी लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सरकार का विकास कार्यों में योगदान न्यूनतम कर दिया जायेगा । सरकार आधारभूत ढाँचे में अपनी भूमिका को बढ़ायेगी। दसवीं पंचवर्षीय योजना में प्रति व्यक्ति आय को अगले दस वर्षों में दुगुना किये जाने के लिए विकास की दर का लक्ष्य 8 प्रतिशत प्रस्तावित किया गया। योजना में मानवीय कल्याण पर बल देने की बात कही गयी और इसके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल व मूलभूत साफ-सफाई के विस्तार पर सरकार के विशेष जोर देने की बात को स्वीकार किया गया । वहीं दूर संचार, पावर, बंदरगाह आदि के क्षेत्र में निजी क्षेत्र को बढ़ावा दिये जाने की बात कहीं गयी।

दसवीं योजना में इस योजना और बाद की अवधि के लिए 'मॉनिटरेबल लक्ष्य' प्रस्तावित किये गये हैं जो निम्नांकित हैं -

1. निर्धनता अनुपात को 2007 तक 5 प्रतिशत बिन्दु तथा 2012 तक 15 प्रतिशत बिन्दु तक घटाना ।
2. दसवीं योजना की अवधि में नई श्रमशक्ति को लाभप्रद उच्चस्तरीय रोजगार उपलब्ध कराना।

3. 2003 तक सभी बच्चों को स्कूल भेजना, 2007 तक सभी बच्चे स्कूल में पाँच वर्ष पूरे कर सकें ।

4. 2007 तक साक्षरता व मजदूरी की दरों में लिंग-अन्तराल कम से कम 50 प्रतिशत घटाना।

5. जनसंख्या की दस वर्षीय वृद्धि दर को 1991-2001 में 21.3 प्रतिशत से घटा कर 2001-2011 के बीच 6.2 प्रतिशत पर लाना

6. साक्षरता की दरों को योजनाकाल में 75 प्रतिशत तक बढ़ाना ।

7. शिशु मृत्यु दर (आई.एम.आर.) को वर्ष 2007 तक 45 प्रति हजार जीवित जन्मों तथा 2012 तक 28 प्रति हजार तक लाना ।

8. मातृत्व मृत्यु दर (एम.एम.आर.) को वर्ष 2007 तक 2 प्रति हजार जीवित जन्मों व 2012 तक 1 प्रति हजार तक लाना ।

9. वन विस्तार व वृक्ष वृद्धि करके 2007 तक देश के 25 प्रतिशत क्षेत्रफल को वृक्षों से ढकना।

10) वर्ष 2012 तक पेयजल सुविधा समस्त गाँवों तक पहुँचाना ।

11) वर्ष 2007 तक सभी बड़ी नदियों की सफाई की व्यवस्था करना तथा 2012 तक सभी नोटिफाइड एरिया की सफाई की व्यवस्था करना ।

'उपर्युक्त मानिटरिंग लक्ष्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि ये काफी आकर्षण प्रतीत होते हैं। किन्तु इन्हें प्राप्त करने के लिए आवश्यक इच्छा शक्ति, जन भागीदारी और राजनैतिक वातावरण का अभाव है। अतः इन लक्ष्यों की प्राप्ति संदिग्ध है । योजना में रखी गयी 8 प्रतिशत की विकास की दर प्राप्त करना भी कठिन कार्य है। योजना की उपलब्धि और उसका मूल्यांकन योजना की समाप्ति पर ही सम्भव है।

4.5 योजनाओं में आर्थिक विकास की समीक्षा

समस्त पंचवर्षीय योजनाओं के विशलेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि योजनाओं के दौरान देश ने आर्थिक सामाजिक विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की । स्वतंत्रता से पूर्व देश की अर्थव्यवस्था जड़ एवं गतिहीन थी जिसे योजनाकाल के दौरान भूमण्डलीकरण के उस युग में प्रतियोगी अर्थव्यवस्था बना दिया गया । योजनाओं के दौरान देश ने कृषिगत उत्पादन में वृद्धि कर खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त की। देश में उद्योगों में विविधता आई और उनका तेजी से विस्तार हुआ । सामाजिक क्षेत्र में हमारी साक्षरता दर बढ़कर 2001 में 65.38 प्रतिशत हो गयी । जीवन की औसत आयु जो 1950 में 32 वर्ष थी 2000 में बढ़ कर 63 वर्ष तक पहुँच गयी। इस प्रकार देश में योजनाकाल में सभी क्षेत्रों में प्रगति देखी गयी।

इन उपलब्धियों के बावजूद सम्पूर्ण योजनाकाल में अनेक खामियाँ भी देखी गयी। इस दौरान राष्ट्रीय आय में 3.9 प्रतिशत की सालाना वृद्धि हुई जबकि

जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2.2 प्रतिशत से अधिक रही। ऐसे में प्रति व्यक्ति आय में लगभग 1.7 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर देखी गयी जिसे संतोषजनक नहीं माना जा सकता। योजनाओं की सम्पूर्ण अवधि मे देश की मुद्रास्फीति से पीड़ित रहा जिसका सर्वाधिक विपरीत प्रभाव गरीब और पिछड़े वर्ग पर पड़ा । कृषि के क्षेत्र में भी व्यापक असंतुलन देखे गये । हरति क्रान्ति ने गेहूँ का उत्पादन तो बढ़ाया लेकिन दालों और व्यवसायिक फसलों जैसे कपास, तिलहन, आदि का उत्पादन अत्यधिक धीमी गति से बढ़ा। कृषि विकास हेतु आवश्यक भूमि सुधारों की प्रगति भी काफी असंतोषजनक रही। लगभग सभी योजनाओं में समाजवादी लक्ष्य-आय की असमानता कम करने को स्वीकार किये जाने के बावजूद देश में असमानता कम होने की अपेक्षा बढ़ी है। निर्धनता, काली मुद्रा का प्रसार , अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधायें, आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण आदि इस बात को व्यक्त करते हैं कि विकास की राह में हमें अभी और बहुत दूर जाना है।

4.6 सारांश

विकासशील देशों की आर्थिक, सामाजिक दशा को ध्यान में रखते हुये आर्थिक नियोजन विकास का सर्वोत्तम मार्ग है। नियोजन के द्वारा ये देश अपने सीमित संसाधनों का कुशलता के साथ और बेहतर तरीके से उपयोग कर सकते हैं। नियोजन में विकास को बाजार के भरोसे छोड़ने की अपेक्षा निर्देशित और योजनाबद्ध तरीके से किया जाता है। भारत में स्वतंत्रता से पूर्व ही नियोजित विकास के पक्ष में सहमति बननी शुरू हो गयी थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में नियोजित विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी। योजना की इस सम्पूर्ण अवधि में देश को अनेक खट्टे मीठे अनुभव प्राप्त हुए । देश ने आर्थिक सामाजिक क्षेत्र में अनेक उपलब्धियाँ हासिल की तो कुछ क्षेत्र में व्यापक कमजोरियां उजागर हुई । इन सबके बावजूद देश में नियोजित विकास के प्रति विश्वास बना रहा। 1991 से शुरू हुये आर्थिक उदारीकरण के दौर में नियोजन के स्वरूप में भी बदलाव आया। भूमण्डलीकरण के युग में भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ने तथा आर्थिक सुधारों और भूमण्डलीकरण के लाभ तक आम जनता की पहुँच बढ़ाने में नियोजन महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

4.7 शब्दावली

घाटे की वित्त व्यवस्था : जब कुल सरकारी व्यय कुल आय से अधिक होता है तो घाटे की वित्त व्यवस्था की जाती है, इसके लिए केन्द्रीय सरकार भारतीय रिजर्व बैंक के पास पड़ी नकद बकाया राशियों का प्रयोग कर सकती है, अथवा रिजर्व बैंक से उधार ले सकती है।

मुद्रास्फीतिः सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि जारी रहने की दशा जिसमें मुद्रा का मूल्य घटता चला जाता है।

समाजवाद : अर्थव्यवस्था का एक प्रकार जिसमें उत्पादन के समस्त साधनों पर सारे

समाज का अधिकार होता है और इनका प्रयोग सार्वजनिक हित में किया जाता है उत्पादन सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णय जनता की प्रतिनिधि सरकार द्वारा लिये जाते हैं।

भुगतान शेष :- यह एक ऐसा लेखा होता है जिसमें एक देश के अन्य देशों के साथ होने वाले सभी आर्थिक लेन-देन का उल्लेख होता है। इस लेखे में दो ओर प्रविष्टियाँ की जाती हैं - एक प्राप्ति की जिसमें किसी देश के निर्यात मात्र, सेवायें और पूँजी प्राप्तियों की प्रविष्टी होती है दूसरा, भुगतान अथवा देयता जिसमें आयातित माल, सेवाओं और विदेशियों को अन्तरित की गयी पूँजी की प्रविष्टियाँ होती है।

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- दत्त आर, के पी एम सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चांद एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली, 2003
- मिश्रा, एस.के,, पुरी वी.के., इण्डियन इकॉनामी - इट्स डेवलपमेन्ट एक्सपीरिएन्स, हिमालया प्रकाशन हाउस, मुम्बई, 2001
- भारत सरकार, आर्थिक सर्वे (वार्षिक), आर्थिक डिवीजन, वित्त मंत्रालय, नई दिल्ली।
- सुखमय चक्रवर्ती, डेवलपमेन्ट प्लानिंग, क्लेरडॉन प्रेस आक्सफोर्ड, 1987
- योजना आयोग (1999) नवीं पंचवर्षीय योजना, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना आयोग (2001) दसवीं पंचवर्षीय योजना, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- नाथूरामका लक्ष्मीनारायण, भारतीय अर्थव्यवस्था, कालेज बुक हाउस, जयपुर, 2003

4.9 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नियोजन से क्या तात्पर्य है?
2. नवीं पंचवर्षीय योजना की प्रमुख उपलब्धियाँ बताइये ।
3. द्वितीय योजना में समाजवादी ढंग के समाज की स्थापना के लक्ष्य को समझाइये ।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. नियोजन की सम्पूर्ण अवधि के दौरान देश के विकास की विवेचना कीजिए।
2. दसवीं पंचवर्षीय योजना में निर्धारित मानिटरिंग लक्ष्यों की व्याख्या कीजिए।
3. विकास उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नियोजन क्यों आवश्यक है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. योजना आयोग हैं

   (अ) संवैधानिक संस्था (ब) परामर्शदात्री संस्था

   (स) निर्णयात्मक संस्था (द) इनमें से कोई नहीं

2. भारत में नियोजन की मूलभूत नीति निम्नलिखित उद्देश्य को प्राप्त करने में सर्वाधिक विफल रही-

   (अ) रोजगार के अवसरों में वृद्धि (ब) उत्पादन में वृद्धि

   (स) ग्रामीण विकास (द) आर्थिक समानता

3. भारतीय नियोजन में पहला योजनाअवकाश हुआ ?

   (अ) 1966-69 (ब) 1955-56

   (स) 1980-81 (द) 1990-92

4. नवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि है -

   (अ) 1990-1995 (ब) 1992-1997

   (स) 1997-2002 (द) 1998-2003

5. भारत में पाँचवी पंचवर्षीय योजना को स्वीकृत करने वाली सर्वोच्च संस्था है-

   (अ) योजना आयोग (ब) वित्त आयोग

   (स) संसद (द) राष्ट्रीय विकास परिषद

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (ब)
2. (द)
3. (अ)
4. (स)
5. (द)

इकाई 5 - परम्परागत माध्यम एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 परम्परागत माध्यमों का अर्थ

5.3 परम्परागत माध्यमों की विशेषता

5.4 विविध परम्परागत माध्यम

5.5 वर्तमान समय में परम्परागत माध्यमों का स्वरूप

5.6 परम्परागत माध्यमों पर आधुनिक मीडिया का प्रभाव

5.7 परम्परागत माध्यम एवं विकास

5.8 उपसंहार

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.10 पारिभाषिक शब्दावली

5.11 प्रश्न

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे–

(i) परम्परागत माध्यमों का परिचय तथा रूप-स्वरूप।

(ii) भारत में प्रचलित प्रमुख परम्परागत माध्यम।

(iii) परम्परागत माध्यमों की वर्तमान स्थिति।

(vi) परम्परागत माध्यमों पर मीडिया का प्रभाव।

(vi) विकास में परम्परागत माध्यमों की उपयोगिता।

(vi) विकास में परम्परागत माध्यमों का प्रभावी उपयोग।

5.1 प्रस्तावना

परम्परागत माध्यमों की आम आदमी में पैठ और प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता। अपनी सरसता, जीवन्तता और जमीन से जुड़ाव के चलते परम्परागत माध्यमों को समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। परम्परागत संचार की विविध विधाएँ सदियों से समृद्ध हुई हैं। लोक की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति इन्हीं माध्यमों से प्रतिध्वनित होती

है। परम्परागत माध्यम लोगों की भावनाओं को सहजता से उद्वेलित करने की सामर्थ्य रखते हैं।

भारत में अभी भी परम्परागत माध्यम प्रभावी तथा लोकप्रिय हैं। मनोरंजन के अतिरिक्त इनकी सामाजिक, सांस्कृतिक उपयोगिता भी है। समाज पर इनकी गहरी पकड़ और लोक से जुड़ाव के चलते इन माध्यमों को नकारा नहीं जा सकता। यही कारण है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा न्यू मीडिया के वर्चस्व तथा संचार और सूचना प्रौद्योगिकी की व्यापकता के बावजूद पारम्परिक माध्यम न केवल जीवित हैं वरन् उनकी सकारात्मक सक्रियता का विविध उद्देश्यों की पूर्ति में सहयोग भी मिल रहा है।

विकास में जनमाध्यमों के उपयोग और नियोजन में परम्परागत माध्यमों को विस्मृत नहीं किया जा सकता। जनसंख्या के जिस हिस्से तक विकास संदेशों को प्रभावी रूप से पहुँचाना है तथा जनमत को उत्प्रेरित करना है उनका विश्वास तथा अपनत्व परम्परागत संचार माध्यमों को हासिल है। वस्तुतः अनेक मामलों में तो जहाँ संचार के आधुनिक माध्यमों की सीमा समाप्त होती है और उनकी सीमितता उजागर होती है वहीं से परम्परागत माध्यमों का प्रभाव आरम्भ होता है। अभी भी ये माध्यम समाज के अन्तिम आदमी तक पहुँचने तथा उसे संदेशों को स्वीकार कराने की दृष्टि स सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। आवश्यकता है केवल इन माध्यमों की ताकत को पहचानने की।

5.2 परम्परागत माध्यमों का अर्थ

परम्परागत संचार माध्यम संदेशों से संप्रेषण का वह माध्यम है जो आधुनिक नहीं हैं। यहाँ सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह सामने आता है कि आधुनिक तथा परम्परागत का निर्धारण कैसे हो? आधुनिक शब्द का अर्थ वर्तमान काल से अथवा उपलब्ध नवीन प्रौद्योगिकी/तकनीक के प्रयोग से है। इस दृष्टि से आधुनिक जनसंचार माध्यम वह माध्यम है जो वर्तमान समय में उपलब्ध नवीनतम तकनीकों या प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हैं। इसके विपरीत परम्परागत माध्यम वह माध्यम है जो पारम्परिक या पुरानी तकनीकों पर आधारित हैं। इनमें वर्तमान समय के अनुरूप परिवर्तन अत्यन्त सीमित किया जाता है।

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि परम्परागत संचार माध्यम वह संचार माध्यम हैं जो मनुष्य की चेतना के विकास के साथ सहज-स्फूर्त ढंग से विकसित होते हैं तथा व्यक्ति की सकारात्मकता को सामाजिक समष्टि का अंग बनाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो परम्परागत संचार माध्यम वह माध्यम है जो किसी समाज की भावनाओं को, अभिव्यक्तियों को उसकी अपनी भाषा व बोली में लोगों के बीच संप्रेषित करने का कार्य करते हैं। परम्परागत माध्यमों को लोक माध्यम भी कहा जाता है। लोकमाध्यम के रूप में यह परिवेश की उपज होते हैं तथा सामाजिक स्वीकृति के साथ इनका विकास एवं स्वरूप निर्धारण होता है।

परम्परागत माध्यम व्यक्ति की परस्पर संवाद की प्रक्रिया का विस्तार होते हैं। जब सामाजिक रूप से स्वीकृत संदेशों को अनेक लोगों या समाज के सदस्यों के बीच

संप्रेषित करने का कार्य माध्यमों द्वारा किया जाता है तो परम्परागत माध्यमों का प्रादुर्भाव होता है। जैसे लोकगीत जनता के बीच समान रूप से लोकप्रिय होते हैं। इनके वर्ण्य विषय, भाषा, शैली आदि सर्वग्राह्य होती है तभी जनमाध्यम के रूप में इन्हें स्वीकृति मिल पाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में पुत्र के जन्म के बाद फूल की थाली बजाना एक सामान्य रिवाज है। थाली बजाने की यह प्रक्रिया एक सर्वमान्य संदेश को स्थापित करती हैं।

5.3 परम्परागत माध्यमों की विशेषता

लोकभावनाओ की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति परम्परागत संचार के माध्यम से ही होती है। परम्परागत संचार की समस्त अभिव्यक्तियाँ लोगों को अपनाने का अनूठा एहसास कराती हैं। इनकी उत्पत्ति एवं विकास परिवेश की उपज होता है। परम्परागत माध्यम स्थानीय संस्कृति से विकसित होते हैं तथा क्षेत्रीय बोली में इनकी प्रस्तुतियाँ होती हैं।

हम संक्षेप में बिन्दुवार परम्परागत माध्यमों की विशेषता को निम्नांकित प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं–

(i) परम्परागत माध्यमों में प्रयुक्त विषय-वस्तु उस समाज और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसकी वे उपज होते हैं। वर्तमान समय में ही आधुनिक विषय-वस्तु का समावेश इस तथ्य को ध्यान में रखकर किया जाता है कि स्थानीय समाज में वह विषय-वस्तु स्वीकार्य, प्रचलित या उपयोगी हो।

(ii) परम्परागत माध्यमों के पात्र भी स्थानीय समाज में परिचित होते हैं।

(iii) परम्परागत माध्यमों में संदेशों का आदान-प्रदान तीव्रता से नहीं होता बल्कि शनैः-शनैः यह लोगों को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार इनकी सूचनात्मक भूमिका सीमित होती हैं लेकिन भावनात्मक, परिवर्तन मूलक तथा स्वीकार्यता मूलक भूमिका महत्त्वपूर्ण होती हैं।

(iv) परम्परागत माध्यम जन सहभागिता को प्रोत्साहन देते हैं। इनकी सफलता का कारण यही है कि ज्यादा से ज्यादा लोग इन्हें सहज स्वीकार करते हैं। इस प्रकार माध्यम और उसके श्रोताओं के मध्य होने वाला तादात्मीकरण इनमें सर्वाधिक होता है। ये माध्यम बाहर से थोपे हुए या दूर नियन्त्रित नहीं लगते।

(v) परम्परागत तथा ग्रामीण समाजों में लोक माध्यमों की स्वीकार्यता होती है। भारत में शास्त्रीय नृत्य का प्रशिक्षण घर-घर में लड़कियों को दिया जाता है। परम्परावादी परिवारों में जहाँ टीवी, सिनेमा आदि जनमाध्यम प्रतिबन्धित हैं वहाँ भी लोग अपने बच्चों, विशेषरूप से लड़कियों को नृत्य तथा गायन की शिक्षा अवश्य उपलब्ध कराते हैं।

(vi) परम्परागत माध्यम अनेक लोक व्यवहारों तथा मान्यताओं के वाहक होते हैं। उनकी प्रस्तुतियों में समाहित परम्परागत मूल्य बड़ी ही आसानी से पूरे समाज तक संचारित हो जाते हैं तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक उन मूल्यों का

परिचय इनकी सहायता से रोचक तरीके से हो जाता है।

(vii) कुछ परम्परागत माध्यम लोक-सम्मिलन (Public meeting and gathering) का कार्य भी करते हैं। इससे आपस में विचार-विनिमय (Exchange of ideas) तथा मेल-जोल, एक दूसरे से परिचित होने की प्रक्रिया पूर्ण होती हैं। मेले, उत्सव, तीज-त्यौहार आदि यह कार्य प्रभावशाली तरीके से करते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में होली के दिन लोग फाग खेलते हुए बिना जातीय तथा व्यक्तिगत दुर्भावना के प्रत्येक दरवाजे पर इकट्ठा होते हैं। इससे जातीय तथा सामाजिक समरसता को बढ़ावा मिलता है। इसी प्रकार कुँभ एवं अर्धकुम्भ जैसे आयोजनों में देशभर से लाखों लोक एकत्र होते हैं तथा सामाजिक व वैचारिक एकता का दृश्य उपस्थित करते हैं।

(viii) परम्परागत माध्यमों में प्रकृति गहराई से उपस्थित होती हैं। हमारे लोकगीत, नृत्य, नाट्य प्रस्तुतियाँ, संस्कार, मेले, उत्सव, तीज-त्योहार प्रकृति से लोकमाध्यमों के जुड़ाव को गहराई से प्रतिबिम्बित करते हैं। वन पूजन, वृक्षपूजन, नदी पूजन, खेत पूजन आदि प्रकृति से लोकमाध्यमों के जुड़ाव के कुछ उदाहरण हैं। बिना नदी पूजन के हिन्दुओं के विवाह संस्कार पूर्ण नहीं होते।

वर्षा व ऋतु गीतों के माध्यम से प्रकृति की गहरी प्रस्तुतियाँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। इस प्रकार परम्परागत माध्यम पर्यावरण से मनुष्य के जुड़ाव को और मजबूती प्रदान करते हैं।

5.4 विविध परम्परागत माध्यम

परम्परागत माध्यमों के अनेक रूप प्रचलन में हैं। गायन, वादन, नाट्य, रचनात्मक कलाएँ, लोक सम्मिलन, संस्कार एवं अनुष्ठान आदि कई रूपों में परम्परागत माध्यम प्रचलन में हैं।

गायन के विविध रूप देश भर में प्रचलित हैं। गायन को शास्त्रीय गायन, सुगम संगीत, लोकगीत, सूफी गायन आदि कई रूपों में प्रस्तुत किया जाता है। भारत में गायन लोकजीवन से गहराई से जुड़ा है। हमारे विविध जीवन दृश्यों-जन्म, विवाह, मृत्यु, सफलता-असफलता, व्यापार, निर्माण आदि का भी वर्णन यह गीत करते हैं। सहज मानवीय भावों-हर्ष, विषाद, शोक, उल्लास, करुणा, वात्सल्य, जुगुप्सा, विभत्स, श्रृंगार आदि का भी सुन्दर रूप इसमें उपस्थित होता है। भारत में विविध भागों में अनेक गीत व गायन शैलियाँ प्रचलित हैं। इनमें श्रेणीवार कुछ प्रमुख निम्नांकित हैं–

शास्त्रीय–(कुमार गन्धर्व ने शास्त्रीय गीतों को लोकगीतों का ही परिमार्ज़ित रूप माना है।)

1. शास्त्रीय गायन (हिन्दुस्तानी व कर्नाटकी)

2. ध्रुपद

उपशास्त्रीय व सुगम–

1. ठुमरी
2. दादरा
3. गजल
4. कव्वाली

लोकगीत–

1. कजरी (पूर्वी उत्तर प्रदेश)
2. बिरहा (पूर्वी उत्तर प्रदेश)
3. पण्डवानी (मध्य प्रदेश/छत्तीसगढ़)
4. बाथरी (बंजारा गीत)
5. आल्हा (उ.प्र./मध्यप्रदेश)
6. जट्ट-जट्टिन (हरियाणा/पंजाब)
7. डोंगरी (जम्मू-कश्मीर)
8. छठगीत (बिहार)
9. बंशी (प. बंगाल)
10. धमार (उत्तर भारत में प्रचलित वैष्णव उत्सव गीत)
11. टप्पा (पंजाब के पहाणी भाग से उत्पन्न व तदन्तर अवध में प्रचलित)

नृत्य प्रचलित तथा लोकप्रिय परम्परागत माध्यम है। भारत में नृत्य के शास्त्रीय तथा लोकरूप दोनों प्रचलन में हैं।

भारत के प्रमुख शास्त्रीय नृत्य निम्नांकित हैं–

1. **भरतनाट्यम**–तमिलनाडु में विकसित। प्रारम्भ में इसे 'आट्टम' तथा 'सदिर' नाम से जाना जाता था।
2. **कुचिपुड़ी**–आन्ध्र प्रदेश के कुचेलपुरम ग्राम से आरम्भ। प्रारम्भ में इसे पुरुषों द्वारा प्रस्तुत किया जाता था।
3. ओडिसी–यह मूल रूप से उड़ीसा सम्बन्धित हैं। इसमें पात्र तरह-तरह के पौराणिक पात्रों में मुखौटे धारण करते हैं।
4. कथकली–यह केरल की सर्वाधिक परिष्कृत, वैज्ञानिक एवं विस्तृत निमयावली वाली नृत्य शैली है।
5. कत्थक–उत्तर भारत में उत्पन्न यह लय प्रधान नृत्य शैली है। इसे मध्यकाल में मुगल शासकों व अवध रियासत का पूरा संरक्षण मिला।
6. मणिपुरी–मणिपुर राज्य में मध्यकाल में विकसित नृत्य शैली। इसकी प्रस्तुतियों

में भक्ति तथा त्याग पर विशेष बल दिया जाता है।

7. मोहिनी अट्टम–यह केरल राज्य में प्रचलित देवदासी परम्परा का नृत्य है।

8. चाक्यारकूंतु–केरल राज्य में आर्यों द्वारा प्रचलित नृत्य।

9. ओट्टननुल्ललू–यह एकांकी नृत्य शैली है जो केरल में प्रचलित हैं।

10. कृष्णनआट्टम–केरल में प्रचलित नृत्य-शैली जिसमें लगातार आठ रातों तक भगवान कृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र का वर्णन होता है।

11. कूडियाट्टम–कुछ दिनों से लेकर कई सप्ताह तक चलने वाली केरल की नृत्य नाटिका।

12. यक्षगान–कर्नाटक में प्रचलित यह मूलतः ग्रामीण प्रकृति का नृत्य व नाट्य मिश्रण हैं।

भारत के विविध प्रदेशों में प्रचलित कुछ प्रमुख लोक नृत्य–

असम–बिहू, नागानृत्य, नट पूजा, कलि गोपाल, खेल गोपाल, महारास, बोईसाजू, झुमुरा, बुगुरुम्बा, बिहुआ, अंकितानाट, छोब्जानाई, तबल चौगंबी आदि।

अरुणाचल प्रदेश–मुखौटा नृत्य, युद्ध नृत्य आदि।

आन्ध्र प्रदेश–मरदाला, बतकम्मा, कुम्भी, सिद्धि, मधुरी, घण्टामर्दाला, छड़ी आदि।

झारखण्ड/बिहार–छऊ, सरहुल, करमा, जाया, मूका, घुमकुड़िया, कीर्तनियाँ, विदायत, वैमा, जदूर, पवरिया, सोहराई, माघा, जातरा, चेकवा, झीका, डांगा, विदेशिया, बरबोबरवाहन, जट-जटनि, सुझरी, माधी आदि।

गोवा–झागोर, खोल, दकनी आदि।

गुजरात–गरबा, डांडिया रास, गणपति भजन, लास्या, झकोलिया, पणिहारी, रासलीला, दीपक नृत्य, टिप्पनी, भवई आदि।

हरियाणा/पंजाब–भांगड़ा, गिद्धा, कीकली, डफ, धमान, सांग आदि।

हिमाचल प्रदेश–छारबा, छपेली, चम्बा, महाथू, थाली, झैंता, जद्दा, सांगला, डागी, डफ, डंडानाच, धमान आदि।

कर्नाटक–भूतकोला, कर्गा, कुनीता, वीरंगास्से आदि।

केरल–ओट्टम, कुटीओट्टम, कालीअट्टम, कैकोट्टिकलि, थुलाल, भद्रकषि, ओट्टमतुल्लन, टप्पातिकाली, पादयानी आदि।

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़–गौडो, टपाली, नवरानी, दिवारी, टीना, चैत गोन्यो, बिल्मा, हुल्को, सुआ, मांदरी, छेरिया, भागोरिया, डागला, पाली, छेरुदन्ना सीगमाड़ियाँ आदि।

महाराष्ट्र–लावनी, मौजी, लेजम, गौरिचा, गफा, ललिता, दहिकला, तमाशा, कोली, बोहदा, पोवाड़ा आदि।

मणिपुर–राखाल, महारास, वसन्त रास, लाई छरीबा, नटरास, थांग्रा, पुंगचोलोन, की तलम् आदि।

मेघालय–बांग्ला।

मिजोरम–चेरोकान, पाखुपिला आदि।

नागालैंड–खैवा, युद्ध नृत्य, नूरालिम, लिम, कुमी नागा, चोंग आदि।

उड़ीसा–छऊ, डंडानार, सवारी, अया, संचार, गरुण वाहन, जदूर मुनारी, चंगुनार, घूमरा, पैका आदि।

राजस्थान–घापाल, घूमर, बगारिया, शंकरिया, जिन्दाद, गणगौर, पनिछारी, गोपिका लीला, डांडिया, कृष्ण नृत्य, चरी, चंग, फूंदी, गीदड़, कामड़ आदि।

तमिलनाडु–पिन्नल कोलाट्टम, कावड़ी लोकाट्टम, कड़ागम, कुम्भी आदि।

उत्तरप्रदेश–रासलीला, नौटंकी, कजरी, झूला, छपेली, कुमायूँ, चाचरी, जांगर, थाली, जैता, झोरा, जद्दा, दीवाली नृत्य आदि।

जम्मू-कश्मीर–राउफ, हिकात, मंदजास आदि।

लक्षद्वीप–परिचाकाली।

पश्चिम बंगाल–गंभीरा, कीर्तन, मरसिया, ढाली, रामवेश, काठी, जात्रा, बाउल आदि।

विश्व के प्रमुख लोकनृत्य

नृत्य	उद्गम स्थल
टैंगो	अर्जेन्टीना
सांवा	ब्राजील
चा-चा	कैरेबियन द्वीप समूह
कोंगा, माम्बो, रुम्बा	क्यूबा
होर्नपाइप, मॉरिसडांस	इंग्लैण्ड
कौन-कौन, मिनुयेर	फ्रांस
वाल्ज	जर्मनी
जिग, फेडिंग	आयरलैंड
छोरा	इजरायल
टारनरेला	इटली
पोल्का, शोरिश	मध्य यूरोपीय देश
छाईलैंड क्लिंग, जिग	स्कॉटलैंड
वोलरो, फंडानगो, फ्लेमेन्को	स्पेन
फॉस्क्सट्रार, चार्ल्सटन, लिंडि हाप	संयुक्त राज्य अमेरिका

नृत्य तथा गायन के अतिरिक्त अनेक वाद्य-यन्त्र तथा विधाएँ भी लोकमाध्यम के रूप में रेखांकित की जातो हैं। इनमें कोलु या डांडिया (गुजरात एवं दक्षिण भारत), सोंगकोंग (पूर्वोत्तर भारत में नागा जनजाति का वाद्य), टक्का (असम), चिमटा (उ0भारत), मृदंगम (द0भारत), पखावज (उ0भारत), खोल (पं0 बंगाल), नगाड़ा, शहनाई, तबला-डुग्गी, तुरही, सिंधा, बॉसुरी, बीन, हारमोनियम, तानपूरा, वीणा, सितार, सारंगी, सरोह, संतुर आदि भारत के प्रमुख वाद्य हैं। इसके अतिरिक्त बैगपाइप (स्कॉटलैंड), स्पाइक फिडेल (थाईलैंड), मारीम्बा (ग्वारेमाला), गुसला (युगोस्लाव क्षेत्र) स्टील ड्रम्स (पश्चिमी द्वीप समूह), ट्रामपोंग (बाली-इण्डोनेशिया), बालालैका (रुस), एल्पेनहार्न (स्विट्जरलैंड), सिम्बालोन (हंगरी) आदि विश्व के विविध भागों में प्रचलित प्रमुख वाद्ययन्त्र हैं।

नाट्यकलाएँ भी परम्परागत माध्यम के रूप में उद्देश्यपूर्ण संदेशों की स्थापना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रही हैं। विश्व में नाट्यप्रस्तुतियों की परम्परा हर देश में पायी जाती हैं। भारत में भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के रूप में एक शास्त्रीय ग्रंथ उपलब्ध हैं। वस्तुतः देश की अनेक नृत्य प्रस्तुतियां नाट्य कथानकों के साथ ही प्रस्तुत की जाती हैं जिनमें मूलतः पौराणिक व सामाजिक विषयों का समावेश होता है। नुक्कड़ नाटक एक लोकप्रिय 'वैकल्पिक मीडिया' के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं।

चित्रकला तथा मूर्तिकला को भी परम्परागत माध्यमों के एक प्रकार के रूप में स्पष्ट किया जाता है। चित्रों के माध्यम से प्राचीनकाल से ही मनुष्य ने अपने भावों तथा विचारों को अभिव्यक्ति दी है। भारत के गुफाचित्र इसके सशक्त प्रतीक हैं। भारत के कुछ प्रसिद्ध गुफाचित्र भीमबेटका, आदमगढ़ एवं महादेव (मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़), सित्तनपासल (तंजौर, तमिलनाडु), बादाकी (महाराष्ट्र), एलीफैंटा (मुम्बई), बाघ (घार, मध्यप्रदेश) अजन्ता-एलोरा (औरंगाबाद, महाराष्ट्र) आदि प्रमुख हैं। भारत में चित्रकला की अनेक शैलियाँ भी सदियों से प्रचलन में हैं। जैन शैली, पाल शैली, अपभ्रंश शैली, मुगल शैली, पटना या कम्पनी शैली, दक्कन शैली, गुजरात शैली, मधुबनी शैली, राजपूत शैली (मेवाड़, जयपुर, बीकानेर, मालवा, किशनगढ़, बूँदी, अलवर शैली), पहाड़ी शैली (बसोहली, शैली, गुलेरी शैली, गढ़वाल, जम्मू-कांगड़ा शैली)।

नाथ द्वारा शैली, सिक्ख शैली–प्रमुख चित्र शैलियाँ हैं। मूर्तिकला के उदाहरण भी सैंधव सभ्यता काल से ही पाये जाते हैं। गांधार व मथुरा प्रमुख मूर्तिकला शैलियाँ हैं।

स्थापत्य कला ने भी अनेक संदेशों की स्थापना की है। भारत में स्थापत्य कला विविध सांस्कृतिक तत्त्वों में मेल-मिलाप को भी प्रतिबिम्बित करती हैं। मन्दिर निर्माण में यह उत्तर दक्षिण मेल (बेसर शैली) व अन्य स्थापत्य में हिन्दू-मुस्लिम मेल को स्पष्ट करती हैं।

मेले, तीज-त्योहार भी परम्परागत जनमाध्यमों के रूप में निरूपित किये जाते हैं। भारत में 'लख्खी मेले' प्राचीन समय से ही लगते रहे हैं। ये मेले सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक आदान-प्रदान का प्रमुख अवसर होते हैं। विविध क्षेत्रों के लोगों के मध्य इससे मेल-मिलाप भी स्थापित होता है। भारत में दुनिया का सबसे बड़ा मेला महाकुम्भ

प्रत्येक 12 वर्षों के बाद लगता है जिसमें दुनिया भर से करोड़ों लोग शामिल होते हैं। अन्य बहुचर्चित मेलों में माघमेला (प्रयाग), दशहरा मेला (मैसूर), दशहरा मेला (कांगड़ा/कुल्लू-मनाली), बाहुबली अभिषेक पर्व (कर्नाटक), नागनथैया (वाराणसी), सोनपुर मेला (बिहार), सालाना उर्स (अजमेर व फतेहपुर सीकरी), बौद्ध महोत्सव (सारनाथ, वाराणसी) ताज महोत्सव (आगरा), रामनवमी उत्सव (अयोध्या) श्रीकृष्ण जन्माष्टमी (मथुरा), फूलवालों की सैर (दिल्ली), अमरनाथ यात्रा (जम्मू-कश्मीर), लद्दाख महोत्सव (लद्दाख), रथयात्रा (पुरी) दुर्गा पूजा (पं. बंगाल) आदि में लाखों-करोड़ों लोग जुटते हैं।

तीज-त्यौहार भी परम्परागत माध्यम का प्रभावशाली रूप हैं क्योंकि इनमें भी गहरा जन-जुड़ाव प्रदर्शित होता है। कुछ प्रमुख तीज-त्यौहार हैं गणेश पूजा (महाराष्ट्र), नवरात्र (गुजरात), गणगौर (राजस्थान), मकर संक्रान्ति, (उ. भारत, ओणम (केरल), ईद, दीवाली, दशहरा आदि। कई बार ये तीज-त्यौहार सामाजिक समरसता, सामाजिक मेल-जोल, आदि के उद्देश्यों की पूर्ति की दृष्टि से भी उपयोगी होते हैं।

5.5 वर्तमान समय में परम्परागत माध्यमों का स्वरूप

परम्परागत माध्यम अभी भी प्रचलन में हैं। हमारे सामाजिक जीवन में उनका स्थान अभी भी बना हुआ है। हमारे लोक व्यवहार, मनोभाव, सामाजिक मान्यताएँ अभी भी इनमें दृष्टिगोचर होती हैं। अभी भी परम्परागत प्रस्तुतियाँ बरबस लोगों का ध्यान आकृष्ट कर लेती हैं और लोग इनमें रुचि लेते हैं। लेकिन समय के साथ परम्परागत माध्यमों के रूप-स्वरूप में भी पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं।

आज यदि हम विविध परम्परागत माध्यमों का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट होगा कि वे पुरातन और आधुनिकता का सम्मिश्रण हो रहे हैं। जैसे हम लोकगीतों को ही लें तो यह स्पष्ट होता है कि आज लोकगीतों में विषय-वस्तु, वर्णनात्मकता तथा प्रस्तुतीकरण में यथेष्ट बदलाव आया है। परम्परागत विषय जैसे–वर्षा, सावन, संयोग एवं वियोग, खेती-किसानी, विवाह-विदाई के साथ-साथ समसामयिक सन्दर्भ भी विकसित हुए हैं। लेकिन इस विषयगत समृद्धि के साथ-साथ आंचलिकता को व्यापारीकरण की प्रवृत्ति तेज होने से लोकगीतों का 'देशज' तेवर 'भदेसपन' में बदला है तथा उसमें अश्लीलता और सस्तेपन का समावेश हुआ है।

जिन परम्परागत माध्यमों को शौकीनों, सरकार अथवा कला साधनों का समर्थन मिला है उनमें शास्त्रीयता व नियमबद्धता का भी समावेश हुआ है। जैसे शहनाई को एक समय मंगलाचरण की 'पिपहरी' से अधिक कुछ नहीं समझा जाता था लेकिन बिस्मिल्लाह खाँन के प्रयासों से उसे सितार, तबला, वीणा जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। इसी प्रकार विदेशी बाजार उपलब्ध होने से मधुबनी चित्रकाली शैली को भी व्यापक प्रतिष्ठा मिली है। गुजरात में सम्पन्न वर्ग द्वारा स्वीकार कर लिये जाने से डांडिया रास के आकर्षण में युवा पीढ़ी भी संलग्न हुई है।

वस्ततः वर्तमान समय में आधुनिक परिवर्तनों तथा बदलते हए सामाजिक मूल्यों

के अनुरूप इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की प्रस्तुतियों में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। सूचना एवं संचार क्रान्ति के युग में परम्परागत माध्यम हाईटेक तथा प्रयोगधर्मी हुए हैं। अलबत्ता, व्यावसायिकता के हावी होने से उनकी मौलिकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है तथा देशज खुलापन अश्लीलता के रूप में दिखाई देने लगा है। तमाशा लोकनृत्य में अश्लील नृत्य मुद्राओं का प्रचलन, बिहार के सोनपुर मेले में नौटंकी के नाम पर जिस्म की नुमाइश व कैबरे, डिस्कोथेक में शराब के जामों के बीच भांगड़ा की धुनें व बुल्लेशाह के गीत इसी का परिणाम हैं।

5.6 परम्परागत माध्यमों पर आधुनिक मीडिया का प्रभाव

परम्परागत माध्यमों को सबसे अधिक आधुनिक मीडिया ने प्रभावित किया है। इसमें हम पुस्तकें, समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ, रेडियो, टीवी, सिनेमा, ऑडियो सिस्टम तथा इण्टरनेट को शामिल कर सकते हैं। इन सबने परम्परागत माध्यमों पर विविध रूपों में अपना प्रभाव छोड़ा है। इनमें से कुछ प्रभाव सकारात्मक रहे हैं तो कुछ प्रभावों से नकारात्मक बातें सामने आई हैं।

पुस्तकों ने परम्परागत माध्यमों के प्रति ज्यादा-से-ज्यादा लोगों को जागरूक बनाने का काम किया है। परम्परागत माध्यमों के विकास और स्वरूप की शोधपरक विवेचनाओं से लोग इनके इतिहास, विरासत तथा विशेषताओं से परिचित हुए हैं। शोधपरक पुस्तकों ने परम्परागत माध्यमों के औचित्य को सिद्ध करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यह स्थायी ज्ञान, परम्परागत माध्यमों के संरक्षण में भी मददगार हुआ है। आप जो पाठ्यसामग्री पढ़ रहे हैं, उससे आपकी भी इन माध्यमों के प्रति समझ और बेहतर हो सकेगी।

समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं में स्थानीय स्तर पर प्रचलित लोकमाध्यमों से जुड़ी सामग्री हमेशा प्रकाशित होती रहती है। इससे लोगों का इन माध्यमों के प्रति रुझान विकसित होता है। परम्परागत माध्यमों का प्रचार-प्रसार करने तथा उनसे जुड़े कलाकारों को प्रतिष्ठा दिलाने में पत्र-पत्रिकाओं का सहयोग सकारात्मक रहा है। छोटे-छोटे अंचलों में प्रचलित परम्परागत माध्यमों के फलक-विस्तार में भी इससे काफी मदद मिली है। पत्र-पत्रिकाओं ने लोगों और सरकार का ध्यान आकृष्ट कर कई लोक-कलाओं को विलुप्त होने से बचाया है तथा उन्हें पुर्नजीवन प्रदान किया है।

रेडियो की कुछ परम्परागत माध्यमों को पुनर्जीवन देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। रेडियो के लिए उपर्युक्त गायन व नाट्य सम्बन्धी लोक विधाओं को इससे काफी लाभ पहुँचा है। रेडियो 90 के दशक तक देशभर में सहज पहुँच वाला इंकलौता माध्यम रहा है तथा आज भी इसकी पहुँच सर्वाधिक है। एक जनमाध्यम के रूप में रेडियो ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वाधिक पहुँच रखता है जहाँ परम्परागत माध्यम भी सर्वस्वीकार्य हैं। रेडियो ने हमेशा से लोकगीतों व लोकनाट्यों को स्थान दिया है। इससे उन गीतों को ग्रामीण जनता के बीच अपनी पैठ पुख्ता करने में मदद मिली है। इसके साथ ही साथ लोक कलाकारों

को आय का साधन तथा पहचान उपलब्ध कराकर भी रेडियो ने इन्हें पुनर्जीवन देने का कार्य किया है। इसके अतिरिक्त मेलों तथा लीलाओं की रेडियो कमेंट्री, रेडियो रूपक, रेडियो लोकनाट्य से भी इन माध्यमों को संरक्षण प्राप्त हुआ है। आज भी रेडियो यह कार्य बखूबी कर रहा है।

टीवी ने रेडियो के काम को और भी प्रभावशाली ढंग से आगे बढ़ाने का कार्य किया है। टीवी पर आवाज के साथ सजीव चित्रों की उपलब्धता ने परम्परागत माध्यमों की छवि स्थापना और पहचान बनाने का काम किया है। टीवी का साथ मिलने से इन माध्यमों की स्वीकार्यता को काफी व्यापकता मिली है। इनको आकर्षक बनाने में भी टीवी ने मदद की है। परम्परागत माध्यमों को पुनर्जीवन देने तथा उनसे जुड़े कलाकारों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने में टीवी की भूमिका प्रभावशाली रही है। जैसे–हम तीजनबाई और पंडवानी का उदाहरण ले सकते हैं। लोकगायकी की इस अनूठी विधा को पहचान दिलाने में टीवी का अप्रतिम योगदान है। दूरदर्शन पर नियमित रूप से गीत-संगीत के अखिल भारतीय प्रसारण होते रहते हैं। अनेक कलाकारों को लोकप्रिय बनाने का काम भी टीवी ने किया है। इसके अतिरिक्त टीवी रूपक, टीवी डाक्यूमेंट्री आदि की मदद से भी लोकमाध्यमों को पहचान मिली है। केबल टीवी की सुविधा तथा स्थानीय टीवी नेटवर्कों के विकास से भी काफी मदद मिली हैं। जैसे वाराणसी की रामलीला (रामनगर) तथा प्रयाग का माघमेला लोक-नाट्य तथा लोक-सम्मिलन के अद्‌भुत उदाहरण हैं। इन्हें जनता के बीच प्रतिवर्ष स्थानीय केवल नेटवर्कों द्वारा सीधे प्रसारण के माध्यम दिखाया जाता है जिनसे जनता के बीच इनकी स्वीकार्यता बढ़ी है। इसके अतिरिक्त टीवी द्वारा तवज्जो दिये जाने के कारण अनेक लोकविधाओं को प्रयोजक तथा संरक्षक भी मिले हैं। डिस्कवरी तथा हिस्ट्री चैनलों द्वारा तो हम विश्वभर के लोकमाध्यमों से घर बैठे परिचित हो जा रहे हैं। आस्था, साधना आदि जैसे धर्म-प्रधान टीवी चैनलों द्वारा तो नियमित रूप से रामलीला, रासलीला, कथावार्ता, निर्गुण, देवी जागरण कुम्भ, माघमेला, पुष्कर मेला, रामनवमी मेला, बरसाने की होली आदि को घर-घर लोकप्रियता प्राप्त हो रही है।

सिनेमा ने भी परम्परागत माध्यमों को अपने जादुई आकर्षण का लाभ प्रदान किया है। अनेक कालजयी फिल्मों में परम्परागत माध्यमों की प्रस्तुति से उन्हें लोकप्रियता तथा स्वीकार्यता मिली है। कव्वाली जैसे सूफी कलाम को तो सिनेमा ने अपूर्व लोकप्रियता दी है। ग्रामीण पृष्ठभूमि पर बनी फिल्मों में परम्परागत माध्यमों को भी ग्लैमराइज़ होने का मौका मिलता है। माझी गीत, वर्षागीत, विदेशिया, ठुमरी, चैती, नौटंकी को फिल्मों ने काफी लोकप्रिय किया है। न्यूजरील व वृत्तचित्रों की मदद से इनकी जानकारी दूर तक पहुँचती हैं।

संगीत उद्योग के उत्थान से भी परम्परागत माध्यमों को काफी फायदा पहुँचा है। लोकगीत व लोकगायकी को इसने एक बड़ा बाजार व प्रशंसक वर्ग उपलब्ध कराया है। विवाह गीत, तीज-त्यौहार गीत, ऋतु गीतों के ऑडियो कैसेटों की बाजार में काफी खपत है। सूफी संगीत तथा शास्त्रीय संगीत को भी इससे आर्थिक लाभ मिला है व उनकी स्वीकार्यता बढ़ी है। इसी प्रकार इंटरनेट ने भी परम्परागत माध्यमों को वैश्विक परिचय उपलब्ध कराया है।

आधुनिक मीडिया से परम्परागत माध्यमों को एक नया विस्तार मिला है। अब इनकी मदद से यह माध्यम दूसरे क्षेत्रों तक अपनी पहचान बनाने में सफल हुए हैं। साथ ही साथ इनकी विषय-वस्तु में भी आधुनिक मीडिया के प्रभाव में यथेष्ट परिवर्तन हुए हैं। शब्दों के चयन में स्थानीयता की बजाय सर्वस्वीकार्यता का ध्यान रखा जाने लगा है। फिल्मों ने तो कई गीतों का फिल्मीकरण कर दिया है। कुम्भ तथा अन्य मेलों में बड़े-बड़े टीवी सेट, इलेक्ट्रॉनिक बोर्ड, लाउडस्पीकर आदि सूचना/संदेश प्रसारण के लिए प्रयोग किये जा रहे हैं। सूचना संचार प्रौद्योगिकी ने तो परम्परागत माध्यमों को हाईटेक बना दिया है।

लेकिन आधुनिक मीडिया का इन माध्यमों पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा है। इनमें से सबसे गम्भीर है परम्परागत माध्यमों की मौलिकता का क्षरण। अक्सर परम्परागत माध्यमों द्वारा टीवी, रेडियो, फिल्म आदि में प्रस्तुत होने पर उनके कथानक, विषयवस्तु व प्रस्तुतीकरण में परिवर्तन करना पड़ता है। वस्तुतः यह माध्यम परम्परागत माध्यमों को अपने से अनुकूलन करने के लिए बाध्य करते हैं जिससे उनकी मौलिकता घटती है। इससे इनमें सहजता, सरलता की जगह कृत्रिम नाटकीयता का समावेश हो जाता है।

आधुनिक मीडिया का एक अन्य दुष्प्रभाव परम्परागत माध्यमों के बाजारीकरण तथा भौंडेपन के रूप में सामने आया है। लोकगीतों में तथा नौटंकी व अन्य नाट्य प्रस्तुतियों में अश्लीलता का समावेश बढ़ा है। संगीत उद्योग ने ग्रामीण बाजार पर कब्जा करने के लिए लोकगीतों को भौंडा और अश्लील बनाने का काम किया है। इसका दुष्प्रभाव यह हुआ है कि निर्गुण व बिछोह/मिलन के सुन्दर-सलोने चित्रण की बजाय भोजपुरी गीतों को निरहुआ जा झाड़ के साथ नथुनिया पे गोली मारे जैसे गीतों से दो-चार होना पड़ा है।

परम्परागत माध्यमों की मौलिकता तथा स्थानीयता को यदि बचाना है तो हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि आधुनिक मीडिया उसे समृद्ध करें, न कि बर्बाद करें।

5.7 परम्परागत माध्यम एवं विकास

परम्परागत माध्यम आज भी भारत के ग्रामीण परिदृश्य में प्रभावी और सशक्त हैं। जनता के बीच उनकी स्वीकार्यता और लोकप्रियता अभी भी बनी हुई है। उत्सव, मेले, त्योहार तथा नदी तट आज भी अपनी मौलिकता को बनाए हुए हैं एवं इनमें जुटने वाली अपार भीड़ यह दर्शाती है कि मशीनीकरण और संचार क्रान्ति के इस युग में भी ये परम्पराएँ दृढ़ता से अपने स्थान पर कायम हैं।

जनसंचार के अन्य आधुनिक साधनों के विपरीत हालांकि परम्परागत माध्यम तीव्रता से संदेशों का आदान-प्रदान तो नहीं करते लेकिन जनता पर उनका परिवर्तन मूलक, भावनात्मक तथा स्वीकार्यतामूलक प्रभाव सर्वाधिक है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के वाहक के रूप में परम्परागत संचार माध्यमों ने हमेशा से अपना योगदान दिया है। स्वतन्त्रता आन्दोलन की अलख जगाने से लेकर दहेज, जाति प्रथा, नशा उन्मलन, लैंगिक असमानता, स्त्री उत्थान, पर्यावरण रक्षा, वैज्ञानिक चेतना का विकास,

स्वास्थ्य, परिवार कल्याण आदि विविध विकासपरक मुद्दों पर लोकमाध्यमों ने भी ध्यान दिया है।

ऐसा भी नहीं है कि परम्परागत संचार की उपयोगिता पर ध्यान नहीं दिया गया है। साठ-सत्तर के दशक में ही परम्परागत माध्यमों की ग्रामीण जनता में पहुँच को देखते हुए उनका विकास संदेशों के संप्रेषण में प्रयोग आरम्भ हो गया था। केन्द्र तथा राज्य दोनों सरकारों द्वारा इस दिशा में प्रयास आरम्भ किये गये। डीएवीपी तथा क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय के माध्यम से केन्द्र सरकार ने यह कार्य आरम्भ किया था। इसके अलावा केन्द्र सरकार द्वारा आकाशवाणी के एक अंग के रूप में गीत और नाटक प्रभाग का सन् 1954 में गठन किया गया। 1960 में इसे स्वतन्त्र मीडिया यूनिट बना दिया गया। इसका उद्देश्य लोक माध्यमों के विविध रूपों का पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों की पूर्ति में प्रयोग करना निर्धारित किया गया। 1962 में यूनेस्को बैठक में भी यह निष्कर्ष छनकर सामने आया कि परम्परागत माध्यमों का आधुनिक माध्यमों से समन्वय विकास संदेशों के प्रसार की दृष्टि से उपयोगी हो सकता है।

विकास के लिए परम्परागत माध्यम विशिष्ट रखते हैं। ग्रामीण जनता के बीच इनकी स्वीकार्यता तथा विश्वसनीयता संदेह से परे हैं। पिछड़े तथा आदिवासी क्षेत्रों में इनकी सहायता से निरूपित विकास संदेशों को प्रभावी तरीके से स्थापित किया जा सकता है। कई बार देखने में आता है कि इन क्षेत्रों में लोग विकास के कदमों को स्वीकार नहीं करते व आधुनिक परिवर्तनों को शंका व डर से देखते हैं। परम्परागत माध्यमों की मदद से उनकी विकास कार्यों में भागीदारी इस आशंका को दूर कर बढ़ायी जा सकती है

इसके अतिरिक्त विकास संदेशों को स्थानीय रूप प्रदान करने तथा उन्हें लोगों, उनकी भाषा व बोली में संदेशों को पहुँचाने में यह माध्यम उपयोगी हैं। परम्परागत माध्यमों की सक्षमता विकास संदेशों को आत्मसात कराने की भी है। यह माध्यम विकास के प्रति जनता को उत्प्रेरित करने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं।

परम्परागत माध्यम ग्रामीण रूपान्तरण, ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता प्रसार व ग्रामीणों को विकास कार्यक्रमों से जोड़ने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। परम्परागत माध्यमों को विकास से जोड़ने के लिए हमें निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(i) परम्परागत संचार प्रणालियों का समग्र एवं समेकित प्रयोग किया जाय।

(ii) एक नोडल एजेंसी के माध्यम से विकास संदेशों से परम्परागत माध्यमों का तालमेल विकसित किया जाय।

(iii) परम्परागत माध्यम से जुड़े लोगों को विकास संदेशों के प्रेषण हेतु प्रशिक्षित किया जाय तथा उन्हें जरूरी सॉफ्टवेयर सहयोग उपलब्ध कराया जाय।

(iv) आधुनिक जनमाध्यमों तथा परम्परागत जनमाध्यमों के बीच बेहतर समन्वय स्थापित कर विकास संदेशों का नियोजित संप्रेषण कराया जाय।

(v) परम्परागत संचार की जीवन्तता एवं मौलिकता को बनाये रखते हुए उसकी प्रस्तुतियों में विकास संदेशों को समावेशित किया जाय।

(vi) शोध एवं मूल्यांकन की पद्धति को बढ़ावा दिया जाय।

5.8 सारांश

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि परम्परागत माध्यम मानव सभ्यता के विकास के साथ क्रमशः विकसित हुए माध्यम हैं जिनमें लोक जीवन एवं लोकजीवन से जुड़ाव के बिन्दु सर्वाधिक हैं। इनकी लोगों में स्वीकार्यता भी सर्वाधिक है। परम्परागत माध्यम अपने विविध रूपों में आज भी सक्रिय तथा प्रभावी हैं।

समय के साथ इनमें भी बदलाव हुए हैं। आधुनिक मीडिया ने इन माध्यमों को सर्वाधिक प्रभावित किया है। यह प्रभाव सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों है। हमें सकारात्मक प्रभावों को बनाये रखना होगा तथा नकारात्मक प्रभावों से बचाव करना होगा।

विकास में इन माध्यमों की भूमिका उपयोगी हैं। विशेषरूप से ग्रामीण विकास में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसे सरकार तथा संयुक्त राष्ट्र आदि ने भी स्वीकार किया है। विकास में परम्परागत माध्यमों के प्रभावी उपयोग के लिए उनका उपयोग हमें नियोजित तरीके से करना चाहिए।

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

(i) श्यामाचरण दूबे - लोक, परम्परा, पहचान एवं प्रभाव

(ii) विल्बर श्रैम–मास मीडिया एंड नेशनल डेवलपमेंट

(iii) उमा नरुला–डेवलपटमेंट कम्यूनिकेशन

5.10 पारिभाषिक शब्दावली

(i) लोक सम्मिलन–लोक-सम्मिलन से आशय उस कार्यक्रम, त्योहार, मेला, उत्सव आदि से है जहाँ विभिन्न क्षेत्रों से लोग एक जगह एकत्रित होते हैं। परम्परागत माध्यम के रूप में इन सम्मिलनों की पहचान रही है। आपस में विचार-विनिमय, मेल-जोल, नयी सूचनाओं व वस्तुओं से परिचित होने का यह सम्मिलन महत्त्वपूर्ण जरिया होते हैं।

(ii) ध्रुपद–प्राचीन काल में 'ध्रुवपद' के नाम से विख्यात प्राचीनतम गायन शैली जिसका जन्म ध्रुव नामक रूपक-प्रबन्ध से हुआ है। निबद्ध श्रेणी के इस प्रबन्ध गीत को सर्वप्रमुख गोपाल नायक ने राग भीमपलासी को सुर ताल से निबद्ध कर गाया था. परन्त इसे विशिष्ट पद रचना और गेय शैली में ढालने का श्रेय ग्वालियर नरेश

मानसिंह तोमर को है।

(iii) भदेसपन–मानक के विपरीत व्यवहार। आंचलिकता का आवरण पहनाकर जब लोकगीतों में अश्लीलता और भौंड़ेपन का समावेश होता है तब यह रूचि की बजाय विकृत रूचि को बढ़ावा देता है तथा इसे भदेसपन कहते हैं।

प्रश्न–

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) परम्परागत माध्यम से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रमुख विशेषता बताएं।

(2) परम्परागत माध्यमों पर आधुनिक जनमाध्यमों के प्रभाव की व्याख्या करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) लोकवृत्त के विविध रूप बताइए।

(2) मेले एवं लोक सम्मिलन क्या हैं?

(3) वर्षा एवं ऋतु गीतों से क्या आशय है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) निम्नांकित में से लोकनृत्य नहीं हैं–

(क) साम्बा (ख) ध्रुपद (ग) भांगड़ा (घ) राउफ

(2) कजरी का सम्बन्ध है–

(क) लोकवाद्य से (ख) चित्रकला से (ग) त्योहार से (घ) गायन से

(3) भरतमुनि रचित ग्रन्थ है–

(क) अष्टाध्यायी (ख) कादम्बरी (ग) नाट्यशास्त्र (घ) ध्रुव

(4) गीत और नाटक प्रभाग की स्थापना हुई–

(क) 1952 (ख) 1953 (ग) 1954 (घ) 1960

(5) तीजन बाई का सम्बन्ध है–

(क) ध्रुपद (ख) महाभारत (ग) पंडवानी (घ) घूमर

(6) तमाशा का सम्बन्ध है–

(क) उत्तर प्रदेश से (ख) महाराष्ट्र से (ग) उड़ीसा से (ग) बिहार से।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर–

(1) ख, (2) घ, (3) ग, (4) ग, (5) ग, (6) ख।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

MA(JMC)-116

विकास संचार

खण्ड

02

विकास संचार

इकाई-6
विकास एवं संचार का अन्तर्सम्बन्ध

इकाई-7
विकास संचार के क्षेत्र

इकाई-8
विकास संचार की रणनीति

इकाई-9
विकास संचार में नई सूचना पद्धति

इकाई-10
स्वातन्त्र्योत्तर भारत में विकास संचार

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

1- प्रो0 जे0 एस0 यादव	पूर्व निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली
2- प्रो0 राममोहन पाठक	निदेशक, मदन मोहन मालवीय, हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
3- प्रो0 सुधाकर सिंह	हिन्दी (प्रयोजनमूलक) विभाग, बी0एच0यू0, वाराणसी
4- डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय	जनसम्पर्क अधिकारी, बी0एच0यू0, वाराणसी
5- डॉ0 पुष्पेन्द्र पाल सिंह	अध्यक्ष-पत्रकारिता विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता, विश्वविद्यालय भोपाल

सम्पादक

डॉ0 अर्जुन तिवारी- वरिष्ठ परामर्शदाता, उ0प्र0रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक मंडल

1- प्रो0 राम दरश राय	- निदेशक पत्रकारिता, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
2- श्री अनुराग दवे	- पत्रकारिता विभाग, बी0 एच0 यू0, वाराणसी
3- श्रीमती विनयपुरी पाण्डेय	- हिन्दुस्तान दैनिक, वाराणसी
4- श्री विमलेश तिवारी	- मीडिया सेन्टर, वाराणसी
5- श्री शैलेन्द्र प्रताप सिंह	- विद्या भवन, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड-02 खण्ड-परिचय : विकास संचार

इस ब्लाक में निम्नलिखित इकाईयाँ हैं :-

6- विकास एवं संचार का अन्तर्सम्बन्ध

7- विकास के क्षेत्र

8- विकास संचार की रणनीति

9- विकास संचार में नई सूचना पद्धति

10- स्वातन्त्र्योत्तर भारत में विकास संचार

सर्वांगीण, संतुलित वृद्धि का नाम ही विकास है। जन-जन के जीवन स्तर का उन्नयन ही विकास है। कृषि, ग्राम्य जीवन, पर्यावरण, पर्यटन, शिक्षा आदि क्षेत्रों में विकास के जो रूप दिखलाई पड़ रहे हैं उनमें मीडिया सर्वाधिक प्रभावकारी है। मीडिया लोकतंत्र, विकास और जन-शिक्षण का सम्बल है। प्रेस, कम्प्यूटर इन्टरनेट, साइबर जैसे माध्यमों ने विकास को सकारात्मक दिशा दी है। राष्ट्रीय योजना समिति, सरकारिया आयोग तथा विविध संगठनों ने विकास को गति देने में सक्रिय भूमिका निभायी है।

इकाई–6 विकास एवं संचार का अन्तर्सम्बंध

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 विकास की अवधारणा

6.3 संचार की अवधारणा

6.4 विकास संचार का अर्थ एवं प्रकृति

6.5 विकास संचार की प्रक्रिया

6.6 विकास संचार के लक्ष्य

- 6.6.1 विकास एवं प्रगति में अंतर
- 6.6.2 जोशी कमेटी व नामीडिया
- 6.6.3 विकास पत्रकारिता की प्रभावशीलता
- 6.6.4 कृषि संचार
- 6.6.5 जनमाध्यम और कृषक महिलायें

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.10 प्रश्नावली

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके आप–

- विकास की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- संचार की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- विकास एवं संचार के अन्तर्सम्बन्ध से परिचित हो सकेंगे।
- विकास संचार के उद्‌भव को जान सकेंगे।
- विकास संचार की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- विकास संचार के लक्ष्यों को पहचान सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

पिछले दो दशकों में विकास संचार की अवधारणा ने व्यापक प्रसिद्धि प्राप्त की।

यह प्रक्रिया के विचार के रूप में अस्तित्व में आई और स्वीकृत अवधारणा के स्तर तक पहुंची। विचार से अवधारणा की यह यात्रा यूं तो कठिन थी परन्तु धीरे-धीरे तीसरी दुनिया के तकरीबन सभी देशों ने इसे नई अवधारणा के रूप में स्वीकार कर लिया है। नीति निर्माताओं और प्रशासकों ने अब समझ लिया है कि निरक्षरता, जनसंख्या विस्फोट, कुपोषण जैसी समस्याएं महज नूतन तकनीकी कौशल और शस्त्रों को खरीदकर समाप्त नहीं की जा सकती बल्कि लोगों को अभिप्रेरित करना होगा कि वे इनका सम्यक् सदुपयोग भी करें। इस प्रकार विकास संचार के द्वारा विकासशील देश के सभी वर्ग और क्षेत्र प्रकार के लोगों को सूचित, प्रेरित और प्रभावित किया जा सकता है ताकि वे नवागत विचार, कौशल और व्यवस्थाओं का उपयोग करें और लम्बे समय से अछूते सामाजिक अवयव को जागृत कर विकास को संचारित किया जा सके। हमें संचार की अभिक्षमताओं का विकास के क्षेत्र में उन मानदंडों का निकष तैयार करके संचार और विकास के अन्तर्सम्बन्धों को अग्रसारित कर सकते हैं।

6.2 विकास की अवधारणा

कुछ शब्दावलियाँ विकास की पर्याय के रूप में प्रयुक्त होती हैं, यथा-परिवर्तन, वृद्धि, प्रगति और आधुनिकीकरण आदि। परंतु बिना विकास के भी परिवर्तन किया जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि विकास उन सभी क्रियाओं का समुच्चय है जो शुभ है, सकारात्मक और हितकारी है। यह असंतोष की व्यवस्था से संतोष की अवस्था में बढ़ने की क्रिया है। यह गत्यात्मक है न कि स्थैतिक। यह एक समग्र अवधारणा है जिसमें समाज के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और राजनैतिक आयाम सन्निहित है। यह सर्वांगीण, संतुलित और योजनाबद्ध वृद्धि का योग है।

6.3 संचार की अवधारणा

मनुष्य की सभी क्रिया गतविधियों के मूल मं संचार है। मनुष्य ज्ञान, सूचना और अनुभव को परस्पर ग्रहण करते हैं, उसे समझते हैं, अनुसरण करते हैं और परिजनों को प्रदान करते हैं। यह संप्रेषण अथवा संचार के द्वारा ही संभव है। यह द्विमार्गी प्रक्रिया है, अनुदैर्ध्य और अनुप्रस्थ दोनों प्रकार से आगे बढ़ने वाली क्रिया। यह प्रेषण-ग्रहण के भाव में संपादित होती है। लोगों से उनके स्तर पर जाकर संप्रेषण करके हम उनकी समस्याओं से सही मायने में दो-चार हो सकते हैं और विकास एजेंसियों की सहायता करके प्रगति की गति को उत्प्रेरित कर सकते हैं।

6.4 विकास संचार का अर्थ एवं प्रकृति

पिछले दो दशकों में विकास संचार की अवधारणा व्यापक हुई। हालांकि इसके अतीत की कहानी को 1940 से प्रारंभ करके 1950 के शुरूआत में करीब सभी

विकासशील देशों में देखी जा सकती है। लक्ष्यों के प्राप्त करने के प्रयास की नई प्रविधि और नूतन दर्शन के द्वारा गरीब (Haves nots) और अमीर (Haves) के मध्य की खाई को पाटा जा सकता है। इस प्रकार संप्रेषण की लोगों को सूचित और संप्रेरित करके विभिन्न विकास के विचार और दक्षता/कौशल आदि के संबंध में उपयोगिता कई गुना बढ़ गई है। इस तरह कृषि संप्रेषण बहुत प्रचलित हुआ और कालान्तर में यह ग्रामीण पत्रकारिता हो गया जिससे व्यापक पैमाने पर पकड़ बनाई जा सके।

नोरा क्रोव्रल (Nora Quebralts 1975) के अनुसार, विकास संचार मानवीय संप्रेषण की एक कला और विज्ञान है। इसका अनुप्रयोग देशों के तीव्र परिवर्तन और इसके निवासियों को गरीबी से आर्थिक वृद्धि की ओर अग्रसर करने में होता है। इस प्रकार बड़े पैमाने पर सामाजिक एकता और लोगों की आवश्यकता की पूर्ति को सुनिश्चित कर सकता है।

रोजारियो ब्रेड (Rosario Braid 1979) ने विकास संचार को पुनर्परिभाषित किया है– "विकास संचार, विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और नियोजन के प्रबंध का हिस्सा/अंग हैं। व्यापक अर्थ में यह विकास की प्रक्रिया में समुचित विशेषज्ञता की पहचान और प्रयोग है जिससे जमीनी स्तर पर लाभ पाने वालों की सहभागिता बढ़ाने में मददगार साबित हो सके।"

विकास संचार का उद्भव दैनन्दिन जीवन की परिस्थितियों से हुआ है और इस प्रकार यह विकासशील राष्ट्रों का नवाचार है। यह लोगों की सोच और कार्यपद्धति में इच्छित परिवर्तन को प्रवृत करता है। इस प्रकार और सटीक भाषा में कहें तो विकास संचार लोगों की सहभागिता और संतुष्टि से होता है। लोगों की सहभागिता और संतुष्टि को निम्नलिखित मानदण्डों से आंका जा सकता है–

(i) संक्रिय सहभागिता की अनुभूति

(ii) समस्याओं का समाधान करने में गर्व की अनुभूति

(iii) मानसिक और शारीरिक उपलब्धि का भाव।

विकास संचार कोई भी माध्यम प्रयोग में ला सकता है जैसे टी०वी०, रेडियो, प्रिन्ट मीडिया आदि जिससे विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। कृषि से प्रारंभ करके, स्वास्थ्य, स्वच्छता परिवार नियोजन, शिक्षा, यातायात आदि में भी अतिरिक्त प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। विकास संचार केवल ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं से जुड़ा हुआ नहीं है बल्कि नशाखोरी, अपराध, दुर्घटनायें, जल संरक्षण और ऊर्जा संरक्षण जैसे मुद्दे शहरी क्षेत्रों के हैं जो विकास संचार की परिधि में ठहरते हैं।

6.5 विकास संचार की प्रक्रिया

ग्रामीण या शहरी क्षेत्र से इतर उद्देश्यपरक और व्यावहारिक होने के लिए

विकास संचार को नियोजित और सुव्यवस्थित तरीके से प्रयोग में लाना चाहिए। संतुलित वृद्धि और इच्छित परिवर्तन, लोगों के व्यवहार में, सुव्यवस्थित सहभागिता से ही संभव है। निम्नलिखित स्तरों से होते हुए प्रभावी संप्रेषण की प्रक्रिया सुनिश्चित होती है–

- परिस्थिति का विश्लेषण
- समस्या की पहचान और प्राथमिकताओं का निर्धारण
- संसाधनों का चयन
- कार्य योजना का निर्माण
- कार्य
- मूल्यांकन

6.6 विकास संचार के लक्ष्य

विकास संचार को लक्ष्योन्मुखी होना चाहिए। इसका अन्तिम लक्ष्य है समाज के लोगों के लिए उच्च जीवन स्तर। हमें लक्ष्यों को सिर्फ आर्थिक परिप्रेक्ष्य में ही नहीं देखना चाहिए बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों के द्वारा किसी व्यक्ति के जीवन को पूर्ण बनाया जा सके और वह अपना अधिक सामर्थ्य प्राप्त कर सके।

6.6.1 विकास एवं प्रगति में अन्तर

यद्यपि परिवर्तन के कारण विकास भी होता है और प्रगति भी होती है, लेकिन दोनों में कुछ अंतर है। जहाँ प्रगति इच्छित दिशा का परिवर्तन है, वहीं सामान्यतया विकास आर्थिक दशा में, भौतिक सुख-सुविधा में वृद्धि का द्योतक है। वैसे हालात में सुधार दोनों ही अवस्थाओं में होता है। एक स्वाभाविक प्रक्रिया है तो दूसरी सुनियोजित एवं तुलनात्मक स्थिति का बोध कराती है। प्रगति का एक स्वीकृत या इच्छित लक्ष्य होता है। यह समूह द्वारा सामाजिक मूल्यों आदर्शों आदि के आधार पर निश्चित किया जा सकता है।

प्रगति यानि इच्छित परिवर्तन। इसमें दिशा और लक्ष्य पूर्वनिश्चित होते हैं। इसका संबंध प्रत्यक्ष रूप से मूल्य निर्णय के समावेश से है। प्रगति में परिवर्तन द्वारा एक अवस्था अन्तिम स्तर को प्राप्त करती है। इसका संबंध संस्कृति के भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, कलात्मक, साहित्यिक जैसे किसी भी आयाम से हो सकता है। कुल मिलाकर प्रगति का संबंध सामूहिकता से है। प्रगति कभी अपने आप नहीं होती। इसके लिए सजग प्रयास जरूरी होते हैं। दूसरी ओर कल्याणकारी परिवर्तन हैं जो आर्थिक विकास अथवा भौतिक समृद्धि से संबंधित होता है। इसमें मूल्यों का अप्रत्यक्ष संबंध. होता है। विकास भी अन्तिम स्तर तक ले जाने का एक साधन हो

सकता है। इसका संबंध संस्कृति के भौतिक पहलू से होता है। विकास में सामूहिक अभिवृद्धि निहित नहीं रहती क्योंकि यह अपनी भावी दिशा में सक्रिय हो सकता है। यह वैयक्तिकता एवं सामूहिकता दोनों को व्यक्त करता है। विकास में परिवर्तन का क्षेत्र व्यापक होता है।

6.6.2 जोशी कमेटी व नामीडिया

भारत सरकार द्वारा 1982 में पी0सी0 जोशी कमेटी गठित की गयी थी जिसने टी0वी0 के लिए ऐसे कार्यक्रम बनाने की सिफारिश करने को कहा गया था। जिससे मीडिया की मदद मनोरंजन के साथ-साथ सूचना एवं शिक्षा संबंधी जानकारी देने में अधिकाधिक भूमिका हो सके। जोशी कमेटी नामीडिया ने सुझाव दिया था कि मीडिया समाज के कमजोर और वंचित वर्गों को अपने कार्यक्रमों में ज्यादा स्थान दे। खासकर ग्राीण समस्याओं, ग्रामीण समुदाय, महिलाओं, बच्चों संबंधी ज्यादा कार्यक्रम दें। कृषि, बेरोजगारी, स्वास्थ्य संबंधी विषयों को प्रमुखता दी जाये। टी0वी0 को दूरदराज के इलाकों तक पहुँचाया जाये तभी नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास की उपलब्धियों से उन्हें अवगत कराया जा सकता है। यह कार्यक्रम स्थानीय भाषाओं एवं बोलियों में होने चाहिए। टी0वी0 कार्यक्रम प्रचारात्मक नहीं होने चाहिए बल्कि मूल्य आधारित हों तो ज्यादा लाभदायक होंगे। टी0वी0 को ग्रामीण परिदृश्य के अनुरूप कार्यक्रमों से जोड़ना ज्यादा उपयोगी हो सकता है।

6.6.3 विकास पत्रकारिता की प्रभावशीलता

विकास पत्रकारिता एवं विकास संचार कई स्तरों पर जैसे सामुदायिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय विकास के लिए प्रभावशील हो सकता है। व्यापक दृष्टि के आधार पर विकास संप्रेषण विभिन्न स्तरों के बीच विद्यमान सूचना-असंतुलन की समस्या का निदान करता है। अमेरिका या अन्य देशों की परिस्थितियों एवं वातावरण पर आधारित विश्लेषणात्मक सूचनायें भारत को और उसके साथ उन देशों के संबंधों में गलतफहमियां पैदा नहीं होने देंगी। इस प्रकार के सूचना असंतुलन अन्तर्राष्ट्रीय व स्थानीय स्तर के संबंधों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं जिससे स्वाभाविक है कि विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है। दरअसल विकास संचार सारी दुनिया में समानता का एक माहौल तैयार कर सकता है, जिससे जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार की आशा की जा सकती है। विकास तभी अंतिम व्यक्ति तक पहुंच सकता है जब उसकी जरूरतों को पहचानकर उसकी जरूरतों के आधार पर विकास की तकनीक का निर्माण व चयन हो तभी जरूरत पूरी होगी और जन-जन तक विकास पहुँच सकेगा। विकास पत्रकारिता की गुंजाइश, अविकसित, अर्द्धविकसित, विकासशील अवस्था में अधिक होती है।

गाँव के संदर्भ में सहभागी संचार की आवश्यकता होती है। इस तरह के संचार में पंचायत प्रतिनिधियों, ग्रामवासियों व मीडिया को सहभागी बनाना होगा। इसके लिए मीडियाकर्मी को, वह चाहे संवाददाता हो या संपादक, गांव से अपनी पहचान बनाना

अखबारों को बहुत कम प्रयासों से खबरें मिलती रहेंगी। इस संदर्भ में चीन का उदाहरण उचित प्रतीत होता है। चीन का 'पीजेन्ट डेली' राष्ट्रीय अखबार का नियम है कि प्रत्येक रिपोर्टर व सम्पादक को वर्ष में कम से कम दो महीने एक गाँव में व्यतीत करने होंगे। ताकि वह गांव की आवश्यकताओं व समस्याओं को समझ सके। यही नहीं यह अखबार 300 कृषकों को स्ट्रिंगर के रूप में व 700 अंशकालिक संवाददाता के रूप में लगाये हुए हैं। इस तरह का प्रयास हमारे वहाँ भी होना चाहिए। यहाँ भी मीडिया को पंचायतों के साथ सहभागिता का वातावरण तैयार कर पंचायतों के सदस्यों से स्टिंगर व अंशकालिक संवाददाता के रूप में कार्य ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त अखबार की टीम अक्सर गाँव जाकर महत्वपूर्ण मुद्दों पर रिपोर्ट तैयार कर सकती है।

पत्रकारिता एक सामाजिक ट्रस्ट है तथा पत्रकार सामाजिक कार्यकर्ता है। इस प्रकार दोनों परिवर्तन के एजेंट हैं। लिहाजा मीडिया पंचायतों की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहभागी संचार की भूमिका अदा करे। अब पंचायतें ही सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास की योजनाओं को तैयार करेंगी। बजट का हिस्सा इनके द्वारा व्यय किया जाएगा। इसलिए मीडिया का फोकस पंचायत पर भी होना चाहिए।

6.6.4 कृषि संचार

कृषि संचार के अन्तर्गत उन्नत तकनीकी एवं नस्लों तथा प्रजातियों से संबंधित ज्ञान का हस्तानांतरण किया जाता है। इसका उद्देश्य मौजूदा कृषि प्रणालियों एवं पद्धतियों में सुधार लाना है। कृषि संचार या पत्रकारिता एक प्रक्रिया है जिसमें अनेक अवयव होते हैं–

- संचार के साधन
- शोधार्थी
- विस्तार कार्यकर्ता (Extension workers)
- कांटेक्ट कृषक
- विक्रेता आदि

संदेश (Message)– फर्टिलाइजर, कीटनाशक के विषय में

चैनल या माध्यम– टी०वी०, मुद्रित माध्यम (अखबार, पत्रिका आदि), सिनेमा, समूह प्राकृतिक माध्यम।

ग्राही या प्रापक– सामाजिक ढांचे में से कोई यथा, कृषक, कृषि कार्य में संलग्न महिलायें युवा आदि।

संचार की प्रक्रिया व्यक्तिगत अनुक्रिया (response) द्वारा निर्देशित होती है।

कृषि पत्रकारिता में संचार का स्रोत

कृषि संप्रेषण अथवा संचार अनेक स्रोतों और माध्यमों का फार्म सूचनायें संप्रेषित करने में प्रयोग करता है।

(i) संस्थागत स्त्रोत– विस्तार सेवायें, ग्राम स्तर के कार्यकर्ता, कृषि विश्वविद्यालय, ICAR और शोध संस्थान, वैज्ञानिक फार्म सूचना निदेशक, कृषि सहकारिता और ग्राम पंचायत मंत्रालय में व्यावसायिक अभिकर्ता।

(ii) मीडिया– रेडियो, टी०वी० फिल्म प्रदर्शनी, बुलेटिन, फोल्डर और अन्य मुद्रित सामग्री, कृषि भूमि जर्नल, पत्रिकायें, सामान्य बैठक, सर्कुलर लेटर, कृषि विज्ञान मेला और समाचार पत्र

गैर संस्थागत स्त्रोत– मौखिक संवाद, ग्रामीण नेता, संविदा कृषक, अन्य कृषक, पड़ोसी, परिवार के सदस्य, कृषि विश्वविद्यालय के छात्र आदि।

उपर्युक्त साधनों में से कौन सी पद्धति कारगर होगी, यह कहना आसान नहीं है। विकसित देशों में कृषि पर रेडियो के प्रभाव का प्राय: उल्लेख मिलता है परंतु भारत में इस प्रभाव की सीमित चर्चा है।

स्त्रोत वर्गीकरण और संचार साधन

माध्यम का चुनाव कृषक के सामाजिक, आर्थिक स्तर और अन्य कारकों पर निर्भर करता है। उम्र, शैक्षिक स्तर, जोत का आकार आदि का संस्थागत स्त्रोतों के चयन पर प्रभाव पड़ता है। संचार की उपयुक्तता अनेक स्थितियों पर निर्भर करता है– जैसे निर्मित दृष्टिकोण का प्रकार और स्वीकृति की सीमा आदि अनेक स्थितियों पर निर्भर करते हैं। कृषक का चयन उम्र, शैक्षिक स्तर और आर्थिक स्तर के अनुसार किया जाता है।

कृषि में अन्तर्वैयक्तिक संप्रेषण– कृषि क्षेत्रों में अन्तर्वैयक्तिक संप्रेषण का महत्वपूर्ण स्थान है। शोध की दृष्टि से कृषकों से सीधा साक्षात्कार, बातचीत आदि की तुलना में प्रभावशाली होता है। इस प्रकार के निष्कर्ष रेडियो की कृषि पत्रकारिता में उपयोगिता पर अध्ययन के पश्चात् प्राप्त हुए। भारत में टी०वी० का कृषि पर प्रभाव अत्यंत क्षीण है। सन् 1967 में कृषि दर्शन कार्यक्रम दूरदर्शन द्वारा प्रारंभ किया गया। इन दिनों एक से अधिक माध्यमों के मिश्रण को इस क्षेत्र में उपयोग के स्तर पर रखकर अध्ययन किया जा रहा है। इसे मीडिया मिक्स कहते हैं। कृषि के क्षेत्र में विविध अद्यतन तकनीकी एवं उन्नत प्रणालियों की सूचना मीडिया मिक्स के द्वारा कृषकों तक पहुंचाना, सर्वथा समीचीन होगा क्योंकि कोई एक माध्यम या चैनल सभी परिस्थितियों के लिए सटीक नहीं हो सकता।

लोक माध्यम और कृषि क्षेत्र–संप्रति लोक माध्यमों की कृषि क्षेत्र में प्रासंगिकता एवं पकड़ बढ़ती जा रही है। लोक माध्यमों पर आधुनिक संचार साधनों का प्रभाव भी पड़ रहा है। अत: लोक माध्यमों के नए तेवर की कृषि पत्रकारिता में बढ़ते हस्तक्षेप का अध्ययन भी स्वाभाविक है।

6.6.5 जनमाध्यम और कृषक महिलाएं

विश्व की शिक्षित जनसंख्या का आधे से अधिक एशिया-ओसानिया क्षेत्र के ग्रामीण हैं और उनमें अधिकांश महिलायें हैं। आज समग्र विकास कार्यक्रम का महत्वपूर्ण हिस्सा संचार को माना जाता है। इसलिए विकास योजना निर्माण की प्रक्रिया में मीडिया या जनमाध्य को एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में ग्रहण किया जाता है। इसके संरक्षण, नियोजन और वितरण को भी विकास योजनाओं में स्थान दिया जाना चाहिए।

ग्रामीण महिलाओं के लिए सूचना ही शक्ति है। जिनके पास सूचना है वे आर्थिक और सामाजिक समृद्धि की प्राप्ति कर लेती है। आधुनिक ग्रामीण महिला संचार के साधनों से लैस है। इस प्रकार संचार आधुनिकीकरण का लक्ष्य है। संचार और आधुनिकीकरण के संबंध को नकारा नहीं जा सकता है। इस प्रकार संचार की सर्वप्रमुख निम्नलिखित भूमिकायें हो सकती हैं–

(1) तकनीकी नवाचारों का विकास की एजेन्सी से उनके उपभोक्ता तक स्थानान्तरण।

(2) जनता में आधुनिकता का पर्यावरण निर्मित करके परिवर्तन की भूख उत्पन्न।

अतः तकनीकी परिवर्तन और संबंधित सूचनायें, विकास के महत्वपूर्ण अवयव हैं जिनसे आधुनिकीकरण का अवतरण संभावित है। अनेक देशों में ज्यादा पैदावार वाली प्रजातियों, परिवार नियोजन, सिंचाई, साक्षरता, अच्छा स्वास्थ्य आदि को विकास कार्यक्रमों की परिधि में रखा गया है। परंतु ये सभी कार्यक्रम प्रायः असफल करार दिए जाते हैं। इस असफलता के मुख्य कारण के रूप में संचार है। विकास के लिए संचार को आवश्यक परंतु अपर्याप्त शर्त के रूप में स्वीकार किया जाता है। संचार स्वयं से विकास नहीं कर सकता। संचार के साधनों द्वारा ग्रामीण महिलायें अपनी आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति कर सकती हैं और उन्हें मिलने वाली सहूलियतों की जानकारी प्राप्त कर सकती है। इस प्रकार संचार के द्वारा ग्रामीण महिलाओं के मध्य सामाजिक-आर्थिक लाभ-खाई को पाटा जा सकता है।

निष्कर्षतः ग्रामीण महिलाओं के विकास में संचार मुख्य भूमिका में है और यह आधुनिकीकरण प्रक्रिया में सक्रिय और बहुआयामी कारक भी हैं। ग्रामीण महिलाओं के लिए रेडियो, टी0वी0,फिल्म और मुद्रित माध्यम महत्वपूर्ण जन-माध्यम हैं–

रेडियो : 61 स्टेशनों के पास "फार्म और होम यूनिट" हैं जो शैक्षिक और सूचनात्मक सहयोग गहन कृषि और ग्रामीण विकास कार्य को प्रदान करते हैं।

चावला, 1983 के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों में रेडियो सेट की संख्या कम है। उनमें से अधिकांश खराब होते हैं।

मेहता, 1972, 64 प्रतिशत ग्रामीण महिलायें, ग्रामीण महिला कार्यक्रम से भिज्ञ हैं। इनमें से 39% ही नियमित कार्यक्रम श्रवण करते हैं। पुरी 1972, ग्रामीण

महिलायें रेडियो कार्यक्रमों में मनोरंजन पसंद करती है जबकि पुरुष उसके साथ सूचनायें भी चाहता है।

टेलीविजन– ग्रामीण महिलाओं में 88% महिलायें चित्रहार पसंद करती थीं। इसके बाद समाचार और खेलकूद की बारी आती है। कृषि दर्शन, फोकस में, व्यक्तिगत विचार और एक दृष्टिकोण आदि को सबसे कम लोग पसंद करते हैं।

कौर '1970' के अनुसारद्ध कृषक महिलायें 42 से 72% ज्ञान टी०वी० से प्राप्त करती है। इनमें से 72–83% का ज्ञान बना रहता है।

मुद्रित माध्यम– ग्रामीण महिलायें कृषि संबंधी अथवा अन्य जानकारियाँ मुद्रित माध्यमों से अपेक्षाकृत कम ही प्राप्त करती हैं।

6.7 सारांश

इस इकाई में आपने विकास और संचार की पृथक-पृथक अवधारणा का अध्ययन किया। साथ ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में विकास की उपादेयता का संचार के साथ आकलन किया। भारत में विकास संबंधी तमाम कवायदों के बावजूद सम्यक् विकास की बाट जोहती जनता की समस्याओं को राष्ट्रीय फलक पर ले आने का कार्य संचार के साधनों द्वारा ही संभव है। आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण की आँधी में संचार ने भी अपना रूप बदला है। जहाँ लोक माध्यमों से ही अभिव्यक्ति का सामान जुट जाता है, वहीं आज मुद्रित माध्यमों से लेकर इलेक्ट्रानिक माध्यमों की प्रचुरता ने संचार को आसान और प्रभावी बना दिया है। ग्रामीण विकास को सर्वाधिक महत्व दिया जा रहा है। यह कार्य भी संचार और विकास के अन्तर्सम्बन्धों के अभाव में अधूरा ही रहेगा। गाँव से शहर तक की तमाम समस्याओं यथा गरीबी, जनसंख्या विस्फोट, स्वास्थ्य और निरक्षरता आदि को संचार साधनों द्वारा मुखरित करके विकास सुनिश्चित किया जा सकता है।

6.8 शब्दावली

विकास–उन सभी क्रियाओं का समुच्चय जो शुभ, सकारात्मक और हितकारी है, विकास कहलाता है।

विकास संचार– विकासशील शब्दों का नवाचार (innovation) जो विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और नियोजन के प्रबंधन का अंग है।

कृषि पत्रकारिता– कृषि पत्रकारिता एक प्रक्रिया है जिसमें अनेक अवयव होते हैं यथा– संचार के साधन, शोधार्थी, विस्तार कार्यकर्ता, कांटेक्ट कृषक और विक्रेता आदि।

संस्थागत स्त्रोत– कृषि क्षेत्र से जुड़े हुए संस्थागत स्त्रोत जिनसे सूचनायें आदि ग्रहण किए जा सकते हैं जैसे विस्तार सेवायें, ग्रामस्तर के कार्यकर्ता, कृषि विश्वविद्यालय आदि।

मीडिया मिक्स– जब किसी कार्यक्रम को मीडिया के विभिन्न संयोग से प्रसारित किया जाता है तो इस व्यवस्था को मीडिया मिक्स कहते हैं। इसमें एक ही कार्यक्रम को एक साथ टी०वी०, रेडियो और मुद्रित माध्यमों पर प्रसारित किया जाता है।

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

(1) मीडिया एण्ड कम्यूनिकेशन्स टुडे; वेद प्रकाश गाँधी, कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली।

(2) मीडिया एण्ड कम्यूनिकेशन्स, द ग्लोबल चैलेन्ज; नवल प्रभाकर, कामन वेल्थ

6.10 प्रश्नावली

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. विकास से आप क्या समझते हैं?
2. विकास संचार को परिभाषित कीजिए।
3. विकास संचार की प्रक्रिया के कितने चरण हैं? नामोल्लेख कीजिए।
4. कृषि पत्रकारिता के अवयवों का नामोल्लेख कीजिए।
5. कृषक महिलाओं के लिए संचार के साधन कौन-कौन से हैं?

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. विकास संचार के उद्भव की परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए इसके लक्ष्यों को बताइये।
2. कृषक महिलाओं और जनमाध्यमों के अन्तर्सम्बन्ध पर निबन्ध लिखिए।
3. जनमाध्यम किस प्रकार विकास का एजेण्डा तय करते हैं।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय टेलीविजन पर कृषि दर्शन की शुरुआत हुई–

(i) 1967 (ii) 1976 (iii) 1980 (iv) 1986

2. भारत में विकास संचार का प्रारंभ हुआ–

(i) 1940 (ii) 1945 (iii) 1950 (iv) 1947

3. कृषि में सर्वाधिक प्रभावशाली जनमाध्यम है–

(i) रेडियो (ii) दूरदर्शन (iii) लोकमाध्यम, (iv) मीडिया मिक्स

उत्तर– (1) (i) (2) (ii) (3) (iv)

इकाई-7 विकास संचार के क्षेत्र

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 ग्रामीण पत्रकारिता

7.3 पर्यावरण की रक्षा

7.4 शहरीकरण और विकास संचार

7.5 कमजोर वर्गों का उत्थान

7.6 शिक्षा एवं साक्षरता

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 संदर्भ ग्रन्थ

7.10 प्रश्नावली

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके आप –

- ग्रामीण विकास में संचार की भूमिका का अध्ययन कर सकेंगे।
- पर्यावरण संरक्षण के संप्रेषणीय आयाम की पहचान कर सकेंगे।
- गाँवों से शहरों को पलायन की अंतर्रदृष्टि का आकलन कर सकेंगे।
- गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की कवायद से परिचित हो सकेंगे।
- साक्षरता और शैक्षिक विकास में मीडिया की भूमिका का प्रावधान कर सकेंगे!

7.1 प्रस्तावना

विकास पत्रकारिता को आमतौर पर आजकल ग्रामीण अंचल की सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों से खासकर गैर सरकारी स्वयंसेवी संगठनों की गतिविधियों से जोड़ा जाता है। दरअसल सरकारी, गैर सरकारी, समाजसेवी सभी संस्थाओं का कार्य विकास में सहायक है। शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, वनों की रक्षा भी विकास पत्रकारिता के अंग है। लेकिन कई बार कुछ संवाददाता और अखबार इनकी उपेक्षा कर देते हैं। इन्हें पर्याप्त महत्व नहीं देते। इन खबरों को भी महत्व मिलना चाहिए। संवाददाता को केवल राजनेताओं एवं राजनीतिक खबरों के पीछे ही नहीं भागना चाहिए। क्या यह चौंकाने वाली बात नहीं है कि समाजवाद, भूमि सुधार, स्वच्छ प्रशासन, पंचायती राज के फैसलों के बाद भी समस्यायें विकराल बनी हुई हैं। राजनेता और अफसरशाही कम दोषी नहीं हैं।

7.2 ग्रामीण पत्रकारिता

देश की अर्थव्यवस्था की विकास दर को यदि ऊँचा रखना है और विकास की गति तेज करना है तो जरूरी है कि कृषि एवं उससे जुड़ी विभिन्न गतिविधियों की औसत वार्षिक विकास दर कम से कम चार प्रतिशत होनी चाहिए।

आज ग्रामीण अंचल में विकास के साथ-साथ परिवार कल्याण एवं आबादी नियंत्रण, एड्स के नियंत्रण गंदे पानी से होने वाली बीमारियों, ग्रामों में नई तकनीक अपनाकर रोजगार और आय के साधन बढ़ाने जैसी बातों के प्रति जनचेतना जगाना जरूरी है। विकास पत्रकारिता इस दिशा में बड़ा योगदान देकर इस कार्य को गति प्रदान कर सकती है। इसके लिए नीतियाँ ऐसी होनी चाहिए और आधारभूत ढाँचा ऐसा खड़ा किया जाना चाहिए कि ग्रामीण अंचल के विभिन्न क्षेत्रों में अधिकाधिक पूँजी नियोजन हो। शासन की ओर से सड़कों, बिजली वितरण, सिंचाई कृषि अनुसंधान एवं उसे खेतों तक पहुँचाने की पुख्ता व्यवस्था हो। भूमि संरक्षण, खाद बीज की व्यवस्था, कृषि उत्पाद की मार्केटिंग की व्यवस्था, ग्रामों में शिक्षा और स्वास्थ्य की उत्तम व्यवस्था, ग्रामीण कारीगरों, कृषि से जुड़े साधनों व उद्योगों का जाल फैले। पशुपालन, डेयरी उद्योग, मुर्गीपालन, मछली पालन, उनकी मार्केटिंग, रासायनिक खाद का प्रबन्ध हो। इस प्रकार ग्रामीण विकास कार्यक्रम ढाँचा खड़ा हो। विकास के साथ ही जुड़ा है विकास में आने वाली अड़चनों और उनसे उत्पन्न संकेतों का निराकरण। इस कार्य में पत्रकारिता उल्लेखनीय योगदान दे सकती है। माहौल बनाने में और जनजागृति उत्पन्न करने में उसकी भूमिका कारगर हो सकती है।

भारत में ग्रामीण विकास में तथा विकास कार्यों संबंधी खबरों का अखबारों एवं अन्य मीडिया में आना जरूरी है। इसलिए अर्थशास्त्र की भाषा में पत्रकार को उसका अंतरंग हिस्सा एवं एक किस्म की पूँजी मानना होगा। इसके साथ ही आवश्यक है कि विकास संप्रेषण को प्रभावी बनाया जाये, उसे नतीजों या उपलब्धि से जोड़ा जाए। मीडिया संबंधी ऐसी रणनीति बनाई जाए जो उसका लाभ पाने वालों के अनुकूल हो। रणनीति को सफल बनाने के लिए हर अवसर का लाभ लोगों की सहभागिता, उनके साथ सलाह मशविरा/सहयोग, उनकी विकास कार्यों में सहभागिता के लिए लामबंद किया जाए। ग्रामीण क्षेत्र के पत्रकार और वहाँ के अखबार ग्रामीण जनता के प्रति अपनी समझ से उनसे जुड़े मुद्दों को प्रकाश में लाकर उनकी प्रगति के लिए उत्प्रेरक का प्रभावी रोल अदा कर सकते हैं। इसमें शक नहीं कि ग्रामीण और शहरी विकास की रिपोर्टिंग करते समय पत्रकारिता की सीमाओं और क्षमताओं दोनों का ध्यान रखना जरूरी है। विकास के प्रति लोगों को प्रोत्साहित करना और उनकी इस कार्य में अभिरुचि पैदा करना विकास को गति देने में तथा उसे सार्थक बनाने में बड़े मददगार हो सकते हैं।

ग्रामीण अंचल की समस्यायें बड़ी जटिल हैं। लोग वहाँ जल संकट, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, शोषण, अकाल, अनाज वितरण व्यवस्था के दोषपूर्ण होने तथा

कुछ तत्वों के आतंक एवं मनमानी के कारण शहरों की ओर भागते हैं। कुछ बेहतर अवसरों की तलाश में भी जाते हैं। जिला प्रशासन की हालत सामान्य तथा दयनीय है। वहाँ पंचायतों को विकास के सारे पहलुओं से शिक्षा, पत्रकारिता, पर्यावरण, महिलाओं के उद्धार एवं बाल कल्याण से जोड़ा जाना चाहिए। विकास कार्य एकपक्षीय नहीं होते। इसमें मीडिया की जिम्मेदारी है कि ग्रामीणों को इस प्रकार प्रभावित करें कि वे बाँध के छोटे या बड़े होने के चक्कर में पड़ने के बजाय इस ओर ध्यान दें कि बाँध आज और कल कैसे उसका भविष्य संवार सकते हैं। जो संसाधन उपलब्ध हैं उनका सही उपयोग नहीं हो पाता। कुछ प्रभारी तत्वों की नीयत में खोट होती है। विकास पत्रकारिता लोगों को विकास प्रक्रिया, समझने एवं उसमें सहभागी होने का माहौल पैदा करने में सहायक हो सकती हैं। इसके लिए विकास से जुड़े संवाददाता, अखबारों के विकास ब्यूरो एवं विकास संपादकों की जरूरत है जो विकास प्रक्रिया को प्रोत्साहित करें। विकास सामाजिक परिवर्तन का मुख्य आधार है। कृषि संबंधी नई सोच, नई खोज जो विकास में सहायक है वह खबरों के माध्यम से जन-जन तक पहुँचना जरूरी है। ग्रामीण व कुटीर उद्योगों को नई तकनीक से जोड़कर उनके संरक्षण, विकास एवं मार्केटिंग के प्रोत्साहन को खबरों में स्थान मिलना चाहिए।

गाँव के समग्र विकास हेतु निम्नलिखित बातें ध्यातव्य हैं –

1) गाँव के विकास की नीति का ग्रामीणों द्वारा निर्माण
2) कार्यक्रमों में पारदर्शिता एवं संवेदनशीलता
3) गाँव के विकास से संदर्भित अधिकारियों की मानसिकता में परिवर्तन
4) गाँव की आवश्यकता तथा उपलब्ध साधन
5) गाँव वालों की परस्पर पूरकता और उनकी तैयारी
6) स्थानीय अभिक्रम से हो रहे कार्य और सरकारी कार्य
7) पहले के कार्यक्रम में कमजोरियाँ एवं प्रबलतायें
8) गाँव में उपलब्ध कच्चा माल एवं संसाधन तथा उसका उपयोग
9) गाँव के नवयुवकों में उद्यमिता का विकास
10) बैंक के माध्यम से लाभदायी योजना का वित्त पोषण
11) गाँव के प्रत्येक कार्यक्रम में सहभागिता, यह सहभागिता योजनाओं के सृजन, क्रियान्वयन, अनुश्रवण तथा अनुसरण में होगा।
12) कार्यक्रमों में पूर्वगामी एवं अधोगामी समन्वय
13) कार्यक्रमों को गुणवत्ता एवं विपणन से जोड़ते हुए संचालन

7.3 पर्यावरण शिक्षा

आज के दौर में 'पर्यावरण' शब्द ही पर्यावरण वैज्ञानिकों के लिए चेतावनी देता प्रतीत होता है। पर्यावरण के मुद्दे केवल एक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं, बल्कि पूरे

विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। आर्थिक सम्पन्नता की होड़ ने मानव में अपनी गतिविधियों द्वारा सम्पूर्ण मानवता के लिए एक खतरा पैदा किया है। प्रसिद्ध पर्यावरण वैज्ञानिक मैक्स निकल्सन के शब्दों में, चाँद तक पहुँचने का हमारा गर्व इसी बात से नष्ट हो जाता है कि हमने अपने स्वयं के ग्रह को एक गन्दी बस्ती बना दिया है। यह माना जाता है कि जब से मानव जीवन की शुरुआत हुई है तभी से उसने अपने वातावरण को प्रभावित करना शुरू किया है। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ, जनसंख्या बड़ी, नई तकनीकें आईं और पर्यावरण में आने वाले परिवर्तन और भी तेज हो गए। आज के दौर में यह परिवर्तन इतने तौर है कि सम्पूर्ण विश्व को इनके प्रति एक नई सोच व चेतना जागृत करनी पड़ी है। संचार की इस दिशा में क्या भूमिका है और क्या होनी चाहिए, इसकी चर्चा यहाँ करेंगे।

साधारण शब्दों में वातावरण हमारे इर्द-गिर्द की सब चीजें हैं। जिनमें व्याप्त पौधे-प्राणी सभी सम्मिलित हैं। जीव-विज्ञान शब्द कोष के अनुसार, "वातावरण उन सारी बाहरी परिस्थितियों का समूह है जिसमें जीव रहता है। पर्यावरण अधिनियम 1986 के अनुसार वातावरण में पानी, वायु और भूमि और वे सारे आपसी संबंध शामिल हैं जो पानी, वायु, भूमि, मानव जाति और दूसरे जीवित प्राणियों में विद्यमान हैं।

विश्व स्तर पर पर्यावरण का मुद्दा जून 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्टॉकहोम कांफ्रेंस में गंभीरता से उभरा। इस क्रांफ्रेंस ने विश्व की पर्यावरण समस्याओं के प्रति ध्यान आकर्षित किया और संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम का आरंभ हुआ। यूनेस्को द्वारा यूएनईपी के सहयोग से तबलीसी (Tablisi, Russia) में 1977 में विश्व की पहली अंतर्राष्ट्रीय कांफ्रेंस पर्यावरण शिक्षा के मुद्दों पर आयोजित की गई। 1992 में संयुक्त शब्द संघ की कांफ्रेंस रियो डि जिनेरो में आयोजित की गई जिसका मुख्य विषय पर्यावरण और विकास था।। 150 देशों के प्रमुखों ने एक साथ पर्यावरण बचाव के मुद्दों पर विचार-विमर्श किया। इस कांफ्रेंस में भी पर्यावरण शिक्षा को निरंतर विकास का साधन माना गया। 1972 की स्टॉकहोम कांफ्रेंस के बाद भारत सरकार ने भी पर्यावरण के मुद्दों के प्रति गंभीरता दिखायी और चौथी पंचवर्षीय योजना में वातावरण संबंधी मुद्दों को विशेष स्थान दिया गया। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रयत्नों से एक पर्यावरण कमेटी बनाई गई और 1974 में पहला कानून पारित किया जो प्रदूषण को रोकने हेतु था। (Prevention and Control of Pollution Act) 1980 में एर्यावरण मंत्रालय की स्थापना की गई। 1985 में वन तथा वन्य जीवन को भी इस मंत्रालय के अधीन किया गया।

सभी आयुवर्गों में पर्यावरण शिक्षा और चेतना उत्पन्न करने के लिए संचार की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। सेमिनारों, कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, शिविरों, बहु-प्रचार माध्यमों, अभियान आदि के माध्यम से अनौपचारिक पर्यावरण शिक्षा पर बल दिया गया है। पर्यावरण पत्रकारिता या ग्रीन पत्रकारिता की विचारधारा को प्रमुखता दी जा रही है। 1992 के रियो सम्मेलन में निरंतर विकास के प्रति अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता को दोहराया। मास मीडिया ने ऐसे मुद्दों के प्रति एक लहर पैदा की।

पर्यावरण मंत्रालय द्वारा 1982 में विकेंद्रित पर्यावरण सूचना प्रणाली नेटवर्क के रूप में एक पर्यावरण सूचना प्रणाली स्थापित की गई। इसका उद्देश्य आम जनता के लिए पर्यावरण सूचना के संग्रह, भंडारण, प्राप्ति तथा प्रसार के लिए कार्य करना है। मंत्रालय में स्थित मुख्य केंद्र के अलावा इस प्रणाली के इस विषय से संबंधित 25 केंद्र हैं जिन्हें पर्यावरण सूचना प्रणाली केंद्र कहा जाता है। मंत्रालय स्थित मुख्य केंद्र से पर्यावरण ए. सडेक्ट नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका निकाली जाती है जिसमें भारतीय संदर्भ में पर्यावरण अनुसंधान की जानकारी दी जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पर्यावरण संबंधी मुद्दों को उठाने व उन्हें जन-जन तक पहुँचाने में संचार की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। परन्तु भारत जैसे विशाल देश में जहाँ इतनी भौगोलिक असमानतायें हैं और प्रत्येक क्षेत्र के अपने पर्यावरण मुद्दे भी हैं। लेकिन इनके कवरेज का प्रतिशत अभी भी बहुत कम है और मीडिया को इस दिशा में निश्चित रूप से संगठित प्रयत्न करने होंगे।

वातावरण संबंधी शिक्षा (Environmental Education)

पर्यावरण पर हुई स्टॉकहोम कांफ्रेंस (1972) में यह अनुमोदन किया गया कि पर्यावरण शिक्षा को स्कूली पाठ्यक्रम में उचित स्थान मिलना चाहिए। 1975 की बेलग्रेड कांफ्रेंस में पर्यावरण शिक्षा की एक रूपरेखा तैयार की गई। पर्यावरण शिक्षा पर कई प्रकार के प्रायोगिक अध्ययन किये गये और इस विषय में एक सूचना प्रणाली भी स्थापित की गई। 1977 की तबलीसी (Tublisi, Russia) कांफ्रेंस में पर्यावरण शिक्षा पर एक अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम का आरंभ किया गया। इसमें पर्यावरण संबंधी कुछ धारणायें दी गईं –

(1) यह एक अन्तर वैषयिक रूप में होनी चाहिए क्योंकि इसका दायरा बहुत विशाल है।

(2) पर्यावरण शिक्षा को स्थानीय तथ्यों से भी जुड़ना होगा और शिक्षा के सरकार के स्तरों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

(3) पर्यावरण शिक्षा सभी वर्गों के लिए होनी चाहिए। जाति, उम्र या लिंग का कोई भेद नहीं होना चाहिए।

(4) पर्यावरण प्रशिक्षण के प्रोग्राम लागू करने चाहिए।

(5) इस क्षेत्र में शोध अध्ययन होना चाहिए।

(6) कई देशों में पर्यावरण शिक्षा के कुछ अंश स्कूली पाठ्यक्रमों में शामिल किए गए हैं। इन पाठ्यक्रमों को पढ़ाने के लिए अध्यापकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किए गए हैं। विद्वानों का विचार है कि पर्यावरण संबंधी समस्याओं का हल तब तक नहीं हो सकता जब तक हम सभी वर्गों के लोगों को जागृत नहीं करते। इसलिए आवश्यक है कि सभी प्रकार की संस्थायें जैसे - स्कूल, सरकारी कार्यालय, स्वयंसेवी संस्थायें, अध्यापक, प्रशिक्षण केंद्र आदि मिलकर एक नेटवर्क स्थापित करें।

मास मीडिया - प्रिंट, रेडियो और टेलीविजन पर्यावरण शिक्षा प्रसार में महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो रहे हैं। प्रत्येक शब्द को इन माध्यमों के क्षेत्रीय चैनलों का प्रयोग करके पर्यावरण शिक्षा का कोने-कोने तक प्रचार करना चाहिए। पर्यावरण सुरक्षा अब एक अंतर्राष्ट्रीय एजेंडा बन गया है। मीडिया को इस दिशा में निरंतर व गंभीर प्रयत्न करने होंगे। विकास के नाम पर हम अपने पर्यावरण का अस्तित्व खतरे में नहीं डाल सकते। हमें ऐसा विकास करना चाहिए जिससे सामाजिक समानता आए और जो पर्यावरण का पक्षधर हो।

7.4 शहरीकरण और विकास संचार

शहरीकरण एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है। सारी दुनिया में पहले लोग गाँवों में बिखरे थे। अपने-अपने कबीलों, समाजों, वर्गों और भौगोलिक सीमाओं तक सीमित थे। खेती, वन, वनस्पति, वनोपज उनकी जरूरतों को पूरा करते थे। नदी, नाले, कुएं, तालाब से पानी की पूर्ति होती थी। मवेशी उनकी खेती और दूध की जरूरत तथा यातायात की जरूरतें पूरी करते थे। ग्रामों में फैले कारीगरों, बढ़ई, लोहार, सुनार, मिस्त्री, बुनकर, नाविक आदि में समाज की अन्य जरूरतें परी होती थीं। सब एक दूसरे पर निर्भर करते थे। कुल मिलाकर गाँव व इलाके आत्मनिर्भर थे। उनकी जरूरतें वहीं पूरी हो जाती थी। लोगों की आवश्यकतायें भी सीमित थीं। सादगी के दौर में उनकी जरूरतें भी बहुत कम थीं। अनाज, वनोपज, फल, मेवे, खनिज तथा अन्य चीजों का व्यापार भी सीमित था। सभी ओर घरेलू उद्योग एवं छोटे उद्योग थे, जिनसे सबका काम चलता था। आर्थिक व्यवस्था विकेंद्रित थी। कुछ समुद्री तट के इलाकों में या सीमावर्ती इलाकों में व्यापार के लिए नावों और बाद में जहाजों से विदेशी लोग भी माल लाने और ले जाते थे। इससे व्यापार चलता था, लेकिन इस वजह से कुछ गाँव कस्बे एवं छोटे शहर का रूप लेने लगे थे, जहाँ वे एक देश में माल लाते थे और वहाँ से जरूरत का सामान ले जाते थे। इससे कुछ सीमित दायरे में आबादी बढ़ती रही और सीमित दायरे में आबादी की जरूरत के मुताबिक एक स्थान से दूसरे स्थान में पलायन होता रहा। फिर भी खेती आय का मुख्य साधन रही और इस कारण लोग ग्रामों में ही ज्यादा सीमित रहे। वे प्रकृति और प्राकृतिक साधनों पर ज्यादा निर्भर थे।

जनसंख्या के सामूहिक पलायन का एक बहुत बड़ा कारण तेजी से बढ़ती आबादी भी है। शहर और गांव में आबादी बढ़ रही है। शहर में रोजगार के कई साधन मिल जाते हैं। गांवों में तो सिर्फ खेती की जमीन है। पैदावार बढने के बावजूद जमीन पर निर्भर लोगों की संख्या बढ़ जाएगी, परिवार बढ़ने से जमीन बंटती जाएगी, तो सिर्फ खेती से गुजारा कैसे होगा? इसलिए भूख और गरीबी से परेशान होकर या जो कुछ संपन्न हैं, वे नए अवसरों की तलाश में शहरों की ओर भागते हैं। गांवों के संतुलित विकास पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया। इसलिए गांव की भीड़ शहरों की ओर भागती है।

शहरीकरण के दुष्परिणाम

आबादी में बेतहाशा वृद्धि से ग्रामों से शहरों की ओर पलायन का एवं शहरीकरण का एक दुष्परिणाम यह हुआ कि शहरों का फैलाव प्रतिवर्ष तीन से चार प्रतिशत तक खेती की जमीन को निगलता जा रहा है। शहरीकरण की तेज रफ्तार के कारण शहरों का गुणात्मक विकास नहीं हो पाता। खुली जमीन (Open land) की मात्रा घटती जाती है और नई-नई बीमारियाँ पैदा होती हैं। सड़कों पर भीड़-भाड़ यातायात की समस्या पैदा करती है। शहर फैलते जाते हैं।

आबादी के बढ़ने से सभी किस्म के संसाधनों का समुचित एवं समान बंटवारा नहीं हो पाता। भीड़ के कारण हवा और पानी दूषित होते हैं। पर्यावरण का संतुलन बिगड़ने से हवा और पानी दूषित होते हैं। लोगों के रहने एवं विस्तार के लिए और जमीन की माँग पूरी करने के लिए पेड़ों की ज्यादा कटाई होने से हरियाली नष्ट होती है। इसका असर भी मौसम पर पड़ता है। जंगलों की अंधाधुंध कटाई होने से पहाड़ भी नंगे हो रहे हैं। इससे भूस्खलन की मात्रा बढ़ी है। इस कारण अचानक बाढ़ आने से जन-धन की बर्बादी ज्यादा होने लगी है। पेड़ कट जाने से जमीन की मिट्टी को रोककर रखने और पानी के बहाव की तेजी को कम करने की शक्ति खत्म होती जाती है। आबादी की तेजी से वृद्धि से लोग कई बार ऐसी जगह बस जाते हैं, जो इलाके निचले हैं और बाढ़ की चपेट में आने का खतरा होता है। शहरों के मास्टर प्लान बनाने और उस पर अमल करने वालों की नींद तब खुलती है, जब बहुत देर हो चुकी होती है।

देश में भूमि सुधार कानून ईमानदारी से लागू ही नहीं किए गए। 1957 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में भूमि सुधार लागू करने और सारे देश मे तीन स्तरीय (ग्राम/तहसील या जिला स्तर) पंचायती राज व्यवस्था लागू करने का फैसला किया था। उसके अनुसार कई राज्यों में कानून भी बने लेकिन उन पर ईमानदारी से अमल नहीं हुआ। इस कारण ग्रामों में विषमता बरकरार रही। भूमिहीन किसानों की तादाद बढ़ती रही। जोतने वाले के पास जमीन नहीं आई। बिनोवा भूदान आंदोलन भी थम गया और भटक गया। लोक विवादित या मुकदमें में फंसी जमीन दान करते रहे या भूदान की जमीन जिस भूमिहीन को मिली उसका जीना मुश्किल कर दिया। इस लिए भूमि का केंद्रीकरण कुछ हाथों में रह गया।

संचार (Communication) की भूमिका

शहरीकरण की अंधी दौड़ में समस्यायें बढ़ रही हैं। आर्थिक विकास, औद्योगीकरण एवं तकनीकी विकास के कारण कुछ हद तक तो शहरीकरण को रोकना संभव नहीं है लेकिन उसे मर्यादित तो रखा जा सकता है। गाँवों के समुचित विकास एवं वहाँ आवश्यक सुविधाएं व साधन उपलब्ध कराकर, रोजगार के अवसर बढ़ाकर इस समस्या को गंभीर होने से तो बचाया जा सकता है। संचार की भूमिका के मद्देनजर समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित कदम उठाये जा सकते हैं –

1. ऐसा जनमत एवं माहौल बनाना, जिससे सरकार गाँधीजी के सपनों के अनुरूप गांवों का व्यवस्थित विकास करने को बाध्य हो। गाँवों के विकास को प्राथमिकता मिले।

2. उद्योगों के विकेंद्रीकरण तथा छोटे व कुटीर उद्योगों को संरक्षण मिल सके। ऐसी नीतियों के लिए वातावरण बनाया जाए। जनता को सच्चाई बतायी जाये।

3. मास्टर प्लान के साथ खिलवाड़ के खिलाफ जनमत का निर्माण।

4. सही एवं जनहित की नीतियों के साथ खिलवाड़ या सस्ती राजनीति के लिए उनके साथ तोड़ मरोड़ अथवा समझौतों के खिलाफ दमदारी से लिखकर जनता को सावधान किया जाए। उसे भले बुरे से अवगत कराया जाए।

5. शहरों में हवा और पानी के बढ़ते प्रदूषण से उत्पन्न खतरों को लेकर भी माहौल बनाना पड़ेगा ताकि लोग शहरों की ओर भागने से परहेज करें।

6. राजनेताओं, प्रशासन तंत्र, नगर निगम या नगर पालिका को सही नीति बनाने और उन पर अमल करने के लिए बाध्य करने के लिए माहौल बनाया जाए। इसमें बाधक तत्वों का भंडाफोड़ करके उनका जीना दूभर किया जाए ताकि पदासीन लोग ठीक आचरण करें। उनके गलत कारनामों के खिलाफ जनता को जगाया जाए।

7. प्रतिबद्ध एवं ईमानदार जन प्रतिनिधियों, समाजशास्त्रियों एवं अधिकारियों/कर्मचारियों को प्रोत्साहित करके उनका हौसला बढ़ाया जाए। तभी जनहित की नीतियों पर ईमानदारी से अमल होगा और हालात बदलेंगे।

8. दोषपूर्ण या बेतरतीब योजनाओं, अव्यवस्थित विकास के खिलाफ विशेषज्ञों की राय को प्रकाशित करके जनता के सामने सही चित्र प्रस्तुत किया जाए ताकि जनता को पता चले कि कौन उसका सही मायने में हितैषी है।

9. सरकारी या सार्वजनिक भूमि पर अवैध कब्जे, अवैध निर्माण तथा गंदी बस्तियों के फैलाव के खिलाफ जनमत बनाकर सरकार को कानून का कड़ाई से पालन करने को बाध्य किया जाए। गंदगी से पैदा होने वाली बीमारियों को प्रचारित किया जाए।

10. जनता के जो लोग या समूह नियम के विरोध में शहर को खराब या गंदा करते हैं, उनको बेनकाब किया जाए।

11. आबादी के लिए घातक उद्योगों का आबादी के पास निर्माण होने या जहाँ वे उद्योग हैं, वहाँ कालोनियाँ बनाने देने के खिलाफ आवाज उठाकर जनमत बनाया जाए।

12. ग्रामों में तेजी से विकास/शहरों की समस्याओं के चित्रण सही नीतियों के निर्धारण के लिए सशक्त जनांदोलन चलाने में अखबार एवं संचार जगत कारगर भूमिका निभा सकते हैं। गांव सुविधा सम्पन्न एवं खुशहाल होंगे तो नौकरी पेशा से रिटायर होने वाले यहाँ बसना पसन्द करेंगे। फार्म हाउस का चलन शहरी भीड़ से भागने की कसरत

है, तो यह सम्पन्न लोगों की विलासिता के प्रतीक भी बनते जा रहे हैं।

13. प्रतिभा पलायन के खिलाफ प्रबल जनमत बनाया जाय।

7.5 कमजोर वर्गों का उत्थान

देश में गरीबी के आंकड़ों को देखने से चौंकना स्वाभाविक है। विशेषज्ञों के अनुसार देश में वैश्वीकरण एवं तथाकथित सुधार कार्यक्रमों के बाद गरीबों की हालत बदतर हुई है। इसका एक कारण यह है कि ज्यादा आबादी गांवों में रहती है जिसकी आय का मुख्य साधन खेती है और जहाँ विकास की गति एवं मात्रा दोनों कम है। कुछ विशेषज्ञों के अध्ययन के अनुसार वर्ष 1999 में गरीबी रेखा से नीचे की जिंदगी बिताने वालों की संख्या देश की कुल आबादी का 43.01 प्रतिशत थी। यदि आज की आबादी को ध्यान में लें तो गरीबी रेखा से नीचे की जिंदगी बिताने वालों की जनसंख्या 43 करोड़ हो जाती है। यह आंकड़े भयावह हैं क्योंकि यह आंकड़ा तो 1951 की देश कुल आबादी से भी ज्यादा है। बड़ी तादाद में गरीब वर्ग को पीने का स्वच्छ पानी तक उपलब्ध नहीं है।

गरीबी के उन्मूलन के लिए कई घोषणाएं हुईं और कई कदम भी उठाये गये। पंचवर्षीय योजना पर कार्य 1951 से शुरू हुआ। ग्रामीण अंचल में सामुदायिक विकास कार्यक्रम को तहत ग्रामीण अंचल में विकास को बढ़ावा दिया गया। कमजोर वर्ग एवं अनुसूचित जातियों-जनजातियों को सरकारी, अर्द्धसरकारी क्षेत्रों में नौकरी में आरक्षण दिया गंया। उनके बच्चों को शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति एवं प्रवेश में आरक्षण दिया गया। समाजवाद और समाजवादी समाज रचना का नारा लगा और उसके तहत भी आर्थिक कदम उठाकर विषमता एवं शोषण को दूर करने के प्रयास हुए। कृषि उत्पादन को प्राथमिकता दी गई। भूमिहीनों को भूमि देने और "जो जोते उसकी जमीन" के नारे भी लगे। लेकिन उन सब पर अमल अधूरे मन से हुआ। निहित स्वार्थ सरकार पर हावी होते गए। इसी कारण भूमि सुधार पर ईमानदारी से अमल नहीं हुआ। ऊँच-नीच, छुआछूत, भेदभाव के कारण भी समुचित विकास नहीं हुआ। दोषपूर्ण नीतियों एवं आकर्षक घोषणाओं के अमल में दोहरेपन के कारण अमीर और ज्यादा अमीर होते गए तथा गरीब ज्यादा गरीब होते गए। इस कारण गैर बराबरी बढ़ती गई। समाजवाद एवं साम्यवाद के नारे कारगर नहीं रहे। तात्कालिक फायदे के लिए नीतियों-सिद्धान्तों पर समझौते होते गए।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

गरीबी उन्मूलन के लिए जरूरी है कि घोषित नीतियों और कार्यक्रमों पर ईमानदारी से अमल हो। सरकारी मशीनरी को चुस्त-दुरुस्त किया जाए। अंत्योदय कार्यक्रम में गति लानी होगी। किसानों द्वारा देश को अनाज के उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने के बाद अनाज का भंडार इतना हो गया है कि उसके रखने की जगह नहीं है। उत्पादित अनाज की गुणवत्ता ठीक नहीं होने से यह विश्व मार्केट में नहीं टिक पाता।

गुणवत्ता बढ़ाने और गेहूँ, चावल की बहुतायत से किसान को अन्य फसलें बोने के लिए प्रोत्साहित करना जरूरी है। जैसे देश में तिलहन की कमी है। उसे बोया जा सकता है। फलों एवं अन्य नकद फसलों की खेती को बढ़ावा दिया जा सकता है। कुछ मामलों में ग्रामीण एवं छोटे उद्योगों को बढ़ावा देकर गांवों में रोजगार के अवसर पैदा करना भी सहायक होगा।

गाँवों के लिए भरोसेमंद स्वास्थ्य सेवाओं, पीने के लिए पानी, शिक्षा की व्यापक व्यवस्था करनी होगी। खेती के लिए सिंचाई के साधन के बढ़ने से कृषि उत्पादन बढ़ेगा। उन्हें सड़कों से जोड़ना होगा ताकि किसानों की जरूरत की चीजें गांव तक और किसान की फसल मंडियों तक आसानी से पहुँच सके। किसान को उपभोक्ता वस्तुएं उचित दामों में मिल सके और उसे फसल के उचित दाम मिल सकें। ग्रामीण गरीब को अनाज की सुरक्षा प्रदान करनी होगी। गरीब से ज्यादा गरीब परिवारों की पहचान कर उन्हें कम दाम पर अनाज उपलब्ध कराना होगा। अंत्योदय योजना की गति तेज करनी होगी। इसके अलावा गरीबी उन्मूलन के लिए कमजोर वर्गों के शोषण, उनसे बेगार लेने, उचित मजदूरी नहीं देने, शक्ति सम्पन्न तत्वों द्वारा उनकी कमजोरी का गलत फायदा उठाकर उन्हें पिछड़ा एवं मोहताज बने रहने के लिए बाध्य करने के खिलाफ भी कारगर तथा शक्तिशाली कार्यवाही करनी होगी। इसके लिए जहाँ सरकारी तंत्र को दुरुस्त करने की जरूरत है, वहीं राजनीतिक दलों को भी वोट बैंक की स्वार्थपूर्ण एवं घटिया नीति छोड़कर प्रतिबद्ध होकर कार्य करना होगा। गरीब वर्ग सम्मान के साथ जिंदगी बिता सके, इसके लिए उसे रोजगार के अच्छे अवसर प्रदान करने होंगे।

7.6 शिक्षा एवं साक्षरता

शिक्षा के प्रसार के लिए सतत् प्रयास होते रहे हैं। इसके लिए बजट और योजना का प्रावधान भी बढ़ता रहा है। पहले शिक्षा केवल राज्यों का विषय था। अब यह केंद्र और राज्यों दोनों की संयुक्त जिम्मेदारी है। पहली पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के लिए 153 करोड़ रुपये का प्रावधान था जो आठवीं पंचवर्षीय योजना में बढ़कर 7443 करोड़ और नवीं पंचवर्षीय योजना में 20381 करोड़ 64 लाख हो गया। इसके अलावा प्राथमिक शिक्षा में केंद्रीय योजनाओं के लिए 64.6 प्रतिशत खर्च केंद्र दे रहा है। 110 करोड़ रुपये प्रौढ़ शिक्षा के लिए और 452 करोड़ रुपया तकनीकी शिक्षा के लिए केंद्र दे रहा है। दोपहर के भोजन के लिए केंद्र में नवीं योजना में 4526 करोड़ 74 लाख रुपये का प्रावधान किया गया था।

आजादी के बाद शिक्षा

इसके बावजूद भी अभी तक यानी आजादी के 54 वर्षों में भी सबको शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सका है। ग्रामीण अंचल में साक्षरता में वृद्धि हुई है। लेकिन स्कूलों की इमारत या शिक्षकों के अभाव में लक्ष्य पूरा नहीं हो सका है। आदिवासी-वनवासी

अंचलों में तो स्कूलों की हालत और भी ज्यादा दयनीय है। शिक्षा के अभाव में अंधविश्वास, कुरीतियों, दकियानूसी विचार तथा रूढ़ियों में लोग जकड़े रहते हैं। शिक्षा के अभाव में रोजगार के अवसर नहीं मिलते। यदि किसान का बेटा शिक्षित हो जाए तो आधुनिक तौर-तरीकों एवं साधनों से वह बेहतर खेती कर सकता है। यदि गांवों की जरूरत के अनुरूप ग्रामीणों को तकनीकी शिक्षा उपलब्ध कराई जाए तो भी रोजगार मिल सकता है। दुग्ध योजना, मछली पालन, मुर्गी पालन आदि का कार्य गांवों में बसने से लोगों को रोजगार मिला है। जहाँ बिजली आ गई है वहां कारीगरों को तकनीकी ट्रेनिंग से फायदा हो सकता है।

7.7 सारांश

विकास की पहचान उसकी मात्रा और गति से होती है। जनता के बड़े वर्ग द्वारा इसके साथ जुड़ने से इसका व्यापक स्वरूप दिखाई देता है। आज विकास की तेज गति अधिकाधिक जनता के हक में दिखाई देती है। यही कारण है कि 'सबके लिए शिक्षा' सबको रोजगार, काम करने का अधिकार, 'सबके लिए स्वास्थ्य', 'नंगे पांव डॉक्टर' हर हाथ को काम और हर खेत को पानी, सबको न्याय, सुलभ व सस्ता न्याय, जैसे लक्ष्यों और कार्यक्रमों की गूँज सुनाई देती है। पिछड़े इलाकों में भी विकास की तीव्र इच्छा पैदा हुई है।

इक्कीसवीं सदी में मीडिया का रोल इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या वह लोगों को बेहतर जिंदगी के लिए संघर्ष करने के लिए मदद करने को तैयार है? या क्या वह सामाजिक, आर्थिक जैसे बुनियादी एवं मुख्य मुद्दों को दरकिनार करके प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनियों अथवा सत्ताधारियों या माफिया गिरोहों के प्रभाव में आकर अपने बुनियादी फर्ज से भटक जाएगा। विकास के इस नाजुक दौर में संचार की जिम्मेदारी बहुत बड़ी है। समाज को सूचित करने और उसका मनोरंजन करने के साथ ही मीडिया का काम उसे जागरूक बनाना भी है।

7.8 शब्दावली

ग्रामीण पत्रकारिता : विकास के विविध आयामों की ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में पड़ताल करके उसकी नियमित जानकारी का प्रचार-प्रसार करना ग्रामीण पत्रकारिता के अंतर्गत आता है।

यू.एन.ई.पी. : यूनाइटेड नेशन्स इनवायरमेंटल प्रोग्राम।

जनसंख्या पलायन : गांवों से शहरों की ओर उन्मुख होना।

सामूहिक पलायन : कई बार गांवों से पलायन समूह में होता है। यह पलायन किसी प्राकृतिक आपदा के चपेट में आने के कारण संभावित होता है।

7.9 संदर्भ ग्रन्थ

दया कृष्ण, पॉलिटिकल डेवलपमेंट (दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1979)

रजनी कोठारी, रिथिंकिंग डेवलपमेंट, (दिल्ली, अजन्ता, 1988)

आर. एस. यादव, "गांधीयन वर्ल्ड आर्डर मॉडल : 'एन अल्टरनेटिव पेराडाइज फॉर पीस' गाँधी मार्ग जनवरी-मार्च, 1996

ई. एफ. शुमेखर, स्माल इज ब्यूटीफुल (लंदन 1973)

7.10 प्रश्नावली

लघुत्तरीय प्रश्न –

(1) ग्रामीण पत्रकारिता के क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए।

(2) पर्यावरण अधिनियम 1986 के अनुसार वातावरण की परिभाषा दीजिए।

(3) पंचायती राज व्यवस्था को लागू करने का फैसला पहली बार कब किया गया?

(4) प्रतिभा पलायन पर मीडिया द्वारा किस प्रकार रोक लगाई जा सकती है।

(5) चीन में मीडिया के विकास और मॉडल की चर्चा कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

(1) गरीबी उन्मूलन में संचार की भूमिका पर चर्चा कीजिए।

(2) गांवों के समग्र विकास हेतु आवश्यक मानदंड की स्थापना कीजिए।

(3) विश्व स्तर पर पर्यावरण को मुद्दा बनाने में रियो डि जिनेरो सम्मेलन की क्या भूमिका है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

(1) पर्यावरण संबंधी स्टॉकहोम कांफ्रेंस मुद्दा कब हुआ?

(क) जून, 1972 (ख) जनवरी, 1972

(ग) जून, 1974 (घ) जनवरी, 1970

(2) पर्यावरण शिक्षा पर विश्व की पहली कांफ्रेंस कहाँ और कब आयोजित हुई?

(क) तबलीसी, 1977 (ख) हालैंड 1973

(ग) डेनमार्क 1970 (घ) इनमें से कोई नहीं

(3) भारत में पर्यावरण मंत्रालय की स्थापना की गई?

(क) 1980 (ख) 1985

(ग) 1984 (घ) 1983

उत्तर –

(1) (क)

(2) (क) (3) (क)

इकाई - 8 विकास संचार की रणनीति

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 विकास संचार की रणनीति

8.3 नियोजन के दबाव और जटिलतायें

8.4 आयाम और अवयव

8.4 विकास सहायक (Development aid)

8.4.1 मास मीडिया

8.4.2 ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता

8.4.3 विकास पत्रकारिता के क्षेत्र में अनुसंधान

8.5 भारत में विकास व पत्रकारिता

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.9 प्रश्नावली

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके आप,

- विकास संचार की रणनीति के विभिन्न चरणों को जान सकेंगे।
- नियोजन में आने वाली कठिनाइयों से परिचित हो सकेंगे।
- विकास में सहायक मास मीडिया और ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता की भूमिका जान सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

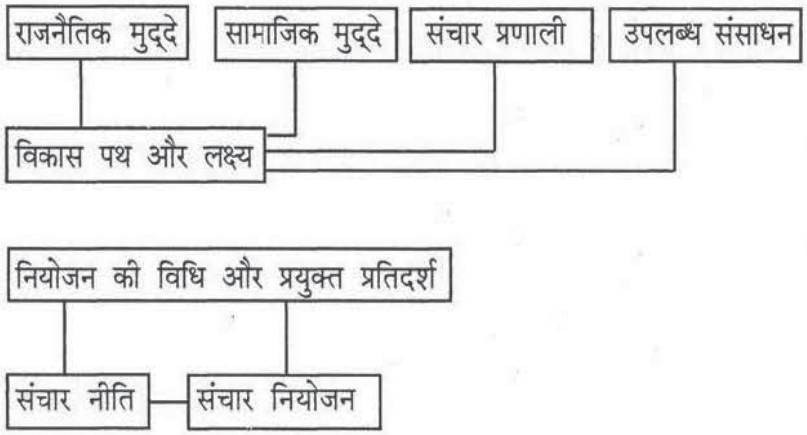
नियोजन मनुष्य के अवदान पर आधारित मानवीय गतिविधि है। यह विकल्पों की श्रृंखला के साथ भविष्य की कार्ययोजना निर्धारित करने की विधि है। विकास संचार के द्वारा भी मानवीय गतिविधियों को संगठित किया जा सकता है जिससे संचार के साधनों का सार्थक सदुपयोग हो सके। इस प्रकार किसी विशेष समाज के विकास लक्ष्यों, साधन और प्राथमिकताओं के अनुरूप संचार की नीतियों का निर्माण किया जा सकता है और मौजूदा आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक संगठन के विशेष संदर्भ में रणनीति बनाई जा

सकती है। आधुनिक समाज में अनेक समस्यायें हैं जिनका समाधान किया जाना है। अग्रिम नियोजन से नीति निर्धारकों को सार्थक प्रभावित, विकसित और नियंत्रित करने में पर्यावरण को मदद मिलती है और उत्तम जीवन स्तर को प्राप्त किया जा सकता है।

8.2 विकास संचार की रणनीति

विकासात्मक संचार नियोजन के समक्ष अनेक जटिलतायें हैं। नियोजन के तत्व पृथक् और स्वतंत्र गतिविधियाँ न होकर गत्यात्मक रूप से परस्पर निर्भर होती है। अतः नियोजन के अंतर्गत किसी विशेष देश जिसमें नियोजन किया जाना है, में विकास के तरीके और लक्ष्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। नियोजन में राष्ट्र की राजनैतिक विचारधारा, मुद्दे, सामाजिक मुद्दे, संचार प्रणाली की स्थिति और सिद्धान्त जिनका अनुपालन किया जाना है और उपलब्ध संसाधन जिस पर नियोजन और विकास दोनों निर्भर करते हैं, का ध्यान रखा जाता है।

निम्नलिखित चार्ट से नियोजन की कठिनाइयों का अनुमान लगाया जा सकता है –



विकास संचार नियोजन की कठिनाइयाँ

8.3 विकास संचार नियोजन के आयाम और अवयव

किसी राष्ट्र द्वारा अपनाया गया विकास पथ और राष्ट्रीय विकास लक्ष्य जाहिर तौर पर संप्रेषण नियोजन को प्रभावित करते हैं। जब लक्ष्य माध्यम एक दूसरे के तारतम्य में हो तो यह और भी प्रासंगिक हो जाता है। यदि राष्ट्रीय लक्ष्य स्थानीय सहभागिता बढ़ाने के लिए हो तो ऐसे में संचार साधनों तक क्षेत्रीय अथवा राष्ट्रीय संदेशों का कोई अर्थ नहीं होगा।

विकास संचार योजनाओं के निम्नलिखित आयाम हैं –

(1) प्रत्येक समाज के संदर्भ में संप्रेषण आवश्यकता और संसाधनों की पहचान करना, संप्रेषण आवश्यकता का विश्लेषण करना, विशेष रूप से मौजूदा सामाजिक

संरचना में संचार के ढाँचे के लिए।

(2) लक्ष्य को विशेषीकृत करना।

(3) विकास रणनीति का नियोजन करना, माध्यम और संदेश का उपयुक्त संयोग चयनित करना ताकि निश्चित श्रोता/दर्शक तक पहुँचा जा सके और निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। उपयुक्त रणनीति का चयन करने से पहले उसका लाभ, लागत आदि पर विचार कर लेना चाहिए।

(4) कार्यान्वयन हेतु योजना का निर्माण, चयनित रणनीति को लागू करने के लिए समुचित स्कीम का निर्माण करना।

(5) अन्ततः रणनीति के मूल्यांकन के लिए भी योजना का निर्माण करना होता है। इसके तहत उचित उपाय द्वारा संसाधनों को वितरित किया जाता है और इससे स्पष्ट होता है कि रणनीति कितनी सुचारू रूप से चल रही है। इसके अंतर्गत यह देखा जाता है कि रणनीति और लक्ष्य में क्या संबंध है?

8.4 विकास सहायक (Development Aid)

विकास के सहायक की दो महत्वपूर्ण आवश्यकतायें हैं –

(i) मास मीडिया (ii) ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता

8.4.1 मास मीडिया

व्यापक पैमाने पर जनता में परिवर्तन का आकांक्षी एक्सटेंशन वर्कर (Extension Worker) को सबसे पहले अपनी पहुँच जन-जन तक स्थापित करनी पड़ेगी। कोई भी उन तक पहुँच कर उनको शिक्षित करके उनमें जनमाध्यमों द्वारा इच्छित व्यावहारात्मक परिवर्तन ला सकता है। इस प्रकार नये पुराने सभी माध्यमों के समक्ष उनमें शामिल होने का अवसर उपलब्ध है। भारत में जनमाध्यमों को ग्रामीण क्षेत्रोन्मुखी होना चाहिए क्योंकि यहाँ 76% जनता गांवों में ही निवास करती है। संचार के साधनों के व्यापक प्रसार के बावजूद, इसकी पहुँच अभी सीमित ही है, विशेष रूप से समाज के कमजोर तबकों के संदर्भ में। इसके निम्नलिखित कारक हैं –

1. न्यूनतम साक्षरता दर

2. भाषाई अवरोध

3. न्यूनतम क्रय सामर्थ्य

4. यातायात के सीमित साधन होने से समाचार पत्र आदि आसानी से नहीं पहुंच पाते और रेडियो, टीवी आदि की भी देखभाल नहीं हो पाती।

5. मीडिया नीति में उद्देश्यपरक संचार की प्रमुखता के बावजूद संगत सूचनाओं का अभाव है।

रेडियो और टीवी तकनीकी की लोगों तक पहुँचने की अपार क्षमता है। इसके साथ बड़े जनसमूह तक बहुत जल्दी और कम लागत में पहुंचा जा सकता है। उसी प्रकार मुद्रित माध्यमों में भी आधारभूत क्षमता निहित है। परन्तु इस प्रक्रिया में अनेक असंगतता है और पृष्ठप्रेषण भी नहीं मिलता है। मास मीडिया की क्षमता को सामाजिक और विकास का साधन समझने के लिए –

• मीडिया के लोगों को अपने तरीके में बदलाव लाकर लोगों की स्वीकार्यता में वृद्धि करना चाहिए।

• संचार की नीतियों में स्थानीयता का तत्व समाहित होना चाहिए, व्यवस्था का विकेंद्रीकरण किया जाना चाहिए जिससे पृष्ठपोषण (Feed back) उपरिगामी है।

• छोटे जनमाध्यमों का ग्रामीणों के हित में पूर्ण विदोहन किया जाना चाहिए।

• सम्प्रेषण की समग्र रणनीति अपनाई जानी चाहिए।

8.4.2 ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता (Village land worker)

मास मीडिया के विकास संदेशों के प्रसारण में उभर कर आने से मानवीय पक्ष उपेक्षित होता जा रहा है। सिर्फ संचार के साधनों द्वारा सूचना पहुँचा देने से लोगों को प्रेरित, सक्रिय और परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इसमें ग्राम विकास कार्यकर्ता एक माध्यम साबित हो सकता है जिससे जमीनी स्तर पर संप्रेषण किया जा सके। उसके पास ग्रमीणों से बातचीत करने का व्यक्तिगत सम्पर्क करके सीधी वार्ता करने का गुण होता है। इस तरह ग्राम विकास कार्यकर्ता निम्नलिखित तरीके से विकास की प्रक्रिया में सहयोगी होना है –

(1) केंद्र से महत्वपूर्ण सूचनाओं, तकनीकी और कौशल को ग्रहण करके उसे ग्रामीणों तक पहुँचा सकता है। इसी प्रकार ग्रामीणों का पृष्ठ पोषण (Feed back) समस्याएं आवश्यकतायें और इच्छायें केंद्रीय एजेंसी तक पहुँचा जा सकता है।

(2) ग्रामीणों को नवाचारों को अपनाने के लिए प्रेरित कर सकता है।

(3) इन्हें अपनाने में सामाजिक-सांस्कृतिक अवबाधाओं को समझ कर उन्हें दूर करने के उपाय सुझा सकता है।

(4) केंद्रीय एजेंसी से आर्थिक और तकनीकी सहयोग उपलब्ध कराना।

इस प्रकार ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता अपने गांव की खिड़कियों को बाह्य संचार हेतु खोल देता है। वह संचार के चैनलों को नियंत्रित कर सकता है। इस तरह से ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता की भूमिका विकासशील राष्ट्रों के गांवों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है।

8.4.3 विकास पत्रकारिता के क्षेत्र में अनुसंधान

विकास पत्रकारिता, मानवीय संप्रेषण की उद्देश्यपरक, लक्ष्योन्मुखी और श्रोता/दर्शक आधारित संप्रेषण की शाखा है। इसमें शोध के निम्नलिखित क्षेत्र हो सकते हैं –

- संप्रेषण माध्यम किस प्रकार के होने चाहिए? उनसे किस प्रकार इच्छित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं?
- विकास से सम्बन्धित कौन-कौन सी मुख्य समस्यायें हैं जैसे भूख, बी मारी, निरक्षरता आदि?
- ग्रामीण क्षेत्रों में संप्रेषण के कौन-कौन से साधन हैं?
- विकास से जुड़े हुए कार्यों के लिए किस प्रकार के सैटेलाइट प्रणाली को प्रयुक्त किया जा सकता है।
- विकास योजनाओं की सफलता/असफलता के क्या कारण हैं?

सरकार की स्वास्थ्य संबंधी नीतियों का केंद्र प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता हैं जो सरकारी स्वास्थ्य संगठनों और ग्रामीणों के मध्य संपर्क बिन्दु है। ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यक्रमों की सफलता ही निम्नलिखित आवश्यकतायें हो सकती हैं –

- कार्यक्रमों को समग्र पैकेज के रूप में लिया जाना चाहिए।
- संचार के प्रयासों को सहयोग प्रदान किया जाना चाहिए।
- कार्यकर्त्ताओं का जोर आधारभूत संरचना, संचार द्वारा अभिप्रेरण और व्यक्ति के प्रशिक्षण पर होना चाहिए।
- सतत् मूल्यांकन और पृष्ठ पोषण किसी कार्यक्रम की सफलता के लिए आवश्यक है।

भारत में करीब 50 सालों के विकास के अनुभव से ज्ञात होता है कि यह केवल आर्थिक मॉडल, वैधानिक प्रक्रिया या प्रशासनिक सुधारों के बूते की बात नहीं है। यह कार्य अभिप्रेरण, योजना निर्माण, कार्यान्वयन, व्यापक जन-सहयोग और सहभाग द्वारा कुशलता के साथ संपन्न किया जा सकता है। इस क्षेत्र में महिलायें महत्वपूर्ण होती हैं। भारत की महिलाओं का नैतिक बल, उनके अपने घर में, पति पर, बच्चों पर इतना सशक्त होता है कि पूरे विश्व में अन्यत्र ऐसे दृष्टांत दिखाई नहीं देते। उनमें दूसरों से अपने अनुसार कार्य करा लेने की क्षमता अद्वितीय होती हैं। इसलिए स्त्री संसाधनों को इस प्रकार उपयोग में लाना चाहिए कि वह विकास प्रक्रिया का महत्वपूर्ण और अखण्ड हिस्सा बन सके।

8.5 भारत में विकास संचार (Development Communication in India)

भारत एक वृहत उपमहाद्वीप है जिसकी जनसंख्या तकरीबन सौ करोड़ है। इसमें 16 मुख्य क्षेत्रीय भाषायें और लगभग 100 बोलियाँ हैं। इतने वृहत और विषम परिस्थितियों के देश में संप्रेषण को सम्यक् रूप से स्थापित करना और क्षेत्रीय और स्थानीय विभिन्नताओं से पूर्ण संचार रणनीति की आवश्यकता है। भारत में नियोजकों को इस बात की जानकारी देर से हुई कि विकास की समग्र प्रक्रिया में संचार का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ 76% जनता ग्रामीण परिवेश में निवास करती है।

वास्तविक समस्या यह है कि लोगों की आकांक्षाओं के अनुरूप और विकास के लिए भ्रमणकारी मीडिया की आवश्यकता है। यह ध्यान में रखने योग्य है कि भारत में संप्रेषण की प्रमुख अवबाधा निरक्षरता है। भारत में कतिपय प्रचलित मीडिया निम्नलिखित हैं –

- रेडियो - कृषि और ग्राम परिवर्तन के कार्यक्रमों की भारतीय भाषाओं और बोलियों में व्यापक प्रसारण।
- टेलीविजन सिर्फ 5% समय ही ग्रामीण कार्यक्रमों को देता है। शेष मनोरंजन, सिनेमा और समाचार के लिए है।
- हिन्दी सिनेमा आज भी व्यापक स्तर पर लोगों के मनोरंजन का ही साधन है।
- प्रेस की पहुँच मुख्यत: शहरी और उप-शहरी स्थानों तक है क्योंकि ग्रामीण जनसंख्या में साक्षरता की दर न्यूनतम है।
- भारत सरकार की क्षेत्रीय प्रचार एकक और सांग एण्ड ड्रामा डिवीजन द्वारा विकास के संदेश लोक संगीत और फिल्म के रूप में प्रसारित किए जाते हैं। परन्तु यहाँ कर्मचारियें की संख्या सीमित है और बड़े जन समूह की आकांक्षाओं पर पर्याप्त नहीं हो पाते।
- ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ताओं की संख्या भी कम है। प्राय: इनका कार्य जनोन्मुखी नहीं होता।

आज तक ग्राम्य विकास की विधि विशेषीकृत रही है जिसमें संचार सहायक भूमिका में होता रहा है। भारत में अभी भी विकास के प्रयासों में सूक्ष्म मीडिया (little media) जैसे टेप-कैसेट, 8 मिमी. फिल्म और स्लाइड शो का पूर्ण दोहन नहीं किया जा सका है। इनका प्रयोग ग्रामीण जनसंख्या के अनुरूप किया जा सकता है और ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता इनका प्रयोग भी आसानी से कर सकते हैं।

यह आशा की जाती है कि आने वाले समय में संचार नीतियाँ और नियोजन इस देश में स्थानीय सरोकारों को ध्यान में रखते हुए निमित्त किए जायेंगे। इस प्रकार इनका समूचा ढाँचा विकेंद्रित हो जाएगा और पृष्ठ पोषण (Feed back) अपरिगामी हो सकेगा।

8.6 सारांश

इस तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता कि हर युग में और हर किस्म की शासन प्रणाली में संचार साधनों या सूचना के तौर-तरीकों का इस्तेमाल बहुत प्रमुख हथियार के रूप में होता रहा है। प्राचीन भारत में भले ही रामायण और महाभारत काल रहे हों या विक्रमादित्य और मौर्यकाल हों, में सूचना पहुँचाने और एकत्रित करने की विभिन्न रणनीतियाँ अपनाई जाती रही हैं। आधुनिक युग में भी सभी किस्म की शासन प्रणालियों, निगमों और संगठनों में मीडिया का महत्व विभिन्न संगठनों के अन्य बुनियादी जरूरतों के बराबर महत्वपूर्ण रहा है। मीडिया के योगदान की झलक सरकार के किसी भीं संस्थान के गठन और विकास में दिखती है। जनसंचार से किसी भी कठिन अथवा नकारात्मक परिस्थिति को सकारात्मक अवसर में परिवर्तित् करने में सहायता मिलती है। मीडिया का लोकतंत्र, विकास और जनशिक्षा से निकट का संबंध है। लोकतंत्र तब ज्यादा लोकप्रिय एवं समर्थ बन जाता है, जब विकास की प्रक्रिया में जनता का सहयोग भी पूरी तरह मिल जाता है। अत: समुचित नियोजन प्रक्रिया और संचार की सहभागिता के साथ ही राष्ट्रीय विकास की सर्वांगीण बनाया जा सकता है।

8.7 शब्दावली

नियोजन – राष्ट्रीय संसाधनों के सम्यक् विदोहन के लिए बनायी गयी लक्ष्योन्मुखी कार्यनीति।

क्रय सामर्थ्य – नागरिकों की किसी सुविधा भोग की आर्थिक सामर्थ्य। इसके अभाव में प्रायः संचार साधनों की पहुँच नहीं हो पाती।

ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ता – गाँवों के स्तर पर विकास कार्यक्रमों को प्रसारित करने वाले कार्यकर्त्ता।

8.8 संदर्भ ग्रन्थ

(1) Issues in mass Communication - J. S. Yadav & Pradeep Mathur

(2) भारत 2005 – सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

(3) Media and Communication – Ved Prakash Gandhi

(4) Environmental Management – Beena Devi Singh

8.9 प्रश्नावली

लघु स्तरीय प्रश्न –

(1) विकास का नियोजन से क्या संबंध है?

(2) नियोजन में किन बातों का ध्यान रखा जाता है?

(3) रणनीति एवं लक्ष्य में क्या संबंध है?

(4) विकास सहायकों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(5) न्यूनतम साक्षरता दर किस प्रकार विकास में बाधा है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

(1) नियोजन पर पड़ने वाले दबावों की चर्चा कीजिए।

(2) विकास संचार नियोजन के कौन-कौन से मुख्य अवयव हैं?

(3) विकास सहायक की संप्रेषण में क्या भूमिका है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

(1) केंद्रीय एजेंसी से आर्थिक और तकनीकी सहयोग उपलब्ध कराने का दायित्व किस पर है?

(i) ग्राम स्तर कार्यकर्ता (ii) मीडिया (iii) नियोजक (iv) कोई नहीं

(2) विकास संचार का पृष्ठपोषण होता है –

(i) अधोगामी (ii) ऊर्ध्वगामी (iii) समानान्तर (iv) लम्बवत्

(3) विकास कार्यक्रम की सफलता के सूत्र हैं –

(i) सतत् मूल्यांकन (ii) पृष्ठ पोषण (iii) दोनों (iv) कोई नहीं

उत्तर –

(1) (i)

(2) (ii)

(3) (iii)

इकाई - 9 विकास संचार में नई सूचना पद्धति

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 विकास संचार में मीडिया का उपयोग

9.3 संचार तकनीक का विकास

9.4 विकास और सूचना का अंतर्सम्बन्ध

9.5 भारत में संचार की स्थिति

9.6 संचार के पुरातन तरीके

9.7 फिल्मों का इस्तेमाल

9.8 नई चुनौतियाँ

9.9 सिनेमा एवं केबल टेलीविजन

9.10 इंटरनेट क्रान्ति और समग्र राष्ट्रीय विकास

9.11 एफ. एम. रेडियो

9.12 सामुदायिक रेडियो

9.13 सारांश

9.14 शब्दावली

9.15 संदर्भ ग्रन्थ

9.16 प्रश्नावली

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके आप –

1. विकास संचार में अधुनातन सूचना पद्धतियों से परिचित हो सकेंगे।
2. भारत में संचार की स्थिति से परिचित हो सकेंगे।
3. भारत में संचार की तकनीकी के विकास क्रम को जान सकेंगे।
4. सिनेमा एवं केबल टेलीविजन के उद्भव व विकास को जान सकेंगे।
5. इंटरनेट और राष्ट्रीय विकास के अन्तर्सम्बन्ध से दो-चार हो सकेंगे।
6. एफ.एम. रेडियो के विकास से परिचित हो सकेंगे।
7. सामुदायिक रेडियो के विकास और संभावनाओं की पड़ताल कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

हमें किस प्रकार के जनमाध्यमों की जरूरत है और हमें किस प्रकार के जनमाध्यमों की दुनिया में धकेला जा रहा है। इन सबका अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी एवं फ्रांसीसी माध्यम विशेषज्ञों की विचारधारात्मक व्याख्याओं की रोशनी में विवेचन किया जा सकता है। भारत में स्वाधीनता संग्राम की समाप्ति के समय जहाँ एक ओर सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया चल रही थी। भारतीय राष्ट्रीय योजना समिति (1948) का पंडित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में गठन किया। इस समिति ने भावी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का खाका तैयार किया। वहीं पर उसने यह बात गंभीरता से महसूस की थी कि अर्थव्यवस्था के विकास के लिए संचार माध्यमों का विकास जरूरी है। देश के विकास प्रक्रिया में संचार को एक महत्वपूर्ण औजार माना तथा इस दिशा में पहले गंभीर प्रयास के रूप में राष्ट्रीय योजना समिति ने संचार के सवाल पर विचार के लिए स्पेशल पैनल का गठन किया। इस पैनल ने जो दस्तावेज तैयार किया उसमें विकासमूलक संचार माध्यम के तौर पर आकाशवाणी को विस्तार देने की सिफारिश की गयी थी। भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप विकासमूलक संचार की अवधारणा का इस दस्तावेज में निरूपण किया गया था।

दूसरा महत्वपूर्ण दस्तावेज इंदिरा युग में प्रसिद्ध वैज्ञानिक होमी भाभा एवं विक्रम साराभाई ने तैयार किया, 'जिसे विकास के लिए दूरदर्शन' नाम से जाना जाता है। इन दोनों ही दस्तावेजों में इस धारणा पर बल दिया गया कि जनसंचार माध्यमों के विकास के बगैर अर्थव्यवस्था का विकास संभव नहीं है। विकास की बहुआयामी संभावनाओं की खोज एवं निर्माण में जनसंचार माध्यम प्रभावी भूमिका अदा कर सकते हैं, वहीं पर जनशक्ति को विकास की प्रक्रिया का हिस्सेदार बनाने में संचार माध्यमों से मदद मिलती है।

संचार की संरचना, उसका कथ्य एवं संप्रेषण का अर्थव्यवस्था के साथ गहरा संबंध होता है। यह रिश्ता बहुआयामी है। सूचनाओं की निरंतरता का अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। यह विकास की रीढ़ है। इससे अर्थव्यवस्था के विकास, राष्ट्रीय विकास दर की इससे अर्थव्यवस्था के विकास, राष्ट्रीय विकास दर की लक्ष्य प्राप्ति एवं बड़े पैमाने पर रोजगार जुटाने में मदद मिलती है।

संचार माध्यमों की यह भी खूबी है कि उसके अध्ययन से संबंधित देश की जीवन शैली, जीवन मूल्य आदि का भी पता चलता है। उसे नयी जीवन शैली में डालने में मदद मिलती है : संबंधित देश के विकास एवं उपयोग स्तर का पता चलता है।

इस प्रक्रिया में खासकर वर्गीय समाजों में व्याप्त विभिन्न जीवन शैलियों, पद्धतियों एवं मूल्यों की उपेक्षा की जाती है तथा उपभोक्तावादी संस्कृति पर बल दिया जाता है। इसके कारण संप्रेषण माध्यमों से संस्कृति को गंभीर खतरा उठ खड़ा हुआ है। जबकि संचार माध्यमों की ताकत का विकास के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

विकास मूलक संप्रेषण की दिशा एवं दशा का निर्धारण करते समय इस खतरे से सावधान रहने की जरूरत है। जैसा कि माना जाता है कि संचार माध्यमों का प्रतिगामी

एवं खण्डित सूचना प्रसार के लिए दुरुपयोग किया जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में भारत की संचार प्रणाली की सामाजिक परिणतियों का मूल्यांकन करते समय देश की आर्थिक नीतियों की दशा-दिशा का विश्लेषण सही आधार दे सकता है।

9.2 विकास संचार में मीडिया का उपयोग

सभी विकसित देशों एवं विकसित लोकतंत्रों में नीति-निर्धारक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मीडिया की मदद लेते हैं। चूँकि शिक्षा विकास की पहली शर्त है, अतः मीडिया की मदद से जन-जन को इससे जोड़ा जा सकता है। आज का युग सूचना एवं संचार का युग है। आज हम तुरंत बदलाव, तुरत-फुरत यात्रा और तत्काल संचार को महसूस कर रहे हैं। आज इंसान अंतरिक्ष और चाँद तक पहुँच रहा है। फोन से दुनिया के एक से दूसरे छोर तक बात कर सकते हैं। सेटेलाइट टी.वी. द्वारा दुनिया की दूर-दूर की घटनाओं को तत्क्षण टीवी के परदे पर देख सकते हैं। यह संचार और सूचना क्रांति की शक्ति का कमाल है। इसके कारण सारी दुनिया में विकास की गति भी बहुत तेज हुई है। विकास प्रक्रिया में संचार के योगदान को सारी दुनिया ने स्वीकार किया है। इसलिए इसके कार्यकलाप, इसकी प्रक्रिया, इसके दायरे और मशीनरी को समझने की जरूरत है। कुछ लोग अभी भी इससे पूरी तरह वाकिफ नहीं है। यह धारणा प्रबल हो गई है कि संचार के अधिकाधिक उपयोग से विकास होगा। इसलिए संचार के बुनियादी ढाँचे के विस्तार के प्रयास भी निरंतर जारी हैं।

देश एवं समाज में संचार एवं संप्रेषण के कई उद्देश्य हो सकते हैं। इसका शासक के लिए मुख्य उद्देश्य होता है, अपने पक्ष में जनमत का निर्माण, जनता को देशहित एवं समाज हित में सजग व जागरूक रखना ताकि राज्य में अमन चैन रहे, राज्य और नागरिक सतत् विकास करते रहें, किसी किस्म की अराजकता नहीं फैले, तोड़फोड़ नहीं हो और विकास की गति नहीं रुके। यदि कोई तत्व या शक्ति देश के हितों के विपरीत सक्रिय हो तो उस पर निगरानी और सतर्कता रखें ताकि उसका उन्मूलन किया जा सके। जनभावनाओं को समझना और देशहित की भावनाओं को मजबूत करना भी संचार का उद्देश्य होता है। इसके अलावा समाज का प्रबुद्ध वर्ग भी ज्ञान, सद्ज्ञान, उत्तम विचारों, नई खोजों, प्रगति के नये आयामों, जीवन दर्शन के प्रचार-प्रसार के लिए भी संचार का इस्तेमाल करता है। आर्थिक विकास से जुड़ा वर्ग व्यापार, वाणिज्य, उद्योग, तकनीक, रोजगार, आर्थिक विकास से जन-जन को जोड़ने के लिए संचार का उपयोग करता है। इस प्रकार समाज और देश के सर्वांगीण विकास के लिए सभी हिस्सों में शिक्षा, आधुनिकतम ज्ञान, तकनीक उद्योग व व्यापार की नई तकनीक, कृषि व्यवसाय में हिस्सेदारों, सदस्यों, सरकार और उससे जुड़े क्षेत्रों तक एवं जनता तक संचार एवं जानकारी का प्रसार जरूरी है। संचार का दोतरफा आदान-प्रदान होना चाहिए ताकि ऊपर की जानकारी नीचे तक पहुँचे तो नीचे की दिक्कतों, जरूरतों, समस्याओं और अड़चनों की जानकारी भी ऊपर तक पहुँचे ताकि उसका निवारण भी होता रहे तभी विकास सतत् और बेरोकटोक चल सकता है। सरकार, कर्मचारी और जनसाधारण के बीच सूचना का

आदान-प्रदान विकास एवं प्रगति को गतिशील बनाए रखने में मददगार होता है। वरना कभी एक ज्ञान या जानकारी पिछड़ गई तो विकास की गति थम सकती है। उसे अपडेट रखने में भी नए प्रयोग एवं नई शोध की सूचना का संप्रेषण जरूरी होता है।

9.3 संचार तकनीक का विकास

किसी भी देश के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में संचार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। संचार के क्षेत्र में जिस गति से तकनीकी प्रगति हुई है वह विस्मयकारी है। इनफार्मेशन सुपर हाइवे के माध्यम से सारा विश्व एक 'खगोल गांव' बन गया है। वैसे एक विचारणीय बात यह भी है कि जिस तेजी से तकनीक ने उड़ान भरी है उतनी ही तेजी से हमारे कई क्षेत्रों में विचार क्षितिज का विकास नहीं हुआ है। परंतु यह स्पष्ट है कि तकनीकी के इस अतिविकास की धारा को अब न तो वापस मोड़ा जा सकता है और न ही धीमा किया जा सकता है। अतः संचार साधनों के लक्ष्य तथा कार्यकलापों पर विचार करना तथा उनका विकास की दौड़ में सदुपयोग करना एक तात्कालिक आवश्यकता है। नवीन विश्व सूचना व्यवस्था के उद्देश्य के संबंध में विश्लेषणात्मक चिंतन तथा व्यापक एवं समीक्षात्मक अन्वेषण आवश्यक हो गया है। तकनीक तो मात्र साधन है, किन्तु उसका साध्य क्या है, यह जानना जरूरी है। प्रसिद्ध रंगकर्मी ब्रेख़ के शब्दों में, `To means must be put the question what the ends are?" यानि माध्यमों या साधनों को पूछना चाहिए कि हमारी मंजिल कहाँ है? जब तक हम यह निर्णय नहीं कर पाएंगे कि संचार माध्यमों का उपयोग हम किस उद्देश्य के लिए कर रहे हैं, तब तक इस तकनीकी क्रांति का लाभ हम नहीं उठा सकते। यदि लाभ नहीं उठाया तो विकास की तेज दौड़ में पिछड़ जायेंगे।

9.4 विकास और सूचना

समाजशास्त्र के विचारकों का मत है कि हर क्षेत्र में सूचना का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। नोरा क्यूब्रेल के अनुसार, ``The art and science of human communication applied to the speedy transformation of a country and the mass and its people from poverty to a dynamic state of economic growth that makes possible greater social equality and the larger fulfillment of human potential." इसलिए विकास प्रक्रिया में संचार को वांछित स्थान दिलाना आवश्यक है। संचार से विकास अपने आप गतिशील नहीं होता। परन्तु संचार सुविधाओं के न होने पर विकास गतिहीन होता है। दूसरे जनसामान्य का सहयोग भी इस प्रक्रिया को नहीं मिलता। इस दृष्टि से संचार एक अत्यंत महत्वपूर्ण लोक सेवा है। इसके माध्यम से लोक कल्याण एवं विकास की गति तेज हो सकती है।

सन् 1976 में संयुक्त राष्ट्र शिक्षा विज्ञान संस्कृति संगठन ने सीन मैकब्राइड की अध्यक्षता में संचार के संबंध में आयोग गठित किया था। इसने 1978 में अपनी

रिपोर्ट दी थी। यह रिपोर्ट आज भी संचार के क्षेत्र में अपने विशिष्ट दर्शन के लिए जानी जाती है। शांति के लिए नोबेल पुरस्कार विजेता, पत्रकार, विधिवेत्ता और आयरलैंड के भूतपूर्व विदेश मंत्री सीन मैकब्राइड के अनुसार, "अब विश्व में इस विश्वास के प्रतीक बन गए हैं कि मानव और मानवता की सुरक्षा के लिए नवीन संचार व्यवस्था अनिवार्य है।

विद्वानों के अनुसार जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचार मैकब्राइड रिपोर्ट ने दिया है वह यह है कि सूचना का अधिकार मनुष्य आक मूलभूत मानव अधिकार है। इसी से सूचना की स्वतंत्रता, सूचनाओं का अबाध प्रवाह, सूचनाओं की संतुलित उपलब्धि और 'जनसंचार माध्यमों तक निर्बाध पहुँच' जैसी अवधारणाओं की उत्पत्ति हुई है। इस अवधारणाओं के कारण सूचना क्रान्ति के विस्तार से विश्व में विकास के नए आयाम स्थापित हुए।

9.5 भारत में संचार की स्थिति

हमारे देश में संचार तथा राष्ट्र निर्माण के बीच स्पष्ट संबंध न हो पाना चिंता का कारण है। सामान्य जनों में सूचना के प्रति बहुत अधिक लालसा है परन्तु हमारी सूचना व्यवस्था उनकी आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील नहीं है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पी. सी. जोशी भारत सरकार द्वारा गठित ``Software planning Committee" के अध्यक्ष थे। उनके अनुसार उद्देश्यों के प्रति हमारे सजग न रहने के कारण यह लोक सेवा के स्थान पर लाभकारी उद्योग बन गया है। लोग इसमें व्यक्तिगत फायदे की चिंता करने लगे हैं। इसका कारण यह है कि श्रेष्ठ वर्ग (elite class) उपभोक्ता संस्कृति के शिकार हैं। इसके कारण समाज के अन्य लोगों के सामने गलत मिसाल पेश होती है, जो साधनों की कमी के बावजूद संपन्न वर्ग की नकल करने लगते हैं। स्वतंत्रता प्राप्त के पश्चात् हमारी संस्कृति परम्परा में बिखराव को पुन: स्थापित करने के ठोस एवं संगठित प्रयास हो ही नहीं पाये।

टेलीविजन और फिल्मों के माध्यम से अपसंस्कृति और पराये मूल्यों का निरंतर हमला हो रहा है। हमारे सामने यह एक बड़ी चुनौती है कि किस प्रकार नई पीढ़ी के मानस को हमारे ड्राइंग रूम में रोज दिखाये जाने वाले बर्बर अमानवीय, हिंसक तथा निरर्थक मनोरंजन से बचाया जा सके। पलायनवादी अपसंस्कृति हमारी विकास की धारा को पश्चिमी ढर्रे की ओर ढकेल रहा है। यानी विज्ञान एवं तकनीकी की क्रान्ति से जनता में जो संदेश गया वह विकृत था। इसे मीडिया और उसके प्रबंधन में लगे लोगों की विफलता ही कहा जाएगा।

प्रत्येक संचार कर्मी को यह बात याद रखनी चाहिए कि हर देश को, हर जन समुदाय को अतीत की स्मृति होती है। प्रसिद्ध दार्शनिक विल ड्यूरा का मत है कि जैसे किसी व्यक्ति का मानसिक संतुलन बनाए रखने के लिए स्मृति आवश्यक है, वैसे ही किसी राष्ट्र के संतुलन को बनाए रखने के लिए अतीत की स्मृति की निरंतरता जरूरी है। "Just as continuity of memory is necessary for the society of an individual

continuity of a nation's tradition and culture is necessary for the same by the nation."

यह स्मृति हमें अपने परम्परागत मूल्यों से मिलती है, अपनी लोक और शास्त्रीय परम्पराओं से प्राप्त होती है। इस बात का अहसास विकास से जुड़े लोगों एवं विकास पत्रकारिता में जुटे पत्रकारों, संवाददाताओं को होना चाहिए। हमारी कितनी ही प्रभावी सूचना व्यवस्था समस्याओं का समाधान अच्छी सूचना व्यवस्था से हो सकता है। संचार माध्यमों एवं संप्रेषण की उपयोगिता और महत्व को समझने के साथ ही स्वस्थ विकास में उसके उपयोग की महारत हासिल करना भी जरूरी है। निरक्षरता, जातिभेद, आर्थिक अन्याय, जनसंख्या की वृद्धि, परिवार कल्याण पर्यावरण की सुरक्षा, ऊर्जा की बचत, महिलाओं के प्रति भेदभाव आदि अनेक क्षेत्रों में प्रभावी सूचना व्यवस्था के माध्यम से क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जा सकते हैं। देश का बहुमुखी विकास किया जा सकता है। पारस्परिक सौहार्द्र और बंधुत्व की भावना को बलवती करने में जन संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। लोकरूचि को परिष्कृत करने का महत्वपूर्ण काम जनसंचार माध्यम कर सकते हैं। हमारी लोक संस्कृति, लोक संगीत, लोकनृत्य, शास्त्रीय संगीत, नृत्य की विलुप्त होती परम्पराओं की रक्षा भी संचार माध्यम कर सकते हैं। इस पर हम सभी क्षेत्रों में विकास कर सकते हैं।

हमारे देश में अभी भी रेडियो तथा समाचार-पत्रों की पहुँच बहुत अधिक है। अब तो दूरदर्शन भी गांव-गांव तक पहुँच गया है। समाचार पत्रों की, विशेषकर आंचलिक समाचार पत्रों की भूमिका अत्यंत सार्थक हो सकती है। अभी ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है कि टेलीविजन की चुनौती से यह समाप्त हो जाये। आंचलिक समाचार पत्रों पर टेलीविजन का विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा बशर्ते वे खुद को आंचलिक समस्याओं का प्रखर प्रवक्ता एवं वहाँ की जनभावना का मुखर प्रतिनिधि बनाये। स्थानीय खबरों व घटनाओं को ज्यादा महत्व दे।

समाचारों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करना, निहित स्वार्थ के कारण झूठी सूचना देना सूचना व्यवस्था का दुःखद पहलू है। एक बार अपने प्रधानमंत्रित्व काल में श्री नरसिंहराव ने कहा था – हम ऐसी दुनिया में रहते हैं जहाँ दुष्प्रचार या अप्रचार की तकनीक में महारत हासिल होने से बहुत बड़ी मात्रा में अप्रचार की संभावनायें पैदा हो जाती हैं।

9.6 संचार की पुरातन पद्धतियाँ

जनता के बीच संदेश पहुँचाना कोई पश्चिमी या आधुनिक संकल्पना नहीं है। सच्चाई तो यह है कि पुरातन काल से भारतं में जनता तक संदेश पहुँचाने तथा अपेक्षित जनसमूह को एकत्रित करने की परम्परागत तकनीक प्रचलित रही है। संदेश पहुँचाने के तरीके हर देश की सभ्यता, संस्कृति एवं भौगोलिक स्थिति तथा आर्थिक, शैक्षणिक और बौद्धिक विकास पर निर्भर करते थे। इनके जरिए संदेश पहुँचाने की पुराने समय में प्रचलित परिपाटी थी। घुड़सवारों का भी उपयोग होता था। संत, महात्मा

और विद्वान लोग या राज्य के अधिकारी भी यह काम करते थे।

करीब ढाई हजार साल पहले गौतम बुद्ध ने मत का प्रतिपादन किया और उसे न केवल भारत में बल्कि विदेशों में जन-जन तक पहुँचाया। सम्राट अशोक ने जनसंचार को संगठित रूप देने का प्रयास किया। लोगों तक उनकी भाषा में बौद्ध मत लिखित या मौखिक रूप में पहुँचाया गया और श्रीलंका में प्रचारक के रूप में अपने बेटे-बेटी को भेजकर इस संदेश को उन्होंने जन-जन तक पहुँचाया। एक महिला दूर देश में जाकर किसी सिद्धान्त को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य सफलतापूर्वक कर सकी, यह ध्यान देने योग्य बात है। कहा जाता है कि उस जमाने में सारे साम्राज्य में कोई भी सूचना राजधानी से पहुंच जाती थी। इसमें विदेशी हमले जैसी सूचना या राजा का आदेश शामिल थे। तब संदेश पहुँचाने के पारम्परिक तरीके थे। एक से दूसरे व्यक्ति तक बात पहुँचाना।, मुनादी पिटवाकर संदेश पहुंचाना आदि। लोग सामान्यतया जहाँ एकत्रित होते हैं, जैसे बाजार, धर्मस्थल, पर्व, उत्सव के उपलक्ष्य में जुटी भीड़, तीर्थस्थल, मेले, हाट, वहाँ उनको कोई संदेश देना ताकि वह उनके जरिए दूर-दूर तक लोगों तक पहुँच सके। तीर्थयात्रियों, व्यापार या तिजारत करने वालों के जरिए भी संदेश पहुँच जाते थे। पहाड़ी इलाकों में ढोल बजाकर, इशारों से और कभी झंडे या अन्य संकेतों से एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ के लोगों तक संदेश पहुंचाते थे। इस तरह पलक मारते संदेश एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंच जाता था। व्यक्ति से व्यक्ति तक (Man to man) संचार की या एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ तक इशारों से संदेश पहुंचाकर अथवा अलग-अलग किस्म के नगाड़ों या ढोल बजाकर संदेश पहुंचाने की तकनीक युगों से चल रही है। किस किस्म के नगाड़े की आवाज का क्या अर्थ है या किस रंग के झंडे का या उसको डंडे में बाँधकर हिलाने के किस तरीके का क्या मतलब है, यह दूर-दूर तक लोगों तक पहुँच जाता था। विभिन्न जातियों, समूह या कबीले भी पारम्परिक तरीके से अपने संदेश पहुँचाने का कार्य करते थे। चित्र या विशेष आकृति भी संचार का माध्यम थे।

महाभारत के युद्ध के समय दूर-दूर के राजाओं - महाराजाओं या योद्धाओं को जुटाने, जासूसों द्वारा राजा तक संदेश पहुंचाने, अथवा विदेशी हमलावरों या साम्राज्यवादियों द्वारा संदेश पहुंचाने के लिए पारम्परिक तरीके इस्तेमाल होते रहे। बाद में सब तरफ घोड़े पर आदमी दौड़ाने या लिखित संदेश पहुँचाने का सिलसिला शुरू हुआ। डाक-तार साइकिल, कार, बस, रेल, फोन, फैक्स, रेडियो, टीवी तो तकनीकी युग की देन है। अब तो इंटरनेट, वेबसाइट और सैटेलाइट का युग है।

9.7 फिल्मों का इस्तेमाल

विकास संचार में किसी भी विकास कार्य को लोगों के दिलोदिमाग में बैठा देना और उन्हें प्रोत्साहित करना इसलिए ज्यादा महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे प्रारम्भिक बाधायें आसानी से दूर हो जाती हैं। इससे कठिन से कठिन कार्य भी आसानी से पूरे किए जा सकते हैं। निहित स्वार्थ की भावना पर यदि विजय पा ली गई तो फिर

सफलता ही सफलता है। विकास में लोगों को संलिप्त करने के लिए लोगों की प्रवृत्तियों, समस्याओं और प्राथमिकताओं का ध्यान रखते हुए संचार के विभिन्न तौर-तरीकों एवं रणनीतियों का इस्तेमाल करना चाहिए। यह ध्यान में रखने की बात है कि जब विकास और प्रगति का लक्ष्य सामने हो तब संचार की रणनीति परिस्थिति के मुताबिक बनानी चाहिए। इसमें कभी-कभी विकसित देशों में अमल में आने वाली रणनीति या उपभोक्तावाद पर आधारित नीति कारगर नहीं होती। कभी-कभी सामाजिक कुरीतियाँ या बुराइयाँ विकास के आड़े आती हैं। तब मनोवैज्ञानिक ढंग से चलकर व्यक्तिगत सम्पर्क एवं प्रचार के साथ-साथ उन जीवंत मिसालों को पेश करके लोगों को प्रेरित किया जा सकता है, जो उनके दिलोदिमाग को जाँच सके। इसके लिए अखबार, रेडियो, टीवी, पोस्टर आदि के साथ-साथ विशेष रूप से फिल्मों का उपयोग भी किया जा सकता है। इससे भी विकास में तेजी आ सकती है और लोगों को प्रोत्साहित करके कार्य में जुटाया जा सकता है। डॉक्यूमेंटरी फिल्मों की मदद से बाल-कल्याण, महिला उत्थान, कुरीतियों के खतरे के प्रति लोग जागरूक होकर उनसे संबंधित विकास कार्यों से जुड़ सकते हैं। परिवार कल्याण के प्रति उन्हें सजग किया जा सकता है। सामाजिक जागृति लाने में फिल्मों का बड़ा योगदान रहा है। महिला उत्थान मे भी उसकी बड़ी भूमिका है। फिल्मों ने कुरीतियों दहेज जैसी घातक प्रथाओं, अंधविश्वासों को दूर करने में भारी योगदान किया है। आजादी के आंदोलन और उसके बाद राष्ट्र निर्माण व विकास के लिए जनमत बनाने में मदद की है।

9.8 नई चुनौतियाँ

विकास की नई चुनौतियाँ आए दिन ईजाद हो रही तकनीकों, उनकी उपयोगिता तथा आर्थिक विकास की प्रबल संभावना के मद्देनजर है। हालात सुधारने की आशा लोगों के दिलो-दिमाग में एक बार बैठ जाए तो फिर विकास कार्यों को गति पकड़ते देर नहीं लगती। पत्रकारिता तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया इसमें बहुत प्रभावी भूमिका अदा कर सकते हैं। एक बार इस कार्य की मुहिम चल पड़ी तो फिर उत्पादन में वृद्धि, उनकी गुणवत्ता में सुधार, जीवन स्तर में सुधार का सिलसिला भी चल पड़ता है। आर्थिक समृद्धि की झलक लोगों को ज्यादा प्रोत्साहित करती जाती है। खेतों, खलिहानों, गांवों, पहाड़ों तक विकसित तकनीक को पहुंचाने और उसे स्वीकार करने के लिए लोगों का मानस बनाने में मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। परिणामस्वरूप लोग स्वयं प्रेरित होकर विकास कार्य में संलिप्त हो जाते हैं।

एक विचारक रोस्टो का कहना है कि "पारम्परिक समाज में सीमित उत्पादन, प्राचीन तकनीक और सामाजिक ढाँचा विकास के लिए समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। आधुनिक विज्ञान और नई उत्पाद तकनीकों के साथ यह साबित हो गया है कि आर्थिक विकास के द्वारा ही बेहतर जीवन उपलब्ध कराया जा सकता है। आर्थिक विकास को जनसंख्या के विकास से आगे रखकर तथा उच्च तकनीक के प्रयोग से ऐसा समाज बनाया जा सकता है जो एक उपभोक्तावादी समाज हो सकता है। पश्चिमी देश इसकी

जीवंत मिसाल हैं। आज विकास की जो दौड़ एवं होड़ सभी ओर तेज हो रही है, कोई देश या समाज उसमें शामिल नहीं होगा जो पिछड़ा रहकर शोषण और दासता की गिरफ्त में आ जाएगा। विकास से जुड़ना ही सजगता, प्रगति व तरक्की की निशानी है।

9.9 सिनेमा एवं केबल टेलीविजन

जनमाध्यमों के विस्तार और नई तकनीक के निरंतर विकास ने हमारे समाज को भी प्रभावित और परिवर्तित किया है। केबल टेलीविजन का भारत में उदय इसी तकनीकी विकास का अंग है, पर यह मात्र तकनीकी विकास भर नहीं है। अपितु एक तरह की संस्कृति, जीवन पद्धति और विचारधारा के विकास का प्रभावी औजार भी है। दूरदर्शन के राष्ट्रीय विस्तार से सिने जगत ने खतरा महसूस किया था। पर दूरदर्शन का विस्तार वस्तुतः सिनेमा संस्कृति ही विस्तार था। वे एक-दूसरे के पूरक साबित हुए हैं। सिनेमा निर्माताओं ने वीडियो और केबल टेलीविजन से सिनेमा के लिए उत्पन्न खतरों की ओर इशारा किया है। फिल्म उद्योग का यह आरोप है कि वीडियो फिल्मों और केबल टेलीविजन ने फिल्मी चोरी को बढ़ावा दिया है। उनका यह भी मानना है कि टेलीविजन को सरकार पूरी तरह गैर-कानूनी घोषित कर दे। इसके विपरीत केबल टेलीविजन केबल वाले अपने व्यापार को कानूनी मानते हैं। वे कहते हैं कि केबल टेलीविजन कंपनियाँ किसी भी किस्म की बौद्धिक चोरी अथवा वीडियो चोरी नहीं करती हैं। इस समूचे विवाद में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं, जिन पर विस्तार से विचार करने की जरूरत है।

'ऑपरेशन रिसर्च ग्रुप' के सर्वे में बताया गया है कि केबल टेलीविजन का भारत में 1984 में प्रारम्भ हुआ। सन् 1985 में 100, 1986 में 460, 1987 में 800, सन् 1988 में 1200 और फिलहाल 3460 केबल नेटवर्क सक्रिय हैं। 3460 केबल नेटवर्क में से 17 फीसदी होटलों और बाकी 85 फीसदी रिहायशी बस्तियों में चल रहे हैं। इनमें से पश्चिमी क्षेत्र में 74 फीसदी नेटवर्क है, उत्तर पूर्व और दक्षिण क्षेत्र में क्रमशः 12, 4 और 10 फीसदी नेटवर्क है। बंबई महानगर में समूचे देश के केबल टेलीविजन नेटवर्क का 59 फीसदी नेटवर्क है। सर्वे किए गए नेटवर्क में सात फीसदी नेटवर्क चार वर्ष से चल रहे हैं। 14 फीसदी नेटवर्क पिछले 2-3 वर्ष से सक्रिय हैं। 27 फीसदी नेटवर्क एक से दो वर्ष की अवधि में आरंभ हुआ है और 52 फीसदी नेटवर्क का आपरेशन पिछले एक वर्ष में प्रारम्भ किया गया है।

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने 5 जून, 1989 को अंतर्विभागीय समिति का गठन किया था। इसमें विदेश, न्याय, संचार, इलेक्ट्रॉनिक्स, अंतरिक्ष, संस्कृति, विदेश संचार मंत्रालयों तथा दूरदर्शन के प्रतिनिधि शामिल थे। इसकी अध्यक्षता सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में संयुक्त सचिव एम. दामोदरन ने की थी। अंतर्विभागीय समिति ने केबल टेलीविजन और डिश एंटीना से जुड़ी समस्याओं पर विचार करते हुए 21 फरवरी, 1991 को अपनी सिफारिशें जमा कीं। केंद्र सरकार इन सिफारिशों के आधार पर "राष्ट्रीय केबल टेलीविजन प्रशासनिक निकाय" तैयार करने के बारे में सोच रही है। अंतर्विभागीय समिति की रिपोर्ट से पहले ही एक रिपोर्ट केंद्र सरकार को दी जा चुकी है।

राजीव सरकार ने प्रधानमंत्री के इलेक्ट्रॉनिक ट्रेड एवं टेक्नोलोजी डेवलपमेंट कारपोरेशन के सलाहकार पी. एस. देवधर की अध्यक्षता में समिति गठित की थी। यह रिपोर्ट प्रधानमंत्री को 1988 में दी गयी थी।

इन दोनों रिपोर्टों में भारत के नागरिकों को 'नागरिक' की बजाय उपभोक्ता मानकर केबल टेलीविजन पर विचार किया गया है। सरकार की तरह केबल कंपनियाँ भी नागरिकों को सिर्फ उपभोक्ता मानती हैं। उपभोक्ता सदस्यों की माँग पूर्ति के आधार पर ही इन दोनों समितियों ने सोच-विचार किया है। इससे भी कई महत्वपूर्ण बातें हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। यह माध्यम दूरदर्शन और रेडियो से भी शक्तिशाली है। अतः इस माध्यम पर फैसला लेने में की गयी जल्दबाजी और अगंभीरता समूचे राष्ट्र को अंधे कुएं में धकेल देगी। देवधर समिति ने अमेरिकी केबल टीवी के मॉडल के आधार पर सिफारिशें की हैं। जबकि दामोदरन समिति ने ब्रिटिश मॉडल को आदर्श मानकर सिफारिशें की हैं। सरकार का दृष्टिकोण इन दोनों के बीच पेंडुलम की तरह घूमता रहा है। देवधर समिति ने केबल टेलीविजन के बहुआयामी उपयोग की सिफारिशें की हैं। सेटेलाइट टेलीविजन और केबल टेलीविजन को एक-दूसरे का पूरक माना है। जबकि अंतर्विभागीय समिति ने डिश एंटीना तथा केबल टेलीविजन को अलग करके देखा है। देवधर समिति ने केबल टेलीविजन को अलग करके देखा है। देवधर समिति ने केबल टेलीविजन के क्षेत्र में सरकारी और निजी दोनों ही क्षेत्रों की भूमिका पर बल दिया है। दामोदरन समिति ने इस माध्यम को पूरी तरह निजी क्षेत्रों के हवाले छोड़ दिया है।

उपग्रह प्रक्षेपित कार्यक्रमों के द्वारा अमेरिकी साम्राज्यवाद और बुहराष्ट्रीय संचार कंपनियों के नव-औपनिवेशिक दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार किया जाता है। इस खतरे को कम करके आंका जा रहा है। देश में सन् 1980-81 से तेजी से विदेशी पूँजी निवेश, आर्थिक उदारीकरण और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक पर हमारी निर्भरता बढ़ी है। इसका संबंध हमारी संचार नीति से भी है। यह एक जाना-माना तथ्य है कि केबल टेलीविजन सबसे प्रभावी माध्यम है तब सरकार इसे निजी क्षेत्र को क्यों देना चाहती है?

संवैधानिक तौर पर ब्राडकास्टिंग और संचार के विभिन्न रूपों पर केंद्र का अधिकार है। इन माध्यमों के प्रति वह जनता में जवाबदेह है। केवल टेलीविजन को निजी क्षेत्र में सौंपना देश-हित में नहीं है। केबल टेलीविजन के आने के बाद 'होम व्यूइंग' की अवधारणा को नए सिरे से परिभाषित करने की जरूरत है। यह बात दामोदरन समिति मानती है। जो कार्यक्रम दिखाये जायें वे सेंट्रल बोर्ड और फिल्म सर्टिफिकेशन संस्थान से स्वीकृत कराये गये हों। इस संस्थान की हिन्दी के फार्मूला सिनेमा को पास कर देने की अब तक की कोशिशों पर सोचें तो सभ्य समाज का सिर शर्म से झुक जाता है। ऐसी स्थिति में यह भरोसा कर पाना कि केबल के लिए यह श्रेष्ठ स्तरीय मानदंडों के आधार पर कार्य करेगा।

यूरोप के जिन देशों में केबल टेलीविजन का विकास हुआ है वहाँ पर बहस के केंद्र में यह प्रश्न था कि इस माध्यम का विकास देशी तकनीक के आधार पर हो अथवा विदेशी तकनीक के आधार पर भारत में ऐसी कोई बहस नहीं चल रही है। यहाँ मनमाने

ढंग से विदेशी तकनीक का प्रयोग बढ़ रहा है। अभी देश में मनोरंजन की माँग का दबाव है, कालान्तर में अन्य कौन से दबाव आयेंगे इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। परन्तु यूरोप में मनोरंजन के बाद सूचना देने की माँग पैदा हुई।

'मनोरंजन' केंद्रित नीति की सामाजिक विकास की अवधारणा से सीधे टकराहट है। मनोरंजन और सामाजिक विकास का अंतर्विरोध न तो ब्रिटेन में हल हुआ है और न अमेरिकी माध्यमविद् ही सुलझा पाये हैं, तब भला भारत जैसे पिछड़े देश में यह जल्दी हल कर लिया जायेगा, इसकी सम्भावनायें कम हैं। केबल टेलीविजन का अगर निजी पूँजी के आधार पर विकास होना है तो उसे मनोरंजनपरक ही होना होगा। गैर-मनोरंजनपरक नीति के आधार पर या विकासमूलक माध्यम नीति के आधार पर इस माध्यम में निजी क्षेत्र रुचि ही नहीं लेगा।

प्रसिद्ध चिंतक रेमण्ड विलियम ने लिखा था कि 'नयी तकनीक' अपने आप में विशेष समाज व्यवस्था की देन होती है। उसका स्वायत्त तौर पर विकास कल्पनात्मक ढंग से उसी हद तक होता है जहाँ तक वह मूल व्यवस्था की चुनौतियों के साथ अपने को जोड़ कर रखती है। यह निरंतर चलने वाली विकास प्रक्रिया है, जिसमें अंतर्विरोध है। नयी तकनीक का अनेक प्रकार से प्रयोग हो सकता है। यहाँ तक कि इसका उपयोग उन लक्ष्यों के लिए भी किया जा सकता है जो समाज व्यवस्था के लक्ष्य से मेल न खाते हों। तकनीक का चयन और उपयोग सामाजिक विकास और सामाजिक संघर्ष की आम प्रक्रिया का अंग होता है। रेमण्ड विलियम की धारणा का दायरा लांघते हुए सूचना तकनीक ने आज अपना विकास कर लिया है। माध्यम विशेषज्ञों के. रोबिन्स और एफ बेवस्टर ने लिखा है कि सूचना तकनीक की प्रकृति और स्वरूप का निर्धारण बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ करती हैं। ये अपने कार्पोरेट के विशिष्ट मूल्यों और प्राथमिकताओं को व्यक्त करते हैं। इस बात पर यकीन नहीं किया जा सकता कि वे इन्हें जबरदस्ती थोपने की कोशिश नहीं करेंगे, साथ ही राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त विषमता को बढ़ायेंगे।

केबल संरचना मूलतः मनोरंजनात्मक संरचना है अथवा प्राथमिक रूप में दूरसंचार संरचना का अंग है जिसका मनोरंजन देना भी एक कार्य है। भारत में केबल टेलीविजन का विकास ज्यादा मनोरंजन की माँग के दबाववश हो रहा है। अंतर्विभागीय समिति की रिपोर्ट में इसके अन्य उपयोग की तरफ भी ध्यान खींचा गया है, जिससे इस माध्यम के और ज्यादा फायदेमंद साबित होने की संभावना है। इससे तकनीकी के नए उद्योगों को विस्तार भी मिलेगा। केबल टेलीविजन के माध्यम से टेलीविजन के कार्यक्रमों को अनिवार्यतः दिखाये जाने के नियमों के उदय के पीछे इस माध्यम की शक्ति का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है परन्तु यह नियम निष्प्रभावी ही साबित हुआ है।

9.10 इंटरनेट क्रान्ति और समग्र राष्ट्रीय विकास

भारत में इंटरनेट पत्रकारिता का अभी दूसरा दौर ही चल रहा है। भारत के लिए पहला दौर 1993 से शुरू माना जा सकता है जबकि दूसरा दौर सन् 2003 से शुरू

हुआ है। पहले दौर में हमारे यहाँ भी प्रयोग हुए। डॉट-कॉम का तूफान आया और बुलबुले की तरह फट गया। डॉट-कॉम का सबसे भयानक दौर सन् 1999-2000 के बीच आया था जब कोई भी ऐरा-गैरा व्यापारी विदेशी वेंचर कैपिटल के बल पर डॉट-कॉम कंपनी शुरू कर रहा था, और लगभग हर वेबसाइट में अन्य चीजों के अलावा खबरें भी होती ही थीं। यह कहने की जरूरत नहीं कि इसमें से ज्यादातर डॉट-कॉम वाले खबर या पत्रकारिता की संवेदनशीलता से नावाकिफ थे। इसलिए यदि वह दौर बुलबुले की तरह उड़ गया तो अच्छा ही हुआ।

सन् 2000 में जो बड़े पोर्टल शुरू हुए, उनमें से बिना पत्रकारिता के अनुभव वालों को जल्द ही अपनी दुकानें समेट लेनी पड़ीं। गो फॉर आई, इंडया, इंडिया इन्फो, गप्पू और द न्यूज पेपर ऑन लाइन जैसी बड़ी साइटें भी या तो बंद हो गयीं या दूसरों के हाथ बिक गईं। यहाँ तक कि मंत्रा, सत्यम जैसे इंटरनेट सर्विस प्रोवाइडर भी अपने समाचार वाले खाने को किसी तरह खानापूरी के जरिए भरते रहे। अंततः टिके वही रह पाये जो मीडिया उद्योग में पहले से ही टिके हुए थे।

भारत में सच्चे अर्थों में यदि कोई वेब पत्रकारिता कर रहा है तो वह रैडिफ डॉट कॉम, इंडिया इन्फोलाइन व सिफी जैसी कुछ ही साइटें हैं। रीडिफ को भारत की पहली साइट कहा जा सकता है जो कुछ गंभीरता के साथ इंटरनेट पत्रकारिता कर रही हैं हालांकि अभी तक उसने भी ऐसा कोई अहसास नहीं कराया है कि विशेष रूप से हम पत्रकारिता के लिए उसे देखें। वेबसाइट पर विशुद्ध पत्रकारिता शुरू करने के लिए तहलका डॉट कॉम को ही श्रेय जाता है लेकिन वह जल्द ही काल-कवलित हो गईं। यदि तहलका कुछ साल भी संतुलित ढंग से पत्रकारिता करती तो उसका जबरदस्त असर भारत की नेट पत्रकारिता पर पड़ता।

आज दुनिया में सूचना क्रान्ति हो चुकी है। सूचना युग आ गया है। दूरसंचार, उपग्रह और कम्प्यूटर विज्ञान के क्षेत्र में बेमिसाल प्रगति हुई है। इन तकनीकियों ने सूचना राजमार्गों और सूचना महामार्गों को जन्म दिया है। इन महामार्गों पर सूचना और आंकड़ों के यातायात ने विश्व को एक सूत्र में बाँध दिया है। इंटरनेट भी एक ऐसा ही महामार्ग है। दूरसंचार और उपग्रह तकनीकियों की मदद से यह लाखों कम्प्यूटरों का एक ऐसा सूचना तंत्र है जिसमें पूरा का पूरा पुस्तकालय, रेडियो, टेलीविजन चैनल, समाचार पत्र-पत्रिकायें और अन्य अनेक तरह की जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

लोग किसी तकनीकी को तभी अपनाते हैं जब उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि यह तकनीकी उनके जीवन के किन्हीं प्रयोजन या प्रयोजनों को पूरा करेगी। अपनी तमाम विफलताओं के बावजूद सूचना क्रान्ति में हमारे गांवों के विकास की असीमित संभावनायें हैं। सरकार की विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं के बारे में जानने, दूर या पास की मंडियों में गेहूँ, चावल, टमाटर या प्याज का ताजा भाव पता लगाने, बिचौलियों के शोषण से बचने, कई औपचारिक सरकारी कार्यों में किसानों के लिए भी इंटरनेट की अपनी उपयोगिता है जिससे इंकार नहीं किया जा सकता।

यह सच है कि हमारे ज्यादातर गांव इंटरनेट जैसी सुविधाओं का उपयोग करने के लिए बिल्कुल तैयार हैं। इंटरनेट के मायावी तंत्र तक पहुंचने के लिए कम्प्यूटर नितांत जरूरी है। इसका मतलब यह हुआ कि सूचना क्रांति से वे लोग अछूते रह जाएंगे जिनके पास कम्प्यूटर नहीं है। लेकिन इसमें आंशिक सच्चाई ही है। पश्चिमी देशों के स्वामित्व की परम्परा (जिसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए अलग-अलग टेलीफोन, टेलीविजन, कम्प्यूटर, कार आदि की व्यवस्था आम चलन में है) के विपरीत भारत में सामुदायिक रेडियो, सामुदायिक टेलीफोन और सामुदायिक टेलीविजन की परम्परा रही है। इसने ग्रामीण भारत विशेषकर आदिवासी बहुल इलाकों को शेष भारत से जोड़ने में अहम भूमिका अदा की है। यदि इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए सामुदायिक कम्प्यूटर तक लाया जाये तो आधी समस्या अपने आप सुलझ जाएगी। हमारे देश के छह लाख डाकघरों में से लगभग तीन लाख डाकघरों में टेलीफोन सुविधा उपलब्ध है। अर्थात् एक कम्प्यूटर लगाकर यहाँ इंटरनेट का प्रयोग हो सकता है। यदि ऐसा होता है तो ये डाकघर नए सूचना केंद्र के रूप में उभर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक टेलीफोन बूथ और केबल टेलीविजन की तर्ज पर साइबर कैफे या साइबर ढाबा डिजिटल डिवाइड को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। ये साइबर कैफे वहाँ भी पहुँच सकते हैं जहाँ बिजली और टेलीफोन जैसी मूलभूत सुविधायें भी उपलब्ध नहीं हैं। बेतार तकनीकी का उपयोग करके भी कम्प्यूटर को इंटरनेट से जोड़ा जा सकता है। इस तरह का प्रयोग आन्ध्र प्रदेश के कोप्पम मंडल के गांवों में हो रहा है। इसी तरह सौर ऊर्जा से चलने वाली बैटरी से भी कम्प्यूटर चलाया जा सकता है।

इंटरनेट की सुविधा और भी विस्तृत हो सकती है यदि सरकारी या गैर-सरकारी संस्थान गाँव या कस्बे में ऐसे सामुदायिक सूचना केंद्र या साइबर कैफे खोलने से पहले स्थानीय लोगों को ध्यान में रखकर ऐसी विषयवस्तु की साइट तैयार कराये जिनसे वहाँ के लोगों को लाभ पहुँचे। स्थायी विकास अपनी पूरी क्षमता भी प्राप्त कर सकता है जब ग्रामीण लोगों को इसके लिए प्रोत्साहित किया जाए, इसमें शामिल किया जाए और सूचना तथा ज्ञान उनके साथ बाँटा जाए। नीतियों के अनुपालन के लिए सूचना का मुक्त प्रवाह, सभी साधनों से बहुआयामी संचार आवश्यक है। केंद्रीकृत, एकरूप और ऊपर सें नीचे की ओर उन्मुख संचार इस लक्ष्य को पूरा नहीं कर सकता।

आज हमारे पास सूचनाओं का अंबार लगा है लेकिन यह तय कर पाना कठिन है कि क्या वास्तव में ये सूचनायें हमारी जरूरत हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि हमें वे तमाम सूचनायें तो मिल रही हैं जो हमारे समग्र विकास की प्राथमिताओं को तोड़ती मरोड़ती हों लेकिन उन अहम सूचनाओं से हम वंचित हों जो हमारे लिए आवश्यक है? हम ऐसे विषयों के बारे में बहुत सारा ज्ञान रखते हों, जिसकी हमें जरूरत ही न पड़े, और ऐसे तमाम विषयों के बारे में हम अनभिज्ञ हों जिनकी जानकारी हमारे समग्र विकास के लिए आवश्यक है। सूचना क्रान्ति को इन कसौटियों पर कसना होगा तभी हम अपने राष्ट्रीय विकास की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में इसकी भूमिका तय कर सकेंगे।

9.11 एफ. एम. रेडियो

बीसवीं सदी के आखिरी दशक में सूचना और संचार के क्षेत्र में जो ज्वालामुखी विस्फोट हुआ उसने भारतीय मीडिया, खासतौर पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की तस्वीर बदल दी। इतने बड़े पैमाने पर हलचल से रेडियो यानी भारत के संदर्भ में आकाशवाणी का अछूता रह जाना कहाँ संभव था। एक के बाद एक प्रसारण केन्द्रों की संख्या बढ़ती गई। साथ ही कार्यक्रमों के सार और स्वरूप में भी बदलाव आया। आकाशवाणी के समाचारों ने भी अपना कलेवर बदलना शुरू किया। पहला बड़ा बदलाव 1992 में सुबह आठ बजे के समाचारों में आया। दस मिनट के सीधे-सीधे बुलेटिन की जगह ली, समाचार प्रभात ने। असल में यह एक प्रयोग था। सुबह के वक्त श्रोताओं को समाचारों के साथ-साथ मुख्य खबरों पर विशेषज्ञ राय और अखबारों की सुर्खियों से परिचित कराने का। इसके पीछे सोच यह भी थी कि निरंतर व्यस्त होती जिंदगी में अगर अखबार पढ़ने का वक्त न मिल पाये तो सुबह सबेरे, दिन भर के लिए घर से निकलने के पहले रेडियो, 15 मिनट में समाचार, विचार और अखबारों के पन्नों की खबर दे दे।

1995-96 से आते-आते टेलीविजन चैनलों की भरमार हो गई। इसी दौरान देश में एक के बाद एक चुनावों का दौर आया और इन चैनलों ने चुनाव विश्लेषण के नाम पर दर्शकों और श्रोताओं के आँख और कान खबरों से भर दिए। आकाशवाणी ने भी 1996 के चुनावों में पहली बार चुनाव विश्लेषण कार्यक्रम शुरू किये, जिसमें समाचार वाचक को एंकर की भूमिका दी गई और समाचार तैयारी करने से लेकर प्रस्तुति तक सारे रंग ढंग बदल गए। देश-विदेश में फैले संवाददाता और विशेषज्ञ सीधे फोन से आकाशवाणी स्टूडियो और उसके माध्यम से श्रोताओं से जुड़ गए। इसी प्रयोग का विस्तार अगले चुनाव में सुनने को मिला जब आकाशवाणी ने लगातार 36 घंटे चुनाव समाचार और विश्लेषण का कार्यक्रम प्रसारित किया। भारत में रेडियो प्रसारण के इतिहास में यह प्रसारण मील का पत्थर साबित हुआ। आकाशवाणी समाचार की लंबी जीवन यात्रा में पहली बार ऐसा हुआ कि किसी निश्चित आलेख की मदद के बिना ही लगातार चुनाव के समाचार, देश भर में फैले संवाददाताओं से ताजा जानकारी और अमेरिका, नेपाल, बांग्लादेश, ब्रिटेन जैसे देशों में बैठे विशेषज्ञों की राय श्रोताओं को सुनाई गई। इस कार्यक्रम में कम्प्यूटर नेटवर्क का पहली बार बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया। भारत जैसे विशाल देश में आज भी दूरदर्शन और टेलीविजन चैनलों की चकाचौंध से अनभिज्ञ रेडियो के प्रति समर्पित श्रोताओं के लिए यह एक सुखद अनुभव रहा। इस प्रयोग की सफलता ने आकाशवाणी समाचारों को नए आयाम और समाचार विभाग ने सदस्यों को नया विश्वास प्रदान किया। सारे प्रयोगों में आकाशवाणी के समाचारों, समीक्षाओं और वार्ताओं में एक नई तरह की खुली सांस और ताजगी की महक महसूस की गई। जिसे अधिकारियों और सत्ता के गलियारों के बाहर देश की गलियों और सड़कों तक सराहा गया।

इसके बाद तो आकाशवाणी समाचारों में संगीत नेताओं, संवाददाताओं और विशेषज्ञों के स्वर अवसर सुनाई देने लगे। इससे स्वर की एकरसता टूटी और सुनने वालों

को विविधता का आभास मिला। इसी दशक में यह चर्चा भी जोर-शोर से शुरू हुई कि टेलीफोन के इस दौर में रेडियो की उपयोगिता और श्रोताओं की संख्या दोनों में गिरावट आ रही है। कुछ समीक्षक तो यहाँ तक कहते सुने गए कि रेडियो कौन सुनता है। यह बात पहले भी सच नहीं थी क्योंकि इस तरह की राय की जड़ सिर्फ महानगरीय सोच में थी। महानगरों से 20 किलोमीटर बाहर निकलते ही सड़कों और खेतों में साइकिल पर लटका ट्रांजिस्टर आज भी आम आदमी के लिए देश-दुनिया को जानने का सबसे भरोसेमंद साधन है।

तकनीकी प्रगति के साथ-साथ आकाशवाणी ने भी कदम बढ़ाये हैं और उपग्रह प्रसारण की सुविधा ने ट्रांसमिशन और कार्यक्रमों का रिसेप्शन अधिक सरल और साफ कर दिया। रेडियो को घर-घर तक पहुँचाने की सरकारी नीति के अनुरूप एफ. एम. प्रसारण की शुरुआत ने रेडियो कार्यक्रमों को एक और नया रंग दे दिया। यूं तो एफ. एम. प्रसारणों की शुरुआत 1997 में हो गई थी, लेकिन नई सदी में एफ. एम. का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। देश में एफ. एम. प्रसारण केंद्रों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी। दिल्ली से ही दो चैनलों पर एफ.एम. प्रसारण की शुरुआत सन् 2001 में हो गई।

आज की व्यस्त जिंदगी में कुर्सी या बिस्तर पर आराम से बैठे-बैठे रेडियो सुनने या टेलीविजन देखने की फुर्सत जरा कम ही मिलती है। एफ. एम. ने रेडियो प्रसारणों को मोबाइल कर दिया और सड़क चलते देश-दुनिया से जुड़े रहने की सुविधा इस देश के आम आदमी को दे दी। सन् 2001 की शुरुआत तक एफ. एम. पर समाचारों का प्रसारण हर घंटे एक-दो मिनट की सुर्खियों तक सीमित था। इस बात की कोशिश बराबर चल रही थी कि एफ.एम. पर समाचारों का नियमित प्रसारण हो या यूँ कहें कि एफ. एम. समाचार चैनल की शुरुआत देश में महसूस की जा रही थी। सन् 2001 के मध्य तक इस सोच ने पहले योजना का रूप लिया और फिर सितम्बर महीने से यह योजना साकार हो गई। तरह-तरह के प्रारूप और प्रयोग आजमाए गए। दो-तीन महीने की ठोस तैयारी के बाद पहली सितंबर को सुबह 6 बजे एफ. एम. 2 यानी 100.4 मेगाहर्ट्ज पर समाचारों का प्रसारण श्रोताओं के लिए सुखद आश्चर्य से कुछ कम नहीं था। इस चैनल पर हर घंटे अंग्रेजी और हिंदी में समाचारों के नियमित प्रसारणों के साथ-साथ सुबह, दोपहर और शाम को आधे घंटे के विशेष समाचार कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाई गई।

इस सारी चर्चा का अर्थ यह बिलकुल नहीं कि आकाशवाणी के प्राइमरी चैनल पर प्रसारित हो रहे समाचारों, समाचार कार्यक्रमों या अन्य कार्यक्रमों की पकड़ श्रोताओं पर ढीली हो रही है। उनका अपना एक श्रोता वर्ग है जो सारे देश में फैला हुआ है। किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि एफ. एम. पर समाचारों और उससे जुड़े कार्यक्रमों ने आज के युग में जानकारी की बढ़ती भूख को शान्त करने की दिशा में अहम योगदान किया है और आकाशवाणी को फिर एक बार शहरी श्रोताओं के नजदीक पहुँचा दिया है। तमाम विशेषताओं के बावजूद एफ. एम. की सबसे बड़ी सीमा यह है कि वह अभी कुछ बड़े शहरों तक ही सीमित है। एक अरब की विशाल आबादी वाले इस देश में हर नागरिक तक जानकारी और सूचना पहुंचाने की अपनी मंजिल पाने के लिए आकाशवाणी को अभी कई और मंजिलें तय करनी है।

9.12 सामुदायिक रेडियो (Community Radio)

सामुदायिक रेडियो साधारण, कुशल और कम लागत वाला जनता का जनता द्वारा जनता के लिए माध्यम है, जिससे लोग एक दूसरे से जुड़ जायें। सामुदायिक रेडियो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करके, खुली बहस द्वारा लोगों को निर्णय लेने में योग्य बनाता है। यह समुदाय को गतिशील बनाकर स्थानीय प्रतिभाओं और संसाधन को इस्तेमाल करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

भारत में वर्तमान में सामुदायिक रेडियो के अंतर्गत 50 वॉट के ट्रांसमीटर के साथ तीस मीटर का एंटीना जिसकी परिधि (पहुँच) 15 किलोमीटर होती है, का प्रावधान है। सामुदायिक रेडियो के कार्यक्रमों में समुदाय की स्थानीय आकांक्षाओं की झलक होनी चाहिए। इन कार्यक्रमों में स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण, कृषि और सामाजिक विकास के मुद्दे होने चाहिए। वर्तमान में इसमें विज्ञापनों पर प्रतिबंध है। सन् 1995 में सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक फैसले, जिसमें आकाशवाणी को सार्वजनिक करार दिया गया के साथ भारत में रेडियो प्रसारण का नया अध्याय लिया गया। भारत में सामुदायिक रेडियो का लाइसेंस पाने वाला सबसे पहला प्रतिभागी अन्ना यूनिवर्सिटी है। इसने अपना प्रसारण 1 फरवरी, 2004 से प्रारंभ किया।

9.13 सारांश

बंगलौर से करीब 100 किलोमीटर दूर के गांव में 1 मार्च, 2005 का दिन लाल अक्षर दिवस के रूप में मनाया गया। इस दिन देश की सूचना तकनीक राजधानी के समक्ष उस गांव की ध्वनि, प्रकाश और गतिविधियों ने गंभीर चुनौती प्रस्तुत की। ग्राम पंचायत के चुनाव हाल ही में संपन्न हुए थे और बुद्धिकोटे के केबल आडियो सेंटर से लगातार चुनाव परिणाम घोषित किये जा रहे थे।

इसी गांव में एक अन्य लाल अक्षर दिवस जून, 2003 में मनाया गया। बुद्धिकोटे में सूखा पड़ गया। पानी के पाइप सूख चुके थे। आठ दिनों तक कोई व्यवस्था पानी की नहीं हुई। स्थानीय लोगों के विरोध और अधिकारियों के वायदों के बावजूद कुछ नहीं हुआ। अन्ततः उक्त आडियो सेंटर के एक संवाददाता नागराज ने समुदाय के लोगों की भावनायें रिकॉर्ड कीं। महिलाओं ने माइक से अपना विरोध दर्ज कराया। उसी दिन शाम को इस टेप का प्रसारण किया गया। संदेश घर-घर पहुंचा। पाइपों की मरम्मत की गई और वाटर सप्लाई प्रारंभ हुई।

इन दो घटनाओं के आलोक में सूचना की शक्ति और तकनीक तथा सूचना का संयोग, अविस्मरणीय हो जाता है। भारत जैसे विकासशील देश में राष्ट्रीय विकास की चेतना को प्रवाहित, प्रसारित करने में अधुनातन सूचना पद्धति यथा केबल टी.वी. केबल रेडियो, इंटरनेट आदि की भूमिका महत्वपूर्ण है।

9.14 शब्दावली

विकासमूलक संचार : संचार के संजाल का राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग विकास मूलक संचार कहलाता है।

अपसंस्कृति : भारतीय जनमानस में अपने पारम्परिक मूल्यों को तज कर दिखावे के तहत इतर मूल्यों के प्रति अनुकूलन अपसंस्कृति के अंतर्गत होता है। कई बार लोग-बाग अपने मूल्य छोड़कर पराये परिवेश में भौतिकता की चादर में लिपटे तौर-तरीकों को अपना लेते हैं, इसे अपसंस्कृति कहा जाता है।

अन्तर्विभागीय समिति : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने 5 जून, 1989. को अंतर्विभागीय समिति का गठन किया था। इसमें विदेश, न्याय, संचार, इलेक्ट्रॉनिक्स, अंतरिक्ष संस्कृति विदेश संचार मंत्रालयों तथा दूरदर्शनों के प्रतिनिधि शामिल थे। इसकी अध्यक्षता सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में संयुक्त सचिव एम. दामोदरन ने की थी।

देवधर समिति : राजीव गाँधी सरकार ने प्रधानमंत्री के इलेक्ट्रिक ट्रेड एवं टेक्नोलॉजी डेवलपमेंट कारपोरेशन के सलाहाकार पी. एस. देवधर की अध्यक्षता में समिति गठित की।

सामुदायिक रेडियो : सामुदायिक रेडियो साधारण, कुशल और कम लागत वाला जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए माध्यम है। यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रोत्साहित करके, खुली बहस द्वारा लोगों को निर्णय लेने में योग्य बनाता है।

9.15 संदर्भ ग्रन्थ

(1) जगदीश्वर चतुर्वेदी : जनमाध्यम प्रौद्योगिकी और विचारधारा, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

(2) योजना : नवम्बर, 2005

(3) विदुर : जनवरी-मार्च 2002

(4) गैलीन ब्लादिमीर (Galin Vladimir) 1990, द कल्चर इज आलवेज राइट, न्यू टाइम्स, 30-90।

(5) संचार माध्यम : जनवरी-मार्च 2001, खण्ड 18, अंक।

9.16 प्रश्नावली

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

(1) भारत में संचार के राष्ट्रीय परिदृश्य पर प्रकाश डालिए।

(2) सिनेमा और केबल टेलीविजन के अंतर्सम्बन्ध को स्थापित करते हुए उनके विकास एवं विकास में उनके योगदान को चिन्हित कीजिए।

(3) इंटर-क्रांति को संक्षेप में भारत के पक्ष में स्थापित कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) सामुदायिक रेडियो से आप क्या समझते हैं?

(2) आकाशवाणी के विकास क्रम पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

(3) एफ. एम. रेडियो पर समाचार प्रसारण पर प्रकाश डालिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

(1) एफ. एम. प्रसारणों की शुरुआत भारत हुई–

(क) नई दिल्ली, सन् 2001 (ख) मुम्बई 2001

(ग) कोलकाता 2001 (ग) अजमेर, सन् 2000

(2) सामुदायिक रेडियो का पहला लाइसेंस दिया गया–

(क) अन्नामलाई यूनिवर्सिटी (ख) अन्ना यूनिवर्सिटी

(ग) अन्नाद्रमुक यूनिवर्सिटी (घ) कोई नहीं

(3) भारत में आकाशवाणी को पब्लिक सेक्टर के अंतर्गत किये जाने संबंधी ऐतिहासिक फैसला हुआ–

(क) सन् 2001 में (ख) सन् 1990 में

(ग) सन् 2000 में (घ) सन् 1995 में

उत्तर –

(1) (क)

(2) (ख)

(3) (घ)

इकाई -10 स्वातन्त्र्योत्तर भारत में विकास संचार

इकाई की रूपरेखा

10.0 उददेश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 विकासमूलक संचार : भारतीय परिप्रेक्ष्य

10.3 राष्ट्रीय योजना समिति तथा संचार

10.4 लोकतांत्रिक संचार की अवधारणा

10.5 सरकारिया आयोग, राजनीतिक दल एवं संचार माध्यम

10.6 संचार का मौजूदा मॉडल

10.7 जनमाध्यम प्रौद्योगिकी और विकास

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 संदर्भ ग्रंथ

10.11 प्रश्नावली

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

(1 भारत के परिप्रेक्ष्य में विकासमूलक संचार का विवेचन कर सकेंगे।

(2) स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्रीय योजना समिति की भूमिका की समीक्षा कर सकेंगे।

(3) लोकतांत्रिक मूल्यों की संचार प्रौद्योगिकी में स्थिति का आकलन कर सकेंगे।

(4) संचार के मौजूदा मॉडल से परिचित हो सकेंगे।

(5) पंचवर्षीय योजनाओं में संचार की स्थिति को देख सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

संचार माध्यमों की यह खूबी है कि उसके अध्ययन से संबंधित देश की जीवन शैली, जीवन मूल्य आदि का भी पता चलता है। उसे नयी जीवन शैली में ढालने में मदद मिलती है : संबंधित देश के विकास एवं उपभोग स्तर का पता चलता है। इस प्रक्रिया में खासकर वर्गीय समाजों में व्याप्त विभिन्न जीवन शैलियों, पद्धतियों एवं मूल्यों कीअपेक्षा की जाती है तथा उपभोक्तावादी संस्कृति पर बल दिया जाता है। इसके कारण संप्रेषण माध्यमों से संस्कृति को गंभीर खतरा उठ खड़ा हुआ है। जबकि संचार माध्यमों की ताकत का विकास के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत का आजादी का सुनहरा सपना, आत्मनिर्भर समाज का स्वप्न आज खण्ड-खण्ड हो रहा है। जब हम विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं बड़े पूंजीवादी राष्ट्रों के द्वारा किए गए पूंजीनिवेश एवं कर्जों का आंकड़ा देखते हैं तो पाते हैं कि देश आकंठ विदेशी कर्जों में डुबा हुआ है। सम्पूर्णता में देखें तो आर्थिक व्यवस्था का जो मॉडल शासक वर्ग ने सोचा था, विदेशी पूँजी निवेश उसका अभिन्न हिस्सा था। इसने संचार मॉडल को भी प्रभावित किया।

अर्थव्यवस्था की समाजवादी नमूने के समाज की परिकल्पना को हम असमान समाज की शक्ल में रूपान्तरित पाते हैं तथा विकास के लक्ष्यों का जनता तक न पहुँच पाना गंभीर आर्थिक भटकाव को दिखाता है। वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय संचार नीति की बुनियादी धारणाओं से भटकाव की प्रक्रिया भी सामने आती है।

10.2 विकासमूलक संचार : भारतीय परिप्रेक्ष्य

शासन व्यवस्था जिस तरह के विकास का रास्ता चुनेगी उसी मार्ग का सम्प्रेषण जनसंचार भी करेंगे। अतः विकास एवं जनसंचार के अंतर्सम्बन्ध को मात्र तकनीकी संबंध के रूप में नहीं देखना चाहिए, बल्कि वर्गीय दृष्टिकोण से देखना चाहिए तब ही वैज्ञानिक निष्कर्षों तक पहुंचा जा सकता है तथा इस प्रक्रिया में पैदा हुई समस्याओं का समाधान भी खोजा जा सकता है। 'विकास' का वर्गीय सार-तत्व पता करने में शासन द्वारा लागू की जाने वाली अर्थनीति एवं राजनीतिक संरचना सबसे बड़ा आधार प्रदान करती है। हमारे देश में बड़ी सुंदर-सुंदर घोषणायें विकास योजनाओं के संदर्भ में समय-समय पर होती रहती हैं। पर शासकों ने इन घोषणाओं को कभी लागू नहीं किया।

आज हम तकनीकी क्रांति के दौर से गुजर रहे हैं। विकास के नाम पर नये-नये भारी उद्योगों का निर्माण हो रहा है। वहीं पर ग्रामीण जीवन में भी विकास की अनेकानेक अच्छी कागजी योजनायें भी मौजूद हैं। इन विकास योजनाओं का कुपरिणाम यह निकला है कि गरीब लोग और ज्यादा गरीब हुए हैं तथा उनकी तादाद बड़ी है तथा अमीर लोग और अमीर हुए हैं और उनकी संख्या बड़ी है। शक्तिशाली वर्ग ने भारतीय समाज में विकास की परिभाषा को नया अर्थ दिया, विकास का मतलब इन वर्गों की पूँजी एवं मुनाफों का विकास। ये सब लाया गया जनता एवं समाज के विकास के मुहावरों के तहत ही। आम जनता में यह भ्रम बना रहा है कि शासक वर्गों ने विकास की ईमानदारी से कोशिश की है। बस, कुछ बीच के दलालों ने मामला बिगाड़ दिया है।

शासकों के द्वारा विकास का जो मॉडल चुना गया वह लिखित रूप में तो जनता की हिस्सेदारी पर बल देता है, परन्तु व्यवहार में यह देखा गया है कि जनता के बहुत ही छोटे हिस्से को विकासमूलक कार्यक्रमों में हिस्सेदार बनाता है और उतने ही लोगों को विकास में हिस्सेदार बनाया जाता है जितने से अभीष्ट मुनाफा एवं पूँजी विस्तार संभव हो जाय। इस क्रम में बहुसंख्यक समाज विकास प्रक्रिया के बाहर ही खड़ा रह जाता है। जब सामाजिक विकास में जनता की हिस्सेदारी शासक वर्ग नहीं चाहता है, तो समाज के चौतरफा विकास के अवसर भी वह पैदा नहीं करता। समाज के सभी लोगों को विकास

के समान अवसर एवं सुविधायें भी मुहैया नहीं कराता, चाहे वह लिखित में हो या संसद में इन सबको देने का वायदा कितनी ही जोर-जोर से करे। यही वजह है कि समाज का स्वस्थ विकास नहीं हो पाता।

भारतीय समाज के चौतरफा विकास की समूची रणनीति के साथ संचार माध्यमों का गहरा अंतर्संबंध है। विकास की संरचना एवं संचार माध्यमों की प्रसार संरचना का मॉडल भी अंतर्ग्रंथित रूप से जुड़ा हुआ है। मैकब्राइट कमीशन ने माना कि असमान समाज में संचार असमानता की खाई को बढ़ाने का काम करता है। हमारे यहाँ आर्थिक विकास क्रम में गरीब एवं अमीर की खाई चौड़ी हुई है। इस प्रक्रिया को संचार माध्यमों ने और भी गति प्रदान की है, जिसके कारण 'सूचना समृद्ध' एवं 'सूचना दरिद्र' की श्रेणियों का जन्म हुआ है। मैकब्राइट कमीशन ने जिस तरह के गरीब देशों को अपने विचार के केंद्र में रखा है, उनमें भारत भी शामिल है।

तीसरी दुनिया के मुल्कों एवं विकासशील देशों में जहाँ पूँजीवादी जनतंत्र अथवा फौजी तानाशाही शासन व्यवस्था है वहाँ पर संचार माध्यमों की, ऐसी संरचना बनायी गयी है कि आम लोगों को सूचनायें दी जायें। उन्हें लाभों की जानकारी दी जाये। उनमें यह भाव पैदा किया जाए कि वे विकास के लिए 'कुर्बानियां' दें तथा नेता का अनुसरण करने के लिए तैयार रहें। इस समझदारी का आधार यह रहा है कि विकास के लाभ स्वतः ही जरूरतमंद लोगों तक पहुँच जाएंगे। इसका लाभ समृद्धों को मिला है। संचार एवं विकास के इस मॉडल को बदलने की जरूरत है।

10.3 राष्ट्रीय योजना समिति तथा संचार

स्वाधीनता संग्राम के दौरान कांग्रेस के नेतृत्व ने गंभीरता के साथ राष्ट्रीय योजना की परिकल्पना तैयार करने का कार्य शुरू किया। सुभाषचंद्र बोस ने 1938 में कांग्रेस का अध्यक्ष होने के नाते राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया। इस समिति ने 29 उपसमितियाँ गठित कीं, जिनमें एक उपसमिति 'संचार' के बारे में भी थी। इस समिति की अध्यक्षता रहमतुल्ला चिनॉय ने की।

राष्ट्रीय योजना समिति ने संचार उपसमिति की रिपोर्ट के आधार पर यह प्रस्ताव पास किया कि 'संचार एवं प्रसारण' आम जनता के उपयोग की सेवायें हैं तथा समाज की भलाई के माध्यम हैं जो फिलहाल राज्य के नियंत्रण में है। यह जनता के एकाधिकार में हो तथा व्यावसायिक आधार पर इनका विकास किया जाना चाहिए। इस माध्यम को सामाजिक सेवा एवं राष्ट्रीय विकास के शक्तिशाली प्रतिनिधि के रूप में विकसित करना चाहिए।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में संचार क्रांति पर कोई राष्ट्रव्यापी बहस एवं सहमति नहीं पैदा की जा सकी। जबकि स्वाधीनता संग्राम एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण के प्रभावस्वरूप राष्ट्रीय योजना समिति ने संचार का दर्शन एवं ढांचा पेश किया था। उसे स्वाधीन भारत में लागू ही नहीं किया गया। इसमें यह माना गया कि संचार के माध्यम से तेजी से योजनाबद्ध विकास कार्यक्रमों को लागू किया जा सकता है तथा संचार को विकास का एजेंट माना

गया। इसे राष्ट्रीय योजना का अभिन्न हिस्सा माना गया।

कालांतर में राष्ट्रीय योजना समिति ने 'संचार' पर एक विशेष ग्रुप गठित किया जिसने 1948 में अपनी रिपोर्ट दी। यह रिपोर्ट संचार नीति के आधारभूत दस्तावेज के रूप में मानी जाती है। इस दस्तावेज में जो दृष्टिकोण व्यक्त किया गया वह भारतीय जीवन के अनुरूप है तथा विकासमूलक माध्यम की धारणा को व्यक्त करता है। इस समिति की सिफारिश थी कि रेडियो को विकास के एजेंट के तौर पर तेजी से विकसित किया जाये। कालांतर में इसी के आधार पर अखिल भारतीय स्तर पर आकाशवाणी का विस्तार संभव हो पाया।

संचार नीति के क्षेत्र में दूरदर्शन के उपयोग को लेकर सबसे पहले प्रसिद्ध वैज्ञानिक विक्रम साराभाई ने नीति-निर्धारकों का ध्यान खींचा तथा इस बात पर बल दिया कि दूरदर्शन का विकासमूलक माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया जाय। विक्रम साराभाई की धारणाओं में एक वैज्ञानिक के आदर्श सपनों की झलक मिलती है। पर भारतीय समाज के वर्गीय गठजोड़ को नजरअंदाज करके तो इस सपने को पूरा नहीं किया जा सकता।

असल में विकास एवं संचार एक ही सिक्के के दो पहूल हैं। जनसंचार की भूमिका विकासमूलक हो इसके लिए जरूरी है कि इसे विकास कार्यक्रमों को लागू करने वाली एजेंसियों एवं संस्थाओं से जोड़ा जाय। पी. सी. जोशी ने सही ध्यान खींचा है कि भारत की परिस्थितियों के अनुकूल हमने अभी तक संचार नीति का दर्शन तैयार नहीं किया। पी. सी. जोशी के संचार एवं समाज संबंधी लेखों में नेहरू एवं गाँधी के लक्ष्यों के अनुरूप सामाजिक विकास की अवधारणा की वकालत दी गयी है। दरअसल नेहरू एवं गाँधी के पास भारतीय समाज के विकास का जो दर्शन था वह भारतीय पूँजीपति वर्ग के विकास का दर्शन था। आय समाज की मुक्ति का लक्ष्य इस दर्शन के उद्देश्यों में शामिल नहीं था।

पी. सी. जोशी का समूचा परिप्रेक्ष्य, समाज शास्त्रीय सदिच्छाओं पर आधारित है तथा आदर्शवादी दर्शन के परिप्रेक्ष्य से बना है। गाँधी-नेहरू के प्रति उसमें एक भक्ति का भाव है जो कि विचारधारात्मक रूप से उन्हें गाँधी एवं नेहरू की विचारधारा की संगत में ले जाता है तथा वे उन्हीं वर्गों के सिद्धान्तकार होकर सामने आते हैं, जिन वर्गों के नेता गाँधी और नेहरू थे। पी. सी. जोशी का मानना है कि भारतीय परिस्थितियों के लिए प्रासंगिक संचार का दर्शन तय किया जाना चाहिए, क्योंकि संचार ज्यादा गंभीर विषय है। इसे तकनीकीविदों, नौकरशाहों एवं अभिजात्य राजनेताओं के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता है। आज ये लोग संचार का ढाँचा तैयार करने के लिए एक छोर पर है, तो दूसरे छोर पर वैज्ञानिक समाजशास्त्री, कला, संस्कृति के विशेषज्ञ तथा जमीन से जुड़े हुए सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यकर्ता हैं जो असलियत में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक की चिंतनशक्ति के केंद्र हैं। अभी तक कोई भी ऐसा प्रभावी मंच इन दोनों छोरों पर खड़े लोगों के मिलन के लिए तैयार नहीं हो पाया है, जिससे कि इन लोगों में संवाद एवं सहयोग बने। असल में, संचार के नीति-निर्धारकों एवं सामाजिक परिवर्तन

के प्रतिनिधियों में संवाद का अभाव है। विकासमूलक माध्यम के लिए सबसे पहले इन दो ध्रुवों पर खड़े लोगों के बीच अंतर्संबंध एवं संवाद जरूरी है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रभात पटनायक ने तीसरी दुनिया के पूँजीवादी जगत का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि जहाँ बुर्जुआ विकास हुआ है वहाँ सामंतों से उसने समझौता किया है। वहाँ पुराने सामंती संस्कारों एवं संस्थाओं के खिलाफ क्रांतिकारी संघर्ष नहीं चलाया गया। इस सीमित सामाजिक आधार से पूँजीपति ने शुरुआत की है। इससे पूँजीवादी विकास का दायरा और भी सिकुड़ गया है। इस समूची प्रक्रिया में पूँजीपति क्रमशः दूसरे सामाजिक वर्गों से अलग-थलग पड़ता चला गया।

सामाजिक विकास के साथ में संचार को जोड़ेंगे तो हमें समाज में सक्रिय धर्मों, सस्कारों एवं मत-मतांतरों के बारे में भी तय करना होगा कि आखिरकार राज्य का इनके साथ क्या रिश्ता है तथा क्या रिश्ता होना चाहिए। इसके बगैर सामाजिक विकास एवं संचार के अंतर्संबंध का सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य तैयार ही नहीं हो पाएगा।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में कहा गया है कि संचार व्यवस्था विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। इससे जनता को अर्थव्यवस्था की सूचनाओं के आधार पर विकास में शामिल होने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इस संदर्भ में इलेक्ट्रानिक माध्यमों की भूमिका और भी ज्यादा बढ़ जाती है खासकर रेडियो और टेलीविजन की। संचार व्यवस्था को समूचे समाज की सेवा करनी चाहिए। इसे ग्रामीण जनता एवं वंचितों को केंद्र में रखकर विशेष रूप से प्राथमिकतायें तय करनी चाहिए।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में अशिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ है। शिक्षा के घोषित लक्ष्यों को कागजी घोषणा बनाकर छोड़ दिया गया जबकि हम प्रौद्योगिक उन्नति के नित नये क्षेत्रों में प्रवेश कर रहे थे। विकासपरक योजनाओं को न तो पर्याप्त धन दिया गया और न ही उन्हें ईमानदारी से लागू करने की कोशिश की गई। तब ऐसी स्थिति में क्या हम सिर्फ संचार प्रौद्योगिकी का ही विस्तार करके सामाजिक विकास एवं सामाजिक शिक्षा का लक्ष्य हासिल कर सकते हैं?

तकनीकी एवं विकासमूलक संचार का गहरा रिश्ता है। किस प्रकार की तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी तैयार हो, उसी से यह बात जुड़ी है कि संचार माध्यम का किस रूप में इस्तेमाल हो? हमारे योजनाकारों ने पूँजीपति वर्ग की जरूरतों को पूरा करने के लिहाज से विज्ञान एवं तकनीक के सृजन पर जोर दिया। यही वजह है कि विज्ञान सम्मत चेतना अपने वर्गीय सारतत्व के कारण कालांतर में तकनीकी सम्मत चेतना पर बल देने लगी। संचार के माध्यम से जब सामाजिक शिक्षा देने की बात उठी तो उस समय भी शिक्षामूलक कार्यक्रमों के लिए समुचित संसाधन नहीं दिए गये। प्रसिद्ध वैज्ञानिक होमी जहांगीर भाभा एवं विक्रम साराभाई ने प्रयोग के तौर पर जिस अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम की शुरुआत की थी वह विज्ञान प्रोन्नति के लिए महत्वपूर्ण कदम था, जिसकी एक शाखा के तौर पर भारत-अमेरिकी सहयोग से एस. आई. टी. ई. कार्यक्रम की शुरूआत हुई तथा इसका समझौता 19 सितंबर, 1969 में हुआ। इस समझौते में विकासमूलक संचार के क्षेत्रों का खुलासा किया गया। 'साईट' का कार्यक्रम छह राज्यों के बीस जिलों के 2329 गांवों

में शुरू किया गया। शैक्षणिक दूरदर्शन का मतलब था 5-12 वर्ष के स्कूली बच्चों, पूर्व स्कूली बच्चों को शिक्षा एवं मनोरंजन का प्रावधान। मनोरंजन के कार्यक्रम को इसलिए रखा गया जिससे कि प्रौढ़ लोग भी इसे देख सकें।

साइट के कार्यक्रमों पर 50 शोध-अध्ययनों का 19 खण्डों में पुलिंदा मौजूद हैं जिसका यूनेस्को के कहने पर प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम. एम. गोरे ने अध्ययन किया था। वे भी इसके लक्ष्य प्राप्ति के सवाल पर कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे पाये। फिलहाल देश में शैक्षणिक दूरदर्शन तथा उच्च शिक्षा दूरदर्शन ये दो प्रयोग चल रहे हैं। शैक्षिक दूरदर्शन खासकर बच्चों के लिए है जिसमें 5-11 वर्ष के बीच के स्कूली बच्चों के ज्ञान समृद्धि कारक कार्यक्रम होते हैं तथा दूसरी श्रेणी में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, उच्च शिक्षा कार्यक्रमों का प्रसारण करता है। इन कार्यक्रमों का बड़ा हिस्सा ब्रिटेन, अमेरिका, जापान वगैरह से मंगाकर संपादित करके प्रसारित किया जाता है। इनसैट से प्राप्त समय में से 13 घण्टे 45 मिनट का हम उपयोग कर पाते हैं जबकि हमारे पास प्रतिदिन 16 घंटे समय होता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के प्रो. के. एन. सिंह ने एक सर्वे किया था। इस सर्वे में पाया गया कि परम्परागत किसान नयी फसल एवं कृषि की नयी उपयोगी वस्तुओं का इस्तेमाल अपने पड़ोसी किसान के यहाँ इसके इस्तेमाल को देखकर शुरू करता है न कि मीडिया या सरकारी एजेंसी के कहने पर। किसानों के बीच में औपचारिक माध्यम के संप्रेषण का उतना गहरा असर नहीं होता है जितना कि अनौपचारिक संप्रेषण का होता है। अशिक्षितों के समाज में लिखित शब्द की महत्ता का प्रतिपादन ब्रह्म वाक्य की तरह होता है, अतः आम लोगों में अभी भी दृश्य-श्रव्य माध्यमों की बजाय प्रिंट माध्यम पर ज्यादा विश्वास देखा जाता है।

विकासमूलक कार्यक्रमों को तैयार करते समय अनौपचारिक सम्प्रेषण की प्रक्रिया को किस तरह जनसंचार की प्रक्रिया से जोड़ा जाए, इस पर विचार करने की आवश्यकता है। इसलिए जनसंचार माध्यमों के द्वारा विकासमूलक कार्यक्रमों के प्रसारण पर ही एकांगी रूप से जोर देने से सारा मामला गड़बड़ा सकता है। खास तौर पर तब जबकि देश में अभी भी 75ः आबादी गांवों में है तथा वह परम्परागत संप्रेषण पर ज्यादा भरोसा करती है। अभी तक विकासमूलक कार्यक्रमों का संचार माध्यमों के जरिए जो प्रसारण हुआ है वह भारत की हकीकत से मेल नहीं खाता। देश की विविधता, अभिव्यक्ति एवं प्रसारण के वैविध्य एवं सांस्कृतिक रूपों में व्याप्त अंतरों को समझने की जरूरत है तथा विकासमूलक माध्यम के विकास के लिए संबंधित समुदाय की भाषा, संस्कृति, परंपरा, खान-पान, रहन-सहन, आचार-व्यवहार एवं सभ्यता के संदर्भों को उसी के मुहावरों एवं शैली में जानना एवं अभिव्यक्त करना जरूरी है।

विकासमूलक कार्यक्रमों का उद्देश्य जहाँ एक ओर आम लोगों को सूचना संपन्न बनाना होना चाहिए वहीं दूसरी ओर पिछड़ी हुई मानसिकता तथा जीवन मूल्यों के बदलाव की प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान करने वाला होना चाहिए। नए जीवन मूल्यों को पैदा करने का अर्थ विकासशील श्रम शक्तियों को शोषण की शक्तियों से लड़ने का

वैचारिक दृष्टिकोण प्रदान करना तथा वास्तविक अर्थों में मानवीय सारतत्व का विकास करने वाला होना चाहिए।

10.4 लोकतांत्रिक संचार की अवधारणा

लोकतंत्र के विकास एवं इसकी सुरक्षा के प्रति जवाबदेही महसूस करने के लिए संचार की लोकतांत्रिक संरचना का भी विकास करना होगा। संचार एवं लोकतंत्र अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। जिस तरह लोकतंत्र में जनता की व्यापक हिस्सेदारी सरकार एवं जनता के बोच में द्वन्द्वात्मक रिश्ते की पहचान को हम जानते हैं उसी तरह हमें संचार एवं लोकतंत्र के अंतर्संबंध को भी समझना होगा। 'संचार' का माध्यम के तौर पर लोकतंत्र या तानाशाही दोनों में से किसी भी दिशा की ओर ले जाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

संचार का जो मॉडल अभी तक हम चलाते रहे हैं वह लोकतंत्र की मौजूदा जरूरतों को बहुत कम दूरी पर पूर्ति करता है। बल्कि समूची संरचना एवं कथ्य पर ध्यान दें, तो वह तानाशाही उन्मुख दिशा को ही सामने लाता है। अधिनायकोन्मुख संचार की यह विशेषता होती है कि उसमें माध्यम जनता से एकतरफा संवाद बनाता है। वह सरकार का माध्यम होता है जो सिर्फ संप्रेषित करता है। जनता से ग्रहण नहीं करता। संचार के अध्येताओं का मानना रहा है कि अगर इस क्षेत्र में लोकतांत्रिकीकरण की प्रक्रिया को लागू करना है तो सबसे पहले यह धारणा माननी होगी कि व्यक्ति 'संचार' का सक्रिय हिस्सेदार बने न कि मात्र 'वस्तु' बनकर रह जाए। दूसरी बात यह है कि विभिन्न विचारों, रूपों एवं विविधतापूर्ण प्रयोगों की छूट हो तथा सामाजिक हिस्सेदारी एवं प्रतिनिधित्व को संचार में प्रोत्साहित किया जाए। भारत जैसे पिछड़े हुए समाज में जहाँ लोकतंत्र भी लूला लंगड़ा बना दिया गया है, जहाँ समृद्धों एवं गरीबों में समाज,राजनति एवं अर्थनीति बँटी हो वहाँ पर लोकतांत्रिकीकरण की प्रक्रिया को लागू करना आसान काम नहीं है तथा इन बाधाओं को संचार की बाधाओं के साथ अथवा संचार के क्षेत्र में आने वाली बाधाओं के साथ जोड़कर देखना चाहिए।

लोकतंत्र ने जिस तरह समृद्धों एवं अभिजात्यों की वृद्धि की है तथा गरीबों की इन तबकों से दूरी को बढ़ाया है तथा गरीबों की संख्या बढ़ायी है उसका असर सम्प्रेषण माध्यमों पर भी पड़ा है। शासक वर्गों ने जो समृद्धों एवं अभिजात्यों के हितों को ही समृद्ध करते रहे हैं, तथा उन्हें सुरक्षा प्रदान करते रहे हैं, इनके हितों की संगति में सम्प्रेषण माध्यमों के चलने के कारण सूचना, मनोरंजन एवं शिक्षा के क्षेत्र में संचार माध्यमों ने 'सूचना दरिद्र' एवं 'सूचना समृद्ध' की श्रेणियों का सृजन किया है। एकतरफा संवाद के कारण सूचनायें संचार के शिखर से प्रसारित की जाती हैं। ऐसी सूचनायें यह कहकर बतायी जाती हैं कि वे 'जनहित' में प्रसारित की जा रही हैं। शैक्षिक एवं विकासमूलक कार्यक्रमों को देखें तो पायेंगे कि ये जनहित के नाम पर चंद लोगों के हितों से संचालित एवं निर्देशित होते हैं। चूँकि भारत जैसे विशाल देश में संप्रेषण का असमान वितरण है। अत: केंद्र सरकार द्वारा नियंत्रित आकाशवाणी एवं दूरदर्शन

के माध्यम से चंद व्यक्तियों के हितों से निर्देशित प्रसारण की, आम लोगों में प्रसारण की अन्य सुविधा के अभाव में विश्वसनीयता बढ़ जाती है। आम लोगों के मन में इन माध्यमों से सम्प्रेषित विचारों के प्रति हमदर्दी एवं समर्थन पैदा हो जाता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति को सूचना सम्प्रेषित करने वाले लोग पहले से शासक वर्गों के हितों की संगति में सूचनाओं, खबरों आदि का चयन कर लेते हैं तथा ये चुनी हुई सूचनायें, शिक्षा एवं विकास की खबरें ही आम लोगों को संप्रेषित होती हैं।

विविधता एवं लोकतंत्र का अंतर्सम्बन्ध 'संचार के लोकतांत्रिकीकरण' की अहम् शर्त है। यह शर्त हमारे शासक पूरी करते हैं तो फिर सचेत रूप से लोकतांत्रिक संचार संरचना को लागू करने की जरूरत होगी। अगर ऐसा नहीं किया जाता, तो यह संभावनायें हैं कि निकट भविष्य में 'प्रतिवादी संचार' संरचना का विकास हो। वैसे इसकी शुरुआत हो चुकी है। इसमें वीडियो पत्रिकाएं एवं केबल टीवी अभी तो हमारे यहाँ व्यावसायिक हितों से संचालित हैं तथा सूचना एवं लोकप्रिय सिनेमा, नाटक आदि के संप्रेषण का माध्यम है।

संचार के लोकतांत्रिकीकरण की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण का जनता में विकास करना। आलोचनात्मक दृष्टिकोण बनाने में जहाँ माध्यम विशेषज्ञ मदद कर सकते हैं वहीं पर सबसे प्रभावी भूमिका ग्राम पंचायतों, जिला परिषद्रों, मजदूर किसान, छात्र युवा आदि के संगठन निभा सकते हैं क्योंकि परंपरागत संप्रेषण के ये संगठन स्तंभ हैं। कोई भी जनसंचार इस परंपरागत संचार को अपदस्थ करके सक्रिय एवं प्रभावी नहीं हो सकता है। भारत में जहाँ शासक वर्गों के अंदर इस माध्यम के ऊपर अत्यधिक भरोसा दिखाई देता है। जनता के अंदर वे अपनी जड़ें जमा नहीं पाते हैं तथा संकट की स्थिति में जब वे जनता से कटे हुए होते हैं, तो वे पूरी तरह आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर ही निर्भर करने लगते हैं तथा आक्रामक रुख ग्रहण करने लगते हैं। ऐसे मे सबसे प्रतिरोधी संचार, जन संगठनों एवं वर्गीय संगठनों की तरफ से हो सकता है तथा वह इस माध्यम पर अंकुश का भी कार्य करेगा।

मैकब्राइड कमीशन ने माना कि संचार के लोकतांत्रिकीकरण के आह्वान के अनेक अर्थ लिए जा सकते हैं। ये अर्थ ऐसे भी हो सकते हैं जिनको अमूमन हम सोचते नहीं हैं। यह मान लिया जाता है कि इसमें ज्यादा वैविध्यपूर्ण सामग्री जनता को दी जाए। पर लोकतांत्रिकीकरण के सवाल को केवल मात्रा का सवाल नहीं बनाया जा सकता है या ज्यादा सुविधाओं का सवाल नहीं माना जा सकता है। इसका अर्थ है आम जनता को इसके ज्यादा से ज्यादा प्रयोग का अधिकार। पर, यह लोकतांत्रिकीकरण की प्रक्रिया का एक हिस्सा भर है। इसका अर्थ यह भी है कि राष्ट्रीयताओं, राजनीतिक शक्तियों, सांस्कृतिक समुदायों, आर्थिक ग्रुपों तथा सामाजिक ग्रुपों में समान धरातल पर सूचनाओं का आदान-प्रदान। यह कार्य कमजोर के ऊपर किसी भी तरह के वर्चस्व एवं भेदभाव को पैदा करने वाला नहीं हो। दूसरे शब्दों में यह समूचे दृष्टिकोण को ही बदलने की बात है और दोतरफा संचार की जरूरतों को पैदा करता है।

केंद्र सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के तहत आकाशवाणी (रेडियो) और दूरदर्शन, दोनों माध्यमों का लिखित रूप से कहीं भी सरकार के प्रचार माध्यमों के रूप में उल्लेख नहीं मिलता। इसके बावजूद अगर केंद्र सरकार विकास कार्यक्रमों एवं अपने जनता से संवाद बनाने के माध्यम के रूप में इन दोनों माध्यमों का इस्तेमाल करे, तो किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी। पर, यह काम एकांगी ढंग से नहीं होना चाहिए। जिस तरह केन्द्र सरकार देश के नुमाइंदों का प्रतिनिधित्व करती है उसी प्रकार राज्य सरकारों के प्रतिनिधि भी जनता चुनती है। विकास कार्यक्रमों को लागू करने, राज्य की जनता से राज्य सरकार के बीच में संवाद की जरूरत है, जिससे कि वह जनता को आंदोलित कर सके, जाग्रत कर सके तथा अपने कार्यक्रमों के लिए जनता की हिस्सेदारी को भी सुनिश्चित कर सके।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि लोकतंत्र के मजबूत स्तम्भ समझी जाने वाली राज्य सरकारों के पास जनसंचार का कोई भी माध्यम नहीं है। जनसंचार माध्यमों के अभाव के कारण राज्य सरकारों का अपनी जनता के साथ परंपरागत रूपों में ही संवाद है अथवा इसकी अनुपस्थिति में पूरी तरह संवादहीनता की स्थिति है। एक तरह से राज्य सरकारें गूंगी-बहरी होकर सक्रिय हैं।

10.5 सरकारिया आयोग, राजनीतिक दल एवं संचार माध्यम

सरकारिया आयोग को विभिन्न दलों एवं राज्य सरकारों ने जो ज्ञापन भेजे थे वे इस बात के गवाह हैं कि भारतीय राजनेता किस तरह का रवैया अपनाते हैं। खासकर केंद्र-राज्य संबंधों पर वामपंथी दलों विशेषकर भाकपा-माकपा को छोड़कर किसी के भी मांग-पत्र में नये दृष्टिकोण का आभास नहीं मिलता पर इन दोनों दलों के पास भी कोई सुसंगत संचार नीति नहीं है। बाकी दलों की स्थिति तो और भी खराब है। फिर भी संचार माध्यमों पर जो दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है वह उल्लेखनीय है। सरकारिया आयोग को विभिन्न दलों द्वारा भेजे ज्ञापनों को पढ़ने के बाद पता चलता है कि राजनीतिक दलों का इन माध्यमों के प्रति तदर्थ दृष्टिकोण उजागर होता है।

सरकारिया आयोग ने जनसंचार माध्यमों खासकर आकाशवाणी एवं दूरदर्शन की मौजूदा स्थिति पर केंद्र-राज्य संबंधों के संदर्भ में विचार किया। सरकारिया आयोग ने केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को तो माना पर उसको रोकने के बारे में कोई भी ठोस सुझाव नहीं दिया। विभिन्न दलों, राज्य सरकारों एवं व्यक्तियों के द्वारा आकाशवाणी, दूरदर्शन के बारे में की गई शिकायतों एवं सुझावों पर सरकारिया कमीशन ने पूर्वाग्रह ग्रस्त होकर विचार किया। पूर्वाग्रह ग्रस्तता की स्थिति का ही परिणाम था कि जायज शिकायतों को स्वीकार करने के बावजूद कोई भी ठोस कदम उठाने का सुझाव कमीशन ने नहीं दिया। जिस विकेंद्रीकरण की बात सरकारिया आयोग की रिपोर्ट में उठायी गयी है, उसका स्वरूप क्या होगा? विकेंद्रीकरण के विकल्प के रूप में उसने यथास्थिति बनाये रखने का सुझाव दिया है। इन माध्यमों के दुरूपयोग की बात उठती है अथवा नियमों में फेरबदल की बात उठती है, तो उसे अंतर्राज्यीय परिषद् के मंच पर उठाया जाना

चाहिए, यह उसका सुझाव है। मानो अंतर्राज्यीय परिषद् सारे रोगों का रामबाण है। सरकारिया आयोग ने राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के सवाल को सर्वोपरि स्थान दिया है तथा इसी के आधार पर राज्यों को चैनल दिये जाने अथवा पार्टी हितों के लिए इन माध्यमों के इस्तेमाल के सवाल पर अपनी राय दी है। आयोग का मानना था कि जिस तरह अंध क्षेत्रीयतावाद, विखण्डन, सांप्रदायिकता, जातिवाद आदि की शक्तियाँ उभर रही हैं ऐसे समय में इन माध्यमों को पार्टीगत प्रचार के लिए स्वतंत्र नहीं किया जा सकता।

सरकारिया आयोग ने अपनी दलील के पक्ष में वर्गीज कमेटी की दलीलों को उद्धत किया है। पर, राष्ट्रीय विखण्डन की प्रक्रिया में दूरदर्शन ने क्या भूमिका अदा की है। इस पर पी. सी. जोशी समिति, नामीडिया की रिपोर्ट तथा भारत जैसी तीसरी दुनिया के देशों को केंद्र में रखकर तैयार की गई मैकब्राइट कमीशन की सिफारिशों को पूरी तरह अनदेखा कर दिया। राज्यों को चैनल दिए जाने के सवाल पर सरकारिया आयोग ने लिखा है कि राज्यों को चैनल दिए जाने की व्यवस्था का लाभ आर्थिक दृष्टि से सोचें, तो समृद्ध राज्य ही उठा पायेंगे। गरीब राज्य इस सुविधा से वंचित रहेंगे क्योंकि उनके पास उतने संसाधन नहीं होंगे। दूसरी महत्ववूर्ण बात यह कि अंतर्राज्यीय संबंध के लिए जिस तकनीकी इमदाद की जरूरत होगी वह सहज ही उपलब्ध नहीं हो पाएगी जिससे राष्ट्रीय एकता की भावना को पैदा करने के काम में बाधा पड़ेगी। अंतर्राज्यीय संचार संबंध एवं उपग्रह संचार के लिए जो सुविधा है वह केंद्र के पास है, जिसको राज्यों को स्थानांतरित नहीं किया जा सकता। इसके अलावा विखंडनकारी प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने के लिए यह संभव नहीं कि प्रसारण माध्यमों को समवर्ती सूची अथवा राज्यों के अधिकार में दे दिया जाय।

श्रीनगर सम्मेलन के प्रस्ताव में केंद्र-राज्य संबंधों के पुनर्निर्धारण के सुसंगत प्रस्ताव के हिस्से के रूप में संचार माध्यमों की स्थिति पर रोशनी डाली गयी थी। इस प्रस्ताव से इंका, भाजपा एवं अद्रमुक को छोड़कर बाकी सभी दलों ने सहमति जाहिर की थी। केंद्र-राज्य संबंधों के सवाल पर यह वैकल्पिक नजरिया है। यह प्रस्ताव स्वातंत्र्योत्तर भारत के अनुभवों की रोशनी में तैयार किया गया था।

10.6 संचार का मौजूदा मॉडल

संचार माध्यमों की संरचना का जो मॉडल भारत ने चुना है वह लोकतांत्रिक प्रक्रिया का पक्षधर नहीं है तथा अपनी प्रकृति में अलोकतांत्रिक है। जब समाज में ही लोकतांत्रिक प्रक्रिया छिन्न-भिन्न हो रही हो तथा योजनाओं की संपूर्ण संरचना अलोकतांत्रिक हो तब यह कैसे संभव है कि संचार लोकतांत्रिक होगा। पी सी जोशी कमेटी ने संचार संरचना में जिस रचनात्मकहीनता एवं कल्पनाहीनता के माहौल की तरफ ध्यान खींचा है वह अलोकतांत्रिक संचार संरचना का मॉडल है जिसमें दूरदर्शन एक माध्यम के तौर पर सिर्फ संप्रेषण करता है। यह काफी पुराना मॉडल है। इसलिए भारत जैसे असमान एवं विषम समाज में संचार माध्यमों का विकास एवं राष्ट्रव्यापी जाल का विस्तार असमानता

का विस्तार करने वाला ही साबित हुआ है।

मैकब्राइड कमीशन ने रेखांकित किया है कि संचार की प्रकृति इस बात से तय होती है कि वह किस तरह के समाज में सक्रिय है। असमान समाज में सक्रिय संचार माध्यम असमानता की खाई को बढ़ाने का औजार रहा है। इससे गरीबों एवं अमीरों के बीच में असमानता की खाई चौड़ी होती है। यह खाई सूचना दरिद्र एवं सूचना समृद्ध के रूप में दिखाई देता है। कमीशन का मानना है कि इस तरह का मॉडल कल्पनाशीलता का विरोधी होता है। इसमें विचारों की टकराहट नहीं मिलती। इसकी नीतियाँ ऊपर से चलती हैं तथा वहीं तय होती हैं। सरकारिया कमीशन ने भी माना कि दूरदर्शन समाचारों की भाषा अजनबी भाषा होती है।

भारतीय जनसंचार मॉडल की संरचना कुछ इस तरह है कि इसमें सूचनाएं ऊपर से नीचे की ओर जाती हैं, जहाँ चंद लोग बहुत सारे लोगों की जरूरतों के बारे में उनकी समस्याओं के बारे में चंद लोगों के हितों की रक्षा करने के लिए बोलते हैं एवं सोचते हैं। यह काम वे बड़े अधिकार के साथ संपन्न करते हैं।

पी सी जोशी कमेटी ने एक अन्य समस्या की तरफ ध्यान खींचा है कि एक बुनियादी कमजोरी मौजूदा संरचना में यह है कि राजनीतिज्ञों एवं संचार के प्रशासनिक लोगों में संवाद नहीं है। नीति निर्धारकों एवं संचार प्रशासकों के बीच में क्या अंतर है तथा कैसे इनमें संवाद हो तथा इन दोनों के लिए क्या नियम हो इस बारे में कोई नियम नहीं है। वर्किंग ग्रुप ने रेखांकित किया है कि दूरदर्शन के पास में कभी कोई फंक्शनल स्वायत्तता नहीं रही है। कार्य करने की स्वतंत्रता की छूट न होने के कारण कार्यक्रमों, योजनाओं में भी इसके प्रभाव को देखा जा सकता है।

जोशी कमेटी की राय थी कि दूरदर्शन को अधिकृत रूप से प्रत्येक स्तर पर पर्याप्त अधिकार दिए जाने चाहिए। रोजमर्रा की कार्य प्रणाली को इसकी संगति में विकसित किया जाना चाहिए। गैर पेशेवर दबावों एवं हस्तक्षेप से इसे मुक्त किया जाये। दूरदर्शन परिषद् का गठन करके कार्यकारी स्वायत्तता प्रदान की जाये। दूरदर्शन को सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के तहत रखा जाये। इस मंत्रालय को रेलवे बोर्ड की तरह स्वीकृति दी जानी चाहिए। जोशी कमेटी ने सिफारिश की थी कि दूरदर्शन के कामकाज के संदर्भ में सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की तरफ से कोई निर्देश नहीं दिए जाने चाहिए। इसके अलावा प्रत्येक दूरदर्शन केंद्र की कार्यक्रम सलाहकार परिषद् में विभिन्न क्षेत्रों के अनुभवी विशेषज्ञों को रखा जाना चाहिए।

पी सी जोशी कमेटी की रिपोर्ट की सिफारिशों को केंद्र सरकार ने ठण्डे बस्ते में तब्दील कर दिया। वर्गीज कमेटी रिपोर्ट में भी संचार का मॉडल विकासोन्मुख दिशा वाला नहीं है। वर्गीज कमेटी की सिफारिशें सतही संरचना के कुछ रूपों को बदल देने वाली है। इसके विपरीत पी सी जोशी कमेटी की सिफारिशों में दूरदर्शन के संचार मॉडल एवं समूची योजना नीति पर ही सवालिया निशान लगाया गया है।

वर्गीज कमेटी की रिपोर्ट आकाशवाणी एवं दूरदर्शन की स्वायत्तता पर केंद्रित है। इस रिपोर्ट के प्रकाशन से पूर्व तत्कालीन केंद्र में सत्तारूढ़ जनता पार्टी सरकार ने

आपातकाल में इन दोनों माध्यमों के दुरुपयोग को लेकर एक श्वेत पत्र जारी किया था, जिससे पता चलता है कि आपातकालीन कानूनों के तहत किस तरह केंद्र सरकार एवं शासक दल का अंतर मिट गया था। केंद्र सरकार एवं शासक कांग्रेस पार्टी के द्वारा इन दोनों माध्यमों को अपने प्रचार माध्यमों के रूप में इस्तेमाल किया गया था। कागज पर लिखित स्वायत्त कार्य प्रणाली को पूरी तरह इस दौर में खत्म कर दिया गया।

वर्गीज कमेटी ने राष्ट्रीय स्तर पर एक संचार नीति के निर्धारण की माँग को उठाया तथा कहा कि संचार क्रांति के बाद से संप्रेषण की बहुआयामी भूमिका उभर कर आयी है। यदि हम संचार नीति तय कर लेते हैं, तो सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक फलितार्थों को लागू करने में इससे मदद मिलती है। पराशर भारती बिल 16 मई, 1979 को संसद में पेश किया गया था। यह संयुक्त प्रवर समिति को बहस के बाद सौंप दिया गया तथा अगस्त 1979 में जनता सरकार गिर गई। वर्गीज कमेटी रिपोर्ट को आकाश भारती रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। इसकी सिफारिश थी कि प्रसार माध्यमों को न्यायपालिका की तरह स्वतंत्रता दी जाए। आकाश भारती में कहा गया कि संचार की संरचना का निर्माण राष्ट्रीय जरूरतों एवं परिस्थितियों के अनुकूल किया जाना चाहिए, क्योंकि संचार हमारी व्यापक संस्कृति का हिस्सा है जो कुछ खास मूल्यों को लागू करता है। आकाश भारती में कहा गया कि सूचना एवं शिक्षा का ढाँचा औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही प्रकार का होना चाहिए। दूरदर्शन एवं आकाशवाणी विकासमूलक संचार के क्षेत्र में सबसे प्रभावी सहायक हो सकते हैं। आकाश भारती रिपोर्ट में लिखा गया कि रेडियो और टेलीविजन अपनी प्रकृति के अनुसार जनता की संत्ति हैं और इसलिए जनता के हित में इनका इस्तेमाल किया जाना चाहिए तथा व्यापक दृष्टिकोण एवं परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय संचार नीति एवं दर्शन का निर्माण किया जाना चाहिए। इन माध्यमों की संरचना ऐसी होनी चाहिए कि ये माध्यम सूचना, शिक्षा एवं संस्कृति संबंधी संप्रेषण को एकतरफा ढंग से सरकार की ओर से जनता की ओर ही न ले जायें अपितु जनता से सरकार की ओर भी इन्हें उन्मुख होना चाहिए। साथ ही जनता से जनता, गांव से शहर का, युवाओं से बाकी समाज का संवाद बनाने का काम भी करे तथा अनेक संस्कृतियों के बीच में परस्पर संवाद एवं विनिमय का माध्यम बने। इन माध्यमों से असहमति की आवाज एवं अल्पसंख्यक आवाज हर हालत में सुनाई जानी चाहिए, जिससे सही मायने में सद्भाव पैदा हो, राष्ट्रीय बहस हो और अभिव्यक्ति का अवसर मिले। 'खुली सरकार' तथा जनता से संवाद, विकेंद्रीकरण एवं लोकतांत्रिक शिरकत का सरकार वायदा करे, यह कल का सच है।

10.7 जनमाध्यम प्रौद्योगिकी और विकास

माध्यम तकनीकी से युक्त जनमाध्यमों की यह विशिष्टता होती है कि उनका प्रतीकात्मक रूपों का संप्रेषण आम लोगों की आस्थायें बदल देता है। आस्थाओं में घट रहे परिवर्तनों का विचारधारा और उसकी संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है और इस क्रम में विचारधारा भी बदलती है। इस क्रम में विभिन्न विचारधाराओं और विभिन्न विचारों से

प्रभावित जनता के हितों और भिन्न-भिन्न समुदायों का उदय अनिवार्य है। पर समग्रता में इस परिवर्तन से विचारधारा के विवेकवाद का लोप हो जाता है।

संचार क्रांति का चिंतन पर यह प्रभाव पड़ा कि अब हम अवधारणा के रूप में सोचने के आदी नहीं रह गए हैं। अब हम रूढ़ प्रतीकों में सोचते हैं। पूर्व औद्योगिक समाज में अवधारणाओं में सिद्धान्त सृजन होता है। अवधारणा से रूढ़ प्रतीकों की तरफ बढ़ रही चिंतन शैली को मद्देनजर रखा जाना चाहिए। इसी तरह मुद्रित शब्द केंद्रित प्रतिक्रिया से टेलीविजन केंद्रित प्रतिक्रिया से टेलोविजन केंद्रित प्रतिक्रिया की ओर हो रहे रूपांतरण को विचारधारा की सामान्य भाषा में समझा नहीं जा सकता, यह सामान्य परिवर्तन नहीं है। इसमें तुलना की बजाय 'पर्याय', विश्लेषण की बज़ाय कृत्रिम सरलीकरण पर बल दिया जाता है जो धुंधली आस्थाओं, नए धार्मिक मिथों, प्राचीन और अन्य गैर पश्चिमी धर्मों की खोज पर बल देता है। वह कुछ समुदायों और कुछ क्षेत्रों तक सांकेतिक स्तर पर सक्रिय रहता है। इसी क्रम में वह जनता की चेतना को ऊँचा उठाने की अपनी क्षमता को खो देता है। इसके विपरीत टेलीविजन कुछ प्रभुत्वशाली, अभिजात्यों में चेतना वृद्धि का प्रमुख माध्यम बना रहता है। परिणामतः विचारधारा का जनता अथवा निचले तबकों से संबंध विच्छेद हो जाता है। विचारधारा के अंत की बात 1950 ई. के समय उठायी गयी थी। प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक क्रांति के बाद यह सोचा गया कि यह प्रोन्नति विचारधारा का अंत कर देगी। प्रौद्योगिकी क्रांति को विवेकवादी व्यावहारिक चेतना कहा गया।

भारतीय दूरदर्शन कार्यक्रमों का अध्ययन करें तो पाएंगे कि जिन कार्यक्षेत्रों का रूपायन किया जाता है उनमें अल्पसंख्यक समुदाय के लोग पूरी तरह गायब होते हैं तथा लिंग-भेद के आधार पर असमानता एवं भेदभाव को दिखाया जाता है। औरत की छवि कुछ इस तरह पेश की जाती है कि सक्रिय व्यक्ति के रूप में कार्यक्षेत्र से गायब रहे जहाँ पर औरत सक्रिय दिखाई जाती है वहाँ पर अल्पसंख्यक औरतों की प्रस्तुति बिल्कुल ही नदारद है।

10.8 सारांश

हमारे समूचे प्रतीकात्मक जगत में तेजी से परिवर्तन घटित हो रहे हैं। विशेष रूप से रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन के आने के बाद ये परिवर्तन तेजी से हो रहे हैं। समाज में विचारधारा के उत्पादन, पुनरुत्पादन के नए संस्थानों का उदय हुआ है। अभिजात्य का तेजी से विकास हुआ है। इसी समुदाय में विचारधारात्मक वस्तुओं की तेजी से खपत बढ़ी है। साथ ही जन समूहों और वर्गों की उत्पत्ति हुई है। जन समूहों और वर्गों में विचारधारा की बजाय 'चेतना उद्योग' का ज्यादा प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। इसके कारण सांस्कृतिक उपकरण ज्यादा प्रभावी हो उठे हैं। सांस्कृतिक उपकरणों और वैचारिक वस्तुओं में अंतर्विरोध भी पैदा हुआ है। वैचारिकों की अपेक्षा टेक्नीशियनों को ज्यादा महत्व दिया जाने लगा है। ये टेक्नीशियन चेतना उद्योग की 'मुनाफा विस्तार' की नीति की संरचना में कार्य करते हैं। हाल के वर्षों में टेक्नीशियनों का एक छोटा

तबका राजनीतिज्ञों और राजसत्ता के इर्द-गिर्द जमा हुआ है। ये टेक्नीशियन राजसत्ता के औजार भी हैं। इसी कारण प्रत्यक्ष राजनीति से घबराते हैं अथवा दूर रहते हैं। इनका राजनीति से दूर रहने का प्रमुख कारण यह भी है कि ये लोग सोचते हैं कि संभावित बाजार और चेतना उद्योग के मालिकों और प्रबंधकों की प्राथमिकताओं पर बुरा असर पड़ सकता है। टेक्नीशियनों के राजनीतिक अलगाव के बावजूद चेतना उद्योग' द्वारा संप्रेषित मनोरंजन और राजनीतिक और विचारधाराहीन नहीं होता।

10.9 शब्दावली

तकनीकी क्रांति – सन् 1850 की औद्योगिक क्रांति के पश्चात् तकनीकी क्रांति का उद्‌भव हुआ। भारत में इस क्रांति ने नवीन तकनीकी चेतना का बीज वपन किया।

राष्ट्रीय योजना समिति – सन् 1938 में राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया गया। इसमें 29 उपसमितियां थीं।

साइट – भारत और अमेरिका के सहयोग से यह अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम 19 सितंबर, 1969 में हुआ।

अधिनायकोन्मुख संचार मॉडल – इसमें माध्यम जनता से एकतरफा संवाद बनाता है। वह सरकार का माध्यम होता है जो सिर्फ संप्रेषित करता है, जनता से ग्रहण नहीं करता।

10.10 संदर्भ ग्रन्थ

(1) गोल्डनर, डब्ल्यू. ए., दि डायलेक्टिक ऑफ टेक्नोलॉजी, 1976, मैकमिलन, लंदन।

(2) ब्राईट, सी. आर., मास कम्यूनिकेशन : ए सोशियोलॉजिकल एप्रोच, 1975, द्वितीय संस्करण, रेण्डम हाउर्स, न्यूयार्क।

(3) चतुर्वेदी, जगदीश्वर, जनमाध्यम प्रौद्योगिकी और विचारधारा, 2000, प्रथम संस्करण, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दिल्ली।

10.11 प्रश्नावली

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

(1) भारत के परिप्रेक्ष्य में विकासमूलक संचार की अवधारणा का प्रतिपादन कीजिए।

(2) राष्ट्रीय योजना समिति का संचार संबंधी नीति निर्माण में क्या योगदान है?

(3) साइट के कार्यक्रमों का क्या प्रभाव पड़ा?

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) तीसरी दुनिया के मुल्कों में संचार क्रांति के स्वरूप का विवेचन कजिए।

(2) राष्ट्रीय योजना समिति की संचार सम्बन्धी रिपोर्ट को बताइये।

(3) भारत में संचार का कौन सा मॉडल स्वीकृत है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) राष्ट्रीय योजना समिति के संचार संबंधी उपसमिति की अध्यक्षता किसने की?

(i) रहमतुल्ला चिनॉय (ii) मौलाना अबुल कलाम आजाद

(iii) सरदार पटेल (iv) सुभाष चंद्र बोस

(ख) साइट के कार्यक्रम की रिपोर्ट का अध्ययन किसने किया?

(i) समाजशास्त्री एम. एम. गोरे (ii) पट्टाभिसीता रमैया

(iii) जवाहर लाल नेहरू (iv) गोविन्द बल्लभ पंत

(ग) सरकारिया आयोग का कार्यक्षेत्र क्या था?

(i) जनसंचार माध्यम और केंद्र-राज्य संबंध

(ii) केंद्र-राज्य संबंध

(iii) विशिष्ट क्षेत्रों में जनसंचार

(iv) कोई नहीं

उत्तर

(क) (i)

(ख) (i)

(ग) (i)

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MA(JMC)-116

विकास संचार

खण्ड

03

विकास संचार के विविध क्षेत्र

इकाई-11 विकास एवं कृषि जगत	5
इकाई-12 विकास संचार एवं ग्रामीण विकास	20
इकाई-13 विकास संचार एवं स्वास्थ्य	31
इकाई-14 जनसंख्या विस्फोट एवं विकास	43

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

1- प्रो0 जे0 एस0 यादव	पूर्व निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली
2- प्रो0 राममोहन पाठक	निदेशक, मदन मोहन मालवीय, हिन्दी पत्रकारिता संस्थान महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
3- प्रो0 सुधाकर सिंह	हिन्दी (प्रयोजनमूलक) विभाग, बी0एच0यू0, वाराणर्स
4- डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय	जनसम्पर्क अधिकारी, बी0एच0यू0, वाराणसी
5- डॉ0 पुष्पेन्द्र पाल सिंह	अध्यक्ष-पत्रकारिता विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता, विश्वविद्यालय भोपाल

सम्पादक

डॉ0 अर्जुन तिवारी- वरिष्ठ परामर्शदाता, उ0प्र0रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक मंडल

1- प्रो0 राम दरश राय	- निदेशक पत्रकारिता, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
2- श्री अनुराग दवे	- पत्रकारिता विभाग, बी0 एच0 यू0, वाराणसी
3- श्रीमती विनयपुरी पाण्डेय	- हिन्दुस्तान दैनिक, वाराणसी
4- श्री निलेश तिवारी	- मीडिया सेन्टर, वाराणसी
5- श्री शैलेन्द्र प्रताप सिंह	- विद्या भवन, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

इस ब्लाक में निम्नलिखित इकाईयाँ हैं :-

11- विकास एवं कृषि जगत

12- विकास संचार एवं ग्रामीण विकास

13- विकास संचार एवं स्वास्थ्य

14- जनसंख्या विस्फोट एवं विकास

भारत की जनता कृषक है उसकी संस्कृति कृषि से ही सम्बन्धित है। तीज-त्योहार, उत्सव, लोकाचार, परम्पराएं सभी कृषि पर ही आधारित हैं।

गाँव वह समुदाय है जहाँ अधिक समानता, अनौपचारिकता होती है तथा जनसंख्या का कम घनत्व होता है। गाँव का निवासी अपने स्वास्थ्य के प्रति कैसे जागरूक रहे, जनसंख्या के विस्फोट से उन्हें कैसे बचाया जाय-इन तथ्यों पर मीडिया की भूमिका सराहनीय है।

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 कृषि एवं कृषि जगत

11.2.1 कृषि कार्य

11.2.2 कृषक समाज

11.3 भारतीय कृषि का स्वरूप

11.4 भारतीय कृषि की चुनौतियाँ

11.5 आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं कृषि का विकास

11.6 राष्ट्रीय विकास एवं कृषि

11.7 जनमाध्यम एवं कृषि का विकास

11.8 कृषि आधारित व्यवसाय

11.9 सारांश

11.10 संदर्भ ग्रन्थ

11.11 पारिभाषिक शब्दावली

11.12 प्रश्नावली

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से अवगत हो सकेंगे –

(i) कृषि का अर्थ एवं कृषि जगत की अवधारणा।

(ii) कृषि जगत के अंग के रूप में कृषि कार्य तथा कृषक समाज।

(iii) भारतीय कृषि का स्वरूप तथा उसकी प्रमुख चुनौतियाँ।

(iv) आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा भारतीय कृषि।

(v) राष्ट्रीय विकास में कृषि का योगदान।

(vi) वैश्वीकरण का भारतीय कृषि पर प्रभाव।

(vii) कृषि पर आधारित विविध व्यवसायों का रूप-स्वरूप।

भारत की पहचान कृषि प्रधान क्षेत्र की रही है। गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, कावेरी, महानदी, गोदावरी, कृष्णा आदि जीवनदायिनी नदियों की उपजाऊ मिट्टी से निर्मित मैदानों की सभ्यता के आदिकाल से कृषि इस देश का मुख्य पेशा रहा है। कृषि की प्रधानता के चलते ही भारत की जनता कृषक जनता रही है और भारत की संस्कृति ग्रामोन्मुख, कृषि संस्कृति रही है।

कृषि भारतीयों का सदैव से मुख्य व्यवसाय रहा है। ऋग्वेद में प्रारम्भिक वैदिक काल की 'यव' (जौ), 'धन' (भुना जौ), 'धान्य' (सभी प्रकार के खाद्यान्नों) आदि का उल्लेख रहा है। वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में धान, जौ, तिल, ज्वार, गेहूँ, चना, मसूर, उड़द, मूँग, तिलहन, गन्ना व कपास आदि फसलें महत्वपूर्ण थीं। पतंजलि के महाकाव्य में फसलों के बोने की विधियों, कृषि यंत्रों एवं बीजों का वर्णन किया गया है। पाणिनी तथा पातंजलि ने भूमि उपयोग वर्गीकरण का भी विवरण दिया है। कृषि के साथ गोपालन का विशेष महत्व था।

उस समय की कृषि को सिंचाई की भी सुविधा उपलब्ध थी। वैदिक ग्रंथों में आर्यों द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले सिंचाई के विभिन्न साधनों का वर्णन उपलब्ध है। कूप (Kupa), झील (Hrida), तालाब (Pond) तथा नदी सिंचाई के प्रमुख साधन थे। कूपों से चरस व ढेकली द्वारा जल निकालकर चौड़ी नालियों (सुर्मि सुशिर) द्वारा खेती में पहुँचाया जाता था। आर्यों ने सिंचाई के लिए छोटी-छोटी नहरों 'कुल्य' का भी निर्माण किया था। वर्ष में मुख्यत: ग्रीष्मकालीन (ज्येष्ठ - आश्विन या मई मध्य से अक्टूबर मध्य तक) फसलें उत्पन्न होती थीं। चावल की भी वर्ष में दो फसलें उत्पन्न की जाती थीं। उशीनर व पंजाब (मद्र) गेहूँ व जौ के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र थे। मगध, अंग (उत्तरी बिहार) तथा बंग (बंगाल) धान के प्रमुख क्षेत्र थे।

भारतीय संस्कृति तथा जीवन शैली पर कृषि का प्रभाव स्पष्टत: देखा जा सकता है। हमारे तीज-त्यौहार, उत्सव, लोकाचार, परम्पराएं आदि सभी पर कृषि का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अभी भी इनमें से अधिकांश प्रचलन में है। बैशाखी, बिहू, ओणम, होली, दीपावली, पोंगल आदि पर्वों का कृषि से सीधा संबंध है। हमारे लोकगीतों में कृषि प्रमुख वर्ण्य विषय है।

वर्तमान समय में भी दक्षिण एवं पूर्व एशिया की पहचान विश्व में धान (Rice Belt) के रूप में है जिसके केंद्रबिन्दु चीन तथा भारत हैं। तमाम औद्योगिक प्रगति, उदारीकरण की प्रभावशाली उपस्थिति, अर्थव्यवस्था में तृतीयक तथा चतुर्थक क्षेत्र के वर्चस्व के बावजूद कृषि का प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर सीधा पड़ता है। यदि मानसून की अनियमितता या कमी से फसलोत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है तो उससे अर्थव्यवस्था की विकास दर भी सीधे-सीधे प्रभावित होती है।

भारत की समस्त योजनाओं का प्रमुख बिन्दु कृषि और कृषि क्षेत्र का ग्रामीण क्षेत्र ही होता है। ग्रामीण भारत आज भी भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा

की प्राप्ति कृषि तथा कृषि क्षेत्र के बिना विकास के कतई नहीं हो सकती।

11.2 कृषि एवं कृषि जगत

जमीन से अन्न उपजाने की प्रक्रिया को सामान्य रूप से कृषि कहा जाता है। लेकिन कृषि की विस्तृत अवधारणा में खेती से अन्न उपजाने के साथ-साथ बागवानी, जल कृषि, मछली व कुक्कुट पालन, पशु पालन, कृषि आधारित कुटीर उद्योग धंधों को भी सम्मिलित किया जाता है। कृषि जगत में कृषि पर निर्भर समाज को सम्मिलित किया जाता है जिसे हम ग्रामीण समाज, ग्रामीण समुदाय आदि नामों से भी संबोधित करते हैं। कृषि एवं कृषि जगत को हम मुख्य रूप से दो भागों में बाँट सकते हैं –

(क) कृषि कार्य

(ख) कृषक समाज

11.2.1 कृषि कार्य

कृषि कार्य के अंतर्गत कृषि तथा कृषि आधारित उद्योग-धंधों को शामिल किया जाता है जो कुटीर रूप में ग्रामीण स्तर पर ही विकसित व स्थापित होते हैं। कृषि कार्य को भी हम दो भागों में बाँट सकते हैं –

(क) खेती या अनाज उत्पादन

(ख) कृषि आधारित व्यवसाय

खेती या अनाज उत्पादन में वे समस्त प्रकार के उत्पादन कार्य आते हैं जिनमें बीजारोपण, निराई, गुड़ाई, रोपाई-कटाई आदि प्रक्रियाओं की मदद से जमीन तथा कभी-कभी जल से उपज प्राप्त की जाती है। कृषि के भी कई रूप प्रचलन में है। इनमें परम्परागत भरण-पोषण वाली खेती, नकदी फसलोत्पादन, बागाती कृषि, विपणन कृषि, जल कृषि आदि प्रमुख हैं। एक अन्य वर्गीकरण, जल कृषि आदि प्रमुख हैं। एक अन्य वर्गीकरण स्थायी तथा अस्थायी कृषि के रूप में भी किया जाता है। स्थायी कृषि में एक ही जमीन पर उपज प्राप्त किया जाता है जबकि अस्थायी कृषि मुख्यत: झूमिंग प्रकार की होती है जिसमें कुछ फसलें प्राप्त कर जमीन छोड़ दी जाती है।

दुनिया के अधिकांश विकसित देशों में व्यापारिक कृषि की जाती है। व्यापारिक कृषि की विशेषता वृहद् पैमाने पर उत्पादन करना और उसकी बिक्री से लाभ कमाना होता है। विकासशील और पिछड़े देशों में परम्परागत भरण-पोषण वाली कृषि की प्रधानता होती है। ऐसी कृषि का मुख्य उद्देश्य अन्न उत्पादन होता है। व्यावसायिक कृषि में फसल वैविध्य होता है तथा मुख्य जोर नकदी फसलों जैसे - दलहन, तिलहन, सब्जी, फल, रबर. नारियल, फूल, गन्ना, कॉफी, चाय आदि उपजाने पर दिया जाता

कृाष आधाारत व्यवसाय क दायर क तहत सार व्यवसाय आत ह। उन समस्त व्यवसायों को इसमें सम्मिलित किया जाता है जो कृषि पर निर्भर होते हैं तथा कृषक समुदाय द्वारा किये जाते हैं। दुग्ध व माँस हेतु पशुपालन, कुक्कुट पालन, मछली पालन, रेशम कीट पालन, काष्ठ शिल्प, चर्म शिल्प, बुनाई कार्य, मृत्तिका कला, ग्रामीण कलाकारी आदि को इसमें समाहित किया जा सकता है। कृषि अर्थव्यवस्था में इन छोटे-छोटे कुटीर उद्योग-धंधों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इससे ग्रामीणों की न केवल आय बढ़ती है, वरन् उनको कृषि कार्यों के लिए आवश्यक पूँजी सहयोग भी प्राप्त होता है। इसके साथ-साथ ग्रामीण कौशल के विकास तथा खाली समय के उपयोग में भी ये कुटीर उद्योग धंधे अत्यंत सहायक होते हैं। सरकार भी इन कौशलों के विकास में रुचि ले रही है तथा प्रशिक्षण, विपणन एवं वित्तीय मदद उपलब्ध करा रही है।

11.2.2 कृषक समाज

ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली तथा ग्रामीण अंर्थव्यवस्था से जीविकोपार्जन करने वाली जनसंख्या कृषक समाज में सम्मिलित की जाती है। समस्त विश्व की दो तिहाई से ज्यादा जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। भारत में ही सन् 2001 के जनगणना आंकड़ों के अनुसार 72.22% जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है। भारत आरम्भ से ही ग्रामीण जनसंख्या प्रधान देश रहा है। इसे हम निम्नांकित आंकड़ों द्वारा आसानी से समझ सकते हैं –

भारत की ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या : 1901-2001

जनगणना वर्ष	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	
	ग्रामीण	नगरीय
1	2	3
1901	89.2	10.8
1911	89.7	10.3
1921	88.8	11.0
1931	88.0	12.0
1941	86.1	13.9
1951	82.7	17.3
1961	82.0	18.0
1971	80.1	19.9
1981	76.7	23.5
1991	74.3	25.7
2001	72.22	27.78

स्रोत : भारत 2004

प्रांत ज्यादा आग्रहा हाता ह। यह अपक्षाकृत ज्यादा भाग्यवादा, सामित गातशालता (Mobility) वाला तथा प्राथमिक आर्थिक गतिविधियों पर निर्भर होता है। नगरीय समाज की तुलना में ग्रामीण समाज में अनेक अन्य भिन्नताएं दृष्टिगोचर होती है।

तकनीकी रूप से 400 से कम जनघनत्व (प्रति वर्ग किमी) की बस्तियों को गांव कहा जाता है। दो तिहाई या उससे ज्यादा जनसंख्या कृषि या प्राथमिक कार्यों में संलग्न होती है। भारत में ग्रामीण साक्षरता दर नगरीय साक्षरता दर की तुलना में कम है। अभी भी अधिकांश गांवों में पेयजल तथा सीवर की आधुनिक व्यवस्था का अभाव है। कच्चे-पक्के मकानों की अनगढ़ संरचना भारतीय गांवों की विशेषता है। भारतीय गांव पारम्परिक रूप से बहुजातीय समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक जाति आपस में रक्त संबंधी, नातेदारी अथवा गोत्रीय आधार पर एक-दूसरे से जुड़ी होती है। हालांकि हाल के वर्षों में आधुनिकता के विस्तार और सरकार के प्रयासों से ग्रामीण समाज में पर्याप्त परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों तक परिवहन सुविधा के विस्तार और बिजली तथा रेडियो के बाद टीवी की उपलब्धता से अनेक नये सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। पंचायतीराज, दलित और महिला सशक्तिकरण के प्रयासों से भी ग्रामीण संरचना में यथेष्ठ परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। ग्रामीण पहनावा, खान-पान, वैवाहिक तथा अन्य सांस्कृतिक आयोजनों आदि पर नगरीय प्रभाव तेजी से पड़ता दिखाई दे रहा है।

11.3 भारतीय कृषि का स्वरूप

भारत में कृषि सर्वाधिक निर्णायक क्षेत्र है। देश की विशाल जनसंख्या को यह खाद्यान्न आश्वासन प्रदान करता है। प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से कुल रोजगार अवसरों में से 65% कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त होता है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था का आधार भी है तथा हमारे तीज-त्यौहार, आदतें और व्यवहार इसके प्रभाव को स्पष्टतया प्रतिध्वनित करते हैं।

भारत के सकल घरेलू उत्पादन में कृषि का योगदान लगभग 25% है। भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर करती है तथा लगभग 60% कृषि क्षेत्र वर्षा पर ही आश्रित है। भारत में मोटे तौर पर तीन फसलें होती हैं – खरीफ (जुलाई से अक्टूबर), रबी (नवंबर से मार्च) तथा जायद (ग्रीष्मकालीन) की फसल। खरीफ की मुख्य फसलें हैं – धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास, गन्ना, सोयाबीन और मूँगफली। रबी की मुख्य फसलें हैं – गेहूँ, जौ, चना, अलसी, तोरिया और सरसों। धान, मक्का और मूँगफली गर्मी की फसल के रूप में भी उगाई जाती है।

हेक्टेयर कृषि भूमि के 65.8% का उपयोग खाद्यान्न उत्पादन के लिए किया गया है। भारत में कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3,287.3 लाख हेक्टेयर में से 93.1% के भू-उपयोग आंकड़े उपलब्ध हैं जिसमें लगभग 50% भाग का उपयोग कृषि कार्यों के लिए किया जाता है। भारत में जोतों का आकार होता है। सन् 1995-96 के आंकड़ों के अनुसार बड़ी जोतों के तहत (10 हेक्टेयर या उससे अधिक की जोत) केवल 14.8% खेती योग्य भू-भाग है। इसी प्रकार सीमांत जोत (एक हेक्टेयर से कम) के अंतर्गत 17.2% भू-भाग आता है। इससे खेतों की छोटी जोतों के बंटवारे का पता चलता है। सन् 1995-96 की कृषि गणना के अनुसार परिचालनीय जोतों की संख्या और ब्यौरा निम्नानुसार हैं –

स्वरूप	परिचालनीय जोतों की संख्या (000 हेक्येयर में)	परिचालित क्षेत्र (000 हेक्टेयर में)
सीमांत	71179	28121
छोटे	21643	30722
छोटे-मझोले	14261	38953
मझोले	7092	41398
बड़े	1404	24163
सभी आकार	115580	163357

पारम्परिक रूप से यदि हम भारतीय कृषि की बात करें तो वर्षा पर निर्भरता , निम्न उत्पादकता, अवैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग और मौसम तथा रोगों से जूझता उत्पादन इसकी प्रमुख विशेषता रही है। भारतीय कृषि का चेहरा भरण-पोषण वाला रहा है और हमारी सामाजिक व्यवस्था में किसान सर्वाधिक दीन-हीन और बेचारा रहा है।

आज यह चेहरा तेजी से बदल रहा है। हरित क्रांति के बाद भारतीय कृषि काफी परिवर्तित हो चुकी है। व्यावसायिक उपजों की ओर झुकाव, उर्वरकों का निरंतर बढ़ता प्रयोग, सिंचाई के कृत्रिम साधनों की उपलब्धता और कृषि आधारित उद्यमों का विकास भारतीय कृषि में तेजी से दिखाई दे रहे हैं। फूलों की खेती, मशरूम उत्पादन, निर्यातमूलक फल उत्पादन, ट्रक फार्मिंग, बैंक ऋणों का उपयोग और बीमाकृत खेती भारतीय कृषि के बदलते हुए चेहरे का सशक्त प्रतीक है।

आज औसतन 200 मिलियन टन वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन के साथ भारतीय कृषि देश को खाद्यान्न उपलब्ध करा रही है। दुनिया के लगभग 10% फल, 29% चाय और सर्वाधिक दुग्ध उत्पादन भारत में ही हो रहा है। गन्ना, हल्दी, नारियल आदि के उत्पादन में पहले और चावल, गेहूँ के उत्पादन में देश दूसरे पायदान पर खड़ा है।

देश की विशाल जनसंख्या को अनाज उपलब्ध कराने वाली भारतीय कृषि के लिए चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराना, सिंचाई साधनों का विस्तार, वैश्वीकरण से उपजी प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करना और मिट्टी का उपजाऊपन बनाये रखना इसके सामने आने वाले समय की प्रमुख चुनौतियाँ हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय कृषि चूँकि परम्परागत से व्यावसायिक रुझान वाली व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो रही है अत: संक्रमण के इस दौर में शोषण और अनिश्चितता से बरी होना भी इसकी प्रमुख चुनौती है।

सन् 2010 तक देश की बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए 300 मिलियन टन खाद्यान्न उपलब्ध कराना होगा। देश का वर्तमान खाद्यान्न उत्पादन 200 मिलियन टन के स्तर पर स्थिर हो गया है। जनसंख्या और खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर लगभग समान ही है। हालांकि देश के पास पर्याप्त बफर स्टॉक मौजूद है तथा पिछले 12 वर्षों से मानसून की आवक भी संतोषजनक है लेकिन हम खाद्यान्न सुरक्षा की गारंटी जनता को देने में असमर्थ हैं।

कृषि के संपूर्ण परिदृश्य पर दृष्टिपात करें तो समूचा भारतीय ग्रामीण क्षेत्र अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। अभी भी गाँव की 27% आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में आवास, पेयजल, शौचालय, सड़क तथा परिवहन के साधन, स्वास्थ्य, शिक्षा व अन्य सुविधाओं की भारी कमी है।

ग्रामीण भारत की 40% आबादी अभी भी सड़कों से दूर है। ग्रामीणों के लिए अभी भी 1.372 करोड़ आवासों की आवश्यकता है। देश के भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 20% (6.385 करोड़ हेक्टेयर) भू-भाग बंजर पड़ा है। लगभग आधी कृषि योग्य भूमि को अभी भी सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त अधिकांश सूखा व बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में आपदा नियंत्रण प्रभावी स्थिति में नहीं होने से कृषि व कृषकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

भारतीय कृषि की एक और गंभीर समस्या कृषि वित्त तथा वितरण एवं प्रसंस्करण सुविधाओं के अभाव की है। अधिकांश छोटे तथा सीमांत कृषकों को बैंक ऋण नहीं मिल पाता। उनका जीवन महाजनों के कर्ज के चंगुल में फंसा रहता है जिससे अक्सर किसान आत्महत्या तक करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। अतिरेक उत्पादन की स्थिति में फसलों का संरक्षण नहीं होने से भी किसानों को भारी घाटा उठाना पड़ता है। इसके फल व सब्जी उत्पादन का लाभ किसानों को नहीं मिल पाता। प्रसंस्करण उद्योग के अविकसित होने से भी इन उत्पादों की न तो किसानों को बेहतर कीमत मिल पाती है न ही उनका कच्चा माल उपयोग हो पाता है। कृषि के पिछड़ेपन में यह कारक भी योगदान करते हैं।

11.5 आधुनिक प्रौद्योगिकी एंवं कृषि का विकास

प्रौद्योगिकी की ही मदद से कृषि कार्यों का संचालन-संपादन किया जाता है। कृषि कार्य में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी को हम दो भागों में बाँट सकते हैं –

(i) पारम्परिक प्रौद्योगिकी

(ii) आधुनिक प्रौद्योगिकी

पारम्परिक प्रौद्योगिकी वह प्रौद्योगिकी है जो सदियों से प्रयोग में लायी जा रही है तथा जिसमें कृषकों की एक पीढ़ी अपनी पूर्व पीढ़ी से प्राप्त करती आ रही है। पारम्परिक कृषि प्रौद्योगिकी में हल (हाथ व पशुओं की मदद से उपयोग में आने वाले) फावड़ा, कुदाल, खुरपी, हंसिया, ढेकुल तथा रहट, गोबर व राख की खाद, उपज से बीज प्राप्ति, मेड़बन्दी आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी में उन्नत कृषि मशीनें, ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, सिंचाई की ड्रिप व अन्य प्रणालियाँ ट्यूबवेल, बोरिंग, रासायनिक उर्वरक, उन्नत उपजाऊ बीज किस्में (High Yielding Seed Varieties), नर्सरी पौधे, कीटनाशक, रिमोट सेंसिंग प्रणाली तथा आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी आदि शामिल किये जाते हैं।

आधुनिक प्रौद्योगिकी ने कृषि का चेहरा बदलने, उसकी उत्पादकता बढ़ाने, फसलों की मौसम से अनुकूलता बढ़ाने, कृषि को व्यावसायिक स्वरूप प्रदान करने आदि में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ट्रैक्टर ने जुताई तथा ढुलाई को अत्यंत सरल कर दिया है। फसलों की मड़ाई, दंवाई तथा कटाई में हारवेस्टर, थ्रेसर आदि यंत्रों ने बड़ी मात्रा में फसलों से पलक झपकते ही अनाज प्राप्ति आसान की है। अनेक प्रकार के कल्टीवेटर यंत्रों ने न केवल कृषि की प्रक्रिया में समय की बचत की है वरन् मानवीय तत्वों की आवश्यकता भी इसमें कम हुई है।

रासायनिक उर्वरकों तथा उन्नत बीजों के प्रयोग से कृषि की औसत उत्पादकता में कई गुना तक वृद्धि हुई है। इस दिशा में आनुवंशिकी शोधों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उपज की संकर किस्मों ने मनचाही फसलों को प्राप्त करना संभव बनाया है। हरित क्रांति, नीली क्रांति, पीली क्रांति जैसे परिवर्तनों में प्रौद्योगिकी की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

आनुवंशिक शोधों का यह परिणाम हुआ है कि फसलों को मनचाहा रूप तथा आकार दिया जाना संभव हुआ है। इसके साथ-साथ उनके गुणों में परिवर्तन करके उनके अंदर के तत्वों में भी मनचाहा नियंत्रण संभव हुआ है। जैव-प्रौद्योगिकी (Bio-Technology) का ही यह कमाल है कि कृषि को अगले पचास वर्षों तक की बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम माना जाने लगा है।

सूचना प्रौद्योगिकी ने भी कृषि के विकास में महत्वपूर्ण मदद की है। कृषि

अनुसंधान तथा मॉनीटरिंग संबंधी कार्यों में इससे विशेष सहायता मिली है। वैश्विक स्तर के प्रयोगों की स्थानीय स्तर तक उपलब्धता इससे बढ़ी है। सिंचाई योजना तथा नये जल स्रोतों की खोज में भी इससे मदद मिली है। सेटेलाइट रिमोट सेंसिंग प्रणाली से भू-उपयोग सर्वेक्षण, मौसम की भविष्यवाणी आदि में सटीकता आई है। इससे मिट्टी के आकलन में भी सहायता मिली है। जल प्रबंधन, भूगर्भिक जल स्रोतों की खोज में भी यह प्रौद्योगिकी मददगार हुई है। कृषि विपणन को भी सूचना प्रौद्योगिकी ने काफी मदद की है। लेन-देन, भू-राजस्व, माँग-आपूर्ति, बैंकिंग आदि की ऑन लाइन व्यवस्था का लाभ किसानों को मिलने लगा है।

आधुनिक भण्डारण तकनीकों, प्रशीतन (Cold Storing) तकनीकों, परिवहन व्यवस्था तथा प्रसंस्करण (Processing) तकनीकों ने भी कृषि को काफी लाभ पहुँचाया है। विपणन कृषि को इससे काफी लाभ पहुँचा है और फल उत्पादन, सब्जी उत्पादन, फूलों की खेती, बागाती कृषि, दुग्ध व माँस उत्पादन, दुग्ध उत्पाद, अण्डा व मछली उत्पादन को इससे काफी फायदा पहुँचा है।

वस्तुतः आधुनिक प्रौद्योगिकी ने कृषि को भरण-पोषण वाली अवस्था से प्रतिस्पर्धात्मक व्यापारिक स्वरूप में परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। कृषि को रोजगार और व्यवसाय का बेहतर विकल्प बनाने में आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग सहायक और महत्वपूर्ण है।

11.6 राष्ट्रीय विकास एवं कृषि

राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में कृषि की उपयोगिता महत्वपूर्ण लक्ष्यों को प्राप्त करने में कृषि की उपयोगिता महत्वपूर्ण है। भारत में कृषि हमेशा से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मेरुदण्ड रही है। बात चाहे रोजगार सृजन की हो या सकल राष्ट्रीय उत्पाद की कृषि का योगदान सदैव महत्वपूर्ण रहा है।

देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की हिस्सेदारी 22% है। देश की दो तिहाई जनसंख्या के जीवन-यापन का मुख्य जरिया कृषि ही है। देश के लगभग 57% लोगों को कृषि से ही रोजगार मिला हुआ है। राष्ट्रीय आय, रोजगार तथा व्यापार में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हालांकि अन्य क्षेत्रों का विस्तार होने से इसकी भागीदारी कुछ कम हुई है। पर यह अभी भी महत्वपूर्ण क्षेत्र बना हुआ है। देश के विदेशी व्यापार में भी कृषि का योगदान है। कृषि उत्पाद निर्यात की प्रमुख मद में शामिल हैं। इसके अतिरिक्त भारत के निर्यात की दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण मदों सूती वस्त्र तथा हस्तशिल्प में से सूती वस्त्र के लिए कच्चा माल तथा हस्तशिल्प के लिए शिल्प कौशल व कच्चा माल कृषि क्षेत्र ही उपलब्ध कराता है। कृषि के महत्व को हम निम्नांकित आंकड़ों की मदद से भी समझ सकते हैं –

राष्ट्रीय आय, रोजगार व व्यापार में कृषि का योगदान

वर्ष	जीडीपी में	निर्यात में	रोजगार में
1950-51	57.7	–	69.4
1960-61	53.0	44.3	69.5
1970-71	46.3	31.7	67.8
1980-81	39.7	27.8	60.5
1990-91	32.2	18.5	59.0
2000-01	24.6	17.6	58.4

सभी आँकड़े प्रतिशत में हैं।

कृषि के प्रदर्शन का असर अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है। जब मानसून की कमी, सूखा, बाढ़ आदि कारणों से कृषि उत्पादन या कृषि की विकास दर कम होती है तो उस वर्ष राष्ट्रीय विकास दर में भी कमी दर्ज की जाती है। कृषि को सरकार भी राष्ट्रीय विकास के लिए महत्वपूर्ण मानती है। पंचवर्षीय योजनाओं में इसी कारण से कृषि पर विशेष बल दिया जाता है। सरकार ने ग्रामीण विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अनेक योजनाओं को क्रियान्वित किया है। इनमें से कुछ प्रमुख योजनाएं निम्नवत् हैं –

क्रम संख्या	योजना	विशेषताएं
1.	**भारत निर्माण योजना** –	16 मई, 2005 से आरम्भ एक लाख सात हजार करोड़ रुपयों की ग्रामीण विकास योजना। इसके अंतर्गत ग्रामीण बुनियादी ढांचा – 1. सिंचाई 2. सड़क 3. आवास 4. जलापूर्ति 5. विद्युतीकरण 6. ग्रामीण दूरसंचार का विकास करना है।
2.	**ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन** –	12 अप्रैल, 2005 से लागू। ग्रामीण स्वास्थ्य सुविधाओं की मजबूती, सफाई, पोषण, आहार, स्वच्छ पेयजल व भारतीय औषधि प्रणाली में सुधार।
3.	**राष्ट्रीय बागवानी मिशन** –	दसवीं योजना में 2,300 करोड़ रुपयों की व्यवस्था। लक्ष्य 2011-12 तक बागवानी उत्पाद को दुगुना कर 30 करोड़ रन तक पहुंचाना है।
4.	**राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना** –	2 फरवरी, 2006 से 200 जिलों में प्रथम चरण की शुरुआत। योजना पर 40,000 करोड़ रुपये खर्च का अनुमान। ग्रामीण गरीबी उन्मूलन प्रमुख लक्ष्य।

11.7 जनमाध्यम एवं कृषि का विकास

जनमाध्यमों का भी कृषि के विकास में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष योगदान महत्वपूर्ण है। ग्रामीण क्षेत्रों में जनमाध्यम सूचना, शिक्षा एवं मनोरंजन के बुनियादी कार्यों के अतिरिक्त उत्प्रेरक की भूमिका निभाते हैं तथा ग्रामीण क्षेत्र के प्रवक्ता के रूप में कार्य करते हैं। ग्रामीण हितों की पहरेदारी का काम भी जनमाध्यम करते हैं।

विकास संदेशों के प्रसार में जनमाध्यमों का विशिष्ट योगदान है। रेडियो और टीवी ने वर्षों से बड़ी मेहनत से ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिकता, वैज्ञानिक चेतना और अपने अधिकारों के प्रति ग्रामीणों को संघर्षशील बनाने का काम किया है। जनमाध्यमों ने निरंतर सामाजिक कुरीतियों के प्रति ग्रामीणों को सचेत करने का काम किया है। उनकी तार्किक सोच के विकास में भी यह सहायक रहे हैं।

क्या आपने खाने से पहले हाथ धोए हैं? या कुएँ पोखरे की सफाई रोग भगाने की है दवाई' आदि संदेशों ने ग्रामीण स्वास्थ्य चेतना को विकसित करने में सहयोग दिया है। लड़का-लड़की समानता, लड़की को शिक्षा दिलाना, पर्यावरण संरक्षण, जल संरक्षण, उन्नत चूल्हों का प्रयोग, वन संरक्षण, दलित चेतना, सामाजिक व जातीय समरसता जैसे लक्ष्यों की प्राप्ति में जनमाध्यमों की भूमिका काफी उपयोगी रही है।

कृषि के विकास में जनमाध्यमों ने उपयोगी सूचनात्मक तथा सलाहकार सेवा का निर्वाह किया है। कृषि दर्शन खेती-बाड़ी, चलो गाँव की ओर जैसे कार्यक्रमों की मदद से किसानों में बीज, फसल, कृषि प्रबंधन, कृषि विपणन, उर्वरकों का उपयोग आदि की महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध होती हैं। खेती से जुड़े विविध पक्षों पर सलाहकार सेवाएं उपलब्ध कराने का काम भी जनमाध्यम कर रहे हैं।

ग्रामीण समस्याओं की ओर नीति नियंताओं का ध्यान आकर्षित करने में भी जनमाध्यमों ने प्रभावी भूमिका का निर्वहन किया है। ग्रामीण पत्रकार ग्रामीणों के प्रवक्ता के रूप मे काम करते हैं। पत्रकारिता व अखबारों ने सरकार, प्रशासन तथा ग्रामीणों के बीच पुल का कार्य भी किया है। छोटी-छोटी ग्रामीण समस्याओं को प्रमुखता से उठाकर पत्रकारिता ने उसके निराकरण की व्यवस्था की है। पुल-पुलियों का निर्माण व मरम्मत, ग्रामीण निर्माण कार्यों की समीक्षा, ग्रामीण संसाधनों का विकास, संपर्क मार्ग, बिजली, पेयजल, स्वास्थ्य व चिकित्सा, भूख, अकाल आदि सभी ग्रामीण मुद्दों को पत्रकारिता के दबाव में हल करने में सफलता मिली है।

यही नहीं संचार की आधूनिकतम प्रौद्योगिकियाँ भी ग्रामीण विकास में मददगार हो रही हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का बेहतर इस्तेमाल करने के लिए ग्रामीण इंफारमेशन कियोस्क तथा इंटरनेट ढाबा की व्यवस्था की जा रही है। यहाँ किसानों के मण्डी के भावों की जानकारी, कर व कागजात संबंधी सूचनाएं, अन्य प्रशासनिक कार्य आसानी से हो जा रहे हैं। कृषि सूचना केंद्रों का भी विकास किया जा रहा है जिसे किसानों को कृषि संबंधी जरूरी सूचनाएं माँग के अनुरूप उपलब्ध हो सकें।

इसके साथ-साथ कृषि एवं ग्रामीण विकास में परम्परागत माध्यम भी उपयोगी व प्रभावशाली हैं। परम्परागत माध्यम कृषि के प्रति लोगों के भावनात्मक रुझान को विकसित करने का काम कर रहे हैं। लोक प्रस्तुतियों में अपनी जमीन, अपनीं जड़ों और अपने समाज के प्रति गहरा प्रेम परिलक्षित होता है। यह प्रेम ग्रामीण समाज में खेती और खेतिहर जीवन शैली के प्रति लोगों की रुचि को बनाये रखने में मददगार होता है।

इसके अतिरिक्त लोकमाध्यमों ने ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन की गति को तेज करने में भी अपना योगदान दिया है। दहेज, छुआछूत व जातीय असमानता, अमीर-गरीब भेदभाव, सूदखोरी, शोषण, शराबखोरी आदि सामाजिक बुराइयों पर प्रहार कर ग्रामीण जनता में इनके विरुद्ध चेतना विकसित करने में भी परम्परागत माध्यमों का योगदान महत्वपूर्ण है।

11.8 कृषि आधारित व्यवसाय

राष्ट्रीय विकास में कृषि का योगदान बिना कृषि आधारित व्यवसायों की चर्चा के पूरा नहीं हो सकता। कृषि आधारित व्यवसायों का दायरा अत्यंत विस्तृत है। इसमें उन उद्योग-धंधों को भी सम्मिलित किया जाता है जिन्हें कच्चा माल कृषि से प्राप्त होता है। सूती वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग, शक्कर या चीनी उद्योग, गुड़ एवं खांड़सारी उद्योग, चावल मिल, आटा मिल, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, शराब उद्योग आदि कृषि से प्राप्त कच्चे माल पर निर्भर हैं।

लेकिन कृषि की अवधारणा में हम उन व्यवसायों को सम्मिलित करते हैं जो कृषि में संलग्न लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करते हैं तथा लघु या कुटीर पैमाने पर कृषि के सहायक व्यवसाय के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। इसमें दुग्ध एवं मांस हेतु पशुपालन, मधुमक्खी पालन, कुक्कुट पालन, मछली पालन, दस्तकारी, मीनाकारी, पच्चीकारी, खली उद्यम, काष्ठ कला, मृत्तिका कला तथा अन्य कलाएं सम्मिलित कीं जाती हैं।

भारत में दुनिया के सर्वाधिक चौपाए पाए जाते हैं। दुग्ध उत्पादन में भारत आज शीर्ष पर है। सन् 2001-02 में 8 करोड़ 46 लाख टन दुग्ध उत्पादन किया गया। सन् 1992 की पशुगणना के अनुसार देश में 20.5 करोड़ गाय-बैल, 8.4 करोड़ भैंसें हैं। भारत में वर्ष 2002-03 में 34 अरब 13 करोड़ अण्डे उत्पादित हुए और विश्व में यह पांचवें स्थान पर है। देश में प्रतिवर्ष औसतन 5 करोड़ किग्रा ऊन उत्पादन किया जाता है। देश में 5.08 करोड़ भेंड़ें, 11.5 करोड़ बकरियां, 128 लाख सुअर हैं। भारत में खारे तथा मीठे पानी की मछलियाँ पैदा की जाती हैं। सन् 2001-02 में लगभग 2.8.30 लाख टन समुद्री तथा 31.26 लाख टन मीठे पानी की मछलियाँ पकड़ी गयीं।

ग्रामीण विकास में इन सहायक व्यवसायों का महत्वपूर्ण योगदान है। ग्रामीण क्षेत्रों की आय बढ़ाने, कृषि में नियोजित छिपी बेरोजगारी की समस्या को दूर करने,

कृषि को लाभप्रद उद्यम के रूप में स्थापित करने और ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर होने वाले प्रवास को नियंत्रित करने तथा कम करने में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

11.9 सारांश

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि आज भी कृषि भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था का मूल आधार है। राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों को सफलतापूर्वक तभी प्राप्त किया जा सकता है जब कृषि का भी सर्वांगीण विकास हो। कृषि के सर्वांगीण विकास में कृषि उत्पादन तथा कृषि आधारित व्यवसायों का विकास सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण जनता के शैक्षणिक, आर्थिक विकास को भी इसमें अवश्य रखना चाहिए।

ग्रामीण विकास के लक्ष्यों में ग्रामीण सामाजिक विकास भी महत्वपूर्ण है। बिजली, पानी, सड़क, दूरसंचार, मशीनीकृत खेती, विपणन व बैंकिंग सुविधाओं में विस्तार, स्वास्थ्य सुविधाओं में विस्तार, पेयजल, पर्यावरण संरक्षण, पशुधन विकास आदि कार्य कृषि के विकास की दृष्टि से आवश्यक हैं।

भारतीय कृषि भरण-पोषण वाली व्यवस्था से प्रतिस्पर्धी तथा व्यावसायिक स्वरूप में बदल रही है। वैश्वीकरण के बाद की परिस्थितियों में कृषि का यह बदलाव राष्ट्रीय विकास के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा।

11.10 संदर्भ ग्रन्थ

(i) भारत, 2004

11.11 परिभाषिक शब्दावली

(i) झूमिंग कृषि – कृषि का पारम्परिक तथा गैर-वैज्ञानिक स्वरूप जिसमें खेत में एक या दो-चार फसलें पैदा कर उसे छोड़ दिया जाता है। वन-विनाश तथा मिट्टी का क्षरण तेज करने में इसकी महत्वपूर्ण उपयोगिता है। हालांकि अब इस पद्धति का प्रयोग नहीं किया जाता है लेकिन अभी भी पूर्वोत्तर भारत तथा कुछ अन्य उत्पादन क्षेत्रों में इसका प्रयोग हो रहा है।

(ii) जल कृषि – जल से पैदावार करने की प्रक्रिया मुख्य रूप से मछली उत्पादन इसमें सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त कुछ जलीय पौधों जैसे सिंघाड़ा, केवड़ा आदि का उत्पादन, झींगा उत्पादन भी पानी में किया जाता है।

(iii) ट्रक फार्मिंग – मुख्य रूप से नगरों के इर्द-गिर्द होने वाली सब्जी की खेती को ट्रक फार्मिंग (Truck Farming) कहा जाता है क्योंकि इस खेती का मुख्य उद्देश्य ट्रक आदि द्रुतगामी परिवहन साधनों द्वारा नगरीय केंद्रों को आपूर्ति प्रदान करना होता है।

11.12 प्रश्नावली

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(1) कृषि की अवधारणा समझाइए तथा इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

(2) भारतीय कृषि की प्रमुख चुनौतियों का वर्णन करें।

(3) कृषि के विकास में जनमाध्यमों के योगदान पर एक लेख लिखें।

लघु उत्तरीय प्रश्न –

(1) परम्परागत माध्यम का अर्थ बताइए।

(2) कृषि के विकास में सूचना-प्रौद्योगिकी की उपयोगिता बताइए।

(3) कृषि कार्य में कौन-कौन से कार्य आते हैं।

(4) कृषि आधारित व्यवसायों का परिचय दीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

(1) प्राचीन भारत में गेहूँ और जौ का प्रमुख उत्पादन क्षेत्र था –

(क) मद्र(ख) अंग (ग) बंग (घ) इनमें से कोई नहीं

(2) सिंचाई हेतु प्रयुक्त चौड़ी नालियों को प्राचीन भारत में कहा जाता था –

(क) कूप (ख) ह्रद(ग) सुर्मि सुशिर (घ) चरख

(3) खरीफ की फसल का समय है –

(क) जुलाई से अक्टूबर (b) नवंबर से मार्च

(ग) अप्रैल से जून (घ) इनमें से कोई नहीं

(4) चना है –

(क) खरीफ की फसल (ख) रबी की फसल

(ग) जायद की फसल (घ) खरीफ व जायद दोनों

(5) दुग्ध उत्पादन में भारत का स्थान है –

(क) पाँचवां (ख) पहला

(ग) तीसरा (घ) आठवां

(6) पीली क्रांति का संबंध है –

(क) मत्स्य उत्पादन (ख) झींगा उत्पादन

(ग) दुग्ध उत्पादन (घ) तिलहन उत्पादन

(7) भारत निर्माण योजना आरंभ हुई –

(क) 2002 से (ख) 2003 से

(ग) 2004 से (घ) 2005 से

(8) नीली क्रांति संबंधित है –

(क) मत्स्यिकी (ख) कुक्कुट पालन

(ग) कृषि (घ) तिलहन

(9) हरित क्रांति का संबंध है –

(क) उद्योग (ख) उत्खनन

(ग) कृषि (घ) व्यापार

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर –

(1) क

(2) ग

(3) क

(4) ख

(5) ख

(6) घ

(7) घ

(8) क

(9) ग

इकाई - 12 विकास संचार एवं ग्रामीण विकास

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 ग्राम एवं ग्रामीण

12.3 ग्रामीण विकास का अर्थ

12.4 ग्रामीण विकास एवं राज्य

12.5 ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज

12.6 ग्रामीण विकास में संचार उपयोग

12.7 ग्रामीण विकास संदेश निर्धारण

12.8 ग्रामीण विकास संदेश हेतु माध्यम चयन

12.8.1 परम्परागत माध्यम

12.8.2 आधुनिक माध्यम

12.9 ग्रामीण विकास एवं आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी

12.10 सारांश

12.11 संदर्भ ग्रंथ

12.12 पारिभाषिक शब्दावली

12.13 प्रश्नावली

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे -

(i) ग्राम एवं ग्रामीण जनता क्या होती है?

(ii) ग्रामीण विकास का अर्थ एवं राज्य की भूमिका।

(iii) ग्रामीण विकास एवं विकेन्द्रीकरण।

(iv) ग्रामीण विकास में संचार की भूमिका।

(v) ग्रामीण विकास हेतु संदेश निर्धारण एवं गाध्यम चयन।

(vi) आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी एवं ग्रामीण विकास।

12.1 प्रस्तावना

ग्रामीण विकास का प्रश्न हमारे देश के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अभी भी तीन चौथाई के लगभग भारत ग्रामीण भारत के रूप में ही निरूपित किया जाता है। ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां राष्ट्रीय सूचकांकों को भी प्रभावित करती हैं। कृषि की विकास दर और उत्पादकता से देश की जीडीपी और जीएनपी प्रभावित होती है। ग्रामीण आबादी की गतिशीलता (Mobility) से शहरी भारत की जनसंख्या संरचना निर्धारित की जाती है। ग्रामीण विकास किसी भी सरकार, बजट या पंचवर्षीय योजना की सर्वोच्च प्राथमिकता के रूप में निरूपित किया जाता है।

ग्रामीण विकास का प्रश्न स्वतंत्रता के पश्चात् से ही हमारे नीति नियन्ताओं के लिए महत्वपूर्ण रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व ही महात्मा गांधी ने स्वराज्य की परिकल्पना को ग्राम-स्वराज से जोड़कर देखा था। ग्रामीण स्वावलम्बन को देश के विकास के मूलमंत्र के रूप में देखा जाता है।

ग्रामीण विकास के लक्ष्यों को हासिल करने में जनसहभागिता और जनजागरूकता की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसमें जनमाध्यमों की भूमिका अत्यन्त उपयोगी है। ग्रामीण विकास तथा रूपान्तरण में जनमाध्यमों ने अपनी प्रभावी भूमिका को सिद्ध भी किया है। साइट के अनुभव, खेड़ा डेवलपमेन्ट प्रोग्राम, झाबुआ-बस्तर प्रोजेक्ट, सामुदायिक टीवी तथा सामुदायिक रेडियो की विकास तथा जनसूचना में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

अभी भी हम ग्रामीण विकास के लक्ष्यों से दूर हैं। अभी भी तमाम प्रयत्नों के बावजूद बहुत से गांव बुनियादी सुविधाओं - सड़क, परिवहन, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा, कुटीर उद्योग व विपणन सुविधाएं, बैंकिंग सेवाएं, शिक्षा, बिजली एवं परिष्कृत ऊर्जा, स्वच्छ पेयजल से वंचित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की संभावनाएं भी कम हैं तथा सीमित आर्थिक गतिविधियों के चलते व्यवसाय व बाजार भी असंगठित तथा प्रारम्भिक अवस्था में हैं।

ग्रामीण विकास से सभी का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सरोकार रहता है। अत: इसकी बेहतर समझ होना जरूरी है।

12.2 ग्राम एवं ग्रामीण

ग्रामीण विकास को स्पष्ट करने से पूर्व ग्राम एवं ग्रामवासी या ग्रामीण के अर्थ को समझना आवश्यक है। ग्राम संस्कृत शब्द है जिसे हिन्दी में गांव कहते हैं। अपने विस्तृत रूप में ग्राम एक प्रशासनिक इकाई होती है जिसके अंतर्गत कृषिप्रयोज्य तथा अकृषिप्रयोज्य भूमि, आवासीय बस्ती, रास्ते, बाग-बगीचे, तालाब-पोखरे आदि सम्मिलित किये जाते हैं। इस इकाई को दस्तावेजों (राजस्व) की भाषा में मौजा ग्राम के रूप में दर्ज किया जाता है। ग्राम एक संगठन के रूप में स्वीकार किये जाते हैं जिसमें विविध सामाजिक मान्यताओं वाले लोग निवास करते हैं। सिम्स के अनुसार - ''गांव

वह नाम है जो साधारणतया प्राचीन कृषकों के अधिवासों को दर्शाने के लिए प्रयुक्त होता है।" प्रो. आर. एन. मुकर्जी के शब्दों में - ``गांव वह समुदाय है जहां अपेक्षाकृत अधिक समानता, अनौपचारिकता, प्राथमिक समूहों की प्रधानता, कम जनसंख्या घनत्व और कृषि व्यवसाय प्रमुख हो।"

गांव की विशिष्टताओं को हम संक्षेप में निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत स्पष्ट कर सकते हैं -

(i) ग्राम मुख्यत: प्राथमिक उत्पादन का केन्द्र होते हैं।

(ii) कृषि प्रधान व्यवसाय होता है।

(iii) अधिवास सामान्यत: कच्चे, कच्चे व पक्के होते हैं व उनकी सघनता कम होती है। 400 वर्ग किमी से कम घनत्व होता है।

(iv) पारम्परिक विपणन प्रणाली, नातेदारी तथा पारम्परिक श्रम विभाजन की प्रधानता होती है।

गांव के लिए गांव, नंगला, पुरा, पुरवा आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। कृषि व कृषि आधारित समाज के तीज-त्योहार, परम्पराओं तथा लोक - व्यवहार में कृषि की झलक दिखलाई देती है।

ग्राम के निवासियों को ग्रामीण कहा जाता है। इनके जीविकोपार्जन का आधार मुख्य रूप से प्राथमिक व्यवसाय होता है। कृषि, पशुपालन, मत्स्यकी, आखेटन, एकत्रीकरण, पारम्परिक सेवा कार्य जैसे - नाई, धोबी, लोहार, बढ़ई, माली, जजमानी आदि पेशे होते हैं। भूमि के स्वामित्व के आधार पर ग्रामीण समाज- भूमिधारी, बटाईदार, भूमिहीन मजदूर आदि में बंटा होता है। भारत में अधिकांश ग्रामीणों का व्यवसाय कृषि या कृषि आधारित लघु उद्यम हैं।

12.3 ग्रामीण विकास का अर्थ

ग्रामीण विकास में ग्रामीण जनसंख्या एवं ग्रामीण क्षेत्र, कृषि क्षेत्र तथा कृषि आधारित उद्योग-धन्धों का विकास समाहित है। ग्रामीण विकास के विविध पक्षों को हम निम्न रूप में स्पष्ट कर सकते हैं -

(i) सांस्कृतिक विकास - इसमें साक्षरता में वृद्धि, जातीय व क्षेत्रीय मानसिकता का निर्मूलन, रूढ़ियों से मुक्ति, जनमाध्यमों का प्रचार-प्रसार, वैज्ञानिक चेतना का विकास, स्त्री व बाल विकास महिला शिक्षा आदि समाहित किए जाते हैं।

(ii) आर्थिक विकास - ग्रामीण आर्थिक विकास में कृषि को ज्यादा लाभदायक बनाना, उर्वरता प्रबंधन, ग्रामीण उद्योग-धन्धों का विकास, ग्रामीण रोजगार सृजन, आर्थिक स्वावलम्बन, कृषि आधारित उद्यमों व व्यवसायों का विकास आदि शामिल किये जाते हैं।

(iii) राजनैतिक विकास – इसमें मुख्य रूप से पंचायती राज व्यवस्था का सशक्तिकरण तथा उसमें सभी वर्गों की भागीदारी समाहित की जाती है।

(iv) **बुनियादी सुविधाओं का विकास** - इसके अंतर्गत सड़क, ग्रामीण परिवहन व्यवस्था का विकास, पेयजल उपलब्धता, स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता, बिजली की उपलब्धता, संचार साधनों की उपलब्धता आदि को शामिल करते हैं।

(v) **कृषि का विकास** - इसमें कृषि को व्यापारिक स्वरूप प्रदान करना, सिंचाई सुविधाओं का विस्तार, नवाचारों का प्रसरण, उन्नत खाद व बीज का प्रयोग, कृषि का यंत्रीकरण, कृषि विपणन एवं बैंकिंग को बढ़ावा, ट्रक फार्मिंग को बढ़ावा, बागाती कृषि को बढ़ावा, कृषि अनुसंधान व उसका क्रियान्वयन आदि समाहित किये जाते हैं।

(vi) **मानव संसाधन विकास** - कृषि क्षेत्र में अकुशल श्रम को कुशल श्रम में बदलना, पारम्परिक पेशों को आधुनिक तकनीकी कौशल से सुसज्जित करना, कौशल उच्चीकरण प्रशिक्षण आदि इसमें सम्मिलित किये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त भारत में ग्रामीण क्षेत्र अभी भी तुलनात्मक रूप से पिछड़ा हुआ है। देश की करीब तीन चौथाई आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। वहां गरीबी ज्यादा है, उत्पादकता कम और न्यूनतम आवश्यक सेवाओं का अभाव है। विकास योजनाओं की शुरूआत से ही ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है जिससे वहां रहने वाले लोगों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति सुधारी जा सके।

12.4 ग्रामीण विकास एवं राज्य

यह तय करना अत्यन्त कठिन है कि विकास कार्यक्रमों के लाभ अपने आप समाज के अंतिम हिस्से तक पहुंच जायेंगे, इसलिए सरकार ने गरीबों तथा जरूरतमदों तक संसाधन पहुंचाने के लिए अनेक कार्यक्रम अपने हाथ में लिए हैं। ग्रामीण विकास एवं रोजगार मंत्रालय गांवों में उत्पादकता बढ़ाने और सामाजिक विकास के लिए बुनियादी सुविधाओं को बढ़ाने के साथ ही आय बढ़ाने, पूंजी जुटाने और दिहाड़ी रोजगार जैसे कार्यक्रमों के जरिये गरीब से गरीब तक पहुंचकर निर्धनता दूर करने का प्रयास करता है।

1997-98 और उसके बाद के वर्षों में मंत्रालय के कार्यक्रमों को और प्रभावी बनाने तथा उनकी व्यावहारिकता बढ़ाने के उद्देश्य से इन्हें और ठोस स्वरूप प्रदान किया गया है। इसके अतिरिक्त कृषि मंत्रालय, श्रम मंत्रालय, स्वास्थ्य मंत्रालय सहित अन्य मंत्रालय व राज्य सरकारें भी ग्रामीण विकास में संलग्न हैं।

वस्तुत: भारत में ग्रामीण विकास के लक्ष्य हासिल करने में राज्य की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सर्वोच्च सत्ता के रूप में ग्रामीण विकास राज्य का प्राथमिक उत्तरदायित्व भी है। संघीय ढांचे की मूल भावना के अनुरूप भारत में ग्रामीण विकास के महत्वपूर्ण लक्ष्य को त्रिस्तरीय शासन या सरकार व्यवस्था के माध्यम से प्राप्त किया जा रहा है। यह त्रिस्तरीय व्यवस्था है - केन्द्र सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय शासन या पंचायती राज।

ग्रामीण विकास में सरकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही ग्रामीण विकास के लिए सरकार ने विशेष कार्यक्रम क्रियान्वित किये हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण समाज के हर पहलू को विकसित करने के प्रयास किये गये हैं।

पहली पंचवर्षीय योजना (1951-56) में कृषि और सिंचाई के विकास पर विशेष बल दिया गया था। चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) पर भी कृषि पर विशेष ध्यान दिया गया था। सरकार ने स्वतंत्रता पश्चात् से ही ग्रामीण विकास को ध्यान में रखकर अनेक प्रयास किये हैं। इनमें से कुछ प्रमुख प्रयास निम्नवत् हैं -

(i) भारत निर्माण योजना - यह योजना 16 मई, 2005 से शुरू की गयी है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के शब्दों में यह योजना भारत और इण्डिया के अंतर को समाप्त करेगी। योजना के तहत वित्तीय वर्ष 2005-06 से 2008-09 तक चार वर्षों में ग्रामीण विकास के उद्देश्य से एक लाख सात हजार करोड़ रुपये खर्च किए जायेंगे। इस योजना का क्रियान्वयन राज्य सरकारों द्वारा किया जायेगा तथा धन की व्यवस्था केन्द्र सरकार द्वारा की जायेगी। योजना का उद्देश्य वर्ष 2009 तक छ: प्रमुख बुनियादी क्षेत्रों को विकसित कर ग्रामीण विकास के लक्ष्य को पूर्ण करना है। ये छ: क्षेत्र निम्नांकित हैं -

(क) सिंचाई - एक करोड़ हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि को सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराना।

(ख) सड़क - पर्वतीय तथा जनजातीय क्षेत्रों में 500 की तथा अन्य ग्रामीण क्षेत्रों में 1000 की या उससे अधिक आबादी के गांवों को बारहमासी पक्की सड़कों से जोड़ना।

(ग) जलापूर्ति - अभी तक पेयजल सुविधा से वंचित 74,000 गांवों को पेयजल उपलब्ध कराना।

(च) विद्युतीकरण - बाकी बचे 1,25,000 गांवों तक तथा 2 करोड़ 30 लाख घरों तक बिजली पहुंचाई जायेगी।

(छ) दूरसंचार - शेष बचे 66,822 गांवों को दूरसंचार सुविधाओं से जोड़ना।

(ii) राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन - 12 अप्रैल, सन् 2005 से राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की शुरूआत की गयी है। कमजोर जन स्वास्थ्य निर्देशकों तथा कमजोर स्वास्थ्य सुविधा आधार वाले राज्यों पर विशेष ध्यान देते हुए इसे पूरे देश में लागू किया गया है।

(iii) राष्ट्रीय बागवानी मिशन - दसवीं पंचवर्षीय योजना में मिशन के लिए 2,300 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी है। इसका लक्ष्य 11वीं पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक 33 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल को बागवानी के तहत लाना है।

(iv) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना - यह योजना 7 सितम्बर, 2005 को अधिसूचित हुई। प्रथम चरण में 2 फरवरी, 2006 से यह देश के 200 जिलों में यह

क्रियान्वित की जा चुकी है। इसके अंतर्गत ग्रामीण गरीब परिवार के कम से कम एक सदस्य को आवेदन प्राप्त होने के 15 दिन के भीतर 100 दिन का रोजगार दिया जायेगा। इस योजना पर कुल 40,000 करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। इसके प्रथम चरण में संपूर्ण ग्रामीण रोजगार सूचना और राष्ट्रीय काम के बदले अनाज योजना को इसमें समाहित किया गया है।

(iv) **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना** - दिसम्बर, सन् 2000 में केन्द्र प्रायोजित योजना के रूप में पूरे देश में यह योजना शुरू की गयी। इसमें उच्च तकनीकी मानक की सड़कें बनायी जाती हैं तथा पांच वर्षों तक उनका रख-रखाव भी किया जाता है।

(v) **इंदिरा आवास योजना** - ग्रामीण क्षेत्रों में आवास की कमी को पूरा करने के लिए, जवाहर रोजगार योजना की उप-योजना के रूप में सन् 1985 में इंदिरा आवास योजना शुरू की गयी थी। इसे 1 जनवरी, सन् 1996 से स्वतंत्र योजना के रूप में क्रियान्वित किया जा रहा है।

(vi) **सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना** - सुनिश्चित रोजगार योजना तथा जवाहर ग्राम समृद्धि योजना को मिलाकर 23 सितम्बर, 2001 को यह योजना शुरू की गयी थी।

(vii) **काम के बदले अनाज का राष्ट्रीय कार्यक्रम** - नवम्बर, 2004 से केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय तथा राज्यों की सलाह से योजना आयोग ने चुनिन्दा 150 अत्यन्त पिछड़े जिलों में काम के बदले अनाज का राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किया है।

(viii) **वाटरशेड विकास कार्यक्रम** - भूमि संसाधन विभाग बंजर भूमि/ अवक्रमित भूमि के विकास के लिए सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (डीपीएपी), मरूभूमि विकास कार्यक्रम (डीडीपी) और समेकित बंजर भूमि विकास कार्यक्रम कार्यान्वित कर रहा है।

(ix) **संपूर्ण स्वच्छता कार्यक्रम** - देश के 451 जिलों में सार्वजनिक व व्यक्ति सफाई व स्वच्छता का यह कार्यक्रम लागू है। इन योजनाओं के अतिरिक्त मातृत्व व शिशु कल्याण, कृषि विपणन, बैंकिंग, बीमा, जलापूर्ति, पर्यावरण व ऊर्जा तथा अन्य क्षेत्रों में अनेक योजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं।

12.5 ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज

शासन तथा सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं ग्रामीण जनता की राजनैतिक भागीदारी को बढ़ाने तथा सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से पंचायती राज व्यवस्था एक महत्वपूर्ण कदम है। ग्रामीण विकास में पंचायती राज की अहम भूमिका है। भारत के सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में पंचायती राज संस्थाएं हैं।

संवैधानिक रूप प्रदान करने के लिए और देश की पंचायत राज संस्थाओं में एकरूपता लाने के लिए देश की संसद ने दिसम्बर, 1992 में सविधान (73वां संशोधन) अधिनियम, 1992 मंजूर किया। इस संविधान संशोधन अधिनियम में नागालैण्ड,

मेघालय और मिजोरम - इन राज्यों तथा कुछ अन्य निर्दिष्ट क्षेत्रों को छोड़ सभी राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों में स्वायत्त शासन व्यवस्था की इकाइयों के रूप में पंचायतें स्थापित करने का प्रावधान है। आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाएं बनाने तथा इन पर अमल करने के लिए इन संस्थाओं को उचित स्तरों पर पर्याप्त अधिकार और उत्तरदायित्व दिये जायेंगे। संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में उल्लिखित विषयों में से जो विषय इन संस्थाओं को सौंपे जायेंगे उन पर ये अमल करेंगे।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 में पंचायतों की त्रिस्तरीय व्यवस्था - ग्राम, खण्ड तथा जिला स्तर लागू की गयी है। इन पंचायतों को योजना क्रियान्वयन, रख-रखाव तथा कुछ मामलों में कर लगाने के अधिकार भी दिये गये हैं।

ग्रामीण विकास को पंचायती राज व्यवस्था प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभावित कर रही है। प्रत्यक्ष रूप में सरकारी योजनाओं का बेहतर क्रियान्वयन करके, स्थानीय विकास की वास्तविक आवश्यकताओं को चिन्हित करके, लाभ को पात्र व्यक्तियों तक पहुंचाकर यह काम हो रहा है। अप्रत्यक्ष रूप से पंचायती राज व्यवस्था ने लोगों की जनतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी को सुनिश्चित करने का कार्य किया है। वंचित वर्गों तथा महिलाओं के राजनैतिक सशक्तिकरण में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान है। पंचायती राज व्यवस्था में अभी तक 14 लाख से ज्यादा महिलाएं पद पा चुकी हैं तथा उनमें से अधिकांश शुरूआती संक्रमण काल को छोड़कर अब अच्छा कार्य कर रही हैं।

12.6 ग्रामीण विकास में संचार उपयोग

ग्रामीण विकास एवं रूपान्तरण की प्रक्रिया में संचार की उपयोगिता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लोगों को शिक्षित करने, चर्चा के उचित बिन्दुओं से परिचित कराने, विकास कार्यक्रमों से जोड़ने के लिए संचार नियोजित व्यवस्था एक अनिवार्य आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के लिए जरूरी जनमत निर्मित करने तथा वैज्ञानिक चेतना के विकास में भी संचार की महत्वपूर्ण भूमिका है।

ग्रामीण क्षेत्र और ग्रामीण जनता परम्परागत समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसे समाज में नये मूल्यों को स्वीकार करने का कार्य धीरे-धीरे होता है। ऐसे समाज रूढ़ियों से आबद्ध होते हैं तथा इनमें से कई रूढ़ियां तो बितान्त असभ्य तथा मानवाधिकारों की विरोधी होती हैं। रूढ़िबद्ध समाज अपनी पहले की स्थिति में परिवर्तन के प्रयासों को सहज रूप में स्वीकार नहीं करता। ऐसे में यह आवश्यक होता है कि उनके मत में परिवर्तन किया जाये।

मत परिवर्तन का यह कार्य संचार की प्रभावी रणनीति बनाकर और उसे सफलतापूर्वक क्रियान्वित कर ही किया जा सकता है। बेहतर संचार संयोजन से ग्रामीण समाज अपनी बंद खिड़कियां खोलता है तथा दुनिया में हो रही तरक्की तथा बदलावों को स्वीकार कर स्वयं भी बदलाव की ओर उन्मुख होता है।

संचार के माध्यमों ने ग्रामीण विकास तथा रूपान्तरण में सदैव अग्रिम भूमिका निभाई है। नवाचारों के प्रसरण में भी संचार की प्रभावी भूमिका रही है। संचार रिक्तता (Communication gap) तथा वर्तमान समय में डिजिटल डिवाइड (Digital divide) पिछड़ेपन के पर्याय माने जाते हैं। इसीलिए विकास कार्यक्रमों का एक प्रमुख लक्ष्य यह भी है कि वह ग्रामीण क्षेत्रों में संचार रिक्तता की स्थिरता की स्थिति को समाप्त करें।

सूचना को अब ग्रामीण विकास के लिए भी आवश्यक माना जाने लगा है तथा यह प्रयास किया जा रहा है कि सूचना तथा संचार की प्रभावी व्यवस्था ग्रामीण इलाकों में भी प्रभावी हो।

12.7 ग्रामीण विकास संदेश निर्धारण

ग्रामीण जनता में जागरूकता लाने तथा उन्हें विकास की जानकारी देने, विकास के लिए उत्प्रेरित करने तथा विकास के लिए जरूरी जनमत निर्मित करने की दृष्टि से ग्रामीण संदेशों का अहम स्थान है। सरकार ने हमेशा से ही विविध लोक-लुभावन संदेशों के माध्यम से ग्रामीण विकास के विविध कार्यक्रमों के प्रचार-प्रसार का संयोजन किया है। कुछ संदेश तो अत्यंत लोकप्रिय और दीर्घजीवी रहे हैं।

अधिक अन्न उपजाओ, जय जवान - जय किसान, छोटा परिवार - सुखी परिवार, जल ही जीवन है, दो बूंद जिन्दगी की - आदि, अनेक लोकप्रिय संदेशों का ग्रामीण चेतना निर्मित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

ग्रामीण संदेश का निर्धारण एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। किस प्रकार एक प्रभावी संदेश तैयार किया जाय जो ग्रामीण जनता को तुरन्त समझ में आ जाय तथा वह उसे आसानी से स्वीकार कर ले, यह सरल नहीं है। ग्रामीण जनसंख्या की अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताएं होती हैं। संदेश में यह तत्व अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रयुक्त होने वाले संदेशों में ग्रामीण विशेषताओं का ध्यान रखना चाहिए। संदेश सरल, सुबोध, स्पष्ट तथा सर्वग्राह्य होने चाहिए। चूंकि अधिकांश ग्रामीण जनता अभी भी निरक्षर है अत: चित्रात्मक तथा ध्वन्यात्मक संदेश विशेष प्रभावी हो सकते हैं। हम संक्षेप में ग्रामीण विकास संदेश के प्रमुख निर्धारक बिन्दुओं को निम्नांकित प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते हैं -

(i) संदेश सरल तथा सुबोध होना चाहिए।

(ii) संदेश की पृष्ठभूमि ग्रामीण परिवेश के अनुकूल होनी चाहिए।

(iii) संदेश के रोल मॉडल या कम्यूनिकेटर ग्रामीण क्षेत्रों में स्वीकार्य होने चाहिए।

(iv) संदेश की भाषा में स्थानीयता का पुट होना चाहिए।

(v) चित्रात्मकता संदेश को और आकर्षक बना सकती है।

(vi) संदेश को ज्यादा लम्बा या जटिल संरचना वाला नहीं होना चाहिए।

(vii) संदेश को माध्यम के अनुकूल होना चाहिए।

12.8 ग्रामीण विकास संदेश हेतु माध्यम चयन

ग्रामीण विकास के संदेशों के प्रभावी निरूपण में माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। माध्यम चयन करते समय ग्रामीण क्षेत्रों में उनकी स्वीकार्यता तथा पहुंच का ध्यान रखना चाहिए। दृश्य-श्रव्य माध्यम ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से उपयोगी होते हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर प्रभावशाली परम्परागत माध्यमों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।

12.8.1 परम्परागत माध्यम

परम्परागत माध्यम अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में लोकप्रिय हैं। चूंकि ये माध्यम लोक से जुड़े हैं अत: लोक विश्वास भी इन्हें हासिल है। लोक से इन माध्यमों के जुड़ाव का फायदा विकास संदेशों को भी अवश्य उठाना चाहिए। परम्परागत माध्यमों का चयन स्थानीय आधार किया जाना चाहिए। इन माध्यमों का चयन कर संदेशों को भी उनके अनुरूप ही विकसित करना चाहिए। यह परम्परागत माध्यम जिस प्रकार की प्रस्तुतियां करते हैं; संदेशों को भी उसी रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।

12.8.2 आधुनिक माध्यम

आधुनिक माध्यमों का चयन सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। रेडियो तथा टीवी सर्वग्राह्य माध्यम हैं। इनका उपयोग लाभदायक होता है। जहां बिजली नहीं है वहां रेडियो तथा जहां बिजली व टीवी प्रसार सुविधा उपलब्ध है वहां टीवी प्रभावी माध्यम है। सिनेमा व वीडियो का प्रयोग आउटडोर संदेशों के लिए किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार अखबार, पोस्टर, बैनर, वॉल राइटिंग, पैनल राइटिंग आदि का भी प्रयोग किया जा सकता है।

12.9 ग्रामीण विकास एवं आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी

आधुनिक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का ग्रामीण विकास में प्रभावी उपयोग शुरू कर दिया गया है। ई-गर्वनेन्स के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए यह जरूरी भी है कि आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचाया जाय। ग्रामीण विकास में जहां प्रयोग शुरू हुआ है वहां सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। उपजों की जानकारी, कम्प्यूटरीकृत किसान बही, राजस्व की जानकारी, बाजार दर की जानकारी, कृषि सूचना सेवा, भूमि रिकार्डों का लेखा-जोखा आदि कार्य इसके द्वारा प्रभावी ढंग से किये जा रहे हैं।

भारत में इस दृष्टि से किये गये प्रयोग उत्साहजनक रहे हैं। केरल, आंध्र प्रदेश, गुजरात आदि में ग्रामीण क्षेत्रों को इसका व्यापक लाभ मिल रहा है। मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु आदि में भी इसकी प्रभावी व्यवस्था की गयी है।

12.10 सारांश

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ग्रामीण जागरूकता एवं संचार उपयोग महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय विकास का प्रश्न ग्रामीण विकास से जुड़ा है। जब गांव विकसित होंगे, तभी देश विकसित होगा।

ग्रामीण विकास में संचार माध्यमों का प्रयोग लाभदायक हो सकता है। टीवी, रेडियो, परम्परागत तथा अन्य माध्यमों ने प्रभावी सहयोग दिया है। रेडियो को तो 'देहाती माध्यम' की उपमा तक दे दी गयी है। टीवी ने भी ग्रामीण चेतना के विकास में महती अंशदान किया। इस दृष्टि से 'साइट' और 'खेड़ा' कार्यक्रम मील का पत्थर माने जाते हैं। आधुनिक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी भी सूचना रिक्तता पाटने और ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की पहुंच बनाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

12.11 संदर्भ ग्रन्थ

(i) भारत, 2006, प्रकाशन विभाग।

(ii) मास कम्यूनिकेशन इन इण्डिया - केवल जे. कुमार

(iii) मास मीडिया एण्ड नेशनल डेवलपमेन्ट - विल्बर श्रैम

12.12 पारिभाषिक शब्दावली

(i) ट्रक फार्मिंग - नगरीय क्षेत्र के आस-पास या राजमार्गों पर स्थित कृषि क्षेत्रों में की जाने वाली सब्जी व दुग्ध उत्पादन की कृषि जो मुख्य रूप से नगरीय क्षेत्रों में आपूर्ति हेतु की जाती है।

(ii) साइट - SITE यानि सेटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलीविजन एम्सपेरीमेंट कार्यक्रम अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा के सहयोग से सन् 1975 में भारत में छः राज्यों में 2400 गांवों में लागू किया गया जिसने ग्रामीण विकास में टीवी के उपयोग को नई दिशा दी।

(iii) साइबर ढाबा - ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित इंटरनेट केन्द्र के लिए प्रयुक्त नाम।

12.13 प्रश्नावली

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) 'ग्रामीण' से आप क्या समझते हैं? भारत में ग्रामीण विकास की प्रमुख समस्याएं क्या-क्या हैं?

(2) ग्रामीण विकास में राज्य की भूमिका की व्याख्या करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

(1) ग्रामीण विकास में संचार की उपयोगिता बताएं।

(2) परम्परागत माध्यम क्या हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

(1) पहली पंचवर्षीय योजनावधि थी -

(क) 1950-55 (ख) 1951-56

(ग) 1952-57 (घ) 1953-58

(2) पंचायती राज अधिनियम मंजूर हुआ -

(क) 1991 (ख) 1992

(ग) 1994 (घ) 1996

(3) भारत निर्माण योजना शुरू हुई -

(क) 2001 (ख) 2002

(ग) 2005 (घ) 2006

(4) ई-गर्वनेन्स जुड़ा है -

(क) टीवी से (ख) रेडियो से

(ग) इंटरनेट से (घ) इनमें से कोई नहीं

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

(1) (ख)

(2) (ख)

(3) (ग)

(4) (ग)

इकाई-13 विकास संचार एवं स्वास्थ्य

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 विकास संचार के लक्ष्य

13.3 विकास संचार एवं स्वास्थ्य

13.4 जनस्वास्थ्य की अवधारणा

13.5 स्वास्थ्य चेतना एवं जनमाध्यम

13.6 परिवार कल्याण एवं जनमाध्यम

13.7 पल्स पोलियो व अन्य उन्मूलन मूलक कार्यक्रम

13.8 स्वास्थ्य पत्रकारिता : दशा एवं दिशा

13.9 सारांश

13.10 संदर्भ ग्रंथ

13.11 पारिभाषिक शब्दावली

13.12 प्रश्नावली

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे -

(1) विकास संचार का उद्देश्य क्या-क्या है।

(2) स्वास्थ्य से विकास संचार का सम्बन्ध।

(3) जन स्वास्थ्य क्या है व इसका दायरा।

(4) स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के विकास में जनमाध्यमों का योगदान।

(5) परिवार कल्याण, पल्स पोलियो तथा अन्य कार्यक्रम।

(6) स्वास्थ्य पत्रकारिता की स्थिति एवं कार्य।

(7) स्वास्थ्य संदेशों का निर्माण व उपयोग।

13.1 प्रस्तावना

'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है', 'तंदरुस्ती हजार नियामत: 'Health is wealth', 'स्वस्थ रहिये मस्त रहिए' आदि कितने ही वाक्य, मुहावरे, लोकोक्तियां

स्वास्थ्य की महत्ता को स्पष्ट करते हैं। एक व्यक्ति के लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए स्वास्थ्य सबसे महत्वपूर्ण है। मानवीय क्षमताओं का दोहन व रचनात्मक कार्यों में सक्रियता के लिए स्वास्थ्य बहुत ही आवश्यक है।

कोई भी राष्ट्र तभी तरक्की करता है जब उसके नागरिक स्वस्थ होते हैं। बीमारी, महामारी आदि ने सदियों से शहर के शहर उजाड़ दिये हैं। यदि हम इतिहास के पन्ने खंगालें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि जितनी मौतें खून की प्यासी तलवारों ने नहीं दी हैं उससे कई गुना ज्यादा मौतें प्लेग, चेचक, मलेरिया व काला अजार, हैजा, फ्लू, टिटनेस, टीबी, शुगर से हुई हैं तथा अब एड्स से हो रही हैं।

अस्वस्थ शरीर मानव संसाधन के रूप में विकसित नहीं किया जा सकता। राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि स्वस्थ बच्चे का जन्म हो, रोगों से उसे संरक्षण मिले, पोषक संरक्षण उसे उपलब्ध हो तथा उसके शारीरिक-मानसिक विकास में कोई बाधा नहीं हो। इसीलिए कोई भी राष्ट्र विकसित तभी माना जाता है जब वह अपने नागरिकों को स्वास्थ्य संरक्षण प्रदान करने में सक्षम हो।

स्वास्थ्य केवल बीमारी और उपचार की पहचान कराने वाला शब्द नहीं है। इसमें वह समस्त क्रियाएं-प्रक्रियाएं सम्मिलित की जाती हैं जिनकी मदद से नागरिकों को एक मानकीकृत स्वस्थ शारीरिक स्थितियां प्राप्त करने में मदद मिले। स्वास्थ्य के लक्ष्यों की पूर्ति में लोगों की सोच स्वास्थ्य के प्रति उनका दृष्टिकोण भी महत्वपूर्ण होता है। जनमाध्यम इस चेतना के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक हैं तथा जन स्वास्थ्य के लक्ष्य बिना उनकी मदद के प्राप्त नहीं किये जा सकते।

13.2 विकास संचार के लक्ष्य

विकास संचार के उद्देश्य स्पष्ट व पूर्व निर्धारित होते हैं। विकासात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देना, विकास कार्यक्रमों का प्रचार-प्रसार, विकास से लोगों को जोड़ना, विकास के लिए आवश्यक जनसहमति का निर्माण, विकास से जुड़ी सूचनाओं के प्रति शंकाओं का समाधान और विकास कार्यों में पारदर्शिता का समावेश आदि विकास संचार के प्रमुख लक्ष्य होते हैं, इन लक्ष्यों को हम निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं -

(क) सूचनात्मक लक्ष्य - इसके अन्तर्गत निम्नांकित बिन्दुओं का समावेश किया जा सकता है -

(i) विकास कार्यक्रमों की सूचनाएं लोगों तक पहुंचाना।

(ii) सूचनाओं की प्रभावी प्रस्तुति सुनिश्चित करना।

(iii) सूचनाओं का प्रेषण एवं पुनर्प्रेषण चक्र का अनुपालन।

(ख) सामुदायिक लक्ष्य - इसमें निम्नांकित लक्ष्यों का समावेश किया जा सकता है -

(i) विकास कार्यों में जन-भागीदारी को प्रोत्साहन।

(ii) विकास के लिए जनमत या जनचेतना का निर्माण।

(iii) सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहन।

(ग) सहयोगी लक्ष्य - इनमें निम्नांकित तत्व सम्मिलित किये जा सकते हैं -

(i) विकास कार्यक्रमों को समर्थन।

(ii) विकासमूलक गतिविधियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का प्रस्तुतीकरण।

(iv) विकास को बढ़ावा देने के लिए सलाहकार की भूमिका।

(घ) प्रतिपुष्टिमूलक लक्ष्य - इसमें समाहित मुख्य बिन्दु हैं -

(i) विकास की आवश्यकता को उजागर करना।

(ii) लोगो की समस्याओं व भावनाओं को प्रकट करना।

(iii) विकास कार्यों के प्रति जनता के दृष्टिकोण को नीति नियंताओं तक पहुंचाना।

(iv) वैकल्पिक उपायों का प्रस्तुतीकरण।

(च) मूल्यांकन लक्ष्य - इसमें निम्नांकित तत्वों को लिया जा सकता है -

(i) विकास कार्यों में लापरवाही, भ्रष्टाचार को उजागर करना।

(ii) विकास योजनाओं के औचित्य का विश्लेषण करना।

(iii) विकास कार्यों की आवश्यकता स्पष्ट करना।

(iv) विकास की बाधाओं को उजागर करना।

13.3 विकास संचार एवं स्वास्थ्य

विकास की पूर्णता स्वास्थ्य के बिना पूरी नहीं होती। विकास को हम प्रति व्यक्ति आय, राष्ट्रीय आय, सकल घरेलू उत्पाद, सकल राष्ट्रीय उत्पाद जैसे सूचकांकों से ही अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं। विकास की विस्तृत अवधारणा में लोगों के पोषण का स्तर, उपलब्ध स्वास्थ्य सुविधाएं, कैलोरी उपलब्धता व प्रोटीन उपलब्धता जैसी बातें भी समाहित की जाती हैं।

इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य स्वयं ही विकास की अवस्था का संकेतक है। विकसित राष्ट्र के नागरिकों के स्वास्थ्य का स्तर भी बेहतर होता है तथा लोगों की स्वास्थ्य चेतना उन्नत होती है। लोगों के स्वास्थ्य के बेहतरी का कारण जीवन शैली तथा संरक्षात्मक उपायों से स्वास्थ्य का अर्जन होता है न कि बीमारी का शिकार होने के बाद उसका इलाज करना।

इसके विपरीत पिछड़े राष्ट्रों में ऐसी बीमारियों से भी लोग मरते हैं जिनसे बचाव किया जा सकता है। साफ-सफाई का अभाव, दूषित खाद्य सामग्री का उपयोग, दूषित पेयजल का उपयोग आदि महामारियों का कारण बनते हैं। स्वास्थ्य चेतना के अभाव

में टीकाकरण व संरक्षात्मक उपायों के प्रति लोग सचेत नहीं रहते जिसका परिणाम भयंकर होता है।

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है विकास संचार विकास को सही दिशा देने और लोगों को उससे जोड़ने के लिए आवश्यक है। स्वास्थ्य व्यक्तिगत प्रश्न से सामुदायिक, सामाजिक या राष्ट्रीय प्रश्न ज्यादा है। यह राज्य के लिए भी महत्वपूर्ण है कि वह अपने नागरिकों के बेहतर स्वास्थ्य के निर्माण का प्रयास करे।

विकास संचार में स्वास्थ्य चेतना का प्रसार, लोगों को स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचनाएं उपलब्ध कराना, लोगों को स्वास्थ्य रक्षा के प्रति जागरुक करना तथा अकाल, महामारी, जानलेवा बीमारियों से सतर्क करना सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य सुविधाओं की स्थिति, स्वास्थ्य कार्यक्रमों की सूचना देना, स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति आदि का मूल्यांकन व पड़ताल भी विकास संचार में सम्मिलित किये जा सकते हैं।

स्वास्थ्य विकास संचार का महत्वपूर्ण विषय है जो सीधे-सीधे जनता को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त जन स्वास्थ्य के लक्ष्य बिना विकास संचार की मदद के हासिल भी नहीं किये जा सकते। स्वास्थ्य के प्रति लोगों का नजरिया बदलने में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि कई बार रूढ़ीगत मान्यताओं तथा विचारों में परिवर्तन का काम केवल जनमाध्यमों की ही मदद या उनके प्रभाव से पूरा हो पाता है।

13.4 जनस्वास्थ्य की अवधारणा

जनस्वास्थ्य स्वास्थ्य को सामुदायिक विषय के रूप में स्पष्ट करता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनस्वास्थ्य अर्थात् समस्त नागरिकों के स्वास्थ्य के संरक्षण एवं संवर्धन की जिम्मेदारी सरकार की होती है। इसके लिए सरकार चिकित्सक एवं चिकित्सालय, औषधि एवं परीक्षण, शोध, स्वच्छता एवं सफाई तथा स्वास्थ्य संवर्धक सूचनाओं की व्यवस्था करती है। सरकार की यह जिम्मेदारी होती है कि वह अपने नागरिकों के लिए एक स्वास्थ्य तंत्र विकसित करे तथा उसमें प्रत्येक नागरिक के लिए स्वास्थ्य संरक्षण की व्यवस्था सुनिश्चित करे।

बीमारियां आबादी को असक्त, अक्षम और असमर्थ बनाती हैं। इनसे बड़े पैमाने पर जनसंख्या का विनाश होता है तथा कभी-कभी अराजकता की स्थितियां भी पैदा हो जाती हैं। चेचक, तपेदिक, मलेरिया, बर्ड फ्लू, सार्स, कैंसर और एड्स जैसी भयावह बीमारियां न केवल जान का नुकसान करती हैं वरन् सामाजिक-आर्थिक विकास की गति को भी बाधित करती हैं।

इसके अतिरिक्त जन स्वास्थ्य के अन्तर्गत परिवार कल्याण एवं जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों को भी सम्मिलित किया जाता है। इससे पूरी जनसंख्या प्रभावित होती है। अनियंत्रित जनसंख्या से पूंजी का सकारात्मक इस्तेमाल प्रभावित होता है तथा

विकास एवं संसाधनों पर भी इससे नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जनदबाव से उच्च मृत्युदर, उच्च अपंगता दर, उच्च कुपोषण दर का भी गहरा संबंध है। पोलियो, डिप्थीरिया, एनीमिया, हेपेटाइटिस आदि नवजातों की बीमारियां पूरी पीढ़ी के विकास को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य का प्रश्न सामाजिक विकास से भी जुड़ा है। भ्रूण हत्या, वृद्धों का रख-रखाव, प्रसव सुविधाएं व स्त्री स्वास्थ्य, आयोडीन की उपलब्धता, संतुलित आहार की उपलब्धता, आवास आदि की समस्या पूरे समाज को प्रभावित करती है व्यक्ति का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य समाज के स्वास्थ्य का भी निर्धारक होता है।

जन स्वास्थ्य की स्थितियां विकसित या विकासशील देशों के निर्धारण का प्रमुख आधार हैं। जन्म व मृत्यु दर, प्रसव व प्रसवेत्तर सुविधाएं, डॉक्टर व चिकित्सालयों की उपलब्धता, पोषण का स्तर, प्रोटीन व कैलोरी उपलब्धता आदि से विकास के स्तर का निर्धारण किया जाता है। इस प्रकार जन स्वास्थ्य का प्रश्न विकास के प्रश्न से गहराई से जुड़ा हुआ है।

विकास संचार का लक्ष्य भी जनस्वास्थ्य की दशाओं में सुधार करना होता है। भारत जैसे देश में जनस्वास्थ्य का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहां की आबादी का एक बड़ा तबका बुनियादी स्वास्थ्य सुंविधाओं से वंचित है। इसके अतिरिक्त छोटी-छोटी बीमारियां भी चिकित्सा के अभाव में जानलेवा बन जाती हैं। कुपोषण, बीमारी तथा एड्स जैसे जानलेवा संकट से बचाने के लिए भी विकास संचार यहां आवश्यक है।

13.5 स्वास्थ्य चेतना एवं जनमाध्यम

स्वास्थ्य के रक्षण में चेतना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य दवाओं से ज्यादा जागरुकता से बेहतर होता है। लोगों में जब स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरुकता वांछित स्तर तक मौजूद रहती है तो स्वास्थ्य दशाएं भी अपने आप बेहतर बनी रहती हैं। स्वास्थ्य संबंधी जागरुकता को या व्यक्ति की स्वास्थ्य संबंधी समझ को स्वास्थ्य चेतना के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनस्वास्थ्य दशाओं में सुधार के लिए दो उपाय किये जाते हैं -

(i) उपचारात्मक उपाय

(ii) चेतनामूलक उपाय

उपचारात्मक उपायों में चिकित्सालय, चिकित्सक, दवा-सामग्री आदि की व्यवस्था की जाती है। उपचारात्मक उपाय बीमारी के पश्चात प्रभावी होते हैं। इनकी व्यवस्था के माध्यम से नागरिकों को इलाज की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। जबकि चेतनामूलक उपाय व्यक्ति की स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता में वृद्धि करते हैं। चेतनामूलक उपाय सूचनात्मक तथा प्रचारात्मक प्रकृति के होते हैं।

जनमाध्यम चेतनामूलक उपायों के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हर प्रकार के जनमाध्यमों का प्रयोग चेतना के प्रचार-प्रसार में किया जा रहा है। इसका सकारात्मक असर भी पड़ा है। स्वास्थ्य चेतना के प्रसार में प्रयुक्त जनमाध्यमों का हम निम्नांकित प्रकार से वर्गीकरण कर सकते हैं -

(i) मुद्रित माध्यम - समाचार-पत्र, पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित लेख, फीचर, समाचार विज्ञापन इत्यादि, पुस्तकें, प्रशिक्षण व निर्देशक पुस्तिकाएं, पम्फलेट, लीफलेट, पोस्टर, अपील इत्यादि।

(ii) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया - टीवी, रेडियो, सिनेमा पर प्रसारित फिल्में, न्यूजरील, वृत्तचित्र, विज्ञापन, संदेश, परिचर्चा, वार्ता, फीचर आदि।

(iii) न्यू मीडिया - इंटरनेट वेबसाइट, मोबाइल मैसेज इत्यादि।

(iv) आउटडोर मीडिया - बैनर, होर्डिंग, वाल राइटिंग, डिस्प्ले आदि।

(v) परम्परागत मीडिया - नुक्कड़ नाटक, कठपुतली, मेला, नृत्य-गीत आदि।

(vi) इण्टरैक्टिव एवं अन्तर वैयक्तिक/सामुदायिक मीडिया - सभाएं, कार्यशाला व प्रशिक्षण सत्र, कार्यकर्ताओं द्वारा कन्वेसिंग इत्यादि।

स्वास्थ्य चेतना के प्रसार में जनमाध्यमों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। जनमाध्यमों ने रोगों व उनसे बचाव, स्वच्छता, पर्यावरण आदि से जुड़े मुद्दों को बराबर जगह दी है जिससे लोगों की जागरुकता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इस संदर्भ में पल्स-पोलियो अभियान का उदाहरण लिया जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर पोलियो उन्मूलन के लक्ष्यों के साथ जारी इस कार्यक्रम में मल्टी-चैनल संचार रणनीति का उपयोग किया गया है। जनमाध्यमों का इस अभियान को व्यापक समर्थन मिला है। पल्स-पोलियो संबंधी सूचनाओं को जनमाध्यमों ने बेहतर तरीके से जनता के सामने रखा है जिससे पोलियो प्रतिरक्षण की दर पर सकारात्मक असर भी पड़ा है।

स्वास्थ्य चेतना पर जनमाध्यमों के प्रभाव के अन्य उदाहरण भी गिनाये जा सकते हैं। 'क्या आपने खाने से पहले हाथ धोए हैं', 'जल ही जीवन है', 'बचाव ही सुरक्षा है', 'टीबी लाइलाज नहीं है', 'ओ आर एस घोल बनाएं' जैसे न जाने कितने ही संदेश जनमाध्यमों द्वारा जनता के बीच न केवल स्थापित किये जाते हैं, वरन् जनता में उनसे मनोनुकूल परिवर्तन भी परिलक्षित होता है।

जनमाध्यम स्वास्थ्य चेतना के प्रसार में सूचनात्मक, उत्प्रेरक, सलाहकार आदि कई भूमिकाओं का निर्वहन करते हैं। वस्तुत: जनता को जनमाध्यमों की मदद से ही यह जानकारियां आसानी से उपलब्ध हो जाती हैं। कई ऐसी बीमारियां होती हैं जिनका बचाव अपेक्षित जागरुकता से ही किया जा सकता है। मलेरिया से बचाव के लिए दवा का छिड़काव और जल स्त्रोतों की साफ-सफाई महत्वपूर्ण होती है। हैजा, कॉलरा आदि बीमारियों से बचाव सावधानी से किया जा सकता है। चेचक, खसरा आदि के संदर्भ में फैले भ्रमों का निवारण भी जनमाध्यमों की मदद से आसानी से किया

जा सकता है। इस प्रकार जनमाध्यम नीम हकीम खतरे जान वाली स्थितियों से भी बचाव करते हैं। इसके अतिरिक्त जनमाध्यम स्वास्थ्य संबंधी उपयोगी सलाह भी उपलब्ध कराते हैं। समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं में चिकित्सकीय सलाह का अलग कॉलम होता है जिससे हजारों पाठक लाभान्वित होते हैं। मौसमी बीमारियां से यह सतर्क करने का भी कार्य करते हैं। अनेक लोकप्रिय स्वास्थ्य पत्रिकाएं स्वास्थ्य के प्रति लोगों की समझ को बेहतर करने का कार्य कर रही हैं। 'केयर टीवी' नाम से अलग टीवी चैनल ही स्वास्थ्य को आधार बनाकर संचालित किया जा रहा है। हम यह कह सकते हैं कि स्वास्थ्य चेतना के विकास में जनमाध्यम महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

13.6 परिवार कल्याण एवं जनमाध्यंम

भारतीय संदर्भ में परिवार कल्याण कार्यक्रमों की चर्चा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारत सकारात्मक जनसंख्या नियंत्रण घोषित करने वाला पहला देश रहा है। सन् 1952 से ही भारत में जनसंख्या नियंत्रण के लिए क्लीनिकल उपायों की व्यवस्था की गयी। क्लीनिक उपायों के तहत नसबन्दी व अन्य उपचारात्मक विधियों द्वारा जनसंख्या नियंत्रण की व्यवस्था को शामिल किया जाता है। लेकिन आरम्भ का दशक बीतते-बीतते यह स्पष्ट होने लगा था कि जनसंख्या नियंत्रण के क्लीनिकल उपाय मात्र से ही काम नहीं चलने वाला।

सन् 1977-78 में इस क्षेत्र में परिवार कल्याण की अवधारणा स्वीकार की गयी। इसमें क्लीनिकल उपायों के साथ, स्वास्थ्य सेवाओं में बेहतरी, मातृ व शिशु कल्याण के लक्ष्य जोड़े गये। सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास को इस दृष्टि से उपयोगी माना गया तथा इन जननियंत्रण के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए प्रचार-प्रसार पर विशेष बल दिया गया।

सघन प्रचार अभियानों ने जनसंख्या नियंत्रण के प्रति लोगों को आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अतिरिक्त जनसंख्या वृद्धि की भयावहता तथा कम बच्चे पैदा करने के प्रति लोगों को आकर्षित करने में भी जनमाध्यमों की प्रमुख भूमिका रही है।

छोटा परिवार सुखी परिवार, दो बच्चों में कम से कम तीन वर्षों का अंतर रखें, हम दो हमारे दो आदि जैसे संदेशों को तीन के बीच स्थापित करने में जनमाध्यमों ने प्रभावी भूमिका का निर्वहन किया है। अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि के प्रति लोगों को जागरुक करने में जनमाध्यमों ने महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। इससे देश की जनसांख्यिकीय प्रगति में सुधार हुआ है जिसे निम्न आंकड़ों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

(स्रोत : भारत, 2006)

देश की जनसांख्यिकीय प्रगति

पैरामीटर	1951	1981	1991	वर्तमान स्तर
जन्मदर प्रति हजार	40.8	33.9 (एस.आर.एस)	29.5 (SRS)	25.0 (SRS-2002)
मृत्यु दर प्रति दस हजार	25.1	12.5 (SRS)	9.8 (SRS)	8.4 (SRS)
कुल जनन क्षमता दर (प्रति महिला)	6.0	4.5 (SRS)	3.6 (SRS)	3.2 (SRS)
मातृत्व मृत्युदर प्रति एक लाख	437 (1992-93)	-	-	407 (1998)
शिशु मृत्यु दर/हजार	146	110 (SRS)	80 (SRS)	63 (SRS-2002)
युगल संरक्षण दर (प्रतिशत)	10.4 (1971)	22.8	44.1	48.2 NFHS-II (1998-99)

13.7 पल्सपोलियो एवं अन्य उन्मूलनमूलक कार्यक्रम

भारत में जनस्वास्थ्य की दृष्टि से पल्स पोलियो अभियान तथा अन्य उन्मूलन कार्यक्रमों का विशेष महत्व है। दसवीं पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों के योजना परिव्यय को 9,253 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 10,252 करोड़ रुपये कर दिया गया है।

राष्ट्रीय संक्रामक रोग नियंत्रण कार्यक्रम के अन्तर्गत विविध रोग उन्मूलन संबंधी कार्यक्रम चलाए जाते हैं। सन् 1977 से देश में मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम शुरू किया गया। सन् 2004 में प्रति एक हजार व्यक्तियों पर मात्र 1.74 मलेरिया के मामले पाये गये। इसी प्रकार फाइलेरिया पर नियंत्रण के लिए सन् 1995 से राष्ट्रीय फाइलेरिया कार्यक्रम चलाया जा रहा है। काला अजार नियंत्रण कार्यक्रम सन् 1990-91 से जारी है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002 में सन 2010 तक इसके उन्मूलन का लक्ष्य रखा गया है। देश में क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम 1962 से चल रहा है जिसे सन् 1997 में डॉट्स प्रणाली के साथ पुनर्नियोजित किया गया है। कुष्ठ नियंत्रण कार्यक्रम सन् 1955 से चल रहा है। दृष्टिहीनता नियंत्रण कार्यक्रम सन् 1976 से जारी है। सन् 1975-76 से कैंसर नियंत्रण कार्यक्रम, सन् 1992 से यौन संक्रमित रोग STD) नियंत्रण कार्यक्रम सहित अनेक महत्वपूर्ण कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

एड्स जैसी जानलेवा बीमारी का प्रसार रोकने के लिए भी कार्यक्रम चलाए

जा रहे हैं। भारत सरकार ने अप्रैल 1992 से राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम की शुरूआत की। एड्स रोग की मॉनीटरिंग के लिए राष्ट्रीय एड्स कंट्रोल संगठन बनाया गया है।

पोलियो उन्मूलन के लिए वर्ष 1995 में पूरक टीकाकरण गतिविधि (पल्स पोलियो अभियान) को अपनाये जाने के बाद से पोलियो उन्मूलन की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत जन्म से 5 वर्ष तक की उम्र के सभी बच्चों को छः हफ्ते के अंतराल पर पोलियोरोधी दवा की बूंदें पिलाई जाती हैं।

जन स्वास्थ्य की दृष्टि से इन उन्मूलन कार्यक्रमों का विशेष महत्व है। इन अभियानों में जनमाध्यमों द्वारा भी प्रभावी भूमिका निभाई गई है। एड्स नियंत्रण में तो सूचना, शिक्षा और संचार को विशेष महत्व दिया गया है। चूंकि एड्स जानलेवा और लाइलाज बीमारी है, अतः उसके बारे में लोगों को सतर्क कर एड्स का शिकार होने से बचाया जा सकता है। राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन राष्ट्रीय स्तर पर तथा राज्य एड्स नियंत्रण सोसायटियां स्थानीय स्तर पर एड्स को केन्द्र बिन्दु बनाकर सूचना, शिक्षा एवं संचार संबंधी कार्यक्रम चलाती हैं। राज्य सोसायटियों को स्थानीय भाषा में ऐसे कार्यक्रम तैयार करने की जिम्मेदारी दी गयी है।

स्वास्थ्य चेतना के प्रचार-प्रसार में केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो के कार्य महत्वपूर्ण हैं। यह ब्यूरो स्वास्थ्य से जुड़े विभिन्न पक्षों पर मुद्रित और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए सापग्री तैयार करता है। इनमें पोस्टर, पर्चे, पैम्फलेट तथा दूरदर्शन एवं अन्य चैनलों पर प्रसारण के लिए वीडियो स्पॉट आदि शामिल हैं। यह ब्यूरो विभिन्न स्वास्थ्य मेलों में भाग लेता है तथा जनजागरुकता के उद्देश्य से विभिन्न स्वास्थ्य मुद्दों पर प्रदर्शनियां लगाता है।

भारतीय और होम्योपैथिक चिकित्सा के प्रचार-प्रसार की सूचना, शिक्षा एवं संचार योजना भी महत्वपूर्ण है। इन प्रणालियों के बारे में जनता को जागरुक बनाने के लिए भारतीय चिकित्सा पद्धति और होम्योपैथी 'आयुष' सूचना, शिक्षा तथा संचार (I.R.E.C.) योजना लागू कर रही है। इसके तहत भारतीय चिकित्सा पद्धति और होम्यौपैथी प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए गैर-सरकारी संगठनों को अनुदान दिया जाता है। इसके प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न समाचार माध्यमों का भी इस्तेमाल किया जाता है।

आयुष विभाग एक त्रैमासिक न्यूजलेटर 'आयुष' और आयुष के विभिन्न विषयों पर एक पंचांग प्रकाशित करता है। आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धति पर दो फिल्में और एक फिल्म योग पर बनाई गयी है। इसके जरिये इन चिकित्सा पद्धतियों को लोकप्रिय बनाया जा रहा है।

जनमाध्यमों के सकारात्मक उपयोग तथा सहयोग से संक्रामक रोगों के प्रति जनता की जागरुकता बढ़ी है तथा इन रोगों से होने वाला नुकसान कम हुआ है। आज प्रत्येक संक्रामक रोग नियंत्रण कार्यक्रम में सूचना, शिक्षा एवं संचार आवश्यक अंग के रूप में माना जा रहा है।

13.8 स्वास्थ्य पत्रकारिता : दशा एवं दिशा

भारत में स्वास्थ्य पत्रकारिता भी विकासमान अवस्था में है लगभग हर पत्र-पत्रिका में पाठकों की स्वास्थ्य संबंधी जिज्ञासा के समाधान का एक स्तम्भ अवश्य रहता है। स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण घटनाओं को भी समाचार के रूप में प्रकाशित किया जाता है। टीवी पर समाचार बुलेटिनों में स्वास्थ्य समाचारों को भी जगह दी जाती है। इसके अतिरिक्त रेडियो, टीवी, पर नियमित रूप से स्वास्थ्य परिचर्चाएं, वार्ताएं आदि भी प्रसारित होती रहती हैं।

स्वतंत्र स्वास्थ्य पत्रकारिता पर यदि दृष्टिपात करें तो आयुर्वेद व भारतीय चिकित्सा पद्धतियों को आधार बनाकर कुछ पत्रिकाएं अवश्य प्रकाशित होती हैं। निरोग सुख, आरोग्य धाम तथा कई अन्य पत्र-पत्रिकाएं इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। भारतीय स्वास्थ्य पद्धति 'योग' पर अवश्य अक्सर विशेष सामग्री प्रसारित होती रहती है। टीवी, प्रिण्ट सभी पर योग को यथोचित स्थान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त विविध पत्रिकाएं ऋतुओं को दृष्टिगत रखकर खान-पान तथा घरेलू नुस्खों का विशेषांक प्रकाशित करती हैं। लेकिन अभी भी स्वास्थ्य पत्रकारिता को इतना महत्व नहीं दिया जाता है कि उसके लिए विशेष व्यवस्था की जाय अभी भी शायद ही किसी पत्र-पत्रिका या चैनल आदि में स्वास्थ्य संवाददाता की नियुक्ति की जाती है। फिर भी जनता से जुड़ी होने के चलते स्वास्थ्य से जुड़ी सामग्री की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

13.9 सारांश

स्वास्थ्य का प्रश्न किसी भी देश और सरकार के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हर सरकार की यह अनिवार्य जिम्मेदारी होती है कि वह अपने नागरिकों के स्वास्थ्य का ध्यान रखे। लेकिन स्वास्थ्य केवल बीमारी और इलाज तक ही सीमित नहीं है। बेहतर स्वास्थ्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने में जागरुकता या स्वास्थ्य चेतना अत्यन्त आवश्यक होती है।

स्वास्थ्य चेतना का प्रचार-प्रसार विकास संचार का महत्वपूर्ण पक्ष होता है। जनमाध्यम स्वास्थ्य चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बेहतर स्वास्थ्य की लक्ष्य प्राप्ति में इसीलिए सूचना, शिक्षा एवं संचार की भी विशेष भूमिका होती है। स्वास्थ्य चेतना व्यक्ति को संयम, स्वच्छता तथा सादगीपूर्ण जीवन शैली को अपनाकर स्वस्थ रहने के लिए प्रेरित करती है।

भारत में स्वास्थ्य चेतना के प्रचार-प्रसार में जनमाध्यमों ने काफी सहयोग दिया है। विविध सरकारी रोग नियंत्रण कार्यक्रमों में जनमाध्यम उपयोग की अलग से व्यवस्था की जाती है। जनस्वास्थ्य से जुड़े मुद्दों को पत्रकारिता द्वारा भी पर्याप्त तवज्जो दी जाती है। भारत में पत्रकारिता के विविध रूपों में स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दों को भी जगह दी जाती है।

13.10 संदर्भ ग्रन्थ

(i) डॉ. अर्जुन तिवारी - सम्पूर्ण पत्रकारिता

(ii) डॉ. अनिल कुमार उपाध्याय - पत्रकारिता एवं विकास संचार

(iii) भारत, 2006

13.11 पारिभाषिक शब्दावली

(i) एड्स - एक्वायर्ड इम्यूनो डिफिसिएंसी सिन्ड्रोम नामक घातक लाइलाज वायरल बीमारी। इससे पूरी दुनिया भयाक्रांत है तथा असुरक्षित यौन सम्बन्ध इसका प्रमुख कारण हैं।

(ii) एस. टी. डी. - सेक्सुअली ट्रांसमिटेड डिजीजेज या यौनजन्य रोग।

(iii) राष्ट्रीय संक्रामक रोग नियंत्रण कार्यक्रम - राष्ट्रीय संक्रामक रोग नियंत्रण कार्यक्रम निदेशालय केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं की निगरानी और समन्वय तथा प्रमुख संक्रामक रोगों जैसे मलेरिया, फाइलेरिया, कालाअज़ार, जापानी एन्सेफलाइटिस, डेंगू, रक्तस्रावजन्य बुखार आदि बीमारियों को रोक़ने और उनको नियंत्रित करने का कार्य करता है।

13.12 प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) जनस्वास्थ्य की अवधारणा बताइए व इसमें जनमाध्यमों की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

(2) विकास संचार के लक्ष्य स्पष्ट करते हुए स्वास्थ्य चेतना में जनमाध्यमों को योगदान बताएं।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

(1) परिवार कल्याण क्या है?

(2) पल्स पोलियो अभियान क्या है?

(3) विकास संचार के सहयोगी लक्ष्य बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

(1) विश्व में परिवार नियोजन का राष्ट्रीय कार्यक्रम सर्वप्रथम किस देश द्वारा शुरू किया गया-

(क) चीन

(ख) संयुक्त राज्य अमेरिका

(ग) फ्रांस

(घ) भारत

(2) देश में मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम शुरू किया गया-

(क) 1975 (ख) 1977

(ग) 1979 (घ) 1981

(3) पल्स पोलियो अभियान जारी हैं-

(क) 1986 से (ख) 1995 से

(ग) 2001 से (घ) 2003 से

(4) राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम की शुरूआत की गयी -

(क) 1992 से (ख) 1993 से

(ग) 1994 से (घ) 1995 से

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

(1) (घ)

(2) (ख)

(3) (ख)

(4) (क)

इकाई - 14 जनसंख्या विस्फोट एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 जनसंख्या वृद्धि का अर्थ एवं अवस्थाएं

14.3 जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारक

14.4 जनसंख्या वृद्धि का विकास पर प्रभाव

14.5 जनसंख्या वृद्धि एवं पर्यावरण

14.6 जनसंख्या नियंत्रण एवं विकास संचार

14.7 जनसंख्या शिक्षा

14.8 सारांश

14.9 संदर्भ ग्रंथ

14.10 पारिभाषिक शब्दावली

14.11 प्रश्नावली

14.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे -

(i) जनसंख्या एवं जनसंख्या वृद्धि का तात्पर्य।

(ii) जनसंख्या वृद्धि को बढ़ावा देने वाले कारण कौन-कौन से हैं।

(iii) विकास को जनसंख्या वृद्धि किस प्रकार प्रभावित करती है।

(iv) जनसंख्या के दबाव में संसाधन प्रबंधन की स्थिति।

(v) जनसंख्या नियंत्रण में विकास संचार की भूमिका।

(vi) जनसंख्या नियंत्रण एवं जनसंख्या शिक्षा।

14.1 प्रस्तावना

आज दुनिया की आबादी 600 करोड़ से भी ज्यादा हो चुकी है। इसमें से दक्षिण एशिया सर्वाधिक जनाधिक्य वाला क्षेत्र है। एशिया में भारत और चीन मिलकर दुनिया की लगभग एक-तिहाई आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं। जनसंख्या उन देशों के लिए समस्या बन चुकी है जहां विकास के लक्ष्य अभी पूरी तरह से प्राप्त नहीं किये गये हैं।

भूख, गरीबी, कुपोषण, अपराध, एड्स व अन्य बीमारियों का अनियंत्रित प्रसार आदि कहीं न कहीं से जनसंख्या के आकार से संबद्ध किए जाते हैं। यदि नियंत्रित न किया जाय तो जनसंख्या गुणात्मक रफ्तार से बढ़ती है। वैश्विक समस्याओं में से अधिकांश समस्याएं बढ़ते हुए वैश्विक जनदबाव के चलते हैं। समूची आबादी को खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान करना दुनिया के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। इसके अलावा लोगों को शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराना, आवास उपलब्ध कराना, रोजगार उपलब्ध कराना, अन्य बुनियादी सुविधाओं - परिवहन, बिजली, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि सभी को उपलब्ध कराना भी अन्य बड़ी चुनौतियां हैं जिससे दुनिया संघर्ष कर रही है।

इसके अतिरिक्त पृथ्वी के भविष्य के लिए सबसे बड़ी चुनौती पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति के मूल में भी जनसंख्या ही है। जल, जंगल, जमीन, भूगर्भ, अतल समुद्री गहराइयां, गगनचुम्बी पर्वतीय ऊंचाइयां तथा वायुमण्डल सब कुछ भारी प्रदूषण के चलते नष्ट हो रहे हैं जो जनदबाव का परिणाम है।

14.2 जनसंख्या वृद्धि का अर्थ एवं अवस्थाएं

समय की विशिष्ट अवधि में किसी क्षेत्र में रहने वाली जनसंख्या की संख्या में परिवर्तन को जनसंख्या वृद्धि कहते हैं। यह वृद्धि ऋणात्मक भी हो सकती है तथा धनात्मक भी। जनसंख्या वृद्धि को समय के संदर्भ में अभिव्यक्त किया जाता है। यह समयावधि वार्षिक तथा जनगणना अंतराल के आधार पर निर्धारित की जाती है। जनवृद्धि को प्रतिशत तथा निरपेक्ष संख्या (Absolute Number) दोनों में व्यक्त किया जाता है।

जनसंख्या वृद्धि किसी क्षेत्र की आर्थिक प्रगति, सामाजिक उत्थान, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एवं राजनैतिक आदर्श का एक महत्वपूर्ण सूचक है। जनसंख्या वृद्धि किसी क्षेत्र की जनसांख्यिकी गतिशीलता (Mobility) का केन्द्र बिन्दु है। यह जनसंख्या का वह तत्व है जिससे जनसंख्या के वह तत्व घनिष्ठ रूप से संबद्ध हैं और इसी तत्व से ही अन्य लक्षणों का अर्थ और महत्व है।

जन्मदर, मृत्युदर तथा प्रवास जनसंख्या वृद्धि के तीन प्रमुख घटक हैं। जनसंख्या वृद्धि की अवस्थाओं के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है। रायचुंग (Roychung) महोदय ने जनवृद्धि की अवस्थाओं को निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया है -

प्रथम अवस्था - उच्च जन्मदर - 30 से अधिक अशोधित जन्मदर

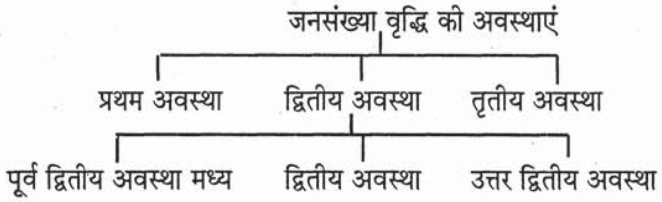
उच्च मृत्युदर - 15 से अधिक अशोधित मृत्युदर

द्वितीय अवस्था - उच्च जन्मदर - 30 से ऊपर अशोधित जन्मदर तीव्र ह्रासमान मृत्युदर - 15 से कम अशोधित मृत्युदर

तृतीय अवस्था - निम्न जन्मदर - 30 से कम अशोधित जन्म दर

निम्न मृत्यु दर - 15 से कम अशोधित मृत्युदर

हम जनवृद्धि की अवस्थाओं को सामान्य रूप में निम्न प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते हैं -



(i) प्रथम अवस्था - इस अवस्था में प्राकृतिक जनसंख्या वृद्धि उच्च जन्मदर व उच्च मृत्युदर के कारण निम्न होती है। जन्मदर 35 व मृत्युदर 30 प्रति हजार या अधिक होती है। पिछड़े ग्रामीण तथा आदिवासी क्षेत्रों में यह अवस्था पाई जाती है। तीन-चार शताब्दी पूर्व विश्व में यह स्थिति व्यापक थी।

(ii) द्वितीयक अवस्था - इस अवस्था में जन्मदर उच्च (30 प्रति हजार) व मृत्यु दर में गिरावट (15 प्रति हजार) होती है। स्वास्थ्य सुविधाओं के चलते मृत्युदर में कमी और जीवन प्रत्याशा में वृद्धि से जनसंख्या वृद्धि तीव्र हो जाती है।

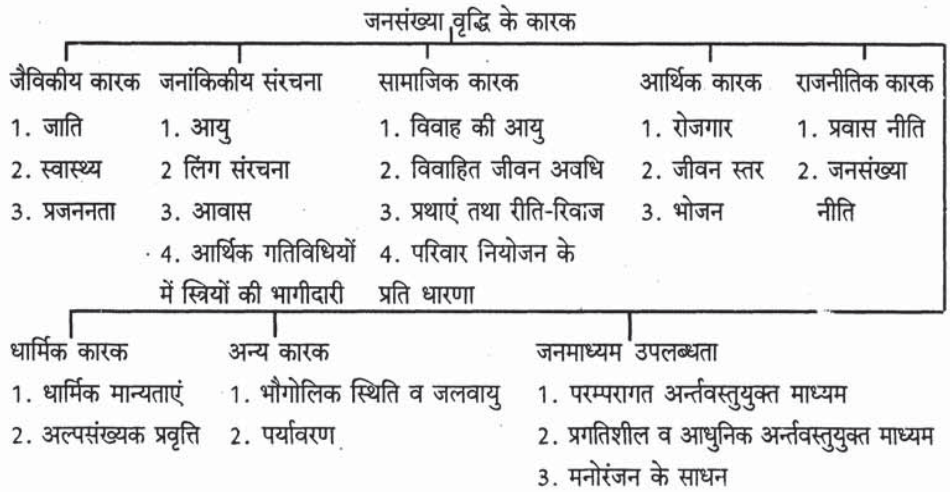
इसमें -

- पूर्व द्वितीय अवस्था में जन्मदर उच्च होती है लेकिन मृत्युदर में गिरावट आती है।
- मध्य द्वितीय अवस्था में जन्मदर में धीरे-धीरे व मृत्युदर में तीव्र गिरावट होती है। नगरीयकरण की दर तेज हो जाती है।
- उत्तर द्वितीय अवस्था में जन्मदर में कमी आ जाती है पर मृत्युदर कम होने से वह ऊंची ही बनी रहती है।

(iii) तृतीय अवस्था - इस अवस्था में जन्म तथा मृत्युदर दोनों कम हो जाती है। जनसंख्या वृद्धि स्थिर हो जाती है अथवा अत्यन्त धीमी गति से बढ़ती है। नगरीयकरण का स्तर उच्च हो जाता है।

14.2 जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारक

जनसंख्या वृद्धि अनेक कारणों से प्रभावित होती है। यह कारक जैविक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक सभी प्रकार के हो सकते हैं। इसके अलावा प्राकृतिक व विकास की अवस्थाओं, मनोरंजन, जनमाध्यमों की उपलब्धता तथा उपयोग आदि का भी जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है।



यदि हम जनसंख्या वृद्धि के विभिन्न कारकों का विवेचन करें तो जाति (Race), स्वास्थ्य (Health) तथा प्रजननता (Fertility) तीन महत्वपूर्ण जैविक कारक हैं। विभिन्न जातीय वर्गों की उत्पादकता भिन्न-भिन्न है। हालांकि केवल जाति के आधार पर वृद्धि दर निर्धारित करना कठिन है। सामान्य स्वास्थ्य दशाओं का भी जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। हालांकि सामान्य रूप से स्वस्थ व्यक्ति को प्रजननता की दृष्टि से ज्यादा सक्षम माना जाता है लेकिन उन क्षेत्रों में जहां कमजोर स्वास्थ्य स्थितियों के चलते मृत्युदर उच्च होती है वहां जन्मदर भी उच्च होती है। प्रजननता भी जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख निर्धारक है। स्त्री की प्रजनन क्षमता तथा पुरुष की आनुवंशिक उर्वरता का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। दीर्घावधि रजस्वला काल का जनवृद्धि पर प्रभाव पड़ता है।

जनसंख्या वृद्धि के जनांकिकीय कारकों में आयु, लिंग संरचना, आवास तथा आर्थिक गतिविधियों में स्त्री की भागीदारी को सम्मिलित किया जाता है। जहां जनसंख्या में युवा एवं प्रजनन योग्य आयु वर्ग के लोग अधिक होते हैं वहां की जनसंख्या वृद्धि दर उच्च होती है। लिंग संरचना का विवाह की आयु का असर पड़ता है। विवाहित जीवन अवधि दीर्घ होने पर जनसंख्या वृद्धि दर उच्च होती है। आवासीय पृष्ठभूमि भी जनवृद्धि का निर्धारण करती है। ग्रामीण क्षेत्रों की जनवृद्धि नगरीय क्षेत्रों से ज्यादा होती है। इसी प्रकार जो स्त्रियां आर्थिक गतिविधियों में संलग्न होती हैं उनकी प्रजननता दर कम होती है।

जनसंख्या वृद्धि पर सामाजिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है जिसमें विवाह की आयु, विवाहित जीवन की अवधि, समाज में प्रचलित प्रथाएं तथा रीति-रिवाज और परिवार नियोजन के प्रति लोगों की धारणा महत्वपूर्ण हैं। बाल विवाह अथवा कम उम्र में विवाह होने की स्थिति में जनवृद्धि की दर ऊंची होती है। जब विवाह की आयु कम होती है तो दांपत्य जीवन की अवधि लंबी होती है। लंबा दांपत्य जीवन लंबा प्रजनन काल लेकर आता है। इससे जनसंख्या वृद्धि दर उच्च होती है। प्रथाओं तथा रीति-रिवाजों का भी इस वृद्धि पर असर पड़ता है। गर्भावस्था तथा जन्मवाद शुद्धिकरण तक यौन.सम्बन्धों पर प्रतिबंध की स्थितियों में वृद्धि दर कम होती है। बहुपत्नी अथवा बहुपति प्रथा का जनवृद्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। स्त्री प्रधान समाजों में भी जन्मदर कम होती है। जिन समाजों में परिवार नियोजन उपायों को व्यापक सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है वहां वृद्धिदर कम होती है।

आर्थिक कारक भी जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव डालते हैं। जहां पर रोजगार की स्थितियां अच्छी होती हैं तथा रोजगार परक गतिशीलता तेज, वहां जनसंख्यावृद्धि कम होती है। अच्छा जीवन स्तर भी जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करता है। भोजन की उपलब्धता भी जनवृद्धि को प्रभावित करती है। ज्यादा कैलोरी उपलब्धता वाले देशों में यह वृद्धि कम है जबकि कम कैलोरी उपलब्धता वाले देशों में यह ज्यादा है।

सरकार की नीतियां भी जनवृद्धि को प्रभावित करती हैं। जिन देशों की प्रवास नीति उदार होती है वहां जनवृद्धि ज्यादा होती है। इसी प्रकार जनसंख्या नीति के लक्ष्य

भी जनवृद्धि पर नियंत्रण रखते हैं। धार्मिक मान्यताएं भी प्रभाव डालती हैं। पुत्र की लालसा वाले अथवा बच्चों के जन्म पर नियंत्रण के विरोधी मान्यता वाले समाजों में जनवृद्धि ऊंची होती है। इसी प्रकार यदि समुदाय अल्पसंख्यक होता है तो अपनी जनसंख्या बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

गर्म जलवायु क्षेत्रों में जनवृद्धि दर उच्च तथा शीत जलवायु क्षेत्रों में निम्न होती है। विषम पर्यावरणीय स्थितियों का भी जनवृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त मृत्युदर में कमी, शिक्षा की स्थिति का भी जनवृद्धि पर प्रभाव पड़ता है।

14.4 जनसंख्या वृद्धि का विकास पर प्रभाव

जनसंख्या वृद्धि का विकास पर नकारात्मक तथा सकारात्मक दोनों रूपों में प्रभाव पड़ता है। यह एक सामान्य रूप से स्वीकार्य मान्यता है कि अधिक जनसंख्या विकास की राह में बाधा का काम करती है। विशेष रूप से विकासशील देशों के संदर्भ में यह बात स्थापित होती है कि यदि उनकी जनसंख्या अधिक है तो पूंजी का प्रयोग उन्हें उपचारात्मक व्यवस्थापनों में खर्च करना पड़ेगा तथा उनके बुनियादी ढांचे के विकास पर इसका नकारात्मक असर पड़ेगा।

जनसंख्या और विकास में सह-संबंध को निम्न जनसंख्या, अधिक जनसंख्या तथा अनुकूलतम जनसंख्या के संदर्भ में भी स्पष्ट किया जा सकता है। यदि किसी देश के संसाधन आधार का दोहन करने के लिए अथवा उपयोग करने के लिए पर्याप्त जनसंख्या उपलब्ध नहीं है तो यह स्थिति निम्न जनसंख्या की होती है। जनदक्ष लोगों के अभाव में संसाधन अनुप्रयुक्त पड़े रहते हैं अत: अपनी क्षमता के अनुरूप वह देश विकास नहीं कर पाता।

अधिक जनसंख्या की स्थिति से तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें किसी देश के संसाधन आधार से वहां की जनसंख्या अधिक हो। ऐसी स्थिति भी विकास की दृष्टि से नकारात्मक होती है। जनाधिक्य का दबाव संसाधनों पर पड़ने से उनका अनियंत्रित दोहन शुरू हो जाता है। इसके अतिरिक्त पूंजी का प्रयोग उद्योग, व्यापार, सड़क, बिजली, परिवहन आदि की बजाय शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, कल्याणकारी कार्यक्रम, सुरक्षा आदि पर होने लगता है। फलत: विकास के लक्ष्य अधूरे रह जाते हैं।

तीसरी अवस्था अनुकूलतम जनसंख्या की अवस्था है। इसका तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें जनसंख्या का आकार उस देश के उपलब्ध संसाधन आधार के अनुरूप हो। यह एक आदर्श अवस्था है जो पूर्णतया कभी-कभार ही परिलक्षित होती है।

जनाधिक्य उन देशों के विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालता है जो विकासशील अवस्था में हैं। इन देशों की आवश्यकता पूंजी निर्माण की होती है। ये देश समान रूप से अपनी समूची जनसंख्या को शिक्षा, रोजगार, प्रशिक्षण, आवास, परिवहन व सड़क, पेयजल, चिकित्सा आदि की सुविधाएं उपलब्ध नहीं करा पाते हैं

जिसके चलते भूख, गरीबी, बेकारी, कुपोषण, झुग्गी-झोपड़ी (Slum) आदि की समस्याएं विकराल होती जाती हैं। जनसंख्या के दबाव में उनकी अर्थव्यवस्था का संतुलित विकास नहीं हो पाता है।

हालांकि जनाधिक्य का किसी राष्ट्र के विकास पर पड़ने वाला प्रभाव प्रौद्योगिकी सापेक्ष भी है। पश्चिमी यूरोप, जापान आदि में प्रतिवर्ग किमी. जनसंख्या दुनिया के तमाम विकासशील देशों के जनसंख्या घनत्व से अधिक है लेकिन प्रौद्योगिकीय श्रेष्ठता से यह जनसंख्या उनके विकास में बाधक नहीं है। उच्च प्रौद्योगिकी के चलते इन देशों में कृषि की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता अधिक है। फलतः खाद्यान्न उत्पादन भरण-पोषण के साथ-साथ व्यापारिक रूप से भी लाभप्रद है।

अतः हम कह सकते हैं कि जनसंख्या का आकार यदि उस स्तर तक हो जिसका भरण-पोषण करने में हम सक्षम हों, तब तो ठीक है अन्यथा यह विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालेगी। इसके अतिरिक्त जनसंख्या की गुणवत्ता भी विकास की लक्ष्यपूर्ति में निर्णायक भूमिका अदा करती है। यदि जनसंख्या दक्ष, स्वस्थ, शिक्षित तथा प्रगतिशील होगी तो विकास की दर तेज होगी अन्यथा यदि जनसंख्या कुपोषित, अशिक्षित, अकुशल होगी तो यह विकास की राह में बाधक होगा।

14.5 जनसंख्या वृद्धि एवं पर्यावरण

जनसंख्या के आकार तथा पर्यावरण की गुणवत्ता का गहरा अन्तर्सम्बन्ध है। पर्यावरण प्रदूषण जनसंख्या की उपभोग आदतों का ही दुष्परिणाम है। मानव ने अपनी असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमेशा प्राकृतिक पर्यावरण की सीमाओं का अतिक्रमण किया है। दुनिया से 'प्राकृतिक दृश्यावली' को निरन्तर 'मानवीय दृश्यावली' के रूप में परिवर्तित किये जाने की प्रक्रिया जारी है। जल, जंगल, जमीन, आकाश, पाताल हर जगह निरन्तर आबादी की दखलन्दाजी बढ़ती ही जा रही है।

भीषण पर्यावरणीय समस्याएं मनुष्य की स्वार्थलोलुपता का ही परिणाम हैं। उसने आबादी के विस्तार के साथ ही खेती, आवास, नगरीकरण, उद्योगीकरण आदि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों को साफ करना शुरू किया। आज वनोन्मूलन एक गंभीर समस्या हो गयी है तथा वनों एवं वृक्षों की कमी से मौसम तथा बारिश के चक्र में अनियमितता, रेगिस्तान का प्रसार, भू-क्षरण की दर में बढ़ोत्तरी, तापमान में वृद्धि आदि जैसी समस्याएं सामने आने लगीं हैं।

बढ़ती आबादी द्वारा निष्कासित मल-जल, औद्योगिक अपशिष्ट, नाले, घातक रसायन आदि निरन्तर हमारी जीवनदायिनी नदियों तथा अन्य जल स्रोतों को जहरीला बना रहे हैं। भू-जल के अनियंत्रित दोहन से जल संकट एक वैश्विक समस्या है जिससे तीसरे विश्वयुद्ध की आशंका भी व्यक्त की जा रही है।

आबादी के दबाव में खनन गतिविधियों में इजाफा हुआ है। इससे हमारे अनत्यकरणीय (Non-renewable) संसाधन लगातार समाप्त होते जा रहे हैं। बढ़ते

मानवीय दबाव का परिणाम धरती की जैव विविधता को क्षति पहुंचाने के रूप में सामने आया है। इससे अनेक जीव तथा वनस्पति प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं अथवा विलुप्त प्राय हैं। इसका नकारात्मक प्रभाव परिस्थितिकी तंत्र पर भी पड़ रहा है।

औद्योगीकरण तथा नगरीकरण ने भी पर्यावरण की गुणवत्ता को नष्ट करने में योगदान किया है। कल-कारखानों के धुएं तथा कचरे से पर्यावरण की निरन्तर अपूरणीय क्षति हो रही है। नगरीकरण ने कंक्रीट के जंगलों का जो जाल तैयार किया है उसमें पर्यावरण की हरियाली पर प्रदूषण की कालिमा निरन्तर लिपटती जा रही है। वाहनों की बढ़ती कतार, जल, थल तथा वायु परिवहन की सघनता में निरन्तर हो रही वृद्धि से वायुमण्डल में खतरनाक गैसों की सांद्रता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा में हो रही निरन्तर बढ़ोत्तरी से वैश्विक ऊष्मन की प्रवृत्ति तेज हो रही है। क्लोरो फ्लोरो कॉर्बन तथा अन्य खतरनाक गैसें ओजोन परत में सुराख कर चुकीं हैं तथा यह सुराख निरन्तर बढ़ता जा रहा है। ओजोन परत ही सूर्य की घातक पराबैगनी (Ultraviolete) किरणों से हमारे धरातल की रक्षा करती है। भयानक शोर मनुष्य को बहरा बनाता जा रहा है।

पर्यावरण के प्रदूषण में लगातार हो रही बढ़ोत्तरी से खुद बढ़ती हुई आबादी को भी दिक्कतें हो रही हैं। कई प्रकार की बीमारियों की घातकता निरन्तर गंभीर होती जा रही है। चर्मरोग, खास रोग, कैंसर तथा अन्य गंभीर जानलेवा बीमारियों से मानवता कराह रही है। प्रदूषण बढ़ती हुई आबादी का ही उत्पाद है जो स्वयं उसी के लिए घातक सिद्ध हो रहा है।

ऐसा नहीं है कि विश्व का ध्यान इस ओर नहीं गया है। आबादी के दबाव में टूट रहे पर्यावरण पर चिंता का सबब ही संविकास (Sustanable Development) की अवधारणा के रूप में हमारे सामने है। यह अवधारणा पर्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा विकास में तालमेल की वकालत करती है। मानव सभ्यता को अपने अनुभवों से यह ज्ञात हो गया है कि यदि विकास के नाम पर लगातार बिना क्षतिपूर्ति के पर्यावरण दोहन जारी रहा तो वह दिन दूर नहीं जब हमारी प्यारी धरती पर से जीवन ही समाप्त हो जाय। ऐसी स्थिति से बचाव तभी हो सकता है जब हम अपने विकास की अंधी दौड़ में पर्यावरण को विस्मृत न करें। हमारे विकास की नीतियां ऐसी हों जो पर्यावरण के संरक्षण का भी ध्यान रखें।

इस दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है कि बढ़ती हुई आबादी को नियंत्रित किया जाय ताकि वह हमारे पर्यावरण को नष्ट करने का कारण नहीं बने। जनसंख्या नियंत्रण विकास और पर्यावरण संरक्षण के लक्ष्यों को प्राप्त करने की पहली सीढ़ी भी है। बिना जनदबाव घटाए पर्यावरण की रक्षा संभव नहीं है।

14.6 जनसंख्या नियंत्रण एवं विकास संचार

जनसंख्या नियंत्रण में विकास संचार का सहयोग महत्वपूर्ण है। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की वृद्धि दर नियंत्रित तभी की जा सकती है जब लोगों की

मानसिकता परिवार नियोजन के कार्यक्रमों तथा कम बच्चे पैदा करने की ओर उन्मुख हो। यह नैदानिक विधि की अपेक्षा जागरुकता का प्रश्न ज्यादा है।

भारत दुनिया का पहला देश रहा है जिसने सन् 1952 से ही परिवार नियोजन की नीति अपना रखी है। इस नीति के क्रियान्वयन को जनमाध्यमों का सहयोग मिला है। लाल त्रिकोण का निशान लोगों के लिए ग्राह्य बनाना, ज्यादा से ज्यादा लोगों तक छोटा परिवार - सुखी परिवार के संदेशों को स्थापित कराना आदि में जनमाध्यमों की प्रमुख भूमिका रही है।

परिवार नियोजन के उपायों को अपनाने के लिए भारत जैसे देश में प्रेरणामूलक संदेशों का प्रयोग आवश्यक रहा है क्योंकि परिवार को सीमित करने के उपाय हमारे देश के पारंपरिक धार्मिक-सामाजिक विश्वासों से मेल नहीं खाते रहे हैं। छोटा परिवार की अवधारणा संयुक्त परिवार प्रणाली का विरोध करती प्रतीत होती है। इसी प्रकार पुत्र की लालसा, बच्चों को भगवान का आशीर्वाद मानना आदि जैसी मान्यताएं भी परिवार नियोजन के उपायों के प्रतिकूल रही हैं। ऐसे में लोग परिवार नियोजन के लिए उन्मुख हों, इसके लिए आवश्यक है कि लोगों की मानसिकता में जरूरी बदलाव किया जाय।

विकास संचार इस दृष्टि से प्रभावी भूमिका अदा करता है। बदलते - सामाजिक - आर्थिक परिवेश में बेहतर जीवन के लिए सीमित परिवार की आवश्यकता का निरूपण करके, बालक-बालिका समानता के लिए लोगों को उत्प्रेरित करके, परिवार नियोजन के तात्कालिक उपायों जैसे - कण्डोम, गर्भ निरोधक गोलियां, कॉपर टी आदि एवं स्थायी नसबन्दी ऑपरेशन आदि से लोगों का परिचय कराके एवं उनका प्रयोग करने के लिए लोगों को तैयार करने का काम विकास संचार करता है।

विकास संचार की एक नियोजित तथा समग्र रणनीति लक्षित जनता समूह के बीच परिवार नियंत्रण के प्रति सकारात्मक एवं सहयोगात्मक माहौल का सृजन करती है। वह इस संदर्भ में लोगों की सूचनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, उन्हें शिक्षित करने का प्रयास करती है तथा परिवार नियोजन के समर्थक के रूप में उन्हें तैयार करती है।

एक बेहतर संचार रणनीति के लिए यह आवश्यक होता है कि उसमें ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या के अनुरूप संदेशों को तैयार किया जाय। संदेशों का चरित्र और उनकी भाषा, परिवेश आदि लक्षित जनता के अनुरूप होना चाहिए। माध्यम चयन भी लोगों तक उसकी उपलब्धता को दृष्टिगत रखकर करना चाहिए। एक बेहतर संचार रणनीति में सभी जनमाध्यमों का उपयोग समाहित होता है। इस संदर्भ में नियोजन अपना चुके परिवारों की खुशहाल तस्वीरें, सरकारी प्रोत्साहनात्मक उपायों की जानकारी, आम आशंकाओं का निवारण आदि का कार्य अवश्य करना चाहिए।

14.7 जनसंख्या शिक्षा

जनसंख्या वृद्धि से जुड़ी समस्याएं लोगों के व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती हैं। जिस दंपत्ति के ज्यादा बच्चे होते हैं वह वांछित स्तर की शिक्षा-दीक्षा आदि की व्यवस्था नहीं कर पाता है। मध्यम वर्गीय परिवारों तथा गरीब परिवारों का तो जीवन-यापन बजट परिवार की संख्या के आधार पर ही बनता बिगड़ता है। इसके अतिरिक्त जनसंख्या का प्रश्न देश के विकास से भी जुड़ा है। ज्यादा जनसंख्या संसाधनों एवं पूंजी पर अतिरिक्त एवं अनुचित दबाव बनाती है जिससे देश का विकास प्रभावित होता है।

अत: जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी रोक लगाने तथा लोगों में इसके प्रति स्वत: ज़ागरुकता विकसित करने के लिए जनसंख्या शिक्षा महत्वपूर्ण है। जनसंख्या के प्रश्न को पाठ्यक्रमों एवं विविध विषयों में स्थान देकर लोगों को इस विषय में शिक्षित किया जा सकता है। जहां इस प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं, वहां इन सबके सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो रहे हैं।

14.8 सारांश

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि विकास के लिए जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि पर नियंत्रण स्थापित करना आवश्यक है। लेकिन यह नियंत्रण केवल संसाधन मुहैय्या कराके नहीं स्थापित किया जा सकता है। यह तभी संभव है जब लोग खुद जनसंख्या नियंत्रण के प्रति गंभीर हों।

विकास संचार एवं विकास के जनमाध्यम लोगों में परिवार नियोजन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करते हैं। लोगों को सूचित शिक्षित तथा उत्प्रेरित करके वह उन्हें परिवार नियोजन उपायों को अपनाने के लिए उत्प्रेरित करते हैं। बैनर - नारे - पोस्टर, विज्ञापन, होर्डिंग, स्टीकर, प्रदर्शनी, रेडियो कार्यक्रम, टीवी कार्यक्रम, लेख, फीचर, समाचार, ट्रेनिंग, मैन्यूअल, प्रचार फिल्में आदि विविध रूपों में जनसंख्या नियंत्रण में जनमाध्यमों का प्रयोग किया जाता है।

जनसंख्या नियंत्रण का प्रश्न राष्ट्रीय विकास से जुड़ा है अत: भारत में जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी अंकुश लगाने के लिए संचार माध्यमों की पहल पर तथा स्वयं भी लोगों को आगे आकर पहल करनी चाहिए।

14.9 संदर्भ ग्रंथ

(1) डॉ. अनिल कुमार उपाध्याय - पत्रकारिता एवं विकार संचार

(2) डॉ. अर्जुन तिवारी - जनसंचार समग्र

(3) उमा नरूला - डेवलपमेन्ट कम्यूनिकेशन

14.10 पारिभाषिक शब्दावली

(1) जनगणना - जनगणना प्राय: हर 10 वर्ष या 5 वर्ष के बाद की जाती है। जनगणना द्वारा हम एक निश्चित समय बिन्दु की जनसंख्या के अनेक लक्षणों के बारे में सभी प्रकार के आंकड़े एकत्रित करते हैं।

(2) जनसंख्या विस्फोट - यह जनसंख्या के अधिक्य की वह अवस्था है जिसमें जनसंख्या तथा संसाधन का अनुपात बिगड़ जाता है एवं जनसंख्या का आकार एक गंभीर समस्या बन जाता है।

(3) भारत की जनसंख्या नीति - भारत की जनसंख्या नीति में शुरूआती लगभग तीन दशकों तक उपचारात्मक उपायों (चिकित्सकीय तथा निरोधक विधियां) पर बल दिया गया। परिणाम अपेक्षित नहीं मिलने तथा राजनैतिक प्रश्न बनने के बाद 1977-78 में इसे सामाजिक - आर्थिक विकास से जोड़कर परिवार कल्याण के साथ संयोजित किया गया।

14.11 प्रश्नावली

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) जनसंख्या वृद्धि से आप क्या समझते हैं? इसके लिए उत्तरदायी प्रमुख कारक बताएं।

(2) जनसंख्या वृद्धि के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

(1) अनुकूलतम जनसंख्या क्या है?

(2) परिवार नियोजन क्या है?

(3) जनसंख्या शिक्षा पर टिप्पणी करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

(1) भारत में परिवार नियोजन नीति शुरू की गयी -

(क) सन् 1951 से

(ख) सन् 1952 से

(ग) सन् 1953 से

(घ) सन् 1954 से

(2) जनगणना अंतराल भारत में है -

(क) 5 वर्ष (ख) 10 वर्ष (ग) 15 वर्ष (घ) 20 वर्ष

(3) परिवार नियोजन का उपाय नहीं है -

(क) कण्डोम (ख) माला-डी

(ग) कॉपर-टी (घ) ओ आर एस

(4) परिवार नियोजन में सकारात्मक भूमिका है -

(क) स्त्री का निरक्षर होना

(ख) उसका घर में रहना

(ग) उसका कामकाजी होना

(घ) इनमें से कोई नहीं

(5) जनसंख्या वृद्धि के उत्तरदायी कारक हैं -

(क) कम उम्र में विवाह

(ख) पारम्परिक विश्वास

(ग) निम्न स्वास्थ्य सुविधाएं

(घ) उपर्युक्त सभी

उत्तर

(1) (ख)

(2) (ख)

(3) (घ)

(4) (ग)

(5) (घ)

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MA(JMC)-116
विकास संचार

खण्ड
04
विकास के सामाजिक आयाम

इकाई-15 संचार एवं बाल विकास	5
इकाई-16 विकास एवं गिरिजन-परिजन	17
इकाई-17 विकास एवं पर्यावरण	30
इकाई-18 विकास एवं पर्यटन	46
इकाई-19 विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका	59

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

1- प्रो0 जे0 एस0 यादव	पूर्व निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली
2- प्रो0 राममोहन पाठक	निदेशक, मदन मोहन मालवीय, हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
3- प्रो0 सुधाकर सिंह	हिन्दी (प्रयोजनमूलक) विभाग, बी0एच0यू0, वाराणसी
4- डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय	जनसम्पर्क अधिकारी, बी0एच0यू0, वाराणसी
5- डॉ0 पुष्पेन्द्र पाल सिंह	अध्यक्ष-पत्रकारिता विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता, विश्वविद्यालय भोपाल

सम्पादक

डॉ0 अर्जुन तिवारी- वरिष्ठ परामर्शदाता, उ0प्र0रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक मंडल

1- प्रो0 राम दरश राय	- निदेशक पत्रकारिता, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
2- श्री अनुराग दवे	- पत्रकारिता विभाग, बी0 एच0 यू0, वाराणसी
3- श्रीमती विनयपुरी पाण्डेय	- हिन्दुस्तान दैनिक, वाराणसी
4- श्री विमलेश तिवारी	- मीडिया सेन्टर, वाराणसी
5- श्री शैलेन्द्र प्रताप सिंह	- विद्या भवन, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड-04 खण्ड-परिचय : विकास के सामाजिक आयाम

इस ब्लाक में निम्नलिखित इकाईयाँ हैं :-

15- संचार एवं बाल विकास

16- विकास एवं गिरिजन-परिजन

17- विकास एवं पर्यावरण

18- विकास एवं पर्यटन

19- विकास संचार में स्वयं सेवी संगठनों की भूमिका

बालक ही राष्ट्र के भविष्य होते हैं। बाल-विकास के संदर्भ में आवश्यक संसाधन जुटाने हेतु मीडिया की अहं भूमिका सर्वविदित है। गिरिजन-परिजन, जनजाति, पिछड़ी जाति, परिगणित जनजाति, दलितों, उपेक्षितों की ओर मीडिया ने सशक्त आवाज उठाई है-

'मेरे दर्द को जुबाँ मिले

मुझे मेरा नामोंनिशाँ मिले।'

पर्यावरण प्रदूषण से मुक्ति तथा पर्यटन को प्रोत्साहित करने के क्षेत्र में जनसंचार के माध्यम प्रयास करते हैं। विकास के विविध क्षेत्रों में स्वयंसेवी संगठन कार्यरत हैं जिनसे चतुर्दिक जन-जागरण का शंखनाद हो रहा है।

इकाई- 15 संचार एवं बाल विकास

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.1 बाल विकास की प्राथमिकताएं

15.2 बाल विकास से जुड़ी समस्याएँ

15.3 मीडिया एवं बाल विकास

15.4 बाल विकास में संचार सहयोग

15.5 वर्तमान संचार व्यवस्था में बालमुद्दे

15.6 बाल विकास के सरकारी प्रयास

15.7 सारांश

15.8 संदर्भ ग्रंथ

15.9 पारिभाषिक शब्दावली

15.10 प्रश्नावली

15.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे -

(i) बाल विकास में शामिल होने वाले बिंदु।

(ii) बाल विकास की प्राथमिकता में सम्मिलित बिंदु।

(iii) मीडिया की बाल विकास में भूमिका।

(iv) बाल विकास एवं संचार का अन्तर्संबंध।

(v) वर्तमान संचार व्यवस्था में बाल विकास एवं बच्चों से जुड़े मुद्दों की स्थिति।

15.1 प्रस्तावना

बाल विकास का प्रश्न किसी भी समाज के लिए महत्वपूर्ण है। बच्चे समाज का, देश का भविष्य होते हैं। जैसे - बच्चे होंगे, वैसे ही देश का भविष्य होगा। प्रत्येक राष्ट्र का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह बाल विकास के लिए आवश्यक सुविधाएँ, संसाधन तथा परिस्थितियों की व्यवस्था कर, विकास करे।

जन्म से लेकर युवावस्था तक एक बच्चा शारीरिक एवं मानसिक विकास की

विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है। हर दिन उसके लिए नयी जिज्ञासाएँ लेकर उपस्थित रहता है। उसकी जिज्ञासाओं को सही दिशा मिलती है तो उसका बचपन सही दिशा में प्रगति करता है। माता-पिता, परिवार, पड़ोस, विद्यालय तथा राज्य - कुछ संस्थाओं के रूप में चिन्हित की गयी हैं जो बाल विकास की निर्धारक होती हैं।

ये संस्थाएं बच्चे को संस्कारित करती हैं, उन्हें उचित सामाजिक व्यवहार दिखाती हैं और उनको संरक्षण प्रदान करती हैं। बच्चा इनकी मदद से सहयोग, प्रेम, दया, सामन्जस्य भावाभिव्यक्ति तथा व्यवहार का तरीखा सीखता है। ये पारम्परिक संस्थाएं हैं बच्चे विकास का निर्धारण करने वाली। इसके अतिरिक्त 20वीं शताब्दी में एक और संस्था जो बच्चे के विकास में प्रमुख कारक के रूप में सामने आई है - वह है मीडिया।

आज जनमाध्यम बच्चों के विकास के सबसे बड़े निर्धारक हैं। बच्चों पर मीडिया का गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। बच्चों की आदतें, व्यवहार, इच्छाएं, सोचने और कार्य करने की दिशा - सब कुछ मीडिया द्वारा ही निर्धारित की जा रही है। इसके अतिरिक्त मीडिया बच्चों के प्रति समाज के दृष्टिकोण को भी गहराई से प्रभावित कर रहा है।

भारत जैसे देश में बाल विकास का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सन 2001 के जनगणना निष्कर्षों के आधार पर भविष्य के भारत की पहचान युवा भारत के रूप में की जा रही है। जनगणना आंकड़ों के अनुसार भारत की जनसंख्या में लगभग 15 करोड़ 87 लाख की जनसंख्या बच्चों की है जो कुल जनसंख्या का लगभग 16% होता है।

भारत में बाल विकास एक गंभीर चुनौती भी है। देश के लगभग 16 करोड़ बच्चों को विकास के लिए जरूरी परिस्थितियां तथा सुविधाएँ समान रूप से उपलब्ध नहीं हैं। कुपोषण, शोषण, शिक्षा की कमी, खेल के अवसरों की कमी, बाल श्रम संरक्षण का अभाव आदि से करोड़ों बच्चे जूझ रहे हैं।

देश का बचपन भी सुविधायुक्त तथा सुविधाभोगी - दो वर्गों में बँटा हुआ है। इसके अतिरिक्त लैंगिक भेदभाव की गंभीर सामाजिक बीमारी की सजा बच्चों को कन्या भ्रूण हत्या, बाल वेश्यावृति, बाल मजदूरी तथा अन्य प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक शोषण के रूप में मिलती है। बच्चों के ऊपर खतरे और भी हैं। युद्ध, दंगे-फसाद, हिंसा जैसी घटनाएँ बाल विकास परभी नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। इसके अतिरिक्त सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के युग में बच्चों के विकास की पारम्परिक मान्यताएं अधूरी साबित हो रही हैं। बच्चों का विकास एक नयी दृष्टि का इंतजार कर रहा है।

15.1 बाल विकास की प्राथमिकताएँ

बाल विकास के दायरे में बच्चों के विकास से जुड़े सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। यह दायरा बच्चों के शैक्षणिक विकास, मनोवैज्ञानिक विकास, बाल

स्वास्थ्य, जीवन संरक्षण, सामाजिक संरक्षण, आर्थिक संरक्षण, शोषण के विरुद्ध संरक्षण, विकास के लिए उपर्युक्त परिस्थितियों का विकास तथा यथोचित मीडिया एवं मनोरंजन उपलब्धता तक विस्तारित है। इसमें बच्चों को वह वातावरण भी उपलब्ध कराना शामिल है जिसमें उनका स्वस्थ तथा संतुलित विकास हो सके।

बच्चों के शैक्षणिक विकास का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बच्चे भविष्य के संसाधन के रूप में विकसित हों, इसके लिए आवश्यक है कि उनका शैक्षणिक आधार मज़बूत हो। वच्चों को शिक्षा राष्ट्रीय विकास का भी आधार है। बच्चों का स्वस्थ मानसिक विकास भी एक जरुरी प्राथमिकता है। अनावश्यक दबाव, सामाजिक विभेदीकरण, आर्थिक दिक्कतों से उन्हें महफूज कर विकास के लिए अपेक्षित वातावरण करना आवश्यक है।

बाल स्वास्थ्य रक्षण की व्यवस्था भी अत्यन्त आवश्यक है। शिशु मृत्युदर पर प्रभावी नियंत्रण, संक्रामक रोगों से रक्षण, टीकाकरण की व्यवस्था, दवाई एवं चिकित्सा की व्यवस्था, शिशुओं की उचित देखभाल आदि इसमें सम्मिलित किए जाते हैं। सामाजिक संरक्षण में अनाथ तथा बेसहारा बच्चों के लिए संरक्षण की व्यवस्था शामिल है। इसके अतिरिक्त फुटपाथ एवं मलिन बस्तियों के बच्चों का संरक्षण, आपराधिक गतिविधियों में फँसे अथवा ढकेले गये बच्चों के लिए सुधार गृहों की व्यवस्था आदि भी इसमें सम्मिलित हैं।

भारत की केन्द्र सरकार बच्चों हेतु किये जाने वाले व्यय को प्राथमिकता की निम्न चार श्रेणियों में वर्गीकृत करती हैं -

(i) बाल विकास

(ii) बाल स्वास्थ्य

(iii) बाल शिक्षा

(iv) बाल संरक्षण

अनेक मंत्रालयों द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों / स्कीमों पर उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत विचार किया गया हैं -

(1) महिला एवं बाल विकास मंत्रालय

(2) मानव संसाधन विकास मंत्रालय

(3) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय

(4) श्रम एवं रोजगार मंत्रालय

(5) सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय

(6) जनजातीय कार्य मंत्रालय

(7) युवा कार्य एवं खेल मंत्रालय

15.2 बाल विकास से जुड़ी समस्याएँ

भारत में बचपन का विकास अनेक समस्याओं से घिरा हैं। इनमें से कुछ समस्याएँ तो इतनी बड़ी तथा खतरनाक हैं जो बच्चों के अस्तित्व पर ही प्रश्नवाचक चिन्ह लगाने का काम करती हैं।

भारत में जन्म लेने वाले 3 वर्ष से कम आयु के 47% बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। विश्वभर के कुपोषित बच्चों में से भारतीय बच्चों का अनुपात एक तिहाई है। देश के विभिन्न भागों में व्याप्त कुपोषण के स्तर में भी काफी अंतर है। बालकों की अपेक्षा बालिकाएँ अधिक कुपोषित हैं। अल्प-पोषण जन्म देने से पहले ही आरम्भ हो जाता है। लगभग 25% नवजात शिशु अल्प वजनी पोषित होते हैं, जिसके कारण पैदा होते ही वे अल्प-वजनी तथा असुरक्षित शिशुओं की श्रेणी में आ जाते हैं।

भारत में जन्म लेने वाले 2 करोड़ 60 लाख शिशुओं से में 23 लाख शिशुओं की मृत्यु पाँच वर्ष से कम आयु में हो जाती है तथा 10 लाख से भी अधिक शिशुओं की मृत्यु जन्म के पश्चात् एक माह के भीतर हो जाती है। प्रत्येक 1000 में से 60 बच्चों की प्रसव के दौरान ही मृत्यु हो जाती है। बालकों की तुलना में बालिकाओं की मृत्युदर अधिक है।

कक्षा एक से शिक्षा प्रारम्भ करने वाले बच्चों में से 59% ही पाँचवीं कक्षा तक पहुँच पाते हैं। प्राथमिक शिक्षा में शुद्ध नामांकन अनुपात 87% है। प्राथमिक शिक्षा में बालिका बालक अनुपात 0.94 है। माध्यमिक शिक्षा में यह 0.81 है। स्कूल जाने वाले बालकों की तुलना में बालिकाओं का अनुपात कम है। 82 प्रतिशत बालकों की तुलना में 72% बालिकाएं ही स्कूल जाती हैं। स्कूल छोड़ने की दर भी बालिकाओं की ज्यादा है।

बच्चों में लैंगिक असमानता एक व्यापक सामाजिक कुरीति के रूप में मौजूद है। भ्रूणहत्या की घिनौनी बिमारी कन्या शिशुओं की जन्म से पूर्व ही खत्म कर देने का काम करती है। भारत में पारम्परिक रूप से पुत्र की लालसा के चलते बालिकाओं को उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। यह प्रवृत्ति अत्यन्त खतरनाक है क्योंकि आधुनिक अल्ट्रासाउण्डस आदि तकनीकों की मदद से लिंग परीक्षण की प्रवृत्ति तथा कथित सभ्य, पड़े-लिखे, सम्पन्न तथा नगरीय परिवारों में ज्यादा है।

सामाजिक असमानता का शिकार बच्चों को कई स्तरों पर होना पड़ता है। इसमें बाल श्रम तथा बाल अपराध प्रमुख समस्याएँ हैं। देश में अभी भी करोड़ों बच्चे मजदूरी करने के लिए विवश किये जाते हैं, कारण चाहे जो भी हों। छोटी-मोटी चोरियों से लेकर हत्या तक में बच्चों को अपराधी के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है। कुछ मामलों में बच्चे परिस्थितिवश तथा उचित संरक्षण के अभाव में ऐसा करते हैं तो अनेक मामलों में संगठित अपराधी गिरोह भी बच्चों का इस्तेमाल करते हैं। किशोरों को चमकदार जीवन शैली का लालच दिखाकर उनसे घिनौने अपराध कराये जाते हैं। कई मामलों में तो आतंकवादियों द्वारा भी बच्चों से आतंकवादी घटनाएं कराने की बात

प्रकाश में आयी है। भारत में नक्सलवादी संगठन, कश्मीर में सक्रिय अनेक उग्रवादी गुटों तथा पूर्वोत्तर के उग्रवादी गुटों द्वारा इस प्रकार के शोषण की खबरें प्रकाश में आयी हैं। इसके अतिरिक्त देश भर के बच्चों की शिक्षा आय के आधार पर उच्च तथा निम्न श्रेणी में विभक्त है। अधिकांश बच्चे पढ़ाई के नाम पर अवैज्ञानिक बोझ एवं दबाब का शिकार हैं। इससे किशोरों में आत्महत्या तक की प्रवृत्तियाँ विकसित हो रही हैं। किशोर वय लड़कियों का यौन शोषण तथा उन्हें जबरन वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर करने की घिनौनी बीमारी भी मौजूद है। बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए आदर्श माहौल कम ही जगहों पर सुलभ है।

15.3 मीडिया एवं बाल विकास

समाज के अन्य पक्षों की तरह बाल विकास के कार्यों को प्रकाशित करने, बाल विकास की आवश्यकता को रेखांकित करने तथा बाल विकास को सहयोग देने में मीडिया की भूमिका एक विवेच्य विषय है। बाल विकास से जुड़े प्रश्नों पर मीडिया ध्यान देती है। मीडिया ने विगत समय में बच्चों के शोषण, उन पर होने वाले अत्याचार, उनकी अशोचनीय स्थिति आदि पर निरन्तर समाज का ध्यान आकर्षित करने का कार्य किया है। बाल विकास से जुड़े विविध मुद्दों को मीडिया में तरजीह मिली है।

मीडिया ने विशेष रूप से बच्चों की शैक्षणिक स्थिति को उजागर किया है। कुपोषण, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, संक्रामक बीमारियों से होने वाली बच्चों की परेशानियों आदि को मीडिया ने हमेशा प्रकाश में लाने का काम किया है। बाल शोषण पर मीडिया का दृष्टिकोण विचारोत्तेजक रहा है। बाल श्रम की घटनाओं के पर्दाफाश में उसने हमेशा सहयोग दिया है। बच्चों पर बड़ों के अत्याचार के विरुद्ध भी उसने प्रभावी तरीके से आवाज उठाई है। संगठित आपराधिक गिरोहों द्वारा बच्चों के दुरुपयोग को भी मीडिया ने हमेशा मुद्दा बनाया है। कन्या भ्रूण हत्या के विरुद्ध चेतना के प्रसार में उसने रचनात्मक सहयोग दिया है। बाल अपराधियों के प्रति समाज के दृष्टिकोण की भी मीडिया द्वारा आलोचनात्मक समीक्षा की गयी है। लड़कियों की सफलताओं को प्रकाश में लाकर उसने समाज के समक्ष एक प्रेरणा उपस्थित की है।

इस संबंध में मीडिया के कुछ स्याह पक्ष भी हैं। देश में बाल पत्रकारिता का स्तर शोचनीय है। नंदन, चंपक, बाल भारती, बालहंस आदि कुछ गिने-चुने प्रकाशन बच्चों के लिए उपलब्ध हैं। बाल साहित्य को भी गंभीरता से नहीं लिया जाता। पिछले काफी समय से कोई चर्चित कृति बच्चों को केन्द्रबिन्दु बनाकर नहीं लिखी गयी है। मुख्यधारा की पत्रकारिता में बच्चों को केन्द्रित प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री निरन्तर कटौतियां की जाने लगी हैं। साप्ताहिक परिशिष्टों से बच्चों का कोना निरन्तर छोटा होता जा रहा है।

विज्ञापन की चकाचौंध में पटा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया बच्चों को जाने अनजाने उपभोक्ता के रूप में देखने लगा है। बच्चे विज्ञापन का मुख्य लक्षित वर्ग हो गये हैं।

विज्ञापन बच्चों को उत्प्रेरक मानकर चमत्कारी आभा से उन्हें विस्मृत करने के कार्य में लगे हुए हैं। इसके अतिरिक्त जो बच्चों के नाम पर अन्य कार्यक्रम परोसे जा रहे हैं, उनमें अय्यारी, चमत्कार, अतार्किक जादू, धमा-चौकड़ी तो रह रही है; बचपन कहीं नजर नहीं आता है। फिल्मों में भी बाल चरित्रों से बड़ों के काम तो खूब कराये जाते हैं, बच्चों के बहुत कम। बच्चों के संदर्भ में मीडिया के पास बालभिमुख दृष्टि का अभाव सा दिखाई पड़ता है। यह सच है कि बच्चों से जुड़े बहुत सारे प्रश्नों को मीडिया अत्यन्त प्रमुखता से स्थान देता है। लेकिन यह स्थान उन मुद्दों को दिया जाता है, जिनमें बच्चों की बड़ों द्वारा पैदा की गयी समस्याएं होती हैं, जैसे - बाल मजदूरी, बाल वेश्यावृत्ति, बाल शोषण, बच्चों की तस्करी, किशोरवय अपराध इत्यादि। ऐसे मामलों में मीडिया बाल मुद्दों को सामाजिक मुद्दों के रूप में देखता है।

सामान्य परिस्थितियों में बच्चों का मानसिक, सांस्कृतिक विकास बेहतर तरीके से किया जा सके, इसके लिए मीडिया को अपना नजरिया परिमार्जित करने की जरूरत है। देश के बच्चों को एक दोस्त मीडिया की जरूरत है, न कि अभिभावक मीडिया की। आयातित नायकों की बजाय परिवेश से विकसित चरित्रों को मीडिया को और वरीयता देने की जरूरत है। बाल विकास के लिए माहौल बनाने में भी उसे सहयोग करना चाहिए।

15.4 बाल विकास में संचार सहयोग

बाल विकास में संचार की महत्ता भी निरुपित की जा सकती है। हालांकि अभी तक विकास के लिए संचार रणनीति के नियोजन में बाल विकास जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। उसके पीछे यह सोच एक महत्वपूर्ण कारक रही है कि सामान्य स्थिति में बच्चों का विकास परिवार से संबद्ध है। एक सामाजिक उत्तरदायित्व या राज्य की जिम्मेवारी के रूप में केवल समस्याग्रस्त, बेसहारा बच्चों के लिए ही विशेष योजनाएँ बनायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त बाल विकास से जुड़े मुद्दे, जैसे शिक्षा, पोषण आदि के लिए संप्रेषण का केन्द्रबिन्दु आंभभावक बनते हैं।

हालांकि अभिभावकों का महत्व गौण नहीं है तथा बाल विकास के लिए संचार रणनीति के निर्धारण में उन्हें उपेक्षित भी नहीं किया जा सकता, लेकिन एक समग्र संचार रणनीति का उपयोग संशलिष्ट बाल व्यवहार की प्रवृत्तियों को देखते हुए आवश्यक है।

एक समेकित संचार रणनीति जिसमें अन्तरवैयक्तिक (Interpersonal) तथा जनसंचार तकनीकों का प्रभावी क्रियान्वयन सम्मिलित हो, को प्रस्तुत किया जाना जरूरी है। प्रतिस्पर्धा के दबाबों के बीच माँ-बाप तथा संबन्धी बच्चों की जरूरतों के हिसाब से, उनके मनोविज्ञान के अनुरूप व्यवहार करें, यह आवश्यक है। आज का बाल मनोविज्ञान संस्कारों को जबरन स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है। उसे सहानुभूति, मृदुल व्यवहार तथा विनम्र संरक्षण की आवश्यकता है। इसके लिए अभिभावकों तथा बच्चों की सलाहमूलक सेवाओं का नेटवर्क काफी प्रभावी हो सकता है।

जनमाध्यमों-की अन्तर्वस्तु का भी बाल विकास की दृष्टि से पुनर्नियोजन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। बाल मित्र जनमाध्यमों की आज के समाज को आवश्यकता है। जनमाध्यम तेजी से बच्चों में उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों को फैला रहे हैं। आज के जनमाध्यम परिवार तथा अन्य पारस्पारिक सामाजिक संस्थाओं की बजाय भाषा ज्ञान, व्यवहार का तरीका, सामाजिक व्यवहार, नायक चयन सामाजिक स्तरीकरण आदि की सीख ज्यादा तेजी से सिखा रहे हैं। ऐसे में जनमाध्यमों का संतुलन बच्चों के विकास के लिए महत्वपूर्ण है। बाल विकास के लिए इन माध्यमों को कार्यक्रमों की बारम्बारता पर और ध्यान देने की जरूरत है। बच्चों को भ्रमित करने वाले विज्ञापनों तथा चमत्कारी फूहड़ चरित्रों के प्रस्तुतीकरण पर रोक लगनी चाहिए। परिवेशगत बालविकास के संदर्भ प्रस्तुत करना बच्चों के उन्नयन में महत्वपूर्ण हो सकता है।

समस्याग्रस्त, बेसहारा तथा शोषण के शिकार बच्चों के प्रति समाज के नजरिये में बदलाव का प्रयत्न इन जनमाध्यमों को करना चाहिए। किशोरवय में अपराध, दिखावा तथा विद्रोह की प्रवृत्तियों को हतोत्साहित करने वाले उत्प्रेरक कार्यक्रम भी प्रभावी हो सकते हैं। अभिभावकों के लिए ट्रेनिंग मैन्युअल भी उपयोगी हो सकते हैं। बच्चों के लिए उनकी रचनात्मकता विकसित करने वाले कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाने चाहिए।

11.5 वर्तमान संचार व्यवस्था में बाल मुद्दे

वर्तमान संचार व्यवस्था माध्यम बहुलता का उदाहरण है। समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, रेडियो, टीवी, सिनेमा के साथ-साथ आधुनिक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी वर्तमान संचार व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है।

समाचारपत्र इलेक्ट्रानिक माध्यमों की चकाचौंध के बावजूद अपना प्रभाव बनाये रखे हुए हैं। लेकिन इनमें बच्चों से जुड़े प्रश्न कितनी जगह बना पाते हैं? शायद ही कोई नियमित स्तम्भ मुख्य धारा की पत्रकारिता में बच्चों में बच्चों पर केन्द्रित हो।

साप्ताह में तीन से चार दिन निकलने वाले औसतन 12 से 16 परिशिष्ट के पृष्ठों मे से केवल आधा या एक पृष्ठ ही बच्चों के लिए होते हैं। हालांकि बच्चों की कुछ समस्याओं को समाचार पत्रों ने प्रभावी तरीके से उठाने का कार्य किया है। गत समय में पल्स पोलियो अभियान पर समाचारपत्रों का ध्यान महत्वपूर्ण रहा है। बाल श्रमिकों तथा बाल श्रम पर भी समाचारपत्रों ने कई मार्मिक प्रस्तुतियां की हैं। लेकिन बाल मुद्दों पर पत्रों में और निरन्तरता की आवश्यकता है।

पत्रिकाएं तथा पुस्तकें भी बाल विकास की दृष्टि से उपयोगी है। दुर्भाग्यवश देश में बाल सामग्री कम प्रस्तुत की जा रही है तथा बालपत्रिकाओं का स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है। इन्हें संरक्षण तथा संवर्धन की आवश्यकता है।

रेडियो तथा टेलीविजन पर भी बाल मुद्दे जगह पा रहे हैं। रेडियो हालांकि बच्चों में अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय है परन्तु बच्चों की जागरूकता बढ़ाने वाले कार्यक्रम, बाल

समस्याओं पर रूपक, वार्ताएं आदि प्रस्तुत किये जा रहे हैं। टीवी पर भी बाल मुद्दे प्रस्तुत किये जा रहे हैं। मल्टी - चैनल युग में बच्चों के लिए भी कुछ चैनल प्रसारित हो रहे हैं। इनमें कार्टून व हास्य-व्यंग्य आधारित चैनलों का बोलबाला है। कार्टून नेटवर्क पोगो, डिजनी नेटवर्क आदि इसी प्रकार के चैनल हैं। इसके अतिरिक्त डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिक जैसे चैनल कुछ ज्ञानवर्धक कार्यक्रम भी प्रस्तुत कर रहे हैं। लेकिन इन्फोटेन्मेंट चैनलों पर बच्चों के लिए जगह बहुत थोड़ी सी है और वह भी अधिकांशत: कार्टून या इक्का-दुक्का धारावाहिकों के रूप में ही है। सामाचार चैनलों पर भी बाल मुद्दे प्रसंगवश ही जगह बना पाते हैं। जैसे जब बाल श्रम निषेध व निवारण कानून बना तो बाल शोषण तथा बाल श्रम पर कुछ समाचार तथा चर्चाएं प्रस्तुत की गयीं। कभी-कभी बाल समस्याओं पर आधारित समाचार जरूर प्रस्तुत किये जाते हैं। हालांकि बाल फिल्मों के लिए बाल चलचित्र समिति (Children's Film Society) कार्यरत है और सरकार फण्डिंग भी करती है लेकिन बाल फिल्में इस देश में बहुत कम बनती हैं। इधर कुछ चर्चित बाल फिल्में अवश्य आई हैं। निम्मो, आबरा का डाबरा, इकबाल आदि कुछ फिल्में चर्चित भी हुई हैं। लेकिन बाल मनोविज्ञान पर फिल्मों में और ध्यान दिये जाने की जरूरत है।

आधुनिक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से बच्चों का रिश्ता जरूर विवेचना की माँग करता है। इंटरनेट पर सूचनाओं की प्रचुरता से उच्च व मध्यमवर्गीय किशोरों को जरूर कुछ लाभ हुआ है पर इसका प्रयोग चाइल्ड ट्रैफिकिंग व बाल वेश्यावृत्ति के अन्तरराष्ट्रीय रैकेट के संचालक भी कर रहे हैं।

वर्तमान जनमाध्यम बच्चों से जुड़े सामयिक मुद्दे तो जरूर उठा रहे हैं लेकिन उनके विश्वास से जुड़े रचनात्मक मुद्दों पर गंभीर नजर नहीं दे रहे। ऐसा इसलिए भी हैं क्योंकि ऐसे प्रश्न टी आर पी अथवा रीडरशिप की दृष्टि से उपयोगी नहीं होते। बच्चों के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक विकास पर जनमाध्यमों का ध्यान अत्यन्त कम दिखाई पड़ रहा है जिस पर और ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

15.6 बाल विकास के सरकारी प्रयास

बाल विकास की दृष्टि से सरकार ने जरूर कुछ प्रयत्न किये हैं। देश में बाल मजदूरी रोकने के लिए हाल ही में देश की संसद ने कानून बनाया है। बाल विवाह, बाल प्रताड़ना तथा अन्य मुद्दों पर भी कानून बने हुए हैं। सरकार ने बच्चों के विकास के दृष्टिगत अनेक प्रयास किये हैं।

सरकार ने बाल विकास को भी पर्याप्त प्राथमिकता प्रदान की है। केन्द्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा बाल विकास के कार्यों को देखा जा रहा है। यह सुनिश्चित करना इस मंत्रालय की प्रतिबद्धता है कि प्रत्येक बच्चे को एक संतुलित स्वस्थ और उपयोगी जीवन जीने तथा एक सुरक्षित वातावरण में अपनी पूरी क्षमता का विकास करने का अवसर प्रदान किया जाय। इस दृष्टि से कुछ प्रमुख कार्यक्रम निम्नवत् हैं -

(i) समन्वित बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) - समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम विश्व के वृहत कार्यक्रमों में से एक है। यह कार्यक्रम सन 1975 में शुरू किया गया। इसके अन्तर्गत एक ही स्थान पर छः प्रकार की बुनियादी सेवाएं छः वर्ष तक की आयु के बच्चों तथा गर्भवती और शिशुवती माताओं को प्रदान की जाती है। ये सेवाएँ हैं - स्वास्थ्य जाँच, टीकाकरण, विशेषज्ञ सेवाएँ, पूरक आहार, स्कूल पूर्व शिक्षा तथा स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा। इसके अन्तर्गत 567। परियोजनाएँ परिचालित की जा रही हैं। कुल 7.44 लाख आंगनबाड़ी केन्द्रों को सेवा, सूचना प्रसार एवं संचार के मिले-जुले कार्यक्रमों की मदद से इसे संचालित किया जा रहा है।

(ii) किशोरी शक्ति योजना - आईसीडीएस अवसंरचना के माध्यम से 1-18 वर्ष की किशोरियों के लिए चलाया गया यह एक विशेष कार्यक्रम है। किशोरियों की पूर्ण क्षमता के विकास हेतु उन्हें हर दृष्टि से सशक्त बनाकर उनका सर्वांगीण विकास करना, जिसमें उनका पोषण, साक्षरता, व्यावसायिक कौशल शामिल हैं - जो इस योजना का उद्देश्य हैं। पहले यह कार्यक्रम 2000 ब्लाकों में चलाया जा रहा था, अब इसका विस्तार देश के सभी आईसीडीएस ब्लाकों तक कर दिया गया है।

(iii) किशोरियों हेतु पोषण कार्यक्रम - 2005-06 में एक प्रायोगिक कार्यक्रम के रूप में इसे देश भर में चलाया गया जो सन् 2002-03 में लागू हुआ था। कार्यक्रम का उद्देश्य किशोरियों को पोषक आहार उपलब्ध कराना है।

(iv) शिशुगृह - शिशुगृहों तथा दिवस देखभाल केन्द्रों की यह स्कीम निर्धन कामकाजी और बीमार महिलाओं के बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए चलाई गयी थी। शिशुगृह स्कीमों के समेलित कार्यक्रम का नाम 'राजीव गांधी राष्ट्रीय शिशुगृह स्कीम' रखा गया है। दसवीं योजना के अंत तक 10719 शिशुगृह खोलने का लक्ष्य रखा गया है।

इसके अतिरिक्त यूनीसेफ के सहयोग से भी अनेक कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। सरकार अन्य कई योजनाएं भी संचालित कर रही हैं।

15.7 केन्द्र के बाल विकास कार्यों में संचार उपयोग

महिला तथा बाल विकास मंत्रालय के मीडिया सकल का उद्देश्य मंत्रालय द्वारा निरुपित एवं कार्यान्वित की जाने वाली नीतियों, कार्यक्रमों तथा विकासात्मक कार्यकलापों का व्यापक प्रचार-प्रसार करके महिलाओं एवं बच्चों के विकास से संबन्धित मुद्दों के विषय में जन-जागरूकता उत्पन्न करना है। इलेक्ट्रानिक प्रचार माध्यमों, पत्र-पत्रिकाओं तथा बाह्य प्रचार कार्यकलापों जैसे विविध प्रचार माध्यमों का कारगर तरीके से प्रयोग करते हुए चलाये जाने वाले प्रचार अभियान के द्वारा इस उद्देश्य को प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

बाह्य प्रचार - लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से सामाजिक प्रासंगिक मुद्दों पर पोस्टरों, पैनल डिस्प्ले आदि का सहारा लिया जाता है।

पत्र-पत्रिकाएँ - विविध कार्यक्रमों, संदेशों को विज्ञापन के रूप में जारी करना तथा पृष्ठभूमि सामग्री उपलब्ध कराना।

टीवी पर प्रचार अभियान - दूरदर्शन तथा निजी चैनल पर प्रचारात्मक स्पॉट प्रस्तुत किये जाते हैं। बालिका सशक्तिकरण पर 'लल्ली', भ्रूण हत्या पर 'मुझे मत मारो' , 'बच्चों का यौन शोषण' आदि कुछ स्पाटों के उदाहरण हैं।

आकाशवाणी पर भी स्पॉटों का नियमित प्रसारण होता रहता है तथा तिमाही न्यूज लेटर 'सम्पर्क' का नियमित रूप से प्रकाशन किया जाता है।

15.7 सारांश

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि बच्चे भविष्य के संसाधन है अत: यदि देश के बच्चों का विकास सही दिशा में नहीं होगा तो देश का भविष्य भी खतरे में पड़ सकता है। सरकार, स्वयंसेवी क्षेत्र, मीडिया तथा समाज के प्रत्येक हिस्से की यह जिम्मेदारी है कि वह बच्चों के विकास एवं संवर्द्धन का कार्य सुनिश्चित करे। संचार व्यवस्था अपेक्षित जागरूकता विकसित करने तथा बाल शोषण को उजागर करने में महत्वपूर्ण है। बाल मनोविज्ञान पर विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रभाव देखते हुए उसके बेहतर नियोजन से सकारात्मक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

15.8 संदर्भ ग्रंथ

(i) भारत -2006

(ii) वार्षिक रिपोर्ट - महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 2003-06

(iii) अरविन्द कुमार - इन्साइक्लोपीडिया ऑफ मास मीडिया एण्ड कम्यूनिकेशन

15.9 पारिभाषिक शब्दावली

(i) टीवी स्पॉट - टीवी पर जारी किये जाने अल्पावधि के चित्र। सामान्यत: ये विज्ञापन के रूप में होते हैं।

(ii) परिशिष्ट - नियमित प्रकाशन के अतिरिक्त प्रकाशित सामग्री जो किसी विषय विशेष पर केन्द्रित होती है। समाचार पत्रों में - रोजगार, महिला, रविवासरीय तथा अन्य कई प्रकार के परिशिष्ट प्रकाशित किये जाते हैं।

15.10 प्रश्नावली

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. बाल विकास का अर्थ एवं प्रमुख समस्याएँ निरुपित करें।

2. बाल विकास में संचार माध्यम क्या भूमिका अदा कर सकते हैं - सोदाहरण विवेचना करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. सिनेमा में बाल चित्रण पर टिप्पणी करें।
2. शिशु गृह योजना से क्या आशय है?
3. बाल श्रम से आप क्या समझते हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सन् 2001 की जनगणना में भारत में बच्चों की संख्या है लगभग -

(क) 13 करोड़ (ख) 15 करोड़

(ग) 16 करोड (घ) 17 करोड़

2. कन्या भ्रूण हत्या है -

(क) कानूनन अपराध

(ख) सामाजिक बुराई

(ग) लैंगिक भेदभाव का प्रतीक

(घ) उपर्युक्त सभी

3. बच्चों की पत्रिका नहीं है -

(क) नन्दन

(ख) चंपक

(ग) चंदामामा

(घ) सरिता

4. बच्चों से जुड़ा टीवी चैनल है -

(क) डीडी-1

(ख) सेटमैक्स

(ग) टाईम्स नाउ

(घ) पोगो

5. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित न्यूजलेटर है -

(क) आमुख

(ख) संपर्क

(ग) लल्ली

(घ) मुस्कान

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

(1) (ग)

(2) (घ)

(3) (घ)

(4) (घ)

(5) (ख)

इकाई - 16 विकास एवं गिरिजन -परिजन

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 गिरिजन-परिजन का अर्थ

16.3 भारत में गिरिजन-परिजन

16.4 गिरिजन-परिजन के विकास की प्रमुख बाधाएँ

16.5 गिरिजन-परिजन विकास के प्रयास

16.6 गिरिजन-परिजन एवं विकास संचार

16.7 गिरिजन-परिजन एवं जनमाध्यम

16.8 सारांश

16.9 संदर्भ ग्रंथ

16.10 पारिभाषिक शब्दावली

16.11 प्रश्नावली

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे -

(i) गिरिजन-परिजन होते क्या हैं?

(ii) भारत में गिरिजन-परिजन का वितरण व स्थिति।

(iii) गिरिजन-परिजन के पिछड़े होने के कारण।

(iv) गिरिजन-परिजन के सामाजिक-आर्थिक उत्थान के प्रयास।

(v) विकास संचार से गिरिजन-परिजन का जुड़ाव।

(vi) जनमाध्यम एवं गिरिजन-परिजन।

12.1 प्रस्तावना

गिरिजन-परिजन भारत में अनुसूचित जाति एवं जनजाति की ओर संकेत करता है। ऐतिहासिक रूप से पिछड़े समाज में हाशिये पर खड़ा यह वर्ग आज देश की मुख्यधारा में तेजी से शामिल हो रहे वर्गों में से हैं। भारतीय गणतंत्र ने अपने जन्मकाल से ही देश के इस वंचित वर्ग के उत्थान के लिए विशेष व्यवस्थाएँ कीं

जिनका पालन आज भी किया जा रहा है।

गिरिजन भारतीय भू-भाग का आरम्भ से ही महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं। नगरीय तथा ग्रामीण सभ्यता से अलग प्रकृति की गोद में, प्रकृति के साथ रहने वाला यह वर्ग अपनी आजीविका तथा जीवन के लिए प्रकृति पर आश्रित रहा है। भारतीय संविधान ने इसे जनजाति शब्द दिया है। अपनी विशिष्ट सामाजिक संरचना परम्पराओं तथा आर्थिक-सांस्कृतिक संरचना के लिए ये अलग से पहचाने जाते हैं।

गिरिजन या आदिवासियों की पहचान नृजातीय आधार पर बंद सामाजिक संरचना, घोर प्राथमिक जीवन शैली, संग्रह, आखेट तथा घुमन्तू अर्थव्यवस्था पर निर्भरता, विशिष्ट सामाजिक नियमों तथा दुर्गम क्षेत्र में निवास करने वाले वर्ग की रही है। हालांकि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में इनमें तेजी से बदलाव आया है फिर भी इनकी विशिष्टताएँ आसानी से पहचानी जा सकती हैं।

गिरिजन के विपरीत परिजन भारतीय समाज की मुख्यधारा का अभिन्न अंग हैं। पारम्परिक जातीय व्यवस्था में यह समूह सर्वाधिक पिछड़ा, गरीब तथा अधिकारों से वंचित रहा है। जातीय वर्गीकरण में इनकी स्थिति हाशिये पर रही है जिसके चलते इनका आर्थिक सशक्तिकरण अत्यन्त कम रहा है। आर्थिक सशक्तिकरण कम होने से इनके सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकारों का भी निरंतर अतिक्रमण हुआ है। जिन पेशों को समाज में निम्न समझा जाता रहा है उससे इस वर्ग की संबद्धता रही है। समाज का यह सर्वाधिक शोषित और उपेक्षित वर्ग रहा है जिसे अक्सर जातीय आधार पर दुर्भावनाओं का भी शिकार होना पड़ा है।

पारम्परिक रूप से गिरिजन-परिजन शैक्षणिक रूप से सर्वाधिक पिछड़े रहे हैं। इनकी साक्षरता दर औसत से काफी कम रही है। कुछ मामलों में सामाजिक दुर्भाव तथा कुछ मामलों में मानसिक सोच के चलते शिक्षा को इन समाजों में कम महत्व दिया गया है। आर्थिक रूप से भी ये परिष्कृत पेशों से वंचित रहे हैं जिसके चलते इनकी व्यवसायगत आय कम रही है। लेकिन आदिकाल से ही भारतीय भू-भाग तथा समाज का ये अभिन्न अंग रहे हैं।

अनादि काल से ही हमारी सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में इन्होंने नींव की ईंटों का काम किया है। हालांकि सामन्ती व्यवस्था के दुष्चक्र में इस वर्ग को सर्वाधिक प्रताड़ना झेलनी पड़ी है फिर भी इस धरती का यह सर्वाधिक जीवट वाला वर्ग है जिसने प्रतिकूल स्थितियां में भी जीवन संघर्ष से निराश हो कभी मुँह नहीं मोड़ा-गणराज्य भारत में इनके पिछड़ेपन को देखते हुए इन्हें विशेष सुविधाएं तथा रियायतें प्राप्त हुई हैं और इन वर्गों का सामाजिक-आर्थिक शैक्षणिक विकास सुनिश्चित किया गया है।

16.2 गिरिजन-परिजन का अर्थ

गिरिजन से आशय पर्वतीय या विषम भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले उन समूहों से है जिनकी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान होती है। इनके लिए जनजाति

(Tribes) शब्द ज्यादा प्रचलन में है। भारत के संविधान की धारा 366 (25) के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है -

"संविधान की धारा 342 के तहत आने वाली अनुसूचित जनजातियों के समान जनजातियां या जनजातीय समुदाय अथवा ऐसी जनजातियां या जनजातीय समुदायों के समूह अनुसूचित जनजातियों की श्रेणी में आते हैं।"

धारा 342(1) के अनुसार राष्ट्रपति किसी राज्य या केन्द्रशासित प्रदेश के संदर्भ में और राज्य के मामले में राज्यपाल से परामर्श के बाद जनजातियों या जनजातीय समुदायों या उसके समूहों को अनुसूचित जनजातियां अधिसूचित कर सकते हैं। यह धारा जनजाति या उसके समूह को उनके राज्य / केन्द्र शासित प्रदेश में इन समुदायों को उनके लिए संविधान में प्रदत्त संरक्षण उपलब्ध करवाकर संवैधानिक हैसियत प्रदान करती है।

इस प्रकार धारा 342(1) के अनुसार वे जनजातियाँ अनुसूचित जनजातियां मानी जायेंगी जिनके बारे में राष्ट्रपति प्रारंभिक सार्वजनिक अधिसूचना के जरिये ऐसी घोषणा करेंगे। इसी सूची में किसी तरह का संशोधन संसदीय कानून धारा 342(2) के जरिये ही किया जा सकता है। उपरोक्त धारा अनुसूचित जनजातियों को राज्यवार अधिसूचित करती है तथा यह आवश्यक नहीं है कि एक राज्य की अनुसूचित जाति को दूसरे राज्य में भी अनुसूचित जाति ही माना जाय। भारत के संविधान की धारा 342 के तहत 600 से अधिक जनजातियों को अधिसूचित किया गया है। हरियाणा, पंजाब, चंडीगढ़, दिल्ली तथा पांडिचेरी में किसी जाति को अनुसूचित जनजाति के रूप में अधिसूचित नहीं किया गया है। किसी समुदाय को अनुसूचित जनजाति घोषित करने के प्रमुख आधार निम्न् हैं -

(i) आदिम विशेषताएं

(ii) भिन्न सभ्यता

(iii) कुल मिलाकर सार्वजनिक संपर्क से बचना

(iv) भौगोलिक अलगाव

परिजन शब्द भारत की अनुसूचित जातियों की ओर संकेत करता है। इनकी उत्पत्ति जाति व्यवस्था से हुई है। वर्णाश्रम विभाजन में से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में से शूद्र वर्ग का प्रतिनिधित्व प्राचीन व्यवस्था में इन जातियों द्वारा किया जाता था। जातीय विभाजन में इनकी स्थिति पारम्परिक रूप से निचले पायदान पर रही है तथा समाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक रूप से सर्वाधिक पिछड़ी रही है। ब्रिटिशकालीन भारत में यह प्रयास किया गया था कि इनकी अलग आर्थिक पहचान हो पर पूना पैक्ट व गाँधी - अम्बेडकर समझौते में यह वैधानिक रूप से भी स्पष्ट किया गया कि अनुसूचित जातियाँ भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा हैं।

16.3 भारत में गिरिजन-परिजन

गिरिजन या अनुसूचित जनजातियों का भारत में लगभग हर राज्यों में वितरण है तथा वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या 8.43 करोड़ है जो कुल जनसंख्या का 8.2% भाग है। भारत 2006 के अनुसार जनजातियों की संख्या की दृष्टि से मध्य प्रदेश का स्थान पहला है जहाँ 1.22 करोड़ जनजातीय आबादी निवास करती है। कुल जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या की हिस्सेदारी की दृष्टि से मिजोरम तथा लक्षद्वीप आते हैं जहाँ की 94.5% जनसंख्या अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचीबद्ध है

जनजातियां सामान्यत: निम्न तीन वर्ग-स्थलों में रहती हैं -

1. **पूर्वोत्तर क्षेत्र–** अरूणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा और सिक्किम।

2. **मध्य जनजातीय क्षेत्र–** राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, आँध्र प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, दादरा तथा नागर हवेली और दमन तथा दीव।

(3) **अन्य राज्य/ केन्द्रशासित प्रदेश–** जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, अंडमान-निकोबार द्वीप समूह एवं लक्षद्वीप।

जनजातीय समुदाय देश के कुल क्षेत्रफल के 15% भाग में फैले हैं जो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों तथा भू-जलवायु में मैदानी, पर्वतीय, जंगली और दुर्गम क्षेत्रों में रहते हैं। विभिन्न जनजातीय समुदायों में सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास का स्तर अलग-अलग है। जनजातीय समुदाय के लोग हरियाणा, पंजाब,दिल्ली, पांडिचेरी और चंडीगढ़ को छोड़कर सभी राज्यों व केन्द्रशासित क्षेत्रों में रहते हैं।

अनुसूचित जनजातियों की जनवृद्धि में इधर तेजी से वृद्धि दर्ज की गयी है। भारत 2006 में उल्लखित आँकड़ों के अनुसार 1991 से 2001 के दौरान इनकी जनसंख्या 24.45% की दर से बढ़ी है। इनमें लिंग अनुपात का औसत 977 है जो राष्ट्रीय औसत (933) से बेहतर है। लेकिन साक्षरता के मामले में ये जनजातियां पीछे हैं तथा राष्ट्रीय और 65.38% के मुकाबले मात्र 47.10% हैं। महिला साक्षरता मात्र 34.76% है। इनकी कुल कार्यरत जनसंख्या का 87% (1991 के आंकड़ों के अनुसार) प्राथमिक क्षेत्र में कार्यरत था।

भारत की कुल जनसंख्या में परिजन या अनुसूचित जातियाँ 2001 की जनगणना के अनुसार 16.20 हैं। इनकी कुल जनसंख्या 166636000 है। कुल जनसंख्या के प्रतिशत की दृष्टि से पंजाब में अनुसूचित जातियों की सघनता सर्वाधिक 28.85% है। इसके बाद हिमाचल प्रदेश (24.72%) तथा पं० बंगाल (23.02%) का स्थान दर्ज किया गया है। नागालैण्ड, मिजोरम, लक्षद्वीप तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह

में अनुसूचित जाति की संख्या दर्ज नहीं की गयी है। कुल 12 राज्य ऐसे हैं जहाँ इनकी संख्या 0.48% से 10% के बीच है। मात्र चार राज्यों में इनकी जनसंख्या 20% से ज्यादा, 13 राज्यों में 15% से 20% के मध्य तथा 3 राज्यों में 10% से 15% के मध्य है।

16.4 गिरिजन-परिजन के विकास की प्रमुख बाधाएँ

भारत में अनुसूचित जातियां तथा जनजातियां दोनों ही विकास के लक्ष्यों से काफी दूर हैं। यह भारत के सर्वाधिक पिछड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। चूँकि दोनों सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप से भिन्न हैं अत: इनके विकास की प्रमुख बाधाओं का हम शीर्षकों के तहत मूल्यांकन करेंगे।

भारत में गिरिजन या अनुसूचित जनजातियों के विकास की प्रमुख बाधाएँ निम्नांकित हैं -

(i) कृषि का तकनीक पूर्व स्तर या परंपरागत कृषि

(ii) साक्षरता की अत्यधिक कमी

(iii) अत्यन्त पिछड़ी आर्थिक स्थिति

(iv) मुख्य धारा से अलगाव

(v) सांस्कृतिक पिछड़ापन

(vi) प्राकृतिक साधनों पर अत्यधिक निर्भरता

(viii) सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं ले पाना

अनुसूचित जनजातियों का आबादी का अधिकांश हिस्सा प्राथमिक क्षेत्र में लगा हुआ है। कुल कामगारों का 87% इसी क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। इनमें से अधिकांश लोग कृषि कार्यों में संलग्न हैं। लेकिन इनकी कृषि का स्वरूप परंपरागत है तथा नयी तकनीकों, विधियों, उर्वरकों, बीजों आदि का प्रयोग ये अत्यल्प मात्रा में करते हैं अथवा करते ही नहीं है। इस प्रकार की कृषि भाग्य पर ज्यादा निर्भर करती है तथा बमुश्किल भरण-पोषण भर की व्यवस्था ही इससे हो पाती है। आदिवासी कृषि की एक और समस्या झूमिंग कृषि की है। इसमें एक या कुछ फसलें प्राप्त कर जमीन छोड़ दी जाती है। इससे खेती को स्थायित्व भी नहीं मिलता तथा वन विनाश तथा मृदाक्षरण जैसी पर्यावरण समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं।

अनुसूचित जनजातियों के पिछड़ेपन का एक और प्रमुख कारण इनका शैक्षणिक पिछड़ापन भी है। अभी भी लगभग आधी आबादी निरक्षरता का दंश झेल रही है। महिलाओं की साक्षरता दर तो और भी कम है। विश्वविद्यालय तथा तकनीकी शिक्षा में इनकी भागीदारी अत्यन्त कम है। शिक्षा की कमी से यह वर्ग प्रतिस्पर्धा में पिछड़ा रहता है। आधुनिक परिवर्तनों, ज्ञान-विज्ञान तथा अपने अधिकारों के प्रति इनकी समझ विकसित नहीं हो पाती जिसके परिणामस्वरूप इनका विकास संभव नहीं होता।

इस वर्ग की आर्थिक स्थिति अत्यन्त पिछड़ी हुई है। हालांकि जल, जंगल और ज़मीन से यह परम्परागत रूप से ही जुड़े रहे हैं लेकिन यह जुड़ाव अत्यन्त प्राथमिक स्तर का रहा है। भरण-पोषण के लिए आखेटन और संग्रहण ही इनके जीवन-यापन का मुख्य जरिया रहा है। संसाधनों जैसे जमीन आदि के मलिकाना या राजस्व अधिकारों के मामले में भी यह वर्ग पीछे रहा है तथा अधिकांश जगहों पर जिन संसाधनों का ये सदियों से उपयोग करते आये हैं उन पर इनका कोई दस्तावेजी अधिकार नहीं रहा है। इससे इनको उपलब्ध संसाधनों का परिमार्जन नहीं हो पाया है तथा उनकी आर्थिक उपादेयता अत्यन्त कम रही है। आज जब देश के अधिकांश हिस्सों में वन क्षेत्र संरक्षित घोषित किये जा रहे हैं तो आदिवासियों का विरोध करने का यह बहुत बड़ा कारण है।

आदिवासी समाज पारम्परिक रूप से ही समाज की मुख्यधारा से अलग रहा है। लेकिन भले ही यह अलगाव सांस्कृतिक आधारों पर रहा हो इसका नुकसान इस वर्ग को उठाना पड़ा है क्योंकि इस अलगाव के साथ-साथ उनका आधुनिकता, प्रौद्योगिकी, समतल व उपजाऊ जमीन, व्यापार, परिवहन, संचार आदि से भी अलगाव हो गया है। मुख्यधारा से इस अलगाव की कीमत आदिवासी समाज को पिछड़ेपन के रूप में चुकानी पड़ी है। परम्परागत सांस्कृतिक विशिष्टताओं से अत्यधिक जुड़े रहने का परिणाम जनजातीय समुदायों में पिछड़ेपन के रूप में भी भुगतना पड़ा है। कई बार उनकी सांस्कृतिक मान्यताएं विकास के आधुनिक उपायों को अपनाने से रोकती है। इससे आधुनिकता और विकास से इन जनजातीय समुदायों की दूरी कम नहीं हो पाई है। कई बार सांस्कृतिक मान्यताओं के चलते ही स्वास्थ्य व चिकित्सा, शिक्षा, रोजगारपरक गतिशीलता, आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग, मानवाधिकार एवं महिला अधिकार आदि से यह वर्ग दूर ही रहता है।

प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक निर्भरता ने भी इस वर्ग के पिछड़ेपन में योगदान किया है। इस निर्भरता के चलते जीवन यापन के द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों से जनजातीय समुदाय की संबद्धता बेहतर नहीं हो पायी है। चूंकि प्राकृतिक संसाधन एक सीमा के बाद भरण-पोषण में असमर्थ हैं अत: यह उनके विकास में एक बड़ी बाधा सिद्ध हो रहा है।

सरकार ने अनुसूचित जनजातियों को सरकारी नौकरियों में आरम्भ से ही आरक्षण प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त अनेक सरकारी योजनाएं इस दृष्टि से बनायी गयी हैं कि उनसे अनुसूचित जनजातियों का विकास हो सके। लेकिन यह सारी कवायदें अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाती। इन योजनाओं का वे जनजातीय सदस्य जानकारी के अभाव में लाभ ही नहीं ले पाते जिन्हें इसकी जरूरत है। दूसरी ओर वे वर्ग जो आज विकसित हो चुके हैं इन लाभों पर अपना कब्जा जमा लेते हैं।

इन प्रमुख कारणों के अतिरिक्त अन्य वे सभी कारण भारत के, विशेषकर ग्रामीण भारत के विकास में बाधक हैं वे भी जनजातीय समुदायों के विकास में कहीं न कहीं से बाधा अवश्य उत्पन्न कर रहें हैं।

गिरिजनों के समाज परिजनों का भी विकास अभी पूर्ण नहीं हो पाया है।

परिजन या अनुसूचित जातियां अभी भी विकास के लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पायी हैं। इनके विकास की राह में प्रमुख बाधाएं निम्न हैं -

(i) निम्न सामाजिक स्थिति

(ii) आर्थिक पिछड़ापन

(iii) निम्न साक्षरता

(iv) सामन्ती शोषण

(v) सरकारी योजनाओं का लाभ न ले पाना

परमपरागत रूप से ही भारतीय समाज में अनुसूचित जातियों की स्थिति निम्न रही है। उन्हें सबसे नीचे समझा जाता था तथा समाज के कई हिस्सों में उन्हें 'अछूत' तक बनाने पर बाध्य किया जाता था। उनके हिस्से में समाज में निम्नतम् पेशों की व्यवस्था आई तथा भूमि, व्यापार तथा शासन में उनकी कोई भागीदारी सुनिश्चित नहीं की गयी। इसका दुष्परिणाम उन्हें सदियों से पिछड़ेपन के रूप में भुगतना पड़ा है।

अनुसूचित जातियों की परम्परागत रूप से संबद्धता ऐसे पेशों से रही जो समाज के दूसरे वर्गों की दया पर निर्भर थे तथा उनकी आर्थिक उपादेयता अत्यन्त कम थी। व्यापार वाणिज्य कृषि, उद्योग कहीं भी इस वर्ग का कोई प्रतिनिधित्व नहीं था। इससे इनकी आर्थिक स्थिति हमेशा बदतर रही जो इनके पिछड़ेपन का प्रधान कारण बनी। आर्थिक आधार पर पिछड़ेपन ने इनके समग्र विकास में बड़ी बाधा पैदा की।

अनुसूचित जातियां शैक्षणिक रूप से अत्यन्त पिछड़ी रही हैं। इनमें साक्षरता का घोर अभाव पाया जाता रहा है। इसके पीछे ऐतिहासिक कारण भी जिम्मेदार रहे हैं। बहुत समय तक यह जातियां शिक्षा के अधिकार से ही वंचित रही हैं। 20वीं सदी के आरम्भ में गाँधी जी के प्रयासों से इनमें शिक्षा के प्रति भी चेतना विकसित हुई। बाद में डॉ० अम्बेडकर तथा पूर्व में महर्षि कर्वे आदि के प्रयास भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे हैं। शैक्षणिक पिछड़ेपन का खामियाज़ा इन्हे विकास की दौड़ में पिछड़कर चुकाना पड़ा है। शिक्षा के अभाव में अनुसूचित जातियों का बहुत बड़ा तबका अभी भी अपने अधिकारों के बारे में नहीं जानता है, फलस्वरूप शोषण का शिकार होता है।

सामन्ती शोषण ने भी सदियों से अनुसूचित जातियों के विकास में रुकावट डालने का काम किया है। सत्ता ने इन वंचित वर्गों की कभी भी सुध नहीं ली। जमीदारों के ये बंधुआ मजदूर बने रहे। साहूकारों ने इन्हें बेगारी की बेड़ियों में जकड़ कर रखा। सामन्ती व्यवस्था में निरन्तर यह वर्ग शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक शोषण का शिकार रहा। इस व्यवस्था में ही इनके लिये अछूत, पतित जैसे संबोधन गढ़े गये।

आजादी के बाद के वर्षों में इस वर्ग पर सरकार ने सर्वाधिक ध्यान दिया है। लेकिन आरक्षण तथा अन्य योजनाओं का लाभ इन वर्गों को नहीं मिल पा रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अनुसूचित जाति का वह तबका जो गरीब है, निरक्षर है उसे इसका लाभ नहीं मिल पाता। हाँ, इस वर्ग का मलाईदार तबका इन लाभों को अवश्य अपने कब्जे में लेकर सुविधाओं का उपभोग कर रहा है। लेकिन

इससे वह अनुसूचित जातियां जो मैला ढो रही हैं, सड़क साफ कर रही हैं या भूमिहीन, रोजगारहीन हैं; उन्हें कोई लाभ नहीं हो रहा है।

16.5 गिरिजन-परिजन विकास के प्रयास

ऐसा नहीं है कि गिरिजन-परिजन विकास के लिए प्रयास नहीं हुए हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक उदाहरण इस संदर्भ पें उपलब्ध हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने अनुसूचित जनजाति एवं जाति के विकास के लिए अनेक प्रयास किये हैं।

सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति के विकास के लिए किये गये प्रमुख कार्यों का वर्णन निम्नवत् हैं -

(i) जनजातीय उपयोजना– अनुसूचित जनजातियों के लिए सन् 1974 से जनजातीय उपयोजना की अभिनव परिवर्तन वाली रणनीति शुरु की गयी। इस उपयोजना का उद्देश्य केन्द्र व राज्य सभी से जनसंख्या के अनुपात में जनजातियों के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था सुनिश्चित कराना है। इस उपयोजना का विस्तार 21 राज्यों तथा 2 केन्द्रशासित प्रदेशों में किया गया है। इस मद में पारिवारिक आय के अंतर को कम करने के लिए केन्द्र सरकार विशेष केन्द्रीय सहायता भी प्रदान कर रही है। इसके लिए वर्ष 2004-05 के दौरान राज्यों को 497 करोड़ रुपये जारी किये गये।

(ii) अनुच्छेद 275(1) के तहत अनुदान - भारतीय संविधान में अनुच्छेद 275(1) के तहत अनुसूचित जनजातियों के कल्याण को बढ़ावा देने और अनुसूचित क्षेत्रों के समान करने के लिए सुनिश्चित विशेष वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया। जनजातिय मामलों का मंत्रालय 21 जनजातीय उपयोजनाओं तथा जनजातीय बहुल चार राज्यों को अनुदान देता है।

(iii) एकलव्य मॉडल रेजिडेंसियल स्कूल - इस विद्यालय का उद्देश्य प्रशासनिक व अन्य क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों की भागीदारी बढ़ाना है। इसके लिए 1997-98 से संविधान की धारा 275(1) के तहत अर्जित कोष का एक हिस्सा दिया जा रहा है।

(iv) आदिम जनजातीय समूहों के लिए योजना - वर्ष 1998-99 से इन समूहों के सर्वांगीण विकास के लिए केन्द्र ने यह योजना शुरु की है। इसके तहत अन्य योजनाओं में शामिल नहीं की गयी परियोजनाओं के लिए समन्वित जनजातीय विकास परियोजनाओं, शोध संस्थानों व स्वैच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

(v)जनजातीय शोध संस्थान - राज्य सरकारों को जनजातीय विकास की योजना बनाने के लिए जरूरी जानकारी उपलब्ध कराने, आंकड़ा संग्रहण, पारम्परिक कानूनों को सूचीबद्ध करने, कार्यशाला व जागरूकता कार्यक्रम चलाने आदि के उद्देश्य से ऐसे शोध संस्थान स्थापित किये गये हैं। वर्तमान में 16 राज्यों में ऐसे

संस्थान कार्यरत हैं।

(vi) पंचायतों का प्रावधान (अनसूचित क्षेत्रों का विस्तार) कानून (पेसा) 1996 - पेसा के अन्तर्गत संबंधित स्थानीय समुदायों को छिटपुट वनोत्पादों पर मालिकाना हक दिया गया है इसका उद्देश्य कम से कम 31 दिसंबर सन् 1993 से लगातार वन भूमि पर रहने वाली जनजातियों को बेरोक-टोक बसने का अपरिवर्तनीय अधिकार देना है।

(vii) अनुसूचित जातियों के वन अधिकारों की पहचान - देश में लगभग 3000 वन्य गाँव हैं। वन चकबन्दी, अभ्यारण्य घोषणा, सुरक्षित वन क्षेत्र निर्धारण आदि के चलते इनका अस्तित्व खतरे में पड़ गया है तथा बेदखली के डर से इन वनवासी जातियों में असंतोष फैला रहा है जिसके निराकरण के लिए उनके वन अधिकारों के पहचान की व्यवस्था की जा रही है।

(viii) राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त विकास निगम - सरकार ने सन 2001 में इसका गठन किया है। निगम 10 लाख तक की आयवर्धक योजनाओं के लिए धन की व्यवस्था करता है। यह कौशल विकास तथा संयोजन सेवाएँ भी प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिसंघ (ट्राइफेड) सन 1987 से, पुनर्वास नीति (2004), आदान-प्रदान भ्रमण कार्यक्रम, मैट्रिक बाद छात्रवृत्ति कार्यक्रम (1944), बालक-बालिका छात्रावास (1989-90), व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना (1992-93), आश्रम विद्यालय (1990-91) , राष्ट्रीय विदेशी छात्रवृत्ति योजना, पुस्तक बैंक तथा अन्य योजनाएँ अनुसूचित जनजाति विकास के लिए क्रियान्वित की जा रही हैं। इनके लिए अलग अनुसूचित जनजाति आयोग 2002 में बना।

गिरिजनों के सामान ही परिजनों के लिए भी अनेक योजनाएं व कार्यक्रम चलाकर उन्हे ऊपर उठाने का कार्य किया जा रहा है वस्तुत: अनुसूचित जातियों का विकास स्वाधीनता आंदोलन के समय से ही शुरु कर दिया गया था। इस दृष्टि से आधुनिक भारत में राष्ट्रपिता महात्मागाँधी के योगदान को किसी प्रकार नकारा नहीं जा सकता। अनुसूचित जातियों को सम्मानपूर्वक जीवन यापन के लिए महात्मा गांधी ने आजीवन कार्य किया। अछूतोद्धार व अन्य उपाय इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने 'हरिजन' संबोधन के माध्यम से श्रेष्ठता का प्रतीक उन्हें प्रदान किया। बाद में डॉ० अम्बेदकर ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। दलितों को राजनैतिक व सामाजिक रूप से जागरूक करने में उनका योगदान प्रशंसनीय है।

आजादी के बाद भारत सरकार ने इस वर्ग के लिए सर्वाधिक कार्य किया है। आरक्षण के अतिरिक्त अनेक अन्य कल्याणपरक योजनाएँ इनके विकास के लिए चलाई जा रही हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नांकित हैं -

(i) विविध आयोग - राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग एक संवैधानिक संस्था के रूप में इनको उपलब्ध कराई गई सुरक्षा पर निगरानी और उनके कल्याण से जुड़े मुद्दों की समीक्षा करती है। इसे सिविल न्यायालय के समान अधिकार प्राप्त हैं। इसी

प्रकार सफाई कर्मचारियों की संरक्षा व कल्याण के लिए राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग बनाया गया है।

(ii) 1955 तथा 1989 के अधिनियम - नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 के माध्यम से इन पर होने वाले अत्याचारों की रोकथाम की व्यवस्था की गयी है।

(iii) आर्थिक विकास हेतु निगम - राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त और विकास निगम, गरीबी रेखा के नीचे के इस वर्ग के लोगों के लिए अर्थिक सहायता, प्रशिक्षण, उद्यमिता विकास कार्यक्रम चलाता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी वित्त और विकास निगम सफाई कर्मियों की आय बढ़ाने हेतु सहायता प्रदान करता है। इस समय 26 राज्य केन्द्रशासित क्षेत्रों में अलग से राज्य अनुसूचित जाति विकास निगम कार्यरत हैं।

(iv) छात्रवृत्ति योजनाएं– अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए बाबसाहेब डा० अम्बेदकर फाउण्डेशन, कोचिंग योजना, विदेशों में उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति तथा यात्रा अनुदान, मैट्रिक पूर्व व बाद छात्रवृत्ति योजनाएँ छात्रावास योजनाएँ आदि संचालित की जा रही हैं।

इसके अतिरिक्त विसेष केन्द्रीय सहायता व संघटक योजना, शौचालय व गृह निर्माण योजनाएँ महिला व बाल विकास योजनाएँ, पंचायतों में आरक्षण आदि प्रावधान कर इनके विकास के प्रयास किये जा रहे हैं।

16.6 गिरिजन-परिजन एवं विकास संचार

विकास के लिए संचार या विकास संचार वर्तमान समय के विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक हो चुका है। गिरिजन-परिजन के संदर्भ में विकास संचार की आवश्यकता से कोई इंकार नहीं कर सकता। सरकारी/गैर-सरकारी; प्रत्येक स्तर पर विकास की सूचनाओं को इन वर्गों तक पहुँचाने, उन्हें मुख्य धारा से जुड़ाव के लिए प्रेरित करने तथा उनकी समस्याओं आदि को सामने लाने में विकास संचार की प्रभावी भूमिका हैं।

अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति दोनों ही समाज में हाशिए पर खड़े वर्ग हैं। अभी भी इनकी आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा इन वर्गों के लिए किए जा रहे विकास के प्रयासों से कोसों दूर है। उनको यह पता ही नहीं है कि उनके अधिकार क्या हैं, उन्हें कौन सी विशेष सुविधाएँ मिल रही हैं, उनके विकास के लिए क्या प्रयास किये जा रहे हैं, आदि।

ऐसे में इन वर्गों से संप्रेषण की ऐसी व्यवस्था कायम करना आवश्यक है जो इनके सामाजिक - मानसिक स्तर के अनुकूल होकर इनसे संबंध स्थापित कर सकें। इसके लिए इनकी संचार आवश्यकताओं की पहचान करना आवश्यक है। यह वर्ग किस तरह के संचार संदेशों के अनुकूल हैं अथवा संप्रेषण के किस रूप की इन्हें

सर्वाधिक आवश्यकता है इसकी पहचान भी जरूरी है।

इन वर्गों के लिए विकास संचार की सूचनात्मक तथा उत्प्रेरणात्मक भूमिका अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त चूँकि इनकी आबादी का एक बड़ा हिस्सा निरक्षर अथवा अल्प साक्षर है अत: विकास संदेशों की भाषा व प्रस्तुती अत्यन्त सरल व इनके पंरिवेश के अनुकूल होनी चाहिए। चित्रात्मक तथा ध्वन्यात्मक संदेश इन्हें जागरूक बनाने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

गिरिजन-परिजन में जो लोग पढ़े-लिखे जागरूक हैं; उन्हें ओपीनियन लीडर के रूप में संचार कौशल के विकास के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता हैं। इन्हें जनमाध्यमों से जोड़कर गिरिजन-परिजन की समस्याओं की बेहतर पड़ताल की जा सकती है तथा उसके अनुरूप विकास संदेशों की रचना की जा सकती है। गिरिजन-परिजन के लिए ऐसी विकास संचार की रणनीति होनी चाहिए जिसमें सरल तथा सर्वग्राह्य संदेशों की रचना की जाय, सामुदायिक व परम्परागत माध्यमों का बेहतर प्रयोग सुनिश्चित किया जाय तथा सूचना उत्प्रेरणा व मूल्यांकन पर विशेष जोर दिया जाय।

16.7 गिरिजन-परिजन एवं जनमाध्यम

गिरिजन-परिजन के विकास में संचार का प्रभावी उपयोग हो, इसके लिए उनके जनमाध्यम उपयोग की बेहतर समझ जरूरी है। हालांकि वर्तमान समय में उपलब्ध जनमाध्यमों की पहुँच जाति, क्षेत्र या अन्य किसी विभेद का अनुपालन नहीं करती। लेकिन गिरिजनों के संदर्भ में परम्परागत माध्यमों की प्रभावी उपस्थिति को जानना आवश्यक है।

परम्परागत जनमाध्यम अनुसूचित जनजातियों के बीच अभी भी सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। अभी भी देश के विभिन्न हिस्सों में आदिवासी गीत, संगीत, नृत्य, उत्सव आदि प्रभावी रूप से उपस्थित हैं। अनुसूचित जातियां परम्परागत माध्यमों से गहराई से जुड़ी हैं। उनकी परम्परागत आयोजनों में बढ़-चढ़कर सामूहिक भागीदारी होती है। यह माध्यम जनजातियों को एकत्रित करने, संगठित करने, उद्वेलित करने, उत्प्रेरित करने में सर्वाधिक सक्षम भी हैं।

इसके अतिरिक्त गिरिजन-परिजन आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा रेडियो और टीवी का नियमित श्रोता/दर्शक है। रेडियो और टीवी ने इनके सामाजिक-सांस्कृतिक एवं वैचारिक रूपान्तरण में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई है। ग्रामीण क्षेत्रों में गिरिजन-परिजन के लिए कम्यूनिटी रेडियो तथा कम्यूनिटी टीवी जैसे प्रयोग भी किये जा सकते हैं।

इस संदर्भ में झाबुआ डेवलपमेंट कम्यूनिकेशन प्रोजेक्ट का उदाहरण महत्वपूर्ण है। छत्तीसगढ़ के झाबुआ क्षेत्र की 85% जनसंख्या आदिवासी है। प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से सम्पन्न यह क्षेत्र देश के अत्यन्त पिछड़े क्षेत्रों में गिना जाता है। सन 1985

स्पेस एप्लिकेशन सेंटर (अहमदाबाद) की डेवलपमेंट एण्ड कम्यूनिकेशन यूनिट (DECU) ने यह कार्यक्रम शुरु किया। इसमें दूर-दराज व ग्रामीण इलाकों में 150 डायरेक्ट रिसेप्शन सिस्टम (सेटेलाइट डिश, टीवी सेट्स, वी सी आर तथा अन्य उपकरण) लगाये गये तथा नियमित रूप से DECU द्वारा तैयार 2 घण्टे के कार्यक्रमों का उन पर प्रसारण किया गया। इससे प्रोजेक्ट के क्षेत्र में जनता में सामाजिक व्यवहार, गतिशीलता तथा नयी बातों की स्वीकार्यता के प्रति सकारात्मक रुझान व परिवर्तन दर्ज किये गये।

इसके अतिरिक्त, हालांकि मुद्रित माध्यमो की पहुँच तुलनात्मक रूप से इन क्षेत्रों में कम है, फिर भी उनके प्रभावी उपयोग की संभावनाएं काफी हैं। ओपिनियन लीडरों के लिए ट्रेनिंग मैन्युअल, संदेश पुस्तिकाएँ, किताबें, छोटे पत्र-पत्रिकाएँ इस दिशा में उपयोगी हो सकते हैं कि वे गिरिजन-परिजन के विकास पर खुद को केन्द्रित करें। आउटडोर पब्लिसिटी व ध्वन्यात्मक प्रचार माध्यम भी इनका ध्यान आकर्षित कर रहे हैं।

गिरिजन-परिजन के विकास के लिए जनमाध्यमों का प्रभावी उपयोग होना चाहिए। इस दृष्टि से कम्यूनिटी रेडियो व टीवी को बढ़ावा, वैकल्पिक मीडिया को प्रोत्साहन, उपर्युक्त नारे व होर्डिंग का प्रयोग, परम्परागत माध्यमों को तकनीकी तथा सॉफ्टवेयर सहयोग जैसे उपाय महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

16.8 सारांश

गिरिजन-परिजन भी सबके समान भारतीय भू-भाग के निवासी और वृहद भारतीय समाज का अभिन्न अंग हैं। यह वर्ग अगर पिछड़ा रहता है तो राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति का दावा करना हमारे लिए कभी संभव नहीं होगा। हालांकि भारत सरकार ने इनके विकास के लिए विशेष प्रयत्न किये हैं। इसके अतिरिक्त संविधान में इन्हें विशेष दर्जा दिया गया है तथा आरक्षण की व्यवस्था इनके लिए सुनिश्चित की गयी है। लेकिन इसके बावजूद सामाजिक-शैक्षणिक-आर्थिक तथा सामाजिक कारकों के चलते यह वर्ग विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने से दूर हैं।

इनके विकास में विकास संचार की प्रभावी भूमिका हो सकती है। जनमाध्यमों का इस दृष्टि से प्रभावी उपयोग किया जा सकता है। झाबुआ डेवलमेंट प्रोजेक्ट जैसे कार्यक्रम इस दृष्टि से उपयोगी भी साबित हुए हैं। इस दृष्टि से परम्परागत माध्यमों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके अलावा वैकल्पिक मीडिया, लघु समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं, आउटडोर मीडिया आदि पर भी ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

16.9 संदर्भ ग्रंथ

(i) डॉ० अर्जुन तिवारी - जनसंचार समग्र

(ii) डॉ० अनिल कुमार उपाध्याय - पत्रकारिता एवं विकास संचार

(iii) भारत, संदर्भ ग्रंथ, 2006

(iv) सिंह एवं पाण्डेय - समकालीन भारतीय समाज

16.10 पारिभाषिक शब्दावली

(i) झूमिंग कृषि - मुख्यत: आदिवासी व पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि की वह पद्धति जिसमें एक अथवा कुछ फसलें प्राप्त करने के बाद एक खेत को छोड़कर दूसरे खेत का उपयोग किया जाता है। यह पद्धति अत्यन्त अवैज्ञानिक पद्धति है जिससे वन-विनाश तथा मृदा क्षरण जैसी समस्याएँ पैदा होती है।

(ii) वन्य गांव - उन आदिवासी गांवों को वन्य गांव कहा जाता है जिनका गाँव के रूप में तो वजूद होता है लेकिन राजस्व गांव के रूप में ये दर्ज नहीं होते। वन्य संसाधनों के दोहन के लिए दूर-दराज के दुर्गम वन क्षेत्रों में ब्रिटिशकाल में इस तरह के गांव बसाने को प्रोत्साहन दिया गया था। अभिलेखों में दर्ज नहीं होने के चलते इन गांवों के आदिवासी वन-अधिकार से वंचित रह गये जिसके चलते अनेक क्षेत्रों में अभी संघर्ष की स्थितियाँ बनी हुई हैं।

(iii) ओपिनियन लीडर - ओपीनियन लीडर की पहचान उस अनौपचारिक नेतृत्व के रूप में है जो अपने परिवेश अथवा अपने संपर्क में आने वाले व्यक्तियों के विचारों को प्रभावित करता है। स्कूल शिक्षक, सरपंच, परिवार का मुखिया, बड़े-बुजुर्ग, ग्राम सेवक-सेविकाएँ, पत्रकार आदि ओपिनियन लीडर हो सकते हैं। ओपिनियन लीडर को दो प्रकारों में विभक्त किया गया है। (i) मोनोमार्फिक, (ii) पोलीमार्फिक। मोनोमार्फिक ओपिनियन लीडर आधुनिक औद्योगिक समाजों तथा पोलीमार्फिक ओपिनियन लीडर परम्परागत समाजों में पाये जाते हैं।

16.11 प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. गिरिजन-परिजन का अर्थ व भारत में इनकी स्थिति बताएँ।

2. गिरिजन-परिजन विकास में विकास संचार एवं जनमाध्यमों की भूमिका बताइये।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. अनुसूचित जनजाति के विकास की सांस्कृतिक बाधा बताइए।

2. वन्य अधिकार क्या है?

3. वन्य गांव से आप क्या समझते हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. झाबुआ डेवलपमेंट कम्यूनिकेशन प्रोजेक्ट का क्षेत्र है-

(क) मध्य प्रदेश में

(ख) झारखण्ड में

(ग) छत्तीसगढ़ में

(घ) मेघालय में

2. अनुसूचित जनजाति आयो। बना -

(क) 2000 में

(ख) 2001 में

(ग) 2002 में

(घ) 2003 में

3. राज्य स्तरीय अनुसूचित जाति विकास निगम कार्यरत हैं -

(क) 26 राज्य / केन्द्रशासित क्षेत्रों में

(ख) सभी राज्य / केन्द्र शासित क्षेत्रों में

(ग) केवल केन्द्रशासित क्षेत्रों में

(घ) सभी विकल्प गलत हैं

4. अनुसूचित जनजातियों को संविधान की धारा में पारिभाषित किया गया है-

(क) 275 (1)

(ख) 342

(ग) 366(25)

(घ) इनमें से कोई नहीं

5. हरिजन शब्द दिया -

(क) डॉ० अम्बेदकर ने

(ख) महर्षि कर्वे ने

(ग) अंग्रेजों ने

(घ) महात्मा गांधी ने

6. अनुसूचित जनजाति निर्दिष्ट नहीं है -

(क) केरल में

(ख) कर्नाटक में

(ग) हरियाणा में

(घ) उत्तराखण्ड में

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

1. (ग)
2. (ग)
3. (क)
4. (ग)
5. (घ)
6. (ग)

इकाई-17 विकास एवं पर्यावरण

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 पर्यावरण का अर्थ

17.3 पर्यावरण का अंग

17.4 पर्यावरण प्रदूषण

17.5 पर्यावरण एवं विकास

17.6 पर्यावरण संरक्षण

17.7 पर्यावरण संरक्षण एवं मीडिया

17.8 भारत में पर्यावरण संरक्षण

17.9 सारांश

17.10 संदर्भ ग्रंथ

17.11 पारिभाषिक शब्दावली

17.12 प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे -

(i) पर्यावरण क्या है तथा इसके विविध रूप।

(ii) पर्यावरण प्रदूषण क्या है तथा इसके नुकसान।

(iii) पर्यावरण एवं विकास का क्या संबंध है।

(iv) पर्यावरण संरक्षण तथा उसमें मीडिया की भूमिका।

(v) भारत में पर्यावरण की रक्षा के उपाय।

17.1 प्रस्तावना

पर्यावरण आज मनुष्य के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण चर्चा का बिन्दु, चिंता का विषय और संरक्षण का कार्यक्रम बन गया है। मनुष्य जिस वातावरण में रहता है, जिसमें साँस लेता है, जिससे उसके जीवन की जरूरी चीजें, जैसे - अन्न, पानी और हवा प्राप्त होती हैं, उसकी स्थिति का मानव के अस्तित्व से गहरा अंतर्संबंध होता है।

यदि हम मानव विकास के समग्र कालखण्ड का अवलोकन करें तो उसका पर्यावरण से गहरा रिश्ता प्रकट होता है। आरम्भ में मनुष्य प्रकृति पर पूर्णतया आश्रित था। वह जल स्रोतों से अपनी प्यास बुझाता था, जंगलों में फल और कंद-मूल आखेट से उसकी क्षुधा शांत होती थी तथा विशाल पर्वतों की मजबूत चट्टानी कंदराएं, पेड़ों की शाखाएं उसे आसरा देती थीं। यह आदिम मानव की कहानी थी। सभ्यता के विकास के क्रम में उसने घुमन्तू जीवन शैली को धीरे-धीरे स्थायी बनाया। स्थायी निवास की प्रक्रिया में रहने के लिए बस्तियां बसाने तथा खेती के लिए जमीन प्राप्त करने के क्रम में उसने शायद पहली बार पर्यावरण की प्राकृतिक अवस्था में गंभीर हस्तक्षेप किया। बस्तियों और खेतों के लिए जमीनें साफ की गयीं, जंगल काटे गये। धीरे-धीरे मनुष्य की तकनीकी और प्रौद्योगिकीय प्रगति होती गयी।

प्रगति के इस क्रम में मनुष्य तथा पर्यावरण के रिश्ते में निरंतर बदलाव दृष्टिगोचर हुए। आरम्भ में मनुष्य ने पर्यावरण से सामन्जस्य स्थापित किया । उसने ऊँचे कगारों पर पानी से सुरक्षित बस्तियां बनाई। पहाडों के साथ उसने घुमुन्तू जीवन शैली अपनाई तो समुद्र के पास उसने जल/मछली को जीवन का आधार बनाया। उसके विस्तार को सीमाएँ नदी, नालों, पहाड़ और जंगलों ने तय की। लेकिन मनुष्य ने इस सीमा को निरंतर अपने बुद्धि कौशल से सीमित करने के प्रयास किये।

जैसे-जैसे मनुष्यों की आबादी बढ़ती गयी, तकनीकें परिष्कृत होती गयीं - उसके प्रकृति पर विजय पाने के प्रयास भी परवान चढ़ते गये। कल तक जो मानव प्रकृति का दास था, धीरे-धीरे उसने प्रकृति पर विजय पाने के प्रयास शुरु कर दिये। उसने पहाड़ों का सीना चीरकर रास्ते बनाये, जंगलों का सफाया कर बस्तियां बसाई, नदियों का रास्ता रोककर बाँध बनाये और अन्य जीव-जन्तुओं का आखेट कर, उन्हें पालतू बनाकर अपनी सर्वोच्चता स्थापित की।

मानव सभ्यता के विस्तार के क्रम में प्राकृतिक पर्यावरण का निरंतर ह्रास हुआ। मध्य काल के परवर्ती समय में आधुनिक औद्योगिक समाज के बीज औद्योगिक क्रांति से पड़ गये। औद्योगिक क्रांति ने वृहद् पैमाने पर उत्पादन, मशीनीकरण और नगरीकरण को जन्म दिया। दैत्याकार आग उगलती चिमनियों की संख्या निरन्तर बढ़ती गयी। कंक्रीट के जंगलों का गगनचुम्बी रूप निरंतर निखरता गया। कोयला और पेट्रोल जैसे ईंधनों तथा अन्य सैकड़ों खनिजों की खोज में धरती का सीना खोखला होता गया। बस्तियों की जरुरतों ने जंगलों की सम्पन्नता को विपन्नता में बदल दिया।

यहीं से प्रदूषण रूपी दानव दिखाई देने लगा। 19वीं सदी तक इस दानव का चेहरा विकास की आड़ में छिपा रहा। लेकिन 20वीं सदी के शुरुआत से ही कुछ लोगों को जरूर इसकी गंभीरता का थोड़ा सा आभास मिला। 20वीं सदी का आधा समय बीतते-बीतते यह स्पष्ट होने लगा कि विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति को चोट पहुँचाकर हम जिस प्रदूषण रूपी दानव को आकार दे रहे हैं, वह कल हमारे लिए जरूर भस्मासुर बनेगा।

अपने विनाश की आशंका को देखकर पर्यावरण के प्रांत मनुष्य की चिंता जागृत हुई। आज यह दुनिया की सबसे बड़ी चिंता है। हमने जिस सभ्यता को आकार

दिया है वह पर्यावरण के उन्हीं संसाधनों पर ज्यादा निर्भर है जिसकी समाप्ति आज नहीं तो कल होनी है। दुनिया में आबादी लगातार बढ़ती जा रही है और उसका पर्यावरण पर भारी दबाव पड़ रहा है। मिट्टी, हवा, आकाश, जमीन, पानी, सागर, पहाड़ - सब दूषित और विषैले होते जा रहे हैं। हमारी लिप्सा मौत बनकर प्रदूषण के रूप में हमारे सामने खड़ी है। यदि हमने इसको रोकने का समुचित उपाय नहीं किया तो प्रदूषण ही धरती से मानव के विनाश का सबसे बड़ा कारण बनेगा।

17.2 पर्यावरण का अर्थ

प्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक फिटिंग के शब्दों में - "व्यक्ति के पारस्थितिक कारकों का योग पर्यावरण है।"

(``The totality of miller factors of an organism is Environment")

प्रसिद्धि वनस्पतिशास्त्री टाँसले (Tansley) के अनुसार - "समस्त प्रभावशाली दशाओं को, जिनमें प्राणी निवास करते हैं, पर्यावरण कहा जाता है।"

(``Al the effective conditions in which organism lives are called as Environment")

सामान्य रूप से हम कह सकते हैं कि पर्यावरण वह परिवृत्त योग है जो मनुष्य को चारों ओर से घेरे हुए है तथा उसके जीवन और क्रिया-कलापों पर प्रभाव डालता है। यह परिवृत्त अपने में समस्त बाह्य तथ्यों, वस्तुओं, स्थितियों तथा दशाओं को अपने में समाहित करता है। पर्यावरण में भौतिक -अभौतिक (Physical and metaphysical), जैविक-अजैविक (Biotic and abiotic) तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। वृहद् प्राकृतिक तत्वों जैसे वायुमण्डल, नदी, पर्वत, मिट्टी, वनस्पति से लेकर सूक्ष्म जैविक तत्वों जैसे-जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े, पेड़-पौधे, जीवाणु, सूक्ष्मकण आदि इसमें समाहित किये जाते हैं। यही नहीं, पर्यावरण की अवधारणा केवल भौतिक अथवा प्राकृतिक तत्वों तक ही सीमित नहीं है। इसके अन्तर्गत मानवीय क्रियाओं को भी समाहित किया जाता है। समुदाय, आवास, बस्तियां, सामाजिक अन्त:क्रियाएं आदि भी पर्यावरण की अवधारणा में सम्मिलित होती हैं।

मनुष्य अपने पर्यावरण की ही उपज होता है। उसमें तथा पर्यावरण में गहरा अन्तर्संबंध है। इसे हम तीन बिंदुओं द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं -

(i) प्रत्युत्तर (Response)

(ii) अनुकूलन (Adaptation)

(iii) रूपान्तरण तथा मानव की स्वतंत्र इच्छा (Modification and free will of man)

पर्यावरण मनुष्य को प्रभावित करता है पर्यावरण का यह प्रभाव शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार का होता है। पर्यावरण के जो प्रभाव तत्काल तथा स्वत: मनुष्य पर परिलक्षित होते हैं उन्हें प्रत्युत्तर की श्रेणी में रखा जाता है। उदाहरण स्वरूप ठण्ड

की स्थिति में शरीर में कंपकंपी उठना, गर्मी की स्थिति में पसीना आना आदि।

पर्यावरण के लक्षणों या विशेषताओं से, परिस्थितियों से जब मनुष्य मानसिक तथा शारीरिक रूप से समायोजन करता है तो उसे अनुकूलन कहा जाता हैं। ठण्ड की स्थिति में गर्म कपड़े पहनना या अलाव की व्यवस्था करना, गर्मी की स्थिति में ठण्डी हवा की, पंखे, कूलर अथवा एसी की व्यवस्था इस अनुकूलन के कुछ उदाहरण हैं।

प्रत्युत्तर तथा अनुकूलन के अतिरिक्त रूपान्तरण एवं मानव की स्वतंत्र इच्छा का भी पर्यावरण तथा मनुष्य के संबंध में महत्वपूर्ण स्थान होता है। मनुष्य के लिये प्राकृतिक पर्यावरण में एक सीमा तक कार्य करने की स्वतंत्रता होती है। मानव अपनी स्वतंत्र इच्छा से अपनी आवश्यकता के अनुरूप इनमें रूपान्तरण करता है। जैसे रेगिस्तानी जलवायु में मानव के लिए खेती करना संभव नहीं है। लेकिन वह रूपान्तरण की प्रक्रिया द्वारा वहाँ सिंचाई की व्यवस्था करके कृषि करता है। प्रकृति की सीमा उसे चावल की खेती नहीं करने देती लेकिन वह गेहूँ, मोटे-अनाज आदि की पैदावार करता है। वनों की कटाई, आग का प्रयोग कर, सिंचाई सुविधा का प्रयोग कर, पशुचारण की व्यवस्था करके, खदानों की व्यवस्था करके, कृषि में यंत्रों व उर्वरकों का प्रयोग करके, प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर नहरें, बाँध, सड़क आदि बनाकर मनुष्य पर्यावरण में रूपान्तरण की प्रक्रिया को अंजाम देता है।

17.3 पर्यावरण के अंग

पर्यावरण को हम मुख्य रूप से दो भागों में बाँट सकते हैं -

(i) प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment)

(ii) सांस्कृतिक पर्यावरण (Cultural Environment)

प्रत्येक पर्यावरण के तीन प्रमुख अंग होते हैं -

(i) पर्यावरण की शक्तियां (Forces of environment)

(ii) पर्यावरण की प्रक्रियाएँ (Processes of environment) तथा

(iii) पर्यावरण के तत्व (Elements of environment)

इनका संक्षेप प्रस्तुतीकरण निम्न रूप में है -

प्राकृतिक पर्यावरण

शक्तियां

पृथ्वी व ग्रहीय गुरुत्वाकर्षण, पृथ्वी की दैनिक व वार्षिक गति, परिभ्रमण, गुरुत्वाकर्षण, भू-गर्भिक शक्तियां, ज्वालामुखी व विस्फोटक शक्तियां , सूर्यशक्ति, वायुमण्डलीय शक्ति तथा सागरीय या जलीय शक्ति

प्रक्रियाएँ

ताप विकिरण, ताप चालन, ताप संवहन, वायुगति, जल की गति, अनावृत्तिकरण, अपरदन, निक्षेपण

तत्व

भाव वाचक तत्व

देश की ज्यामितीय स्थिति, प्राकृतिक स्थिति, क्षेत्रफल, भौगोलिक स्थिति।

भौतिक तत्व

स्थलाकृति, जलवायु, चट्टानें, खनिज, मिट्टी, धरातलीय जलराशियां, भूमिगत जल, महासागर एवं तट

जैविक तत्व

प्राकृतिक वनस्पति, स्थानीय जीव-जन्तु, सूक्ष्म जीव

सांस्कृतिक पर्यावरण

शक्तियाँ

मानव, जनसंख्या वितरण, घनत्व, स्त्री-पुरुष अनुपात, आयु संरचना, जातीय संरचना, भौतिक व मानसिक संरचना

प्रक्रियाएँ

पोषण, सामूहीकरण, पुनरुत्पादन, संघर्ष, प्रवास, पृथक्करण, समायोजन, विशिष्टीकरण, अनुक्रमण

तत्व

जैविक प्रतिरूप

भोजन व पेय, वस्त्र, बस्तियां

आर्थिक प्रतिरूप

व्यवसाय, उद्योग, यातायात, विवाह, व्यापार, नौकरी आदि

तकनीकी प्रतिरूप

मशीन, उपकरण, कला, प्रौद्योगिकी

भाषा व साहित्य

धर्म, दर्शन, रचना

राजनैतिक संगठन

राज्य का रूप, संपति व संसाधन, सरकार, कानून, विचारधारा, अंतरराष्ट्रीय संबंध

सामाजिक संगठन

सामुदायिक जीवन, गृह, परिवार प्रथा,

सामाजिक विभाजन, श्रम विभाजन,

सामूहिक ढंग, प्रथाएँ, मेले एवं त्योहार,

सामाजिक विशेषताएँ, मान्यताएँ,

आदर्श तथा मूल्य।

उपरोक्त विभाजन पर्यावरण के संपूर्ण पक्षों को पूर्णतया स्पष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment) को हम निम्नांकित दो रूपों में बाँट सकते हैं -

(i) भौतिक पर्यावरण

(ii) जैविक पर्यावरण

भौतिक पर्यावरण के तीन रूप हैं -

(a) **स्थलीय पर्यावरण** - इसमें धरातलीय पर्यावरण को शामिल किया जाता हैं। इसे ठोस (Solid) पर्यावरण भी कहा जाता है। इसमें पर्वत, पठार, मैदान, रेगिस्तान आदि को सम्मिलित किया जाता है। चट्टानें तथा मृदा इसके मुख्य घटक हैं।

(b) **जलीय पर्यावरण** - इसमें जलीय पर्यावरण को सम्मिलित किया जाता है। नदी, समुद्र, झील, तालाब, वर्षा, जल धाराएँ, अन्य छोटी-बड़ी जलराशियां इसमें समाहित की जाती हैं।

(c) इसमें गैसों को सम्मिलित किया जाता है। हमारे वायुमण्डल की संरचना में गैसें महत्वपूर्ण हैं।

जैविक पर्यावरण को भी हम दो हिस्सों में बाँट सकते हैं -

(a) **वनस्पति (Flora)** – इसमें पेड़-पौधे, जंगल व अन्य सभी वनस्पतियाँ समाहित की जाती हैं।

(b) **जन्तु (Fauna)** – इसमें जीव-जंतु शामिल किये जाते हैं।

17.4 पर्यावरण प्रदूषण

प्रदूषण से आशय उस अवस्था से है जब किसी तत्व या पदार्थ की गुणवत्ता इतनी खराब हो जाती है कि उसका प्रयोग निरापद नहीं रह जाता है। प्रदूषण किसी तत्व में विषैलेपन में वृद्धि करता है। आज हमारा पर्यावरण इसी विषैलेपन का सामना कर रहा है। वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के विभिन्न अवयव भीषण रूप से प्रदूषित हो रहे हैं।

विकास की अंधी दौड़ और उपभोक्तावादी आदतों के चलते हम अपने पर्यावरण का निरंतर विनाश कर रहे हैं। दुनिया का हर आदमी आज पर्यावरण को दूषित करने में अपना योगदान दे रहा है। बड़े-बड़े कल-कारखाने, विशाल जनसंख्या द्वारा उत्सर्जित मल-जल (Sewage), असंख्य वाहन युद्ध व युद्धाभ्यास, बस्तियों का निर्माण, बाँध निर्माण, उत्खनन, प्राकृतिक संसाधनों का वृहद पैमाने पर दोहन आदि प्राकृतिक पर्यावरण में तेजी से क्षरण कर रहे हैं।

पर्यावरण प्रदूषण को हम मोटे तौर पर तीन भागों में बाँट सकते हैं -

(i) वायु प्रदूषण

(ii) जल प्रदूषण

(iii) ध्वनि प्रदूषण

(i) वायु प्रदूषण - हमारा वायुमण्डल विभिन्न गैसों के योग से निर्मित है। इन गैसों की मात्रा में संतुलन से ही पृथ्वी पर जीवन दशाएँ सुचारू रूप से संचालित होती है। वायु मण्डल की संरचना में प्रमुख रूप से नाइट्रोजन (78.09%) तथा ऑक्सीजन (20.95%) का योगदान है। इसके अतिरिक्त आर्गन (0.93%) एवं कार्बन डाई ऑक्साइड (0.03%) भी मौजूद हैं। अत्यन्त अल्प मात्रा में नेयॉन, क्रेप्टॉन, हीलियम, हाइड्रोजन, जेनॉन तथा ओजोन भी मौजूद हैं। वायु मानव जीवन के लिए सबसे अनिवार्य तत्व है। एक व्यक्ति 24 घण्टे में लगभग 22,000 बार साँस लेता है। तथा इस प्रक्रिया में ऑक्सीजन प्रधान निचली सतह से लगभग 35 गैलन या 16 किग्रा गैस अंदर लेता है। व्यक्ति के जीवित रहने के लिए वायु सर्वाधिक आवश्यक है।

लेकिन विविध मानवीय प्रक्रियाओं से वायु की गुणवत्ता में निरन्तर गिरावट आ रही है। आज कारखानों की चिमनियां, वाहन, चूल्हे, धूल, रासायनिक दहन प्रक्रियाएं आदि से निरन्तर खतरनाक गैसों का उत्सर्जन वायुमण्डल में हो रहा है। नगरीकरण और औद्योगीकरण का इसमें महत्वपूर्ण योगदान है। इस प्रक्रिया में कार्बन डाई ऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन, नाइट्रोजन ऑक्साइड, सल्फर कम्पाउण्ड, अमोनिया, मिथेन, मिथाइल ब्रोमाइड, हाइड्रोकार्बन आदि की मात्रा खतरनाक रूप से वायुमण्डल में बढ़ती जा रही है।

(ii) जल प्रदूषण - जल मानव जीवन और उसकी गतिशीलता दोनों के लिए आवश्यक है। मानव शरीर का तीन चौथाई से ज्यादा भाग जल से ही निर्मित है। इसके अतिरिक्त जल की आवश्यकता सिंचाई, परिवहन, विद्यतु उत्पादन, औद्योगिक उत्पादन तथा सीवेज के निस्तारण में भी पड़ती है। जब प्रदूषकों के कारण जल अपनी जैविक, रासायनिक तथा भौतिक विशेषताओं को खो देता है तो यह परिवर्तन जीवन के लिए घातक हो जाते हैं जिसे जल प्रदूषण के रूप में स्पष्ट किया जाता है।

सभ्यता के विस्तार के साथ मनुष्य ने निरन्तर जल स्रोतों को प्रदूषित करने का कार्य किया है। कारखानों से निकलने वाले जहरीले रसायन, ठोस व तरल अपशिष्ट, बस्तियों के मल-जल, कूड़ा-करकट आदि से निरन्तर जल दूषित हो रहा है। हमारी सतत् वाहिनी नदियाँ तेजी से जहरीली हो रही हैं। बढ़ती आबादी, तीव्र नगरीय विस्तार तथा औद्योगीकरण का जल प्रदूषण में महत्वपूर्ण योगदान है। पूरा विश्व आज जलसंकट का सामना कर रहा है तथा आने वाले सालों में कुछ विशेषज्ञ पानी के लिए तीसरे विश्वयुद्ध की आशंकाएं भी व्यक्त कर रहे हैं।

(iii) ध्वनि प्रदूषण - ध्वनि प्रदूषण को सघन व निरन्तर ध्वनि की उस मात्रा के प्रवाह के रूप में स्पष्ट कर सकते हैं जो मानव की ग्राह्य क्षमता से अधिक होती है तथा उसको मानसिक व शारीरिक रूप से नुकसान पहुँचाती है। अन्य प्रदूषण के रूपों के विपरीत ध्वनि प्रदूषण अपने स्रोत के इर्द-गिर्द ही बना रहता है। मानव की गतिविधियां ध्वनि प्रदूषण का सबसे बड़ा कारक हैं। ध्वनि को हम डेसिबल में

अभिव्यक्त करते हैं। डेसिबल स्केल में वृद्धि पहले की अवस्था से अगले अंक में दस गुना बढ़ोत्तरी को स्पष्ट करती है। जैसे यदि 10 डेसिबल से 11 डेसिबल का परिवर्तन है तो यह ग्यारहवां डेसिबल 10 इकाई का प्रतिनिधित्व करेगा। विभिन्न स्थितियों में एक अनुमन्य ध्वनि सीमा होती है जिससे ऊपर की ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण में सम्मिलित किया जाता है।

स्वीकार्य ध्वनि की सीमा

स्थिति	ध्वनि की सीमा (डेसिबल)
ग्रामीण क्षेत्र	25-35
उपनगरीय क्षेत्र	30-40
नगरीय आवासीय क्षेत्र	35-40
नगरीय आवासीय-व्यावसायिक क्षेत्र	40-45
नगर क्षेत्र	45-55
औद्योगिक क्षेत्र	50-60

सामान्य तौर पर मनुष्य अधिकतम 60 डेसिबल की सीमा तक ध्वनि को बर्दास्त कर सकता है। उससे अधिक की सीमा ध्वनि प्रदूषण के रूप में स्पष्ट की जा सकती है।

लाउडस्पीकर तथा अन्य ध्वनि विस्तारक यंत्र, तेज स्वर वाद्य यंत्र, मोटर गाड़ियों के हार्न, जेट व अन्य विमान, मशीनें आदि शोर के कुछ प्रमुख स्रोत हैं। ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव चिड़चिड़ापन, अस्थायी व स्थायी बहरापन, रक्तचाप, मानसिक असंतुलन, नर्वस सिस्टम की गड़बड़ी तथा कभी-कभी हृदयाघात के रूप में भी देखा जा सकता है।

पर्यावरण प्रदूषण एक गंभीर समस्या है। यह पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व के लिए नितांत घातक है। औद्योगीकरण और नगरीकरण के साथ-साथ गरीबी और बढ़ती हुई जनसंख्या का पर्यावरण प्रदूषण में महत्वपूर्ण योगदान है। इससे मानव जीवन के समक्ष अनेक गंभीर समस्याएँ पैदा हुई हैं। वायुमण्डल में कार्बन डाई की अधिकता होती जा रही है तथा वैश्विक स्तर पर तापमान में वृद्धि से पहाड़ों पर जमा बर्फ पिघलने, द्वितीय क्षेत्रों के जलमग्न होने और मौसम चक्र की अनियमितता के खतरे पैदा हो गये हैं। सीएफसी गैसों के अत्यधिक रिसाव से ओजोन परत का क्षरण तेजी से हुआ है जिससे घातक पराबैंगनी (Ultravialet) किरणों के धरती तक आने के खतरे बढ़ गये हैं। वनोंन्मूलन व वृक्षों की संख्या में कमी से रेगिस्तान का प्रसार, वर्षा-चक्र की अनियमितता, मृदा क्षरण आदि समस्याएं बढ़ी हैं।

मानव स्वास्थ्य पर भी पर्यावरण प्रदूषण का गहरा असर पड़ा है। कैंसर, तपेदिक, अनेक जानलेवा ज्वर तथा कई भीषण रोग जानलेवा साबित हो रहे हैं। विशाल आबादी करोड़ों टन ठोस व तरल अपशिष्ट निस्तारित कर रही है, ऊर्जा का बड़ी मात्रा में उपभोग बढ़ रहा है तथा कभी नहीं नष्ट होने वाला प्लास्टिक का कचरा

बढ़ रहा है। इससे यह ग्रह अपने वजूद का संकट झेल रहा है।

17.5 पर्यावरण एवं विकास

पर्यावरण एवं विकास का गहरा अन्तर्संबंन्ध है। हम विकास की कल्पना बिना पर्यावरण संरक्षण के नहीं कर सकते। मोटे तौर पर पहले की स्थिति में होने वाले सकारात्मक परिवर्तन को हम विकास कहते हैं। प्रारम्भ में विकास से आशय केवल आर्थिक विकास से लगाया जाता था। जो देश अपने संसाधनों का जितना अधिक दोहन कर ले, अपने उत्पादन का स्तर जितना उच्च कर ले तथा उसकी आय जितनी बढ़ जाय, वह उतना ही विकसित माना जाता था। बड़े-बड़े कारखाने, विशाल नगरी, बसाव, सड़कों का जाल, व्यापारिक कृषि विकास के चिन्ह माने जाते रहे। विकास के इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मानव ने विशालकाय बाँध बनाये। वनों का सफाया किया, नहरों का जाल बिछाया, धरती की छाती खोदकर कीमती खनिज प्राप्त किये।

19वीं सदी के उत्तरार्ध तक विकास की यह अंधी दौड़-चलती रही। लेकिन 19वीं सदी के अंत में कुछ चिंतकों ने पर्यावरण का प्रश्न उठाया तथा उसके संरक्षण की बात की। लेकिन 20 वीं सदी के उत्तरार्ध में जब लोगों ने पहले वैश्विक ऊर्जा संकट (Global Energy Crisis) का सामना किया तो पर्यावरण और विकास के संबन्धों पर गंहराई से पुनर्विचार किया गया।

आज विकास को केवल आर्थिक विकास के रूप में नहीं देखा जा रहा है। उसमें पर्यावरण का प्रश्न भी गहराई से जुड़ा है। विकास की अवधारणा तभी पूर्ण मानी जाती है जब वह वर्तमान पीढ़ी के लिए सकारात्मक स्थितियां अर्जित करने के साथ-साथ भावी पीढ़ी के लिए भी संसाधनों का संरक्षण करे। यदि विकास की लक्ष्य पूर्ति पर्यावरण की कीमत पर की जाती है तो वह विकास नकारात्मक माना जाता है।

दुनिया के सभी देश आज विकास को पर्यावरण संरक्षण से जोड़कर देख रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों में यह दृष्टि अनिवार्य भी है क्योंकि संसाधनों के अंधाधुन्ध दोहन और अनियंत्रित औद्योगिकरण तथा नगरीकरण से हम जितना लाभ अर्जित करते हैं उसकी भरपूर कीमत भी हमें पर्यावरण को होने वाली क्षति के रूप में चुकानी पड़ती है। इस प्रकार पर्यावरण को नजरअंदाज कर विकास का स्वप्न नकारात्मक स्थितियों का ही सृजन करता है। आज विकास की संपूर्णता तभी हो सकती है जब हम उद्योग व नगरीकरण के लक्ष्यों के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण का भी ध्यान रखे, गगनचुंबी इमारतों के साथ-साथ हरे-भरे पेड़ों की कतारें भी जरूरी हैं। हमारे जलस्रोत स्वच्छ होने चाहिए। जिस हवा में हम सांस ले रहे हैं, उसमें धुँओं का जहर नहीं घुलना चाहिए। सिंचाई के लिए नहरों के साथ-साथ जमीन को ऊसर होने से रोकने के उपाय भी जरूरी हैं। खाद्यान्न उत्पादन के लक्ष्यों से मृदा की गुणवत्ता का तालमेल भी अवाश्यक है। कहने का तात्पर्य है कि आज विकास का औचित्य तभी है जब उससे पर्यावरण को क्षति नहीं पहुँचे तथा विकास की प्रक्रिया में पर्यावरण का जो नुकसान हो उसकी क्षतिपूर्ति की जा सके।

17.6 पर्यावरण संरक्षण

पर्यावरण संरक्षण से आशय पर्यावरण की रक्षा, संवर्धन व उसके पुनर्स्थापन से है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण पर प्राचीनकाल से ही जोर दिया जाता रहा है। वृक्ष, नदियां, पहाड़ आदि आरम्भ से ही हमारे पूज्य रहे हैं। हमारी धार्मिक परम्परा में कीड़े-मकोड़ों के लिए भी 'अन्नग्रास' अर्पण की परम्परा रही है। जीवों पर दया, वृक्षों की पूजा व रक्षा हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर है।

आधुनिक युग में वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण का प्रश्न उठाने का श्रेय संयुक्त राज्य अमेरिका को जाता है। 19वीं सदी के अंतिम दशक से ही पर्यावरण संरक्षण के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित होना शुरु हो गया था। औद्योगिक क्रांति तथा उसके फलस्वरूप विकसित औद्योगिक नगरीकृत समाज में अपनी तकनीकी तथा प्रौद्योगिकीय प्रगति का उपयोग मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों के भयंकर दोहन के रूप में शुरु किया। यूरोप के साहसी यात्रियों के पद चिन्हों पर औद्योगीकरण से समृद्ध इंग्लैण्ड, स्पेन, फ्रांस , पुर्तगाल आदि ने दुनियाभर में उपनिवेश स्थापति किये। इस उपनिवेशिक शासन ने गुलाम देशों में संसाधनों में भारी दोहन को तीव्र किया। उपनिवेशवाद ने चाहे-अनचाहे आधुनिक औद्योगीकरण का प्रसार पूरी दुनिया में किया। इससे पर्यावरण का दोहन भी तेजी से हुआ।

20वीं सदी के मध्य तक दुनिया के अधिकांश देश स्वतंत्र हो चुके थे। ये देश आर्थिक रूप से पिछड़े थे तथा तीव्र औद्योगिक विकास के लिए औद्योगीकरण और नगरीकरण की राह इन देशों ने अपनाई। 20वीं सदी तक जनसंख्या का विशाल आकार भी धरती पर मूर्त रूप ले चुका था।

20वीं सदी का उत्तरार्ध आते-आते वैश्विक स्तर पर नगरीकरण, औद्योगीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। छठें दशक में तेल उत्पादक देशों ने अपने उत्पादन क्षेत्रों को पश्चिमी कब्जे से मुक्त किया। तत्पश्चात् ओपेक का गठन हुआ और शीघ्र ही कच्चे तेल की कीमतों में भारी इज़ाफा हुआ। इससे अनेक देशों के समक्ष भयंकर आर्थिक संकट उपस्थित हो गया। इस संकट ने दुनिया की आँखें खोलने का काम किया। पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को गहराई से महसूस किया गया। विकास की सीमाएँ (Limits to development) जैसी संकल्पनाओं ने प्राकृतिक संसाधनों की सीमित तथा उनके बुद्धिमतापूर्ण उपयोग की वकालत कर संरक्षण के प्रश्न को मजबूती से स्थापित किया।

आज पर्यावरण संरक्षण एक वैश्विक विषय बन चुका है। इस दिशा में अनेक देशों तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा प्रयास किया गये हैं संयुक्त राष्ट्र संघ का नाम इसमें सर्वोपरि है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक अलग शाखा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nation Environment Programme - UNEP) के नाम से पर्यावरण संरक्षण की दिश में सक्रिय है। विश्व बैंक भी कुछ पर्यावरण परियोजनाओं को धन उपलब्ध करा रहा है। इसके अतिरिक्त वर्ल्ड वाइड फंड, ग्रीन पीस, सेव द अर्थ सहित

तमाम गैर सरकारी संगठन भी इस दिशा में सक्रिय हैं।

पर्यावरण संरक्षण के लिए वैश्विक स्तर पर अनेक सम्मेलन आयोजुत किये गये हैं तथा समझौतों के प्रयास किये गये हैं। इस दृष्टि से सर्वाधिक चर्चित सन् 1992 में पहली बार संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आयोजित 'विकास एवं पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन' (United Nation's Conference on Environment and Development) रहा है। ब्राजील के रियो द जेनेरियो नगर में आयोजित यह सम्मेलन पृथ्वी सम्मेलन (Earth Summit) के नाम से ज्यादा चर्चित रहा। दूसरी बार इसका आयोजन 1997 में न्यूयार्क में किया गया। वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के कुछ प्रमुख प्रयास निम्नांकित रूप से रेखांकित किये जा सकते हैं -

(i) पर्यावरण पर स्टॉकहोम सम्मेलन, 1972

(ii) प्रथम विश्व जलवायु सम्मेलन, जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड), 1979.

(iii) उद्योग एवं जलवायु पर सम्मेलन, वियना (आस्ट्रिया), 1980.

(iv) ओजोन संरक्षण पर वियना समझौता, 1985.

(v) क्लोरोफ्लोरो कार्बन पर मॉन्ट्रियल प्रोटोकाल, 1989.

(vi) कार्बन डाई ऑक्साइड न्यूनीकरण पर टोरन्टो (कनाडा) सम्मेलन, 1988.

(vii) जलवायु परिवर्तन पर अन्तरशासकीय पैनल गठन, 1988.

(viii) द्वितीय विश्व जलवायु सम्मेलन, 1990.

(ix) बर्लिन (जर्मनी) जलवायु परिवर्तन समर्थकों का प्रथम सम्मेलन, 1995.

(x) क्योटो समझौता, 1997.

17.7 पर्यावरण संरक्षण एवं मीडिया

पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व बना रहे इसके लिए पर्यावरण संरक्षण आवश्यक है। लेकिन पर्यावरण का संरक्षण किसी एक संगठन, सरकार या समूह द्वारा संभव नहीं है। केवल कानून बनाकर या पैसों का प्रबंध करके भी पर्यावरण संरक्षण के कार्यों को वांछित सफलता मिलना मुश्किल है। पर्यावरण संरक्षण के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जनता को संरक्षण कार्यक्रमों से जोड़ना तथा इनमें चेतना का विकास करना। यह कार्य केवल मीडिया ही कर सकता है।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति मीडिया का दृष्टिकोण सामान्य रूप से सकारात्मक रहा है। पर्यावरम के प्रश्न को मीडिया ने सदैव गंभीरता से उठाया है। मीडिया का पूरा सहयोग पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों और पर्यावरण की रक्षा से जुड़े लोगों को प्राप्त हुआ है। वस्तुत: पर्यावरण को मीडिया ने सदैव आम लोगों के बीच विचार का विषय बनाये रखा है।

समाचारपत्रों में पर्यावरण संरक्षण से जुड़े समाचारों तथा विचारों को पूरी जगह मिलती रही है। साथ ही साथ पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाले कार्यों की इसमें

आलोचनाएँ भी प्रकाशित होती हैं। फोटो पत्रकारिता ने प्रकृति के प्रति लोगों के आकर्षण तथा प्रेम को बढ़ाने का कार्य किया है। पर्यावरण से जुड़ी अनेक पत्र-पत्रिकाएँ पर्यावरण चिन्तन को नया आयाम दे रही हैं।

इसी प्रकार इलेक्ट्रानिक मीडिया ने भी पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान किया है। टीवी ने पर्यावरण संरक्षण के संदेशों को प्रासरित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्रॉफिक, नेचर जैसे टीवी चैनलों ने पर्यावरण को केन्द्र बिन्दु बनाकर अनेक महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का निर्माण किया है। पर्यावरण की रक्षा के प्रति लोगों को सजग करने, पर्यावरण संरक्षण से लोगों को जोड़ने में भी इसने उपयोगी भूमिका निभाई है। रेडियो ने भी पर्यावरण के प्रति लोगों को सजग करने का कार्य किया है। पर्यावरण जागरूकता को दूर-दराज, गांव-देहात और समाज के अंतिम आदमी तक पहुंचाने में रेडियो ने सर्वाधिक प्रभावी भूमिका निभाई है।

सिनेमा ने भी पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कई कालजयी फिल्मों ने पर्यावरण के प्रति हमारे नजरिये को बदलने में अपना योगदान दिया है। इस दृष्टि से लघु कथा फिल्में तथा वृत्तचित्र (Documentry Films) का योगदान सर्वाधिक है। अनेक मर्मस्पर्शी फिल्मों के माध्यम से प्रयोगधर्मी फिल्म निर्माताओं ने पर्यावरण के अनछुए पहलुओं को दुनिया के सामने रखा है।

इस दृष्टि से इंटरनेट भी काफी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। अनेक इंटरनेट वेबसाइटें पर्यावरण से जुड़ी जानकारियां उपलब्ध करा रही है। पर्यावरण रक्षा के लिए सक्रिय संगठन जनमत निर्मित करने तथा वित्तीय संसाधन जुटाने में इंटरनेट का उपयोग कर रही हैं। लेकिन आधुनिक मीडिया के साथ-साथ हमारा परम्परागत मीडिया भी पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से काफी समय से प्रभावी रहा है।

हमारे लोकगीतों, नृत्य व अन्य लोक कलाओं में पर्यावरण के प्रति प्रेम के सुन्दर बिम्ब उपस्थित हैं। वस्तुत: इनकी विषयवस्तु में पर्यावरण के प्रति जुड़ाव की अत्यन्त ही संवेदनाशील तरीके से प्रस्तुत किया गया है। इनके माध्यम से आम जनता में प्रकृति और पर्यावरण की मोहक और समृद्ध छवि बनी रहती है। अपनी मार्मिकता और संवेदनशीलता से यह लोक माध्यम अभी भी जनता को पर्यावरण के प्रति जोड़ने का काम कर रहे हैं।

यदि देखा जाय तो मीडिया ही वह तत्व है जो पर्यावरण संरक्षण से आम आदमी को जोड़ने में सक्षम है। लोग मीडिया पर विश्वास करते हैं तथा उसे अपना मित्र मानते हैं। उसकी सलाह से, उसके नजरिये से ही जनमत का निर्माण होता है। मीडिया की इस ताकत का अभी तक पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से पूरा उपयोग नहीं हो पाया है। अभी भी पर्यावरण 'प्राइम टाइम' विषय नहीं है। कई बार तो इसकी प्रस्तुति अरूचिकर तथा औपचारिक लगती है। रस्म अदायगी के इस नजरिये को बदलकर यदि मीडिया का प्रभावी उपयोग किया जाय तो लोगों में हम आसानी से पर्यावरण मित्र उत्पादों के उपभोग, वृक्षों के संवर्धन, पॉलिथिन व प्लास्टिक के न्यूनतम उपयोग, वाटर हार्वेस्टिंग, जैविक खाद उपयोग के प्रति आकर्षित कर सकते हैं। इस प्रकार

पर्यावरण की रक्षा का महत्वपूर्ण कार्य सफलतापूर्वक संपादित किया जा सकता है।

17.8 भारत में पर्यावरण संरक्षण

भारत पर्यावरण संरक्षण के अगुआ देशों में सम्मिलित रहा है। भारतीय संस्कृति स्वयं में ही प्राचीनकाल से पर्यावरण के प्रति सचेत रही है। 'शस्य स्यामला धरती' के मनोहारो बिम्ब का पोषक समस्त भारतीय वांगमय रहा है। आधुनिक उत्तरदायी लोकतंत्र के रूप में भी भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही पर्यावरण की रक्षा के प्रति गंभीर रहा है। 1952 से ही हमारे देश में वृक्षों की रक्षा के लिए 'वन महोत्सव' मनाया जा रहा है जिसके प्रवर्तक के रूप में कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी का योगदान अमूल्य है। भारत पर्यावरण संरक्षण के प्रति आरम्भकर्ता की भूमिका में रहा है।

सन् 1894 से ही हमारे देश की अपनी वन नीति है। 1952 में इसमें संशोधन किया गया तथा पुनर्संशोधन के पश्चात् 1988 में घोषित राष्ट्रीय वन नीति में पर्यावरण की रक्षा के महत्वपूर्ण उपाय किये गये हैं। इस दृष्टि से हमारे दो प्रधानमंत्री क्रमश: स्व. इंदिरा गांधी तथा स्व. राजीव गांधी का योगदान सराहनीय रहा है। स्टॉकहोम मानव पर्यावरण (संयुक्त राष्ट्र) पर आयोजित सम्मेलन में श्रीमती इंदिरा गांधी ने 14 जून, 1972 को पर्यावरण संरक्षण पर अपने प्रभावी वक्तव्य से विश्व को नई दिशा दी। इसी प्रकार राजीव गांधी ने भी विश्व को प्लैनेट प्रोटेक्शन फण्ड बनाने की रूपरेखा प्रदान की। भारत में सन् 1985 से ही पर्यावरण, वन एवं वन्य जीव विभाग पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीन पर्यावरण संरक्षण के प्रति लगा हुआ है।

सन् 1973 से टाइगर रिजर्व प्रोजेक्ट का संचालन किया जा रहा है। पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन कार्यक्रम 1978 से शुरू है। 1982 से ही विकेन्द्रीकृत पर्यावरण सूचना व्यवस्था लागू है जो अपने 25 केन्द्रों की मदद से सक्रिय है। सन् 1983 से वन्यजीव कार्यक्रम शुरू है। सन् 1992 से ही केन्द्र सरकार ने पर्यावरण संरक्षण व जागरुकता के लिए विशेष ध्यानाकर्षण नीति घोषित की है। जैविक विविधता संरक्षण पर सन् 2000 से ही राष्ट्रीय नीति घोषित की गयी है। पर्यावरण की रक्षा को 42वें संविधान संशोधन द्वारा मूल कर्तव्य के रूप में सम्मिलित किया गया है। इको मार्क को उत्पादों के लिए प्रचलन में लाया जा रहा है। प्रशासनिक स्तर पर 'शोरमुक्त क्षेत्र' बाह्य गतिविधि मुक्त क्षेत्र तथा पॉलिथिन प्रतिबंधित क्षेत्र घोषित कर पर्यावरण रक्षा के उपाय किये जा रहे हैं। विविध प्रदूषण निवारक, वृक्ष व वन संबंधी तथा जीव रक्षा संबंधी कानून बनाकर भी सरकार पर्यावरण संरक्षण के प्रयास कर रही है।

गैर सरकारी क्षेत्र में भी अनेक संगठन तथा व्यक्ति पर्यावरण की रक्षा के लिए प्रयासरत हैं। वृक्षारोपण, जल संरक्षण, जीव संरक्षण, जैव विविधता संरक्षण, रेगिस्तान उन्मूलन, जैविक तकनीकों का प्रयोग, पर्यावरण जागरूकता आदि की दृष्टि से इनका योगदान महत्वपूर्ण है। एफ. सी. मेहता, मेधा पाटेकर, राजेन्द्र सिंह, सुन्दर लाल बहुगुणा, वंदना शिवा, शोभना नारायण, बिट्टू सहगल आदि अनेक नाम इस देश में

पर्यावरण रक्षा के प्रतीक बने हुए हैं।

भारतीय मीडिया का योगदान भी इस दिशा में सकारात्मक है। पर्यावरण जागरूकता के प्रति लोगों को आकर्षित करने में मीडिया सक्रिय सहायता दे रहा है। नेचर वॉच, टर्निंग प्वाइंट आदि कार्यक्रम पर्याप्त लोकप्रिय भी रहे हैं। इन्वायरो न्यूज, योजना, कुरुक्षेत्र जैसे सरकारी प्रकाशनों के साथ-साथ तमाम पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से पर्यावरण संबंधी सामग्री व सूचनाएं प्रकाशित होती रहती हैं। टीवी व रेडियो पर भी नियमित रूप से पर्यावरण आधारित कार्यक्रम प्रस्तुत किये जा रहे हैं। अनेक फिल्म अभिनेता समय-समय पर पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों से जुड़कर जनचेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

17.9 सारांश

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि विकास और पर्यावरण का गहरा अन्तर्संबन्ध है। बिना पर्यावरण की रक्षा किये हम समग्र या संतुलित विकास के लक्ष्यों को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। हमें यदि विकास के साथ-साथ संसाधनों को बचाना है, विकास को विनाश बनने से रोकना है तो इसके लिए पर्यावरण संरक्षण पहली अनिवार्यता है।

हमने विकास की अंधी दौड़ में अपने पर्यावरण को गंभीर चोटें पहुंचाई हैं। इसका दुष्प्रभाव यह हुआ है कि हम पर्यावरण प्रदूषण की जानलेवा समस्या से जूझ रहे हैं। पर्यावरण की रक्षा के लिए प्रदूषण पर नियंत्रण आवश्यक है। इस दिशा में पर्यावरण संरक्षण उपायों की नितान्त आवश्यकता है।

सौभाग्यवश वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के लिए सक्रियता बढ़ रही है। यह संकेत सकारात्मक है। हमें अपनी जीवनचर्या और आवश्यकताओं का पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से पुनर्नियोजन करना होगा। यह तभी हो सकता है जब सभी लोग पर्यावरण संरक्षण के प्रति गंभीर हों। यह गंभीरता या जनचेतना विकसित करने में मीडिया सर्वाधिक प्रभावी भूमिका निभा सकता है। यह अच्छी बात है कि पर्यावरण संरक्षण के प्रति मीडिया की गंभीरता बढ़ी है। जरूरत है उसे और सक्रिय तथा संजीदा होने की।

17.10 संदर्भ ग्रन्थ

(i) भारत, 2006, संदर्भ ग्रन्थ

(ii) सविन्द्र सिंह - पर्यावरण भूगोल

(iii) अम्बष्ट एवं अम्बष्ट - इनवायरमेन्ट एण्ड पॉल्यूशन

17.11 पारिभाषिक शब्दावली

(i) वैश्विक ऊष्मन (Global Warming) - पृथ्वी के वायुमण्डल तथा सतही

(Surface) तापमान में वैश्विक स्तर पर होने वाली धनात्मक वृद्धि। यह वृद्धि हरित गृह (Green House) गैसों की सांद्रता वृद्धि से होती है। इसमें मुख्य रूप से कार्बन डाई ऑक्साइड तथा मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड ओजोन मूलक हाइड्रोकार्बन्स प्रमुख हैं।

(ii) जैव विविधता - प्राकृतिक पर्यावरण में उपलब्ध जीवों की विविध प्रजातियां जैव विविधता की द्योतक हैं। किसी क्षेत्र की पारिस्थितिकी इनसे ही पूर्ण होती है। जैव विविधता में क्षरण से पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ने का खतरा पैदा हो जाता है।

(iii) राष्ट्रीय वन नीति - भारत में संशोधित राष्ट्रीय वन नीति 1988 से लागू है। इसके अनुसार देश के मैदानी भागों में कम से कम 33% तथा पहाड़ी क्षेत्रों में कम से कम 66% भाग वनाच्छादित होना चाहिए। दुर्भाग्यवश अभी हमारा वन क्षेत्र 20% से कुछ ही अधिक है।

17.12 प्रश्नावली

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) पर्यावरण से आप क्या समझते हैं? पर्यावरण एवं विकास का अन्तर्संबन्ध समझाइए।

(2) पर्यावरण संरक्षण का अर्थ एवं आवश्यकता बताइए।

(3) पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभावों की चर्चा करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

(1) जल प्रदूषण के प्रमुख कारण बताइए।

(2) भारत में पर्यावरण संरक्षण के सरकारी प्रयासों की चर्चा करें।

(3) ध्वनि प्रदूषण क्या है?

(4) पर्यावरण के अंग बताएं।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) इन्वायरो न्यूज है -

(क) टीवी चैनल

(ख) रेडियो कार्यक्रम

(ग) इंटरनेट वेबसाइट

(घ) न्यूज लेटर

(2) वायुमण्डल में सर्वाधिक विद्यमान गैस है -

(क) ऑक्सीजन (ख) नाइट्रोजन (ग) कार्बन डाई ऑक्साइड (घ) मीथेन

(3) हरित गृह प्रभाव से होती है -

(क) पृथ्वी की ताप वृद्धि

(ख) पर्वतीय क्षेत्रों की ताप वृद्धि

(ग) जल क्षेत्रों की ताप वृद्धि

(घ) इनमें से कोई नहीं

(4) पर्यावरण के क्षेत्र में सक्रिय है -

(क) अरुणा रॉय(ख) अरुण शौरी

(ग) वंदना शिवा (घ) कुलदीप नैयर

(5) प्रथम पृथ्वी सम्मेलन आयोजन स्थल था -

(क) रियो द जनेरियो (ख) न्यूयार्क

(ग) स्टॉकहोम (घ) वियना

(6) भारत में वन महोत्सव की शुरूआत हुई -

(क) 1950 (ख) 1951 (ग) 1952 (घ) 1953

वस्तुनिष्ठ प्रश्नो के उत्तर -

(1) (घ)

(2) (ख)

(3) (क)

(4) (ग)

(5) (क)

(6) (ग)

इकाई - 18 विकास एवं पर्यटन

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 पर्यटन की अवधारणा

18.3 पर्यटन के विविध रूप

18.4 पर्यटन : व्यवसाय के रूप में

18.5 पर्यटन एवं आर्थिक समृद्धि

18.6 पर्यटन एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विकास

18.7 पर्यटन एवं पर्यावरण

18.8 वैश्वीकरण एवं पर्यटन

18.9 सारांश

18.10 संदर्भ ग्रन्थ

18.11 पारिभाषिक शब्दावली

18.12 प्रश्न

18.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन आपको निम्नांकित तथ्यों से परिचत कराने में सहायक होगा -

(i) पर्यटन क्या है तथा इसके विविध रूप।

(ii) व्यवसाय के रूप में पर्यटन की भूमिका।

(iii) पर्यटन का लोगों के आर्थिक विकास पर प्रभाव।

(iv) जनता के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में पर्यटन का योगदान।

(v) पर्यावरण की स्थिति एवं पर्यटन गतिविधियां।

(vi) वैश्वीकरण का पर्यटन पर प्रभाव।

18.1 प्रस्तावना

पर्यटन मानव का मूल स्वभाव है। यह जीवन में गतिशीलता और परिवर्तन का सुख प्रदान करता है। पर्यटन ज्ञान वृद्धि, स्वास्थ्य लाभ, रोजगार, आर्थिक लाभ, मानसिक शांति, आध्यात्मिक इच्छापूर्ति आदि अनेक दृष्टियों से उपयोगी है। प्रसिद्ध मनीषी स्व. राहुल सांस्कृत्यायन ने अथातो घुम्मकड़ जिज्ञासा में इस्माइल मेरठी का एक शेर पर्यटन की महत्ता को उजागर करने के लिए वर्णित किया है-

'सैर कर दुनिया की गाफ़िल, जिन्दगानी फिर कहां।

जिन्दगानी गर रही तो, नौजवानी फिर कहां।।

अपने आरम्भकाल में मानव घुमक्कड़ ही रहा है। आदिमानव गुफा-गुफा, जंगल-जंगल घूमता रहता था। प्रारम्भिक कबीले भी घुमन्तू पशुचारण अर्थतंत्र पर निर्भर थे तथा मौसमी प्रवास उनकी विशेषता थी। स्थायी कृषि तथा बाद में सामाजिक विकास, नगरीय विकास, राज्य के स्वरूप का निर्धारण आदि होने से मानव का जीवन एक जगह स्थिर हुआ। लेकिन इससे पर्यटन की उसकी प्रवृत्ति नहीं कम हुई। धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक व अन्य आधारों पर मानव की यात्राओं की परम्परा और मजबूत हुई।

आज पर्यटन सभ्य नागरिक जीवन में महत्वपूर्ण है। हर व्यक्ति किसी न किसी कारण से पर्यटन जरूर करता है। दुनिया भर में सैलानी प्रकृति और सभ्यता का आनन्द उठाने तथा अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हजारों किमी० तक की यात्राएं करते हैं पूरी दुनिया में पर्यटन एक व्यवसाय के रूप में स्थापित है तथा कई देशों की तो अर्थव्यवस्था ही पर्यटन पर टिकी हुई है।

परिवहन के द्रुतगामी विकास से पर्यटन को काफी बढ़ावा मिला है। यात्रा के समय में बचत होने से लोग लम्बी दूरी तक की यात्राएं करने की ओर भी उन्मुख हुए हैं। आधुनिक बैंकिंग सेवाओं का भी पर्यटन की समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान है। मुद्रा स्थानान्तरण आसान होने तथा ए. टी. एम., टूरिज्ट मनी ट्रांसफर, ट्रैवेलर्स चेक आदि की सुविधा से लोग निरापद रूप से यात्राएं करने में सक्षम हुए हैं।

18.2 पर्यटन की अवधारणा

पर्यटन को अंग्रेजी में टूरिज्म (Tourism) कहा जाता है। इसका अर्थ पर्यटकों के लिए छुट्टियों की तथा सेवाओं की व्यवस्था करने से है। यह शब्द अंग्रेजी के टूर (Tour) शब्द से बना है जिसका अर्थ मनचाहे स्थलों के भ्रमण से है। इस प्रकार पर्यटन किसी पर्यटक द्वारा की जाने वाली पसंदीदा स्थलों की यात्रा है तथा इसमें पर्यटकों की सुविधा के लिए संपादित होने वाली गतिविधियों को भी सम्मिलित किया जाता है।

पर्यटन नवीन स्थलों को जानने की मानवीय जिज्ञासा का प्रतिफल है। पर्यटन व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्फूर्ति प्रदान करता है। पर्यटन लोगों की ज्ञान में वृद्धि करने में भी सहायक होता है। इससे व्यक्ति की समझ और विकसित होती है। शैक्षणिक संस्थाओं में भ्रमण का यह प्रधान उद्देश्य होता है। पर्यटन से सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा समरसता की भावना भी मजबूत होती है। लोगों के बीच संवाद कायम होता है तथा सह-जीवन की भावनाएं मजबूत होती हैं।

पर्यटन व्यक्ति को तरोताजा भी करता है। व्यक्ति जिस माहौल में दिन रात रहता है, काम करता है - उसकी एकरसता को तोड़ने में पर्यटन सहायक होता है। इससे व्यक्ति को श्रम से विश्राम का मौका मिलता है और वह पुन:स्फूर्ति प्राप्त करता

है। इस प्रकार काम और जीवन के प्रति रुचि बनाये रखने का कार्य भी पर्यटन करता है। पर्यटन लोगों की शैक्षणिक, आर्थिक, धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी सहायक होता है।

एक व्यवसाय के रूप में भी पर्यटन की महत्वपूर्ण भूमिका है। आर्थिक विकास एवं रोजगार में इसका महती योगदान है। यह प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से विकास की दिशा व दशा निर्धारित करता है। पर्यटन स्थलों का विकास अपेक्षाकृत तेजी से होता है तथा परिवहन की दृष्टि से उनका सभी महत्वपूर्ण केन्द्रों से संपर्क कायम हो जाता है। होटल व्यवसाय, ट्रैवेल व्यवसाय, खुदरा व्यापार, हस्तकलाएं, सेवा क्षेत्र, मुद्रा संबंधी कार्य आदि के विकास में भी पर्यटन का योगदान महत्वपूर्ण है। पर्यटन रोजगार सृजन का भी महत्वपूर्ण स्रोत है।

18.3 पर्यटन के विविध रूप

पर्यटन के उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं। पर्यटन का दायरा आनन्द प्राप्ति से लेकर आध्यात्मिक शांति तक विस्तृत होता है। दुनिया में पर्यटन के विविध रूप प्रचलित हैं। हम पर्यटन के कुछ प्रमुख रूपों को निम्नांकित प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं -

(i) अवकाश पर्यटन (Holiday Tourism)

(ii) धार्मिक पर्यटन (Religious Tourism)

(iii) व्यापारिक पर्यटन (Commercial Tourism)

(iv) सांस्कृतिक पर्यटन (Cultural Tourism)

(v) रोमांचक पर्यटन (Adventures Tourism)

(vi) स्वास्थ्य पर्यटन (Health Tourism)

(vii) शैक्षणिक पर्यटन (Educational Tourism)

(vii) पर्यावरणीय पर्यटन (Eco- Tourism)

(ix) समुद्री पर्यटन (Oceanic/Sea Side Tourism)

(x) अंतरिक्ष पर्यटन (Space Tourism)

(xi) खेल पर्यटन (Sports Tourism)

(xii) ऐतिहासिक पर्यटन (Historical Tourism)

अवकाश पर्यटन का मुख्य उद्देश्य छुट्टियों को भ्रमण के माध्यम से व्यतीत करने से है। तमाम लोग वार्षिक रूप से लम्बी यात्राओं का भी नियोजन करते हैं एवं वर्षान्त में पर्यटन करते हैं। यह वर्षान्त उनकी दिनचर्या से निर्धारित होता है। अवकाश पर्यटन का ही एक रूप विवाहोपरान्त पर्यटन (Honeymoon) भी है।

धार्मिक पर्यटन दुनिया में सर्वाधिक प्रचलित पर्यटन है। प्रतिवर्ष लाखों यात्री विविध देशों व स्थलों की यात्राएं धार्मिक उद्देश्य से करते हैं। दुनिया भर के मुस्लिम

मक्का-मदीना में एकत्रित होते हैं। इसी प्रकार विश्व भर से बौद्ध धर्मानुयायी भारत में बौद्ध परिपथ व बौद्ध स्थलों की यात्रा करते हैं।

व्यापारिक पर्यटन भी पर्यटन का एक प्रचलित रूप है। व्यापारिक बैठकें, मार्केटिंग, व्यापार मेले में भाग लेने, व्यापारिक आयोजनों में भाग लेने, मौसमी व्यापार के उद्देश्य आदि से यह पर्यटन संपादित होता है। सांस्कृतिक पर्यटन भी एक महत्वपूर्ण पर्यटन रूप है। सांस्कृतिक विविधताओं से आकर्षित होकर लोग इस प्रकार का पर्यटन करते हैं। दुनिया में अनेक मेले व सांस्कृतिक आयोजन लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं। जैसे मैसूर का हाथी दशहरा, बरसाने की होली, ब्राजील का कार्निवाल आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।

रोमांचक पर्यटन भी इधर पर्यटन विकल्प के रूप में तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। पर्वतारोहण, नौकायन, वाटर राफ्टिंग, जंगल भ्रमण आदि रोमांचक यात्राएं साहसी पर्यटन के शौकीनों द्वारा की जाती हैं। इसी प्रकार स्वास्थ्य पर्यटन भी पर्यटन का प्रचलित रूप है। स्वास्थ्य लाभ व जलवायु परिवर्तन के लिए लोग पर्वतीय क्षेत्रों की यात्राएं करते हैं। इसी प्रकार अनेक स्थानों पर विशेषज्ञ चिकित्सा के लिए भी लोग आते हैं। भारत में केरल स्वास्थ्य पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

शैक्षणिक पर्यटन के अन्तर्गत शैक्षणिक उद्देश्यों से किया जाने वाला पर्यटन सम्मिलित होता है। विविध प्रतियोगी परीक्षाओं, पाठ्यक्रमों के लिए लोग यात्राएं करते हैं। शैक्षणिक संस्थाओं में आयोजित होने वाले सेमिनार, कार्यशाला आदि में भाग लेने के लिए लोग यात्राएं करते हैं। पर्यावरणीय पर्यटन भी आजकल चर्चा में है। प्रकृति प्रेमी लोगों की पहली पसन्द पर्यावरणीय पर्यटन ही है। प्रकृति की मनोरम छटाओं, वन्य जीवों तथा जंगल की हरितिमा का आनन्द उठाने के लिए लोग दुनिया भर में यात्राएं करते हैं। वन्य जीव अभ्यारण्य, पक्षी विहार, पर्वतों की चोटियां, जल की अठखेलियां, अफ्रीकन सफारी, दुर्गम घास के मैदान आदि लाखों लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

समुद्र की अथाह जलराशियां भी पर्यटन का अनूठा रोमांच प्रस्तुत करती हैं। खुले आसमान में समुद्र तटों के खूबसूरत आगोश में धूप सेंकना दुनिया भर में लोकप्रिय है। रोमांचक लम्बी समुद्री यात्राएं और अनछुए द्वीपों पर छुट्टियां मनाने का आनन्द दुनियाभर में अनेक लोगों की प्राथमिकता होती है। अंतरिक्ष की अनन्त गहराइयां भी पर्यटन के शौकीनों को आकर्षित करती हैं। रूस ने एक अरबपति डेनिस टीटो को अंतरिक्ष में भेजकर पर्यटन के इस नये रूप की शुरुआत की। आज अनेक लोग अंतरिक्ष की सैर के लिए उत्सुक हैं।

खेल आयोजनों में भाग लेने तथा उनको देखने के लिए लाखों खेल प्रेमी दुनिया भर की यात्राएं करते हैं। बड़ी खेल प्रतियोगिताओं जैसे ओलम्पिक, विश्वकप फुटबॉल, विश्वकप क्रिकेट, एशियाई खेल, टेनिस ग्रैण्डस्लैम आदि देखने लोग दुनिया भर से आयोजन स्थलों तक पहुंचते हैं। ऐतिहासिक स्थलों से भी लोगों का लगाव जुड़ा होता है। अनेक ऐतिहासिक स्थल दुनिया भर के पर्यटकों को अपनी

समृद्ध विरासत-से आकर्षित करते हैं।

दुनिया भर में पर्यटन के विविध रूपों से जुड़े अनेक प्रसिद्ध स्थल हैं। इनमें से कुछ स्थलों की सूची निम्नवत् है

शेष विश्व के पर्यटन स्थल

पर्यटन स्थल	**विशेषता**
लंदन (इंग्लैण्ड)	ऐतिहासिक
पेरिस (फ्रांस)	खूबसूरती/स्थापत्य
जेनेवा (स्विस)	व्यापारिक-प्रशासनिक
डेट्रायट (संयुक्त राज्य)	व्यापारिक/झील
वेनिस (इटली)	स्थापत्य/जल विहार
फिलाडेल्फिया (संयुक्त राज्य)	प्राकृतिक सौंदर्य
बाली द्वीप (इण्डोनेशिया)	समुद्रतट
ल्हासा (तिब्बत)	धार्मिक
वेटिकन सिटी (इटली)	धार्मिक
मक्का-मदीना	धार्मिक
सिंगापुर	अवकाश /खरीददारी
न्यूयार्क	मनोरंजन/व्यापारिक

भारत के पर्यटन स्थल

पर्यटन स्थल	**विशेषता**
दिल्ली	ऐतिहासिक
जयपुर	ऐतिहासिक
आगरा	ऐतिहासिक
वाराणसी	सांस्कृतिक/धार्मिक
इलाहाबाद	धार्मिक/ऐतिहासिक
मैसूर	सांस्कृतिक
शिमला	पर्वतीय
मसूरी	पर्वतीय
कौशानी	पर्वतीय
बंगलौर	व्यापारिक
भरतपुर	पर्यावरण
बांधवगढ़	पर्यावरण

गोवा	समुद्रतटीय
बरसाना (मथुरा)	सांस्कृतिक

वस्तुत: नगरों व स्थलों की संख्या हजारों में है जहां पर्यटकों की भारी आवाजाही होती है। कुछ स्थल दुनियाभर के लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इनमें शेष विश्व में मिस्र में गीजा के पिरामिड, बेबीलोन (इराक) के हैंगिंग गार्डन, चीन की महान दीवार, रोम के गीक्र सभ्यता के अवशेष, पाकिस्तान में हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ो, स्विट्जरलैण्ड के आल्प्स की वादियां और चोटियाँ, अफ्रीका की सफारी, विक्टोरिया व नियाग्रा जल प्रपात, पीसा की मीनार, अंकोरवाट के मंदिर तथा भारत में गुलमर्ग, ताजमहल, राजस्थान के किले, बद्रीनाथ-केदारनाथ के मंदिर, खुजराहो, दिलवाड़ा के जैनमंदिर, कन्याकुमारी का सामुद्रिक सौंदर्य, मुंबई का क्वीन्स नेकलेस, जैसलमेर के साम (रेगिस्तान), सांची का सांची स्तूप अजंता-एलोरा, कोणार्क का सूर्य मंदिर आदि प्रसिद्ध हैं।

18.4 पर्यटन : व्यवसाय के रूप में

पर्यटन दुनिया के सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं आकर्षक व्यवसायों में से एक हैं। 500 करोड़ से अधिक पर्यटकों से सम्पूर्ण विश्व के पर्यटन की आय लगभग 4 खरब डॉलर वार्षिक की है। पर्यटन कई देशों की अर्थव्यवस्था के मेरुदण्ड के रूप में भी है। स्विट्जरलैण्ड, सिंगापुर, थाईलैण्ड, मालदीव, मिस्र, द०अफ्रीका, फ्रांस, कैरेबियन दीप समूह, ब्राजील, मॉरीशस, यूनान आदि देशो की अर्थव्यवस्था में पर्यटन का महत्वपूर्ण स्थान है। फ्रांस के पास भूमध्यसागर का तटवर्ती छोटा सा देश मोनाको तो केवल पर्यटन के बल पर ही जीवित है। एक फैशनेबल अवकाश स्थल के रूप में प्रसिद्ध मोनाको में नाचघर, कार स्पोर्ट्स, मोण्टेकार्लो कार रैली, जुआघर, ओपेरा व दुकानों पर पर्यटकों की भीड़ लगी रहती है।

इस दृष्टि से हालांकि भारत की विश्व पर्यटन उद्योग में हिस्सेदारी अत्यन्त कम (औसतन 0.50% तक) है फिर भी देश के लिए यह विदेशी मुद्रा अर्जित कराने वाला तीसरा बड़ा क्षेत्र है। भारत में पर्यटन को उद्योग तथा निर्यात हाउस का दर्जा प्रदान किया गया है।

पर्यटकों के आवागमन की व्यवस्था, ठहरने का प्रबंध, खान-पान, अन्य सेवाएं प्रदान करना, टूरिस्ट गाइड आदि एक उद्योग के रूप में पर्यटन के अन्तर्गत समाहित प्रमुख कार्य हैं। इसके साथ-साथ स्थानीय शिल्प व दस्तकारी की बिक्री, खुदरा बाजार आदि सहायक गतिविधियां भी इस व्यवसाय में संलग्न की जाती हैं। पर्यटन गतिंविधियों से वायुयान सेवाएं, टैक्सी व अन्य सड़क परिवहन सेवाएं, जल परिवहन सेवाएं, इवेंट मैनेजमेंट, होटल व्यवसाय, विशेषीकृत चिकित्सकीय सेवाएं, रेस्टोरेंट व खान-पान व्यवसाय, लोककला व अन्य उत्पाद आधारित व्यवसाय, खुदरा विपणनमूलक आर्थिक क्रियाओं को बढ़ावा मिलता है। इसके साथ-साथ जिन स्थलों पर पर्यटनों की आवाजाही रहती है वहाँ सड़क, बिजली, पानी व अन्य आधारभूत सुविधाओं का भी बेहतर विकास होता है।

भारत में ही पर्यटन व्यवसाय से दो करोड़ से ज्यादा लोगों को रोजगार मिला हुआ है। इसमें से लगभग 85 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिला हुआ है। पर्यटन उद्योग की विशेषता यह है कि होटल, उड़ान सेवा, ट्रैवेल एजेन्सीज, हस्तशिल्प एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के जरिये सबसे अधिक रोजगार महिलाओं को मिला है।

18.5 पर्यटन एवं आर्थिक समृद्धि

पर्यटन आर्थिक समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह एक ओर तो देश के लिए विदेशी मुद्रा अर्जित करता है वहीं दूसरी ओर उच्चस्तरीय आर्थिक गतिविधियों को भी बढ़ावा देता है। रोजगार सृजन में भी पर्यटन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत में पर्यटन उद्योग कुल मिलाकर दस हजार करोड़ रुपये से अधिक का व्यवसाय है। दसवीं पंचवर्षीय योजना में भी आर्थिक समृद्धि और रोजगार सृजन की दृष्टि से पर्यटन को उच्च संभावना वाले क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया गया है। भारत में पर्यटन उद्योग ने लगभग 16 हजार करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित की है तथा इस दृष्टि से हीरे-जवाहरात एवं तैयार कपड़ों के बाद यह तीसरे स्थान पर है। पर्यटन से विविध आर्थिक गतिविधियों को भी बढ़ावा मिला है। देश में लगभग 70 हजार होटलों के कमरे सूचीबद्ध हैं। पर्यटक स्थलों पर लॉज व पेइंग गेस्ट प्रणाली द्वारा भी लाखों लोग आय अर्जित कर रहे हैं। स्थानीय दस्तकारी तथा लोक कलाओं को आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद बनाने में भी पर्यटन का महत्वपूर्ण योगदान है। मैसूर का चंदन लकड़ी का काम, बनारस का जरी व लकड़ी खिलौना कला, चुनार की मिट्टी कला, जयपुर की हस्तकला व छपाई कला आदि के विकास में भी पर्यटन का विशेष योगदान है। वस्तुत: पर्यटन स्थल के रूप में लोकप्रिय क्षेत्र या स्थान पर पर्यटकों की आवाजाही बढ़ने से धन का प्रवाह तीव्र होता है। आधारभूत सुविधाओं का तेजी से विकास होत है तथा स्थानीय लोगों को छोटे-बड़े रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं। पर्यटन कई अन्य व्यवसायों को भी आर्थिक समृद्धि प्रदान करता है। केरल में पारम्परिक आयुर्वेद चिकित्सा, योग चिकित्सा, लोक कलायें आदि को इससे विशेष आर्थिक रूप से लाभप्रद पहचान मिली है।

भारत में अनेक पिछड़े क्षेत्रों में भी पर्यटन गतिविधियां बढ़ने से आर्थिक समृद्धि का रास्ता खुला है। लेह-लद्दाख, खुजराहो, साँची, कुशीनगर, बोधगया, झाँसी-दतिया-ओरछा आदि पर्यटन स्थल पिछले क्षेत्रों में हैं जहाँ पर्यटन से आर्थिक समृद्धि आयी है।

18.6 पर्यटन एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विकास

पर्यटन के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव अत्यन्त गहरे होते हैं। राष्ट्रीय एकता, सामाजिक मेलजोल, सांस्कृतिक सामन्जस्य, परम्पराओं के संरक्षण, सामाजिक जड़ता

की समाप्ति, छुआछूत निषेध, जात-पात उन्मूलन, सांप्रदायिक सद्भाव आदि की दृष्टि से पर्यटन एक महत्वपूर्ण कारक है।

भारत जैसे विशाल देश की पूँजी उसकी जातीय विविधता है। भारत हिन्दी, बंगाली गुजराती, मराठी, मलयाली, कन्नड़, तमिल, तेलुगु, पहाड़ी, जंगली अनेक प्रकार के लोगों से मिलजुल कर बना-बसा है। इनके बीच भाषाई एवं क्षेत्रीय आधार पर पनपने वाली दुर्भावनाओं को दूर करने में आंतरिक पर्यटन की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश के विभिन्न भागों के लोग जब आपस में मिलते हैं तो सामंजस्य की भावना मजबूत होती है। सामाजिक मेल-जोल बढ़ने से आपस की दूरियां कम होती हैं।

जब लोग पर्यटन की ओर उन्मुख होते हैं तो नई सामाजिक परम्पराओं, खान-पान, वेशभूषा से भी उनका परिचय होता है। इससे उनकी सामाजिक जड़ता समाप्त होती है। पर्यटन से छुआछूत व जातीय भेदभाव भी कम होता है क्योंकि घर से बाहर निकला व्यक्ति जातीय आधार पर दूसरे से नहीं मिलता वरन् उनके मेलजोल का आधार एक-दूसरे की आवश्यकता एवं सहायता होती है। परम्पराओं के संरक्षण में भी पर्यटन से सहायता मिलती है। जब लोग किसी क्षेत्र विशेष की परम्पराओं के प्रति आकर्षित होते हैं तो उन परम्पराओं को भी मजबूती मिलती है तथा उनसे जुड़े लोगों का भी उत्थान होता है। बरसाने की लट्ठमार होली, गुजरात का डांडिया-रास, पं० बंगाल की दुर्गापूजा, मधुबनी की चित्रकला, आसाम का बिहू, मध्य प्रदेश की पण्डवानी, केरल की चिकित्सा पद्धति को पुर्नजीवन देने में पर्यटन के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है।

पर्यटन अंतर-सांस्कृतिक संवाद कायम करने तथा सांस्कृतिक विलम्बन दूर करने में भी सहायक होता है। जब दूर देशों के पर्यटक कहीं और पहुंचते हैं तो वे सांस्कृतिक राजदूत की भूमिका भी निभाते हैं। बड़ी संख्या में जब दूसरे देशों के यात्री कहीं पहुँचने लगते हैं तो उनके लिए मनोनुकूल सुविधाएँ भी उस क्षेत्र में जुटाई जाने लगती हैं। इससे लोग दूसरे जगहों की खान-पान, पहनावा, मिलने-जुलने के तरीके और उनकी सोच से परिचित होते हैं। एक पर्यटक यदि स्थानीय संस्कृति के कुछ तत्वों को आत्मसात् करता है तो वह बदले में अपनी संस्कृति के कुछ तत्वों को भी छोड़ जाता है। इससे पर्यटन स्थलों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण में लचीलापन आता है जो सांस्कृतिक विलम्बन को दूर करने में सहायक होता है। पर्यटन स्थलों के लोग ज्यादा खुले, जल्द घुलने-मिलने वाले और अपरिचित लोगों से सामन्जस्य बिठाने वाले होते हैं।

18.7 पर्यटन एवं पर्यावरण

पर्यटन गतिविधियों का प्राकृतिक पर्यावरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सामान्यत: यह प्रभाव नकारात्मक ही होता है। पर्यटकों की जब किसी जगह पर आवाजाही बढ़ती है तो वहाँ की परिवहन तथा आर्थिक गतिविधियों में भी तेजी आती है। इससे अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। पर्यटन स्थलों पर जनदबाव

बढ़ जाता है, सीवेज का अनुपात अधिक हो जाता है, होटल, रेस्टोरेण्ट व अन्य स्थलों से निस्तारित अपशिष्टों की मात्रा बढ़ जाती है। पर्यटकों की सुविधा के लिए अक्सर स्थानीय पर्यावरण से छेड़छाड़ की जाती है। इससे पर्यावरण प्रदूषण की समस्या बढ़ जाती है।

दुनिया के अनेक प्रसिद्ध स्थल इस समस्या से जूझ रहे हैं। एवरेस्ट की ऊँचाई भी दुनिया का सबसे बड़ा कचरा घर के रूप में तब्दील होती जा रही है। पर्वतीय क्षेत्रों की खूबसूरती और जैव-विविधता वहाँ पर्यटकों की भीड़ से नष्ट होती जा रही है। पर्यटन स्थलों पर निकलने वाले प्लास्टिक कचरा से ठोस अपशिष्ट की समस्या भी गंभीर रूप लेती जा रही है। पर्यटकों के आवागमन और वाहनों के शोर से वन्यजीवों की शांति में खलल पड़ता है। इससे जानवरों की सहनशीलता तथा प्राकृतिक क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

यही नहीं पर्यटन स्थलों पर परिवहन का दबाव बढ़ने से भी अनेक पर्यावरणीय समस्यायें पैदा हुई है। विमानों के शोर से अनेक संरक्षित स्मारकों के क्षरण की दर तेज हुई है। खुजराहो के मंदिरों पर विमानों की आवाज का नकारात्मक असर पड़ रहा है। ताजमहल की श्वेत आभा में पीलापन आने की वजह भी पर्यावरण प्रदूषण ही है। देहरादून, शिमला, मसूरी जैसे पर्वतीय नगर पर्यटन के दबाव के चलते तेजी से अपना प्राकृतिक स्वरूप खो रहे हैं।

लेकिन पर्यटन के कुछ सकारात्मक प्रभाव भी पर्यावरण पर पड़ते हैं। प्रकृति प्रेमियों की रुचि को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण मित्र योजनाओं का बढ़ावा मिलता है। वन्यजीव अभ्यारण्य में जंगली जीवों को उनके प्राकृतिक परिवेश में देखना पर्यटकों का मुख्य आकर्षण होता है। इससे अभ्यारण्यों के संरक्षण को भी बढ़ावा मिलता है।

पर्यटन से पर्यावरण को होने वाले नुकसान पर नियंत्रण किया जा सकता है। अनेक पर्यटनस्थलों को प्लास्टिक मुक्त क्षेत्र घोषित किया गया है। इससे नष्ट हो सकने वाले अपशिष्टों की मात्रा नियंत्रित की जा सकती है। इसी वन्य क्षेत्रों में जीवों के आराम तथा प्रजनन के समय पर्यटन गतिविधियाँ सीमित की जानी चाहिए। संरक्षित स्मारकों को ध्वनिमुक्त क्षेत्र घोषित करके तथा विमानों, रेलगाड़ियों आदि का मार्ग बदलकर उनका संरक्षण व ध्वनि प्रदूषण के दुष्प्रभावों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

18.8 वैश्वीकरण एवं पर्यावरण

वैश्वीकरण ने पर्यटन को विशेष रूप से फायदा पहुँचाया है। वैश्वीकरण ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोगों की आवाजाही पर लगे बंधनों को ढीला किया है इससे पर्यटक वीजा मिलना अब अपेक्षाकृत आसान हो गया है। पड़ोसी देशों में तो आवाजाही की प्रक्रिया इससे अत्यन्त तेज हुई है। यही वजह है कि पिछले दस-बारह वर्षों में भारत से सिंगापुर, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान, थाईलैण्ड, चीन आदि देशों में जाने वाले लोगों की संख्या तेजी से बढ़ी है।

वैश्वीकरण ने बैंकिंग सुविधाओं में भी जबरदस्त बढ़ोत्तरी की है। अब पर्यटकों के लिए मुद्रा विनिमय अत्यन्त आसान हो गया है। इसके साथ-साथ अब एटीएम, टूरिस्ट व ट्रैवेलर्स चेक आदि की सुविधाओं के चलते नकदी ढोने और उसके चोरी होने की समस्या लगभग समाप्त हो गयी है। क्रेडिट कार्ड ने बिना पैसे के खरीददारी को भी अत्यन्त आसान बना दिया है।

वैश्वीकरण ने सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के नूतन आयाम उपस्थित किये हैं। अब पलक झपकते ही कहीं भी कभी भी संपर्क कायम करना आसान हो गया है। इंटरनेट के विकास से वैश्विक संपर्क के नये आयाम उपस्थित हुए हैं। इंटरनेट वेबसाइटों के माध्यम से पर्यटक स्थलों की जानकारी ली जा सकती है। इसके अतिरिक्त नेट के ही माध्यम से हवाई टिकट, रेल यात्रा आरक्षण, ट्रैवेल्स बुकिंग, होटलों की बुकिंग आदि भी संभव हो गयी है। इससे आरामदायक पर्यटन की राह आसान हुई है। संचार प्रौद्योगिकी के चलते दुनिया का हर कोना विश्व-व्यापी नेटवर्क के संपर्क में होने से भी पर्यटन गतिविधियों को बढ़ावा मिला है।

इसके अतिरिक्त वैश्वीकरण से पर्यटन उद्योग के लिए अतिरिक्त पूँजी जुटाना संभव हुआ है। विनिवेश की प्रक्रिया से सरकारी होटलों में निजी भागीदारी बढ़ी है। निजी क्षेत्र ने ढांचागत विकास की गति को तेज किया है तथा उनके रख-रखाव को बेहतर करने में इससे मदद मिली है।

18.9 सारांश

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के सामाजिक-सांस्कृतिक तथा मानसिक विकास के लिए पर्यटन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पर्यटन गतिविधियां रोजगार सृजन तथा आर्थिक समृद्धि में भी योगदान देती हैं। पर्यटन के कई रूप हैं तथा दुनियाभर में चिन्हित पर्यटन स्थलों की प्रतिवर्ष करोड़ों पर्यटक यात्राएं करते हैं।

पर्यटन एक आकर्षक व्यवसाय भी है तथा विशालकाय होटलों की श्रृंखला से लेकर रोडसाइड ढाबों तक, ट्रेवेल्स खुदरा व्यवसाय, लोक कला, हस्तशिल्प तथा अन्य अनेक गतिविधियों को इससे प्रोत्साहन मिलता है। सामाजिक-सांस्कृतिक मेल-मिलाप तथा समन्वय की दृष्टि से भी पर्यटन उपयोगी होता है। पर्यटन से व्यक्ति की सामाजिक समझ विकसित होती है तथा सहयोगी एवं सामंजस्यपूर्ण दृष्टिकोण का उसमें विकास होता है।

पर्यटन वर्तमान एवं भविष्य दोनों के लिए सभावनाओं वाला क्षेत्र है। आर्थिक विकास एवं रोजगार सृजन में इसकी क्षमता का आंकलन करके ही विविध देश पर्यटन के विकास के प्रति विशेष रूप से सक्रिय हैं।

18.10 संदर्भ ग्रंथ

(i) आधुनिक पत्रकारिता : डॉ० अर्जुन तिवारी

(ii) जनसंचार एवं हिन्दी पत्रकारिता : डॉ० अर्जुन तिवारी

18.11 पारिभाषिक शब्दावली

(i) निर्यात गृह (Export House) - आमतौर पर 12.5 करोड़ या उससे अधिक विदेशी मुद्रा कमाने वाली इकाई को निर्यात गृह (Export House) कहा जाता है। निर्यात हाउस घोषित इकाई को विदेशी मुद्रा लेन-देन संबंधी विशेष छूट भी दी जाती है। भारत सरकार ने पर्यटन को निर्यात गृह सुविधा देने के साथ ही उसकी विदेशी मुद्रा अर्जन सीमा भी घटाकर 6 करोड़ कर दी है।

(ii) पण्डवानी - मध्यप्रदेश की प्रचलित लोकगायकी का स्वरूप। यह मुख्य रुप से महाभारत के आख्यानों का लोकभाषा में गेय प्रस्तुतीकरण है। इसे कलाकार इकतारा के सहयोग से गाता है तथा दो-तीन सहयोगी साज पर साथ देते हैं। तीजन बाई पाण्डवानी की प्रसिद्ध लोकगायिका हैं।

(iii) पेइंग गेस्ट प्रणाली - गैर व्यावसायिक आवासीय भवनों में भी जब पर्यटकों / यात्रियों के ठहरने की सुविधा प्रदान की जाती है तो यह पेइंग गेस्ट प्रणाली होती है। अनेक पर्यटन स्थलों पर होटलों की कमी को पूरा करने के लिए इसका प्रचलन है।

(iv) खजुराहो - मध्य प्रदेश का नगर, चंदेलों की राजधानी रही यह नगर अपने कंदरिया महादेव मंदिर के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। आध्यात्मिक संदेश से परिपूर्ण मंदिर की बाह्य दीवारें कामक्रीड़ा के प्रसंगों के सुदंर उत्कीर्णन के चलते लाखों पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करती है।

18.12 प्रश्नावली

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पर्यटन की अवधारणा स्पष्ट करें तथा इसकी उपयोगिता बताएँ।
2. सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में पर्यटन की भूमिका का विश्लेषण करें।
3. पर्यावरण तथा पर्यटन के अन्तर्संबंधो पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'इको टूरिज्म' क्या है?
2. पेइंग गेस्ट प्रणाली क्या है?
3. पर्यटन व्यवसाय के प्रमुख कार्य बताइए।
4. निर्यात गृह की व्याख्या करें।
5. वन्यजीव अभ्यारण्य क्या है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. 'पेरिस' नगर अवस्थित है -

(क) यूरोप

(ख) एशिया

(ग) अफ्रीका

(घ) ऑस्ट्रेलिया

2. भरतपुर प्रसिद्ध है -

(क) वृन्दावन उद्यान के लिए

(ख) क्वीन्स नेकलेस के लिए

(ग) पक्षी विहार के लिए

(घ) जल प्रपात के लिए

3. निर्यात गृह के रूप में पर्यटन उद्योग के लिए निर्धारित न्यूनतम विदेशी मुद्रा आय सीमा है-

(क) 12.5 करोड़

(ख) 10.5 करोड़

(ग) 7.5 करोड़

(घ) 6.0 करोड़

4. त्रिवेणी के नाम से प्रसिद्ध 'गंगा-यमुना तथा सरस्वती (अदृश्य)' का संगम अवस्थित है -

(क) काशी में

(ख) प्रयाग में

(ग) विन्ध्यधाम में

(घ) मदुरई में

5. कंदरिया महादेव मंदिर अवस्थित है -

(क) मैसूर

(ख) बरसाने

(ग) खुजराहो

(घ) दिल्ली

6. ताजमहल अवस्थित है -

(क) गंगा नदी के तट पर

(ख) बेतवा नदी के तट पर

(ग) सतलज नदी के तट पर

(घ) यमुना नदी के तट पर

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

(1) क

(2) ग

(3) घ

(4) ख

(5) ग

(6) घ

इकाई - 19 विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 विकास, विकास संचार एवं स्वयंसेवी संगठन
19.3 विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों की आवश्यकता
19.4 विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों के कार्य
19.4.1 प्रमुख कार्य क्षेत्र
19.4.2 स्वतंत्र भूमिका
19.4.3 सरकारी कार्यक्रमों में सहायता
19.5 विकास संचार एवं स्वयंसेवी संगठनों की साख
19.6 सारांश
19.7 संदर्भ ग्रंथ
19.8 पारिभाषिक शब्दावली
19.9 प्रश्नावली

19.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नांकित तथ्यों से परिचित हो सकेंगे

(i) विकास तथा विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों का समन्वय

(ii) विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों की आवश्यकता

(iii) विकास संचार में सहायक स्वयंसेवी संगठनों के कार्य

(iv) स्वयंसेवी संगठनों की विश्वसनीयता का विकास संचार पर प्रभाव।

(v) विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों की सक्रियता के परिणाम या प्रभाव।

19.1 प्रस्तावना

लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार के अतिरिक्त भी अनेक संगठन या समूह महत्वपूर्ण होते हैं। लोकतंत्र में जन-भागीदारी तथा जनमत निर्माण महत्वपूर्ण होता है। कई बार सरकार या सरकारी प्रयास जनता का ध्यान आकर्षित करने में असफल रहते हैं या सामाजिक - सांस्कृतिक स्तर पर अनेक अन्तर्विरोधों से पार पाने में सरकारें

असफल रहती हैं। ऐसी स्थिति में ऐसे तंत्र या समूह की आवश्यकता होती है जो अनौपचारिक या गैर-सरकारी हो तथा उसकी स्वीकार्यता जनता के बीच हो।

इसके अतिरिक्त किसी देश और उसके निवासियों के विकास से जुड़े सभी पहलू सरकार द्वारा संरक्षित नहीं किये जा सकते। यदि सरकार पर ही समस्त जिम्मेदारी डाल दी जाय तो या तो लापरवाही तथा लेट-लतीफी की स्थिति पैदा हो जाती है अथवा एकतरफा या रेखीय (Unidirectional) संवाद की स्थितिया पैदा हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में जनता की सरकारी प्रयासों में सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो पाती है और कई बार उसकी स्थिति केवल मूकदर्शक (Spectator) की ही रह जाती है।

विकास के लक्ष्यों को हासिल करने, जनता तथा सरकार के बीच संवाद बना रहने तथा सरकार की विश्वासनीयता के लिए ऐसी स्थितियां खतरनाक होती हैं। अत: इनसे बचाव के लिए एक पुल या ऐसे माध्यम की जरूरत होती है जो जनकल्याण के सरकारी प्रयासों में सहायक हो तथा जिसकी जनता में विश्वसनीयता हो। यह कार्य स्वयंसेवी संगठनों द्वारा उपर्युक्त तरीके से हो जाता है।

भारत में स्वयंसेवी संगठनों तथा गैर सरकारी संगठनों द्वारा जनसेवा की परम्परा रही है। प्राचीनकाल से ही इस प्रकार के अनेक दृष्टांत रखे जा सकते हैं। परमार्थ की दृष्टि से किये जाने वाले कार्यों तथा उनके व्यवस्थापन में स्वयंसेवी समूहों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके अतिरिक्त व्यापारिक संगठन या श्रेणियां, ग्राम सभाएं आदि भी इस प्रकार के कार्यों में संलग्न रहे हैं।

यदि हम आधुनिक भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो स्वयंसेवी संगठनों की भारतीय पुर्नजागरण में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अनेक संगठनों ने इस दिशा में उपयोगी अंशदान किया। भाषा साहित्य तथा समाज सुधार के क्षेत्र में इनका योगदान स्वर्णाक्षरों में अंकित भी किया गया है। एशियाटिक सोसायटी तरुण भारत तथा अनेक अन्य संगठनों की सक्रियता उस समय थी। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, महर्षि दयानन्द आदि समाज सुधारकों ने अनेक स्वयंसेवी समूहों को खड़ा किया, प्रोत्साहित किया अथवा सहायता दी।

सरकार ने भी आरम्भ से ही इन स्वयंसेवी तथा गैर-सरकारी संगठनों की महत्ता को स्वीकार किया है। ब्रिटिश काल से ही 1860 का सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट इस प्रकार की संस्थाओं को सरकारी मान्यता भी प्रदान करता है। स्वतंत्र भारत के संविधान में वर्णित छ: मूल अधिकारों के तहत जो संघ बनाने की स्वतंत्रता भारतीय नागरिकों को प्राप्त है उसमें इस प्रकार के संगठनों के संकेत स्पष्ट हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के समक्ष राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों में भी स्वयंसेवी संगठनों ने पर्याप्त सहायता दी है। विकास के अनेक पक्षों में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

19.2 विकास विकास संचार एवं स्वयंसेवी संगठन

विकास पहले की स्थिति में होने वाला सकारात्मक परिवर्तन है। यह एक सतत् प्रक्रिया है, जो निरंतर चलती रहती है। इसमें सामाजिक आर्थिक-सांस्कृतिक

सभी पक्षों का विकास समाहित किया जाता है। आरम्भ में केवल आर्थिक विकास को ही विकास समझा जाता था लेकिन आज विकास की व्यापक अवधारणा समग्रता की मांग करती है। इसमें केवल वर्तमान का विकास ही समाहित नहीं है बल्कि भविष्य की चिंता और भविष्य के लिए संरक्षण की बात भी शामिल है।

आज विकास का अर्थ संविकास या समग्र विकास (Sustainable development) से लगाया जाता है। विकास की इस स्थिति में आर्थिक समृद्धि, बेहतर नागरिक सुविधाओं की उपलब्धता, शोषण से मुक्ति, राजनैतिक स्वतंत्रता, मानवाधिकार व कानूनी संरक्षण, शिक्षा रोजगार आदि के साथ-साथ प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण व उनका अनुकूलतम (Optimum) उपयोग समाहित है।

विकास संचार विकास के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए एक निवेश की तरह है। विकास कार्यों, विकास योजनाओं को जन-जन तक पहुँचाने और विकास के उद्देश्यों को जनता के बीच लोकप्रिय बनाने के लिए यह उपयोगी है। विकास से जनता को जोड़ने और विकास कार्यों के लिए जनसमर्थन जुटाने का काम भी विकास संचार ही करता है।

विकास की आवश्यकताओं को सामने लाने, जनता की अपेक्षाओं के प्रकटीकरण में भी विकास संचार का महत्व है। विकास क्या है? विकास क्यों आवश्यक है? कैसा विकास वांछित है?

विकास की दिशा क्या हो? आदि का समाधान बिना विकास संचार के संभव नहीं है।

विकास संचार विकास कार्यों की निगरानी का भी काम करता है। विकास के कार्य ठीक ढंग से हो रहे हैं या नहीं?, उनसे जनता की अपेक्षाएं क्या हैं?, भ्रष्टाचार और लूट-खसोट तो नहीं हो रही है - आदि को उजागर विकास संचार ही करता है। इस प्रकार वह विकास के कामों पर नजर भी रखता है।

विकास संचार की प्रचलित स्थिति पर यदि हम दृष्टिपात करें तो तीन धाराएं स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं -

(i) सरकारी स्तर पर

(ii) जनमाध्यमों के स्तर पर

(iii) स्वयंसेवी संगठनों के स्तर पर

सरकार स्वयं भी विकास कार्यों व योजनाओं को जन-जन तक पहुंचाने के लिए संचार रणनीति बनाती है और उसका प्रयोग करती है। सरकार के सूचना संगठन विकास परक सूचनाओं के प्रसारण तथा फीडबैक प्राप्ति में निरंतर संलग्न रहते हैं। दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के अतिरिक्त प्रेस इन्फॉरमेशन ब्यूरो, क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय, नृत्य तथा गीत प्रभाग व अन्य अभिकरण इस कार्य में संलग्न हैं। अलग से योजनागत व्यय भी संचारमूलक गतिविधियों हेतु निर्धारित किया जाता है।

भारत में जनमाध्यमों ने भी विकास संचार को पर्याप्त जगह दी है। शुरू से ही

जनता के विकास के मुद्दों पर भारतीय जनमाध्यमों ने अपनी दृष्टि डाली है। विकास संदेशों का प्रकाशन-प्रसारण, विकास की आवश्यकताओं का रेखांकन तथा विकास कार्यों का मूल्यांकन एवं निगरानी का काम जनमाध्यमों ने सफलतापूर्वक किया है।

इन दोनों के अतिरिक्त विकास संचार की दृष्टि से स्वयंसेवी संगठनों ने भी सकारात्मक एवं उपयोगी भूमिका निभाई है। स्वयंसेवी संगठन विकास संचार में संचार के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष यानि डिकोडिंग (Decoding) का करते हैं। संचार में संदेश का अर्थ निर्धारण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। यह अर्थ-निर्धारण स्रोत या संचारकर्ता (Source or Communicator) की ओर से नहीं होता है। संचार में संदेश का वास्तविक अर्थ वही होता जो श्रोता के समझ में आये या श्रोता निर्धारित करे। स्वयंसेवी संगठन विकास संदेशों का सरलीकरण करते हैं, आम आदमी को उसी की भाषा में संदेशों के बारे में समझाते हैं। इस प्रकार मूल स्रोत तथा श्रोता के बीच उनकी भूमिका संदेश के रूपान्तरकार या अर्थ-निर्धारक या डिकोटर की होती है।

केन्द्रीय स्तर पर विकास कार्यक्रम क्रियान्वयन स्तर तक पहुँचता है, फिर अंतिम व्यक्ति तक पहुंचता है। इसमें अंतिम व्यक्ति तथा द्वितीयक स्रोत या क्रियान्वयन एजेंसी के बीच स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका होती है जो मैसेज की डिकोडिंग करते हैं और इस प्रकार डिकोडिंग का कार्य श्रोता को नहीं करना पड़ता है। प्रतिपुष्टि को नियत स्थान तक पहुँचाने का भी ये कार्य करते हैं।

विकास संचार को प्रभावी ढंग से संपादित करने तथा विकास संदेशों की स्थापना में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। विकास के लिए जनमत निर्मित करने में, लोगों को लामबन्द करने में भी ये उपयोगी हैं। अभी भी देश में बहुत से ऐसे समूह हैं जो विकास के आधुनिक प्रतिमानों को सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से स्वीकार नहीं करते ऐसे लोगों का मत परिवर्तन करना तथा उन्हें विकास कार्यक्रमों से जोड़ने में भी यह संगठन उपयोगी हैं। उन तबकों के लिए जो विकास से वंचित हैं, उनतक विकास की किरणों को पहुँचाने में भी इनकी उपयोगिता है।

19.3 विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों की आवश्यकता

विकासपरक सूचनाओं को जन-जन तक पहुँचाने के लिए विकास संचार की प्रक्रिया संपादित की जाती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार विकास कार्यक्रमों की योजना तैयार करती है और उसका क्रियान्वयन तभी अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है जब वह लोगों तक पहुँचे और लोग उसे स्वीकार करें।

विकास संदेशों के माध्यम से यह प्रयास किया जाता है कि लोगों में विकास के प्रति एक चेतना विकसित की जाय। विकास कार्यक्रमों की लोगों को जानकारी दी जाय और उससे उन्हें जोड़ा जाय। इसके अतिरिक्त सामाजिक विकास के अनेक संकेतक ऐसे हैं जो व्यक्ति की सक्रिय भागीदारी की मांग करते हैं। शिक्षा, लड़का-लड़की समानता, सामाजिक व जातीय समानता, स्वास्थ्य जागरूकता, पर्यावरण

चेतना आदि के प्रश्न ऐसे प्रश्न हैं जो बिना विकास संचार की सहायता के अनुत्तरित रह सकते हैं।

ऐसे प्रश्नों के समाधान का प्रयास सरकार करती भी है। विकास के लिए जनमत तैयार करने, विकास सूचनाओं को जन-जन तक पहुँचाने के लिए सरकारी सूचना एवं संचार संगठन भी कार्यरत होते हैं पर वे अपर्याप्त होते हैं।

ऐसी स्थिति में ऐसे संगठनों की आवश्यकता महसूस की जाती है जो विकास संचार का गैर-सरकारी रूप से प्रभावी क्रियान्वयन कर सकें। जनशिक्षा में यह संगठन नितांत उपयोगी भी होते हैं। इस आवश्यकताओं को हम संक्षेप में निम्नांकित बिंदुओं के अन्तर्गत स्पष्ट कर सकते हैं -

1. विकास संचार की सघनता को स्थानीय या सूक्ष्म स्तर (Micro level) तक क्रियान्वित करने के लिए।

2. विकास की समस्याओं की पहचान करने में।

3. विकास सूचनाओं के प्रसरण (Diffusion) में मदद देने के लिए।

4. विकास संदेशों के प्रभावी स्थापन में मध्यस्थ तथा ओपिनियन लीडर की भूमिका निर्वहन करने के लिए।

5. विकास संदेश के ग्रासरूट लेवल या समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए।

6. सरकार तथा सरकारी तंत्र के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखने वाले। भयभीत होने वाले लोगों या समूहों को भी विकास की धारा से जोड़ने के लिए

7. सरकारी मशीनरी पर एकल निर्भरता तथा तत्स्वरूप लेट-लतीफी तथा लापरवाही के खतरों से बचाव के लिए।

8. विकास संचार के उन क्षेत्रों में जहाँ सरकारी तंत्र विकसित नहीं है अथवा तंत्र के नियोजन की योजना नहीं है, वहाँ विकास संचार के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए।

9. असंगठित क्षेत्रों के विकास संबंधी अल्पकालिक प्रशिक्षण, पुनश्चर्या कार्यक्रमों, कार्यशाला आदि के बेहतर संपादन आयोजन के लिए।

10. संगठित जनसमूहों की विकास कार्यों तथा विकास संचार में भागीदारी सुनिश्चित कराने के दृष्टिकोण से।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वयंसेवी संगठन विकास संचार के क्रियान्वयन मे सरकार व अन्य सरकारी स्वायत्तशासी एजेंसियों के सहायक तथा पूरक का विकल्प प्रस्तुत करते हैं। जन विश्वसनीयता तथा जनता से इनके सीधे जुड़ाव के चलते कई स्थितियों में ये संगठन सरकार तथा सरकारी तंत्र की अपेक्षा ज्यादा प्रभावशाली भी होते हैं।

19.4 विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों के कार्य

विकास संचार की प्रक्रिया के सार्वभौमीकरण तथा उसकी प्रभावोत्पादकता को सशक्त करने में स्वयंसेवी संगठनों का भी योगदान है। जन विकास के लक्ष्यों से ये संगठन वर्षों से जुड़े हैं तथा जन-भागीदारी, जनसमर्थन और जनता का विश्वास इनकी पूँजी है। ऐसे में विकास संचार से जुड़े अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में इनकी सक्रियता दृष्टिगोचर होती है। हम संक्षेप में इस कार्य-विवरण को निम्नांकित तीन बिंदुओं के तहत स्पष्ट कर सकते हैं -

(i) प्रमुख कार्य क्षेत्र

(ii) स्वतंत्र भूमिका

(iii) सरकारी कार्यक्रमों में सहायता

19.4.1 प्रमुख कार्य क्षेत्र

यदि हम भारत में स्वयंसेवी संगठनों के कार्यक्षेत्र पर दृष्टिपात करें जनविकास के विभिन्न क्षेत्रों में यह कार्यरत हैं। शिक्षा, रोजगार, ग्रामीण विकास, युवा विकास, महिला विकास, बाल विकास, मानवाधिकार, बाल अधिकार, जन स्वास्थ्य, प्रशिक्षण एवं तकनीकी कौशल का विकास, सशक्तिकरण, पर्यावरण संरक्षण, क्षेत्रीय विकास, सांस्कृतिक एवं मानसिक विकास, आदिवासी व अनुसूचित जाति विकास आदि विविध कार्यक्षेत्रों में इनकी सक्रियता अधिक है।

यदि इनके कार्यों पर दृष्टिपात करें तो शिक्षण-प्रशिक्षण जागरूकता मूलक कार्यक्रम जैसे कार्यशाला, संगोष्ठी, परिचर्चाएँ, प्रकाशन एवं आउटडोर कम्यूनिकेशन, शोध एवं शोध प्रतिवेदन तैयार करना, समीक्षा एवं मूल्यांकन कार्य आदि इनके प्रमुख कार्य हैं। स्वयंसेवी संगठनों की कार्य प्रणाली जनसहभागिता के आधार पर विकसित होती है तथा कार्यक्रमों की संचारमूलकता इनकी प्रमुख विशेषता है।

विकास संचार के दृष्टिकोण से यह प्रवृत्ति महत्वपूर्ण है। विकास संचार के निम्नांकित कार्य स्वयंसेवी संगठन संपादित करते है।

(i)योजना निर्माण एवं शोध - इसके तहत स्वयंसेवी संगठनों के उन कार्यों को शामिल किया जा सकता है जिसमें समाज के लिए महत्वपूर्ण विषयों के प्रति जन जागरूकता के प्रसार के लिए जो कार्यक्रम तैयार किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जनता की विकास संबन्धी जारुरतों को सामने लाने तथा विकास की समस्याओं को रेखांकित करने के लिए किये जाने वाले सूक्ष्मस्तरीय शोध कार्य भी इसमें सम्मिलित किये जा सकते हैं।

(ii) विकास संदेशों का प्रसरण (Diffusion) - स्वयंसेवी संगठन संदेशो को जन-जन तक जन-जन की भाषा में और जन-जन में माध्यमों की मदद से पहुंचाने का कार्य कर रही हैं। कठपुतली, नुक्कड़ नाटक, संगीत व गीतमय प्रस्तुतियों द्वारा

संदेशारोपण का यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(iii) **सलाहकाल एवं व्याख्याकर का कार्य–** विकास संदेशों को आम आदमी की भाषा व माहौल में व्याख्यापित करना तथा सही विकासपरक सलाह उपलब्ध कराना आदि कार्य इसमें शामिल हैं।

(iv) **फीडबैक संकलन–** विकास कार्य क्या परिणाम दे रहे हैं, विकास संदेशों का क्या प्रभाव हो रहा है, आदि का आंकलन, संकलन व नोडल एजेन्सियों तक उन्हें पहुँचाने का कार्य इसमें शामिल है।

19.4.2 स्वतंत्र भूमिका

विकास संचार के क्रियान्वयन में स्वयंसेवी संगठन उपयोगी भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। उनकी इस स्वतंत्र भूमिका में समाज के कल्याण के लिए मिलने वाली अन्त:प्रेरणा का कार्य उत्प्रेरक का है। स्वत: उत्प्रेरणा से जनशिक्षा के प्रभावी कारक के रूप में इनकी साख स्थापित हुई है।

जनता को रूढ़ियों से मुक्त करना, अधिकारों के प्रति सचेत करना, विकास कार्यों का लाभ उठाने के लिए उन्हें तैयार कराना, सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध सचेत करना और विकासोन्मुख जनमत का निर्माण इसमें शामिल हैं। स्वयंसेवी संगठन विकास के उपायों की पहचान करते हैं, उनकी महत्ता को जनता के बीच स्थापित करते हैं, तत्पश्चात जनसहयोग से उक्त कार्यों को पूर्ण करते हैं।

इस दृष्टि से हम अनेक महत्वपूर्ण उदाहरणों का उल्लेख कर सकते हैं। देश में जन जागरूकता का पर्याय बन रहा जनसूचना का कानून स्वयंसेवी संगठनों के जनान्दोलन की ही उपज है। राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में अकाल अल्पवृष्टि व सूखे के मंजर की जगह पारम्परिक जल प्रणाली की मदद से हरियाली लाने का काम करने के लिए राजेन्द्र सिंह और उनके संगठन के कार्यों को वैश्विक सराहना मिली है। इसी प्रकार शराबबंदी, जल संरंक्षण, वृक्षारोपण, महिला संरक्षण, साहूकारी से बचाव, सहकारिता आंदोलन, सामाजिक न्याय, बालिका शिक्षा व प्रौढ़ शिक्षा, मानवाधिकार आदि संबन्धी अनेक कार्य स्वयंसेवी संगठनों के स्वतंत्र प्रयासों और उनकी सफलता की कहानी स्वयं कहते हैं।

19.4.3 सरकारी कार्यक्रमों में सहायता

सरकार अपनी विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन और ज्यादा से ज्यादा लोगों तक उन्हे पहुँचाने के लिए विकास संचार की सहायता लेती है। इसमें विकास संदेशों का प्रसरण (Diffusion), विकास के प्रति लोगों के रुझान का आकलन विकास कार्यों का फीडबैक प्राप्त करना आदि बातें शामिल हैं। विकास संचार का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए, स्वयंसेवी संगठनों की सहायता ली जाती है।

सरकार की इस दृष्टि से अनेक क्षेत्रों में स्वयंसेवी संगठन प्रभावी मदद करते

हैं। जनजागरूकता पैदा करने तथा संदेशों के प्रभावी स्थापन में भी इससे सहायता मिलती है। सरकारी एजेन्सियां इसीलिए ऐसी कार्ययोजना तैयार करती हैं कि उसमें ज्यादा से ज्यादा स्वयंसेवी संगठनों और समूहों की भागीदारी सुनिश्चित हो।

यह व्यवस्था विकेन्द्रीकरण तथा सरकार की जिम्मेदारी केवल संरक्षण एवं निरीक्षण तक सीमित रखने की अवधारणा को भी बल मिलता है। अनेक क्षेत्रों में इस संयोजन के सकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर भी हो रहे हैं।

इस दृष्टि से अनेक सरकारी कार्यक्रम का उल्लेख किया जा सकता है। पल्स पोलियो के विरुद्ध जागरूकता कायम करने में नागरिक सुरक्षा व समाजसेवा संगठनों की सक्रिय सहायता ली जा रही है। जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों को जनसमर्थन दिलाने में भी गैर-सरकारी संगठनों का योगदान सराहनीय रहा है। बाल-श्रम उन्मूलन, एड्स नियंत्रण साक्षरता का प्रसार, पर्यावरण संरक्षण देखा जा सकता है।

क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय, मंत्रालयों की जनसंपर्क इकाइयां आदि अपने विकास संचार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में इस तरह के सहयोग का निरन्तर उपयोग करती हैं। यही नहीं विविध राष्ट्रीय - अन्तराष्ट्रीय वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने वाली एजेन्सियां भी स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से संप्रेषणमूलक विकास कार्यक्रमों को नियमित रूप से धन उपलब्ध कराती हैं। देश में आज लाखों की संख्या में स्वयंसेवी संगठन इस प्रकार के कार्यों को पूरी सक्रियता के साथ प्रभावी सहयोग प्रदान कर रहे हैं और उसके सकारात्मक परिणाम भी परिलक्षित हो रहे हैं।

19.5 विकास संचार एवं स्वयंसेवी संगठनों की साख

संचार में साख बहुत महत्वपूर्ण होती है। स्रोत का प्रधान गुण ही स्रोत विश्वसनीयता (Source Credibility) होनी चाहिए। यदि स्रोत की विश्वसनीयता श्रोता की नजरों में नहीं बन पाती है तो संचार अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल हो सकता है और उसके नकारात्मक प्रभाव भी हो सकते हैं।

विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों की सफलता उनकी साख पर निर्भर है। यदि संगठन की विश्वसनीयता जनता की नजर में बेहतर है तो जनसमर्थन पाने, जनता को जागरूक करने, उत्प्रेरित करने, किसी तथ्य को स्वीकार कराने में वह सफल होता है। सरकार भी इन संगठनों का सहयोग इसीलिए लेती है क्योंकि वे जनता की विश्वसनीयता अर्जित कर चुके होते हैं और जनता पर उनका प्रभाव गहरा होता है।

लेकिन यदि स्वयंसेवी संगठन की विश्वसनीयता जनता में नहीं है तो उसके प्रयासों का प्रतिफल सकारात्मक नहीं हो सकता दुर्भाग्यवश कुछ लोग स्वयंसेवी संगठनों को सरकार से मिलने वाली सहायता पाने के चक्कर में स्वयंसेवी संगठनों का दुरूपयोग करते हैं। ऐसे लोग समाज की सेवा करने की बजाय स्वयं की सेवा करने लगते हैं। फलस्वरूप ये अपनी विश्वसनीयता गँवा बैठते हैं और इनकी बातों का नकारात्मक असर होता है।

19.6 सारांश

विकास के लक्ष्य बिना विकास संचार के सफलतापूर्वक नहीं प्राप्त किये जा सकते। विकास के लिए विकास संचार एक अनिवार्य निवेश है। विकास संचार के माध्यम से ही विकास कार्यों में ज्यादा से ज्यादा जनभागीदारी सुनिश्चित होती है और जनता को विकास कार्यक्रमों को अपनाने के लिए तैयार करने में मदद मिलती है।

विकास संचार में जनता सरकार और उसकी सहायक एजेंसियां महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्रेस या जनमाध्यम भी विकास संचार में सहायक होते है। लेकिन इसके साथ-साथ स्वयंसेवी संगठन विकास संचार की प्रक्रिया के क्रियान्वयन में अत्यन्त उपयोगी होते हैं।

स्वयंसेवी संगठनों का आधार ही जनता की विश्वसनीयता होती है। यह संगठन जनता के बीच के होते हैं तथा आम जनता के परिवेश में उसकी भाषा में संचार कायम करने में विशेष रूप से सक्षम होते हैं। इससे विकास संचार की प्रक्रिया ये प्रभावी ढँग से संपादित कर पाते हैं।

भारत में विकास संचार की दृष्टि से स्वयंसेवी संगठनों ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। सरकार व अन्तरराष्ट्रीय एजेंसियाँ भी इनकी विश्वसनीयता को स्वीकार करती हैं और विकास संचार के कार्यों में स्वयंसेवी संगठनों की सहभागिता भी अवश्य की जाती है।

राष्ट्र निर्माण के इस महत्वपूर्ण कार्य में स्वयंसेवी संगठनों को अनिवार्य रूप से अपना सक्रिय योगदान देना चाहिए। कुछ स्वयंसेवी संगठन निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए जनता की विश्वसनीयता से खिलवाड़ करते हैं। उन्हें इस प्रवृत्ति से बचना चाहिए।

19.7 संदर्भ ग्रंथ

1.डॉ० अर्जुन तिवारी - जनसंचार समग्र

2. डॉ० अनिल कुमार उपाध्याय - पत्रकारिता एवं विकास संचार

3. ए०के० बनर्जी - जनसंचार एवं विकास

4. विल्बर श्रैम - मास कम्यूनिकेशन

5. भारत, संदर्भ ग्रंथ, 2006

19.8 पारिभाषिक शब्दावली

(i) डिकोडिंग (Decoding) - संचार की प्रक्रिया का यह महत्वपूर्ण तत्व है। स्रोत द्वारा प्रेषित संदेश को श्रोता द्वारा अपनी भाषा या समझ के अनुसार जो रूपान्तरण या सरलीकरण किया जाता है उसे डिकोडिंग कहते हैं। इसे निम्न प्रकार से स्पष्ट कर संकते हैं -

स्रोत→संदेश→इनकोडिंग→चैनल→श्रोता→डिकोडिंग

(ii) ओपिनियन लीडर - पॉल लेजर्स फील्ड व काट्ज ने 1930-40 के दशक में अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में स्रोत और श्रोता के बीच ऐसे व्यक्तियों को चिन्हित किया जिनके माध्यम से दिया गया संदेश ज्यादा प्रभावी तरीके से श्रोता तक पहुँचता है। इन्हें ओपिनियन लीडर के रूप में स्पष्ट किया गया। यह एक प्रकार का अनौपचारिक नेतृत्व होता है। ऐसे व्यक्ति जो परिवार, मोहल्ला, गाँव या छोटे से समूह पर अपना प्रभाव रखते हैं, ओपिनियन लीडर कहलाते हैं। परिवार का मुखिया, समूह का सबसे पढ़ा - लिखा या कमाऊ व्यक्ति, सरपंच, अध्यापक, पत्रकार, सर्वाधिक बुजुर्ग आदमी आदि ओपिनियन लीडर हो सकते हैं। ओपिनियन लीडर को दो प्रकार में विभाजित किया जाता है - (i) मोनोमार्फिक (Monomorphic) ओपिनियन लीडरशिप तथा (ii) यूनिमार्फिक (Unimorphic) ओपिनियन लीडरशिप। मोनोमार्फिक ओपिनियन लीडरशिप आधुनिक औद्योगिक समाजों में पायी जाती है जहाँ विशेषज्ञ व्यक्ति से विशेषज्ञता के अनुरूप सलाह ली जाती है जैसे डॉक्टर से चिकित्सकीय सलाह। यूनीमार्फिक ओपिनियन लीडरशिप पारम्परिक समाजों की विशेषता है। ऐसे समाजों में एक ही व्यक्ति कई विषयों पर सलाह देता है। जैसे गाँव का बुजुर्ग आदमी खेती-किसानी से लेकर बच्चों के जनन व पालन-पोषण तक की सलाह देता है।

19.9 प्रश्नावली

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. विकास तथा विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका का मूल्यांकन करें।

2. विकास संचार में स्वयंसेवी संगठनों के प्रमुख कार्यों का वर्णन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. विकास संचार में साख क्यों जरूरी है?

2. ओपिनियन लीडर के प्रमुख प्रकार बताएँ।

3. विकास संचार क्या है?

4. विकास का अर्थ बताइए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. यूनीमार्फिक ओपिनियन लीडरशिप विशेषता है -

(क) औद्योगिक समाजों की

(ख) आधुनिक समाजों की

(ग) पारम्परिक समाजों की

(घ) इनमें से कोई नहीं

2. डिकोडिंग है -

(क) श्रोता द्वारा अर्थ निर्धारण

(ख) स्त्रोत द्वारा अर्थ निर्धारण

(ग) संदेश पर माध्यम का प्रभाव

(घ) संदेश को भाषा के रूप में व्यवस्थित करना

3. स्वयंसेवी संगठन नहीं है -

(क) रेडक्रॉस

(ख) क्राई

(ग) पीआईबी

(घ) सभी विकल्प गलत हैं

4. पर्यावरण संरक्षण से जुड़ा नाम है-

(क) मेधा पाटेकर

(ख) जगदीश चन्द्र बसु

(ग) पाण्डुरंग आठवले

(घ) अरुणा रॉय

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर -

(1) ग

(2) क

(3) ग

(4) क

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MA(JMC)-116
विकास संचार

खण्ड
05
विकास के मुद्दे

इकाई-20	5
सहभागी संचार : अवधारणा	
इकाई-21	18
विकास एवं कार्यक्रम निर्माण	
इकाई-22	32
विकास संचार एवं लेखन	
इकाई-23	49
विकास एवं आधी दुनिया	
इकाई-24	66
विकास संचार तथा राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मुद्दे	

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम संयोजक**
श्री एम0 एल0 कनौजिया	**कुलसचिव - सचिव**

विशेषज्ञ समिति

1- प्रो0 जे0 एस0 यादव	पूर्व निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली
2- प्रो0 राममोहन पाठक	निदेशक, मदन मोहन मालवीय, हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
3- प्रो0 सुधाकर सिंह	हिन्दी (प्रयोजनमूलक) विभाग, बी0एच0यू0, वाराणसी
4- डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय	जनसम्पर्क अधिकारी, बी0एच0यू0, वाराणसी
5- डॉ0 पुष्पेन्द्र पाल सिंह	अध्यक्ष-पत्रकारिता विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता, विश्वविद्यालय भोपाल

सम्पादक

डॉ0 अर्जुन तिवारी- वरिष्ठ परामर्शदाता, उ0प्र0रा0ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक मंडल

1- प्रो0 राम दरश राय	- निदेशक पत्रकारिता, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
2- श्री अनुराग दवे	- पत्रकारिता विभाग, बी0 एच0 यू0, वाराणसी
3- श्रीमती विनयपुरी पाण्डेय	- हिन्दुस्तान दैनिक, वाराणसी
4- श्री विमलेश तिवारी	- मीडिया सेन्टर, वाराणसी
5- श्री शैलेन्द्र प्रताप सिंह	- विद्या भवन, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड-05 खण्ड-परिचय : विकास के मुद्दे

इस खण्ड में निम्नलिखित इकाइयाँ हैं :-

20- सहभागी संचार : अवधारणा

21- विकास एवं कार्यक्रम निर्माण

22- विकास संचार एवं लेखन

23- विकास एवं आधी दुनिया

24- विकास संचार तथा राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मुद्दे

सामाजिक परिवर्तन लाने की दिशा में विकास पत्रकारिता की महत्वपूर्ण भूमिका है। पिछले वर्षों में आकाशवाणी, टेलीविजन, समाचार पत्र, पत्रिकाओं के अलावा फिल्म जगत ने भी संचार व्यवस्था में असरदार भूमिका निभाई है।

वस्तुतः विकास पत्रकारिता का लक्ष्य केवल विकास कार्य तक सीमित नहीं है। सामाजिक बुराइयों को दूर कर मानव के सम्पूर्ण विकास से यह जुड़ा है। विकास संचार सर्वांङ्गीण प्रगति का दिक्सूचक है जिसकी ओर सबकी दृष्टि लगी हुई है।

इकाई 20 - सहभागी संचार : अवधारणा

इकाई की रूप-रेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 अवधारणा

20.2.1 सहभागी संचार प्रक्रिया

20.2.2 मीडिया की लोकतान्त्रिक भागीदारी का सिद्धान्त

20.2.3 वर्तमान स्थिति

20.3 सहभागी संचार का लक्ष्य

20.4 भारत में सहभागी संचार

20.4.1 सहभागी संचार की सक्रियता

20.4.2 इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों पर निर्भरता

20.5 सहभागी संचार और सूचना युग

20.6 नई सूचना टेक्नॉलाजी तथा सहभागी संचार

20.6.1 समाचार पत्रों में सहभागी संचार की स्थिति

20.6.2 रेडियो और सहभागिता

20.6.3 सहभागिता से दूर टेलीविजन

20.6.4 सहभागी परम्परागत संचार

20.7 सहभागी संचार माध्यम चयन

20.8 सहभागी संचार की वास्तविक स्थिति

20.9 सहभागी संचार का सच

20.10 सारांश

20.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

20.12 प्रश्नावली

20.0 उद्देश्य

इस अध्याय में हम संचार में जन-सहभागिता एवं उसकी उपयोगिता को जानेंगे। साथ ही साथ मीडिया द्वारा जन-सहभागिता को बढ़ावा देने और उसके परिणामों और वस्तु स्थिति पर भी चर्चा करेंगे । इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् हम जान सकेंगे :-

2. यह किस प्रकार कार्य करता है?

3. विभिन्न माध्यमों में सहभागी संचार की क्या स्थिति है?

4. किस प्रकार संचार या जन सहभागिता और विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है?

20.1 प्रस्तावना

संचार मानव समाज का आधार है । शारीरिक हाव-भाव, संकेतों और वाणी के माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान संचार के अन्तर्गत आता है। संचार के द्वारा ही मानव के सामाजिक सम्बन्ध बनते और निरन्तर विकसित होते हैं। अर्थात् मानवीय समाज के संचालन की समस्त प्रक्रिया संचार पर आधारित है। मानव का व्यवहार संचार माध्यम, संचार संपादन और सूचना के नियन्त्रण से हर पल प्रभावित होता है। संचार का यह रूप कभी-कभी पूरी तरह व्यक्त होता है और कभी अव्यक्त होता है। परन्तु समाज के संचित अनुभव निरन्तर संचारित होकर समाज को बाँधे रहते हैं । सूचनाओं, संदेशों एवम् अनुभवों की इस भागीदारी से सामाजिक समझ का विकास संभव होता है।

20.2 अवधारणा

संचार सभी सामाजिक व्यवहार का आधार है। इसे समाज का मूल कहा गया है। अंग्रेजी के शब्द "Communication" की व्युत्पत्ति लैटिन के "Communis" से मानी गयी है । जिसका अर्थ है सहभागिता अर्थात साझेदारी । तात्पर्य यह है कि संचार एक सहभागी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विचारों, संदेशों, अर्थों आदि का व्यवहार संभव होता है ।

20.2.1 सहभागी संचार प्रक्रिया

यह गतिशील दोतरफा संचार प्रक्रिया है जिसमें प्रेषक (एाही) तथा प्राप्तकर्ता या प्रापक (ंमग्नी) और संदेश के बीच सामन्जस्य स्थापित होता है। इसके लिए प्रेषक और प्रापक के मध्य संवेदना के स्तर तथा व्यक्तिगत रूचि, व्यक्तिगत संवेदना और विषय की प्रासंगिकता का होना अति आवश्यक होता है प्रेषक अपने संदेश को संकेतों द्वारा ग्राहक को भेजते समय इनकोड करता है और अपनी क्षमतानुसार ग्राहक सूचना को ग्रहण करते समय डीकोड करत है। अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए प्रापक जब "Feedback" भेजता है तो दोनों की भूमिका परिवर्तित हो जाती है। ग्राहक प्रापक बन जाता है और प्रेषक ग्राहक । संचार की यह भागीदारी की प्रक्रिया अनवरत जारी रहती है।

दरअसल सहभागी संचार विकेन्द्रित, बहुल्य एवं विविध माध्यम की मांग करने

वाला श्रोता (आडियन्स) आधारित संचार है । जहाँ हर जन-संचार माध्यमों का लक्ष्य सिर्फ श्रोता होता है।

20.2.2 मीडिया की लोकतांत्रिक भागीदारी का सिद्धान्त

मीडिया के नियामक सिद्धान्त में यह एक नया विकास है। इसका स्थान मुख्य रूप से धन, सम्पन्न,उदारवादी, समाज में है। नारमेरिता सिद्धान्तों में आधुनिकतम सिद्धान्त दरअसल सहभागी संचार, विकसित और विकासशील संचार सिद्धान्तों का समन्वित रूप है। 'मैकवील' की दृष्टि में सिद्धान्त अपने विशिष्ट तत्वों के कारण महत्वपूर्ण है। यह सिद्धान्त क्षैतिज संचार की धारणा पर आधारित है और इस दृष्टि से विकासोन्मुख मीडिया सिद्धान्त पर विश्वास करने वालों को यह अधिक आकृष्ट करता है । यह सिद्धान्त निजी स्वामित्व वाले मीडिया के एकाधिकार और व्यदसायीकरण के लिए एक चुनौती है। यह मीडिया संस्थाओं के केन्द्रीकरण और उनमें नौकरशाही के बोलबाले के खिलाफ है। यह संदेश प्राप्त करने वालों और उनकी आवश्यकताओं, रूचियों तथा आकांक्षाओं पर जोर देता है । मीडिया संदेशों के प्राप्तकर्ताओं को अपने विचारों के प्रेषक लिए आधुनिक टेक्नॉलाजी के उपयोग की पूरी आजादी होनी चाहिए। उन्हें हर तरह के विचारों की स्वतंत्रता होनी चाहिए। इंटरनेट, ई-मेल और कम्प्यूटर की मदद से तैयार किए गये मुद्रित संदेश नागरिकों के बीच संवाद कायम कर सकते हैं । इसमें जो महत्वपूर्ण सिद्धान्त सम्मिलित है वह यह है कि नागरिकों एवं अल्पसंख्यक समूहों को अपनी आवश्यकता एवं पसंद का मीडिया चुनने का अधिकार है और उन पर निजी, सार्वजनिक या नौकर शाह संगठन का नियंत्रण नहीं होगा। मीडिया जनता के लिए है न कि किसी मीडिया संगठन या पेशेवर लोगों या विज्ञापनदाताओं के लिए। मैक्वेल के अनुसार 1960 तथा उसके बाद एक वैकल्पिक, जमीनी मीडिया जो नागरिकों की आवश्यकताओं को मीडिया बतलाएं। वस्तुतः लोकतंत्र को छोटे, एक दूसरे से संवाद करने में सक्षम तथा जरूरत पड़ने पर परम्परागत रूपों पर आधारित ऐसे मीडिया की आवश्यकता है जो नए समाज के निर्माण के साझा लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लोगों को एकजुट रख सकें।

20.2.3 वर्तमान स्थिति

धनी सम्पन्न तथा विकसित देशों में 1960 के बाद छोटे-छोटे समुदाय जिनके एक से विचार, एक से लक्ष्य होते थे, वे अपने छोटे समाचार पत्र निकाला करते थे। इन समुदायों में निजी रेडियो, होम रेडियो, कम्युनिटी, केबल टी.वी., माइक्रो मीडिया आदि होते थे। चूँकि अब टेक्नॉलाजी उपलब्ध है। अतः गरीब देशों के सूचित समूहों के पास ये सुविधाएं है। वहीं गरीब देशों में संचार की टेक्नॉलाजी के बहुजनन में कई दशक लग जायेंगे। दीवार, पोस्टर्स, दीवार समाचार पत्र, छोटे पारम्परिक आधार पर समाचार पत्र ये सभी महिलाओं तथा अल्पसंख्यकों आदि के लिए निकाले जाने चाहिए, जब तक भी नई टेक्नॉलाजी आ न जाए। यह व्यवहारिक बात होगी। भारत तथा चीन

जैसे आबादी के घनत्व वाले देश जिनकी आबादी अरब (A Hundred Million) में जा रही है, और अपनी अभिव्यक्ति के साधन नहीं हैं। क्योंकि इनकी आर्थिक स्थितियाँ इस प्रकार नहीं हैं कि ये बड़े देशों जैसे मीडिया का लाभ उठा सकें । बड़े पैमाने पर एक तरफा पेशेवर मीडिया के मुकाबले छोटे मीडिया संगठन लोकतन्त्र के लिए बेहतर है। ये पारस्परिक संवाद पर आधारित स्थानीय मुद्दों को अधिक शीघ्रता तथा कारगर तरीके से उठा सकते हैं। पंचायतें/नगर पालिकाओं की बैठकों और इसी तरह के आपसी आदान-प्रदान वाले कार्यक्रमों के लिए उपयुक्त माध्यम हैं।

मैक्वेल ने कहा है 'जनसंचार एक ऐसा महत्वपूर्ण मोहरा है जिसे पेशेवर लोगों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता '

20.3 सहभागी संचार का लक्ष्य

इस सिद्धान्त के अनुसार किसी राजनैतिक समाज में संचार से प्रभावित व्यक्तियों की आवश्यकताओं, रूचिओं और अपेक्षाओं का विशेष महत्व होता है। इसलिए सूचना का अधिकार, अपने प्रश्नों के उत्तर पाने का अधिकार और संचार साधनों के समुचित उपयोग के लिए इस सिद्धान्त के अनुसार -

(1) संचार साधनों की विविधता और बहुलता आवश्यक है।

(2) यह सिद्धान्त एकीकृत, केन्द्रीकृत और राज्य नियंत्रित संचार का विरोधी है।

(3) इस सिद्धान्त के अनुसार साधनों का अन्तिम लक्ष्य श्रोता और पाठक है । मीडिया संगठन और माध्यमों का हित जनहित के सम्मुख गौण है।

20.4 भारत में सहभागिता संचार

लोकतंत्र तभी सफल और उपयोगी हो सकता है जब लोग राष्ट्रीय गतिविधियों में सक्रियता से अपनी भागीदारी करें। स्थानीय नियामकों में अपनी सक्रिय भागीदारी करें,उसमें भाग लें आदि। इन सब के बावजूद टी.वी. पर समाचार पत्रों पर कभी-कभी सामाजिक संदेश भी प्रसारित होते हैं और इनके द्वारा भी अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते। गहन परिणाम के लिए कम्पनियां अन्तरवैयक्तिक संचार चैनल का उपयोग करती है। द्वार-द्वार अभियान, ग्राम पंचायतों में बैठकें, अन्य फोरम जैसे महिला समाज, कर्मचारिओं के संगठन आदि का उपयोग किया है। इसका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि सभी नागरिकों का सहयोग प्राप्त किया जाए, ताकि लोकतांत्रिक सरकार के स्वरूप को सफलता प्राप्त हो। इसके लिए आवश्यक है कि लोगों की सहभागिता सस्कार के कार्यो में हो। रेडियो आदि में अन्तरवैयक्तिक संचार के द्वारा इसे और भी सफल बनाया जा सकता है। स्थानीय तथा जिला प्रशासन शिक्षा से सम्बन्धित संस्थाओं आदि की जानकारियों के द्वारा इसे और भी सशक्त बनाया जा सकता है। सन् 1980 के प्रारम्भ में एक विचार यह दिया गया। पी.सी. जोशी कमेटी ने इसे अपनी अनुशंसाओं में सम्मिलित किया था। इससे स्थानीय लोगों की उनकी जरूरतों और आवश्यकताओं के

अनुरूप सूचना सहभागिता प्राप्त की जा सकेगी तथा स्थानीय समस्याओं की भी जानकारियाँ प्राप्त की जा सकेंगी। परन्तु इस विचार को मूर्त रूप देने में कोई कदम नहीं उठाया गया। पीज (खेड़ा) के प्रयोगों के द्वारा इसे प्रमाणित भी किया गया परन्तु इसका कोई समाधान नहीं निकला। विदेशी सेटेलाइट के लिए एअरवेज (Airways) खोले गये, केबल टी.वी. व्यवस्था को सशक्त भी बनाया गया । इन सब के बावजूद टी.वी. के कार्यक्रमों में कोई परिवर्तन नहीं आया है। वही विज्ञापन एवं फिल्म आधारित कार्यक्रम धड़ल्ले से चल रहे हैं। जिनका मुख्य उद्देश्य कमर्शियल तथा विज्ञापन प्राप्त करना है।

20.4.1 सहभागी संचार की सक्रियता

अन्तरवैयक्तिक संचार तथा जनसंचार चैनल का विवेचित मिला-जुला रूप ही लोकतांत्रिक सहभागिता में लोगों को गतिशील बना सकता है। यहाँ तक की जनसंचार के लिए नई टेक्नॉलॉजी ई-मेल, इण्टरनेट आदि के द्वारा भी लोगों को गतिशील बनाया जा सकता है। बशर्ते कि वे इसका भार उठा सकते हों। सामान्य नागरिकों की आर्थिक स्थितियाँ नहीं सुधरती हैं, तब तक यह मीडिया केवल संभ्रांत लोगों तक ही सीमित रहेगा। बहुसंख्यक लोगों की आवश्यकताएं पूरी नहीं होती हैं और तेजी से उनकी संचार की आवश्यकताओं में काट-छाँट हो जाती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत में इन्टरनेट के उपयोग करने वालों की संख्या सन् 2001 में छः मिलियन थी जो सन् 2006 तक 40 मिलियन होने की संम्भावना है। यह बहुत आशावादी अनुमान है यदि यह सत्य हो जाता है तो यह 40 मिलियन अर्थात पूरी जनसंख्या का 4 प्रतिशत होगा।

20.4.2 इलेक्ट्रानिक माध्यमों पर निर्भरता

वर्ष 1970, 1980 तथा 1990 के दशकों में रेडियो तथा टेलीविजन के क्षेत्र में भी भारी विकास हुआ है । वहीं एफ.ए. स्टेशनों की संख्या बढ़कर 200 से ऊपर हो गयी है। वही कुछ दर्जन एफ. एम. स्टेशन भी हो गये हैं। लगभग एक हजार टी.वी. ट्रांसमीटर्स है तथा 5.5 करोड़ टी.वी. सेट्स हैं जिसका अर्थ यह हुआ कि लगभग 20 करोड़ लोग प्रतिदिन टी.वी. देखते हैं। लगभग 15 करोड़ ट्रांसमीटर्स सहित रेडियो सेट्स हैं। 1990 के पश्चात् भारी मात्रा में संदेशों का निर्माण हो रहा है तथा कई लाख लोगों तक यह पहुँच रहे है। इसी के साथ साथ विदेशी चैनल भी इसी दशक से आना प्रारम्भ हो गये हैं जैसे बी.बी.सी. भी इस क्षेत्र में आ गया है। वर्तमान में मर्डाक का न्यूज कार्पोरेशन अपने स्टार टी.वी. टेलीविजन सेटेलाइट एशिया रेंज, केबल न्यूज नेटवर्क (सी.एन.एन.) और कई प्रकार के केबल टी.वी. चैनल जैसा कि ऐशियानेट, सूर्या जैमिनी, जया, कैरली, सन टी.वी. आदि चालू हो गये हैं भारत में मास मीडिया सामाजिक परिवर्तन का एक बड़ा कारण बन गया है। इसके द्वारा नियमित, सर्वव्यापक, तात्कालिक उपलब्धता तथा व्यापक मनोरंजन किया जाता है और बड़े बड़े कार्पोरेट विज्ञापनदाताओं के द्वारा कार्यक्रम को प्रायोजित किया जाता है। वास्तविक रूप में

महानगरों राज्यों, की राजधानियों बड़े औद्योगिक शहरों में रहने वाले लोगों के द्वारा अत्याधुनिक टेक्नॉलॉजी साधनों का उपयोग समाचार मनोरंजन कार्यक्रम तथा सूचनाएं प्राप्त करने में कर रहे हैं साथ ही साथ शिक्षा प्राप्त करने में भी ।

20.5 सहभागी संचार और सूचना युग

इसमें कोई संदेश नहीं है कि सूचना युग (Information Age) एक वास्तविकता है तथा सूचना समाज (Information Society) का अस्तित्व बन चुका है। लेकिन समाज में किस तरह की सूचनाओं का संतुलन बनेगा, भारत के लिए एक बड़ा प्रश्नचिह्न खड़ा कर रहा है, हम केवल भारत को क्यों कहें सम्पूर्ण विश्व में जहाँ आधे से भी अधिक जनसंख्या अपने जीवन काल में केवल एक बार फोन का भी उपयोग नहीं कर पाई है। इस सूचना युग में उनके सम्बन्ध में क्या कहा जाए।

बल्कि आज नये उपकरण आ गये हैं सभी कुछ पैकेज में दिया जा रहा है, मल्टी मीडिया की आवश्यकताए ऑप्टिकल डिस्क (Optical Disc) या सीडी रोम डिस्क (CD-ROM Disc) आदि। विभिन्न प्रकार के टेक्स्ट और ग्राफिक्स जिन्हें मूविंग पिक्चर आडियो और विभिन्न प्रकार के विशेष प्रभाव (Special effects) द्वारा संजोया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान मीडिया युग में नई तकनीकों के सहारे संचार में सहभागिता को बढ़ाया जा सकता है, किन्तु मीडिया स्वामित्व, अर्न्तनिहित स्वार्थ तथा माध्यमों में होड़ के चलते फिलहाल यह संभव नहीं लगता ।

20.6 नई सूचना टेक्नॉलॉजी तथा सहभागी संचार

21वीं शताब्दी के प्रथम दशक में भारत में जनसंचार और टेली कम्युनिकेशन के क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन आए हैं । ये सभी परिवर्तन पिछली सदियों में हो रहे, परिवर्तनों के परिणाम रहे हैं परन्तु ये बेमिसाल परिवर्तन तेजी से कदम बढ़ाते हुए आए हैं और मानव समाज में अपनी पहचान बनाने में सक्षम रहे हैं ।

ये परिवर्तन व्यापक हैं और इन्होंने जनसंचार की सभी व्यवस्थाओं को प्रभावित किया है। उदाहरण के तौर पर 1990 के पश्चात् मुद्रण माध्यम में टेक्नॉलॉजी के रूप में भारी परिवर्तन आए हैं, जब कम्प्यूटर के द्वारा समाचारों का चयन, एकत्र करना, स्टोर करना, उन्हें प्राप्त करना तथा इसके द्वारा उन्हें प्रसारित करना आदि प्रारम्भ हुआ। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं के मुद्रण में भी कम्प्यूटर का प्रवेश हुआ । इन्हें टेक्नॉलॉजी की विशेषज्ञता के साथ प्रकाशित, मुद्रित किया जाने लगा। टेवनॉलॉजी के द्वारा प्रकाशित पत्र पत्रिकाओं का स्तर इतना श्रेष्ठ है कि इन्हें विश्व के किसी भी देश से प्रकाशित टेक्नॉलॉजी रूप में प्रकाशित पत्र पत्रिकाओं की श्रेणियों में रखा जा सकता है। ये पत्र पत्रिकाएं 'लंदन टाइम्स', न्यूयार्क टाइम्स' तथा 'न्यूजवीक' की तुलना योग्य है। भारत में इसी श्रेणी की तरह कई पत्र पत्रिकाएं मशरूम की खेती की तरह उग आई है। देश की यह बड़ी उपलब्धि है, परन्तु इसका एक दूसरा पहलू भी है कि समाचार पत्रों

और पत्रिकाओं की विषयवस्तु उतनी गम्भीर नहीं है। ये ज्यादातर कमजोर तथा सनसनीदार होती हैं और सहभागिता से दूर रहती है। कहीं रूपान्तरण (Transformation) की प्रक्रिया में तकनीकी निष्पादन में कृत्रिमता आ गई है, जिससे पत्रकारिता की आत्मा कहीं खो गयी हैं जब टेक्नॉलॉजी नहीं थी तब वह उपस्थित थी । देश में फिल्म दृश्य-श्रव्य संचार का एक बहुत बड़ा माध्यम है। यहाँ तक कि 20वीं सदी के मध्य में भारत विश्व का प्रमुख फीचर फिल्म निर्माण करने वाला देश था। यदि हम फिल्मों के सन्दर्भ में देखें तो महिलाओं की छवि रूढ़िवाद है जिसे रेखांकित किया जाना चाहिए। मुख्य थीम अवास्तविक घटनाओं के इर्द -गिर्द घूमती है ज्यादातर फिल्मों में भारतीय जीवन की स्थितियां और उनकी छवियों को गंभीरता के साथ चित्रित नहीं किया जाता ।

20.6.1 समाचारों पत्रों में सहभागी संचार की स्थिति

अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं के सभी बड़े समाचार पत्रों के कई संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं यह संस्करण छह या इससे अधिक शहरों से प्रकाशित हो रहे हैं। कई भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों की प्रसार संख्या कई लाख प्रतियाँ हैं, कई ऐसे हैं जिनकी प्रसार संख्या तीन लाख के आस-पास हैं। भारतीय भाषाओं के बंगाली, अंग्रेजी, हिन्दी, कन्नड़, तेलुगू, मलयालम, मराठी, तमिल, गुजराती भाषाओं के समाचार पत्र खूब फल-फूल रहे हैं। विभिन्न क्षेत्रों में समाचार पत्रों ने अपने स्तर को बढ़ा लिया है, उन्हें विज्ञापन भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो रहे हैं। ये देश के विभिन्न क्षेत्रों से प्रकाशित हो रहे हैं। परन्तु कोई भी ग्रामीण समाचार पत्र नहीं हैं । देश के कई लाख लोग और नये पढ़े लिखे लोग हैं या आस पास के क्षेत्रों से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र मिलते हैं। परन्तु दूर दराज के क्षेत्रों में रहने वालों के लिए कोई भी समाचार पत्र उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि ये क्षेत्र नगरों कस्बों से कई मील दूरी पर स्थित हैं। इन समाचार पत्रों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं पर भी ध्यान नहीं दिया जाता है। और न ही उनकी समस्याओं को समुचित रूप में उठाया जाता है दूसरी तरफ समाचार पत्रों का ध्यान भी अपनी प्रसार संख्या बढ़ाने पर केन्द्रित होता रहा है, इस कारण शहरों/ नगरों पर ज्यादा ध्यान केन्दित किया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में अब साक्षरता का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है, शिक्षा का प्रसार भी बढ़ रहा है। परन्तु नये पढ़े लिखे और साक्षर लोगों के लिए कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं है ।

20.6.2 रेडियो और सहभागिता

इलेक्ट्रानिक मीडिया के उपकरणों में मुद्रित मीडिया से अधिक तीव्रता से और दूरदराज तक संदेश पहुँचाने की शक्ति है। रेडियो सबसे सस्ता और पोर्टेबल उपकरण है। उन्नीसवीं सदी के अन्त में मारकोनी द्वारा आविष्कृत रेडियो ने संचार के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। समाचारों, गीत, संगीत, नाटक, रूपक प्रस्तुत कर रेडियो हर उम्र के श्रोता को प्रिय हो गया था। अपना काम करते हुए भी श्रोता इसके द्वारा प्रेषित संदेशों को ग्रहण कर सकते हैं, यही इसकी सबसे बड़ी सुविधा थी। भारत में रेडियो का प्रवेश सन्

1926 के आस पास हुआ। आरम्भ में ये निजी कम्पनी के स्वामित्व में था। सन 1930 में भारत सरकार ने अधिग्रहीत कर इसे आल इंडिया रेडियो की संज्ञा दी। आजादी के समय देश में केवल 6 रेडियों स्टेशन थे। अब सैकड़ों का आकड़ा पार कर चुके हैं। भारत की सभी भाषाओं और करीब ढाई सौ बोलियों में आकाशवाणी से प्रसारण होता है । देश के 90 प्रतिशत क्षेत्र में और 95 प्रतिशत जनता तक रेडियो की पहुँच हो चुकी है।

टेलिविजन के प्रसारण से रेडियो की स्थिति पर आघात अवश्य पहुँचा। क्योंकि केवल श्रव्य से दृश्य और श्रव्य से मिश्रण में अधिक आकर्षण था। परन्तु रेडियो की महत्ता अब भी अपनी जगह है। टेलीविजन का प्रसारण, रेडियो प्रसारण से अधिक मँहगा और समय खपाऊ है। युद्ध, आपात काल में रेडियो के प्रसारण तुरन्त संदेश प्रेषित करते हैं जबकि टेलीविजन को विजुअल (दृश्य सामग्री) तैयार करने में समय लगता है।

केवल एक समय में एक ही केन्द्र से प्रसारण सुन सकना, प्रसारण बीच में रोककर दुबारा सुन पाने का प्रावधान होना, रेडियों की सीमा है। रेडियो का संचार इकहरा भी होता है । रेडियों की यही सीमाएं उसे जन सहभागिता से दूर करती हैं।

20.6.3 सहभागिता से दूर टेलीविजन

भारतीय मीडिया जगत में पिछले दशकों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को लेकर निजी और जनता के द्वारा स्वामित्व को लेकर काफी चर्चा हुई है। यह बहुत ही अच्छा हुआ कि एक स्वायत्त कार्पोरेशन प्रसार भारती बनाया गया, लेकिन अस्तित्व में आने के बाद क्या प्रसार भारती के कार्यक्रमों द्वारा कुछ परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं? क्या इस कार्पोरेशन के द्वारा विदेशी चैनलों से प्रतिस्पर्धा की चिन्ता की गई है? विदेशी चैनलों द्वारा आई बाढ़ के स्वरूप सामाजिक जिम्मेदारी भी समाप्त होती दिखाई दे रही है, परन्तु दूरदर्शन के द्वारा पिछले दो-तीन दशकों में कुछ सीमा तक इस पर चिन्ता व्यक्त की गयी है। आज प्रत्येक चैनल आपसी होड़ में लगे हैं और इनका मुख्य आधार सिनेमा आधारित कार्यक्रम और मनोरंजन ही मुख्य है। विभिन्न भाषाओं में सेटेलाइट स्टेशन तथा केबल चैनलों के द्वारा आपसी प्रतिस्पर्धा बढ़ गयी है, फलस्वरूप सामाजिक जिम्मेदारी भी समाप्त होती दिखाई दे रही है परन्तु दूरदर्शन के इस प्रकार के कार्यक्रमों को संरक्षण दिया जा रहा है तथा कमर्शियल और मनोरंजन कार्यक्रमों की प्रचुरता बढ़ गई है। इन सभी चैनलों की विषय-वस्तु ज्यादातर जीवन शैली और सांस्कृतिक कार्यक्रमों से घिर गई है, जो समाज के भौगोलिक और सामाजिक- आर्थिक स्थितियों से दूर है।

20.6.4 सहभागी परंपरागत संचार

ग्रामीण संचार के पारंपरिक माध्यम लोककथा, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकनाट्य और लोकभित्ति, चित्रों तक के रूप में सूचना, संदेश और मनोरंजन का सशक्त साधन हैं, इनकी प्रकृति विकासात्मक होती है, गतिशीलता और निरन्तर इनकी विशेषता है पर अंग संचालन, अभिनय, हाव भाव और मुद्राओं का भी इसमें समावेश होता है। रामलीला के संचार गीत नृत्य सभी संयोजित संचार के रूप हैं। हरिकथा, लोकनाट्य, नौटंकी, गीतों, कहानियों के अतिरिक्त गाँव के उत्सव त्योहार, मेले और हस्तकलाएं भी पारंपरिक संचार का उदाहरण है। भारत जैसे पारम्परिक समाज में परम्परागत संचार जनसहभागी संचार का सबसे सटीक और प्रभावशाली माध्यम हो सकता है।

20.7 सहभागी संचार माध्यम चयन

सकारात्मक और प्रभावी संचार के लिए सबसे आवश्यक बात होती है कि हम ऐसे उपयुक्त माध्यम का चयन करें जो लक्ष्य श्रोता तक संदेश को प्रभावी ढंग से पहुँचा सके।

किसी संदेश के लिए कौन सा माध्यम चुना जाए इसके लिए आवश्यक होता है:-

1. श्रोता समूह की मानसिकता की पहचान ।
2. माध्यम की उपलब्धि ।
3. बजट।
4. संचारक की इच्छा।
5. माध्यम की लोगों तक पहुँच का आकलन ।
6. माध्यम के प्रभाव का अनुमान ।
7. संदेश का उपयुक्त माध्यम होना ।

माध्यम चयन की यह कसौटी संचार में सहभागिता को सुनिश्चित करती है।

20.8 सहभागी संचार की वास्तविक स्थिति

रेडियों सुनने वालों, टेलीविजन देखने वालों, ई-मेल और इंटरनेट के उपयोग करने वालों की संख्या में प्रभावी बढ़ोत्तरी हुई है। विशेष तौर पर शहरों और नगरों में। सीधे-सीधे लोग अब कम्प्यूटर तथा इलेक्ट्रानिक मनोरंजन पर आ रहे हैं इनकी सेवाएं भी घरों में आ रही है, यह भी एक प्रभावी कदम है। लेकिन भारतीय परिप्रेक्ष्य में जनसंचार और अन्तरवैयक्तिक संचार की दिशा में अभी भी बहुत कुछ होना बाकी है। वास्तविक परिवर्तन तो तब होगा जब मीडिया, उपयोग करने वालो के लिए प्रभावी

बने। आज ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, साक्षरता, तकनीकी शिक्षण-प्रशिक्षण की आवश्यकता अधिक है, तभी पारम्परिक से आधुनिक समाज की ओर हम प्रगति कर सकेंगे। यह गतिशीलता एक उत्प्रेरक की भूमिका का निर्वाह करेगी। आगे मीडिया का विकास भी इस प्रकार के प्राथमिक कौशल के विकास पर ही निर्भर है अगर हम विश्व के अन्य देशों से तुलना करें तो भारत मीडिया के उपयोग में अभी भी बहुत पिछड़ा है । भारत में प्रति 1000 व्यक्तियों पर केवल 21 टी.वी. सेट्स 117 रेडियो सेट्स तथा 21 दैनिक अखबार हैं अर्थ यह है कि यूनेस्को ने यह सुझाव दिया कि भारत में मीडिया अपने प्रसार में अभी भी किसी माध्यम पर नहीं पहुँच पाया है।

सन 1970 तथा 1980 के दशकों में भारत में मास मीडिया के उपयोग के लिए चर्चाएं होती रही हैं, विशेष तौर पर टी.वी. के लिए जिसके माध्यम से संदेशों के द्वारा लोगों को प्रेरणा दी जाए और सामाजिक परिवर्तन संभव हो सके। इसी समय 1984 में पी.सी. जोशी कमेटी की रिपोर्ट आयी जिसका शीर्षक था 'एन इण्डियन पर्सनालिटी फॉर टी.वी. (1,2) इस रिपोर्ट ने बहुत ही महत्वपूर्ण अनुशंसा (Recommendation) की थी कि ग्रामीण क्षेत्रों में लो -पावर ट्रांसमीटर्स को निर्माण केन्द्रों (Production Centre) में बदल दिया जाए। इसके पीछे विचार यह था कि स्थानीय लोग भी सक्रिय रूप में कार्यक्रमों के निर्माण में सहभागी बन सकें तथा स्थानीय समस्याओं के विकास के लिए निर्णायकों की प्रेरणा दी जा सके।

20.9 सहभागी संचार का सच

लेकिन प्रश्न यह उठता है कि अन्तरवैक्तिक तथा जनसंचार के चैनलों पर नियंत्रण किसका होगा? सम्भवतः उन्हीं आधा दर्जन सुपर मनोरंजन करने वाले महाकाय लोगों का जो आज विश्व के मीडिया परिदृश्य पर नियंत्रण कर रहे हैं? कैसे पूरे विश्व तथा भारत के गरीब इस बढ़ती टेवनॉलॉजी से लाभान्वित हो सकेंगे?

विश्व के विभिन्न देशों में टी.वी. परिवार के मनोरंजन का सबसे बड़ा माध्यम बन गया है और बड़े अमीर देशों में इसका रूप व्यक्तिगत हो गया है। गरीब देशों के सम्पन्न वर्गों के मध्य टी.वी. , वी.सी.आर., वीडियो और यहाँ तक कि अब कम्प्यूटर भी इनके लिए बड़ा माध्यम बन गया है। पश्चिम के देशों में बड़े स्क्रीन और हाई डेफिनेशन टी.वी. आ गये हैं इन सबका नया मिला-जुला रूप कम्प्यूटर टी.वी. -टेली-कम्युनिकेशन कनवर्जेन्स है, इसका तेजी से विकास हो रहा है और सम्पन्न समाज में फैल रहा है। विश्व के बड़े मनोरंजनों के कर्ता-धर्ता विश्व के बड़े-बड़े कार्पोरेशन्स के द्वारा इस उद्योग को फलने-फूलने का साधन बनाया जा रहा है।

धनी सम्पन्न देशों में मीडिया स्वामित्व के केन्द्रीकरण पर स्मिथ (Smith) (6) बेगडिकियान (Bagdikian) (7) तथा मैकेजनी (Mcchesney) (8) में प्रश्न खड़े किए हैं। वैसे भी इससे सम्बन्धित गरीब व अमीर देशों के मीडिया के उपयोग करने वाले लोग भी हैं जिन्होंने इस तरह के प्रश्न खड़े किए हैं। (9) इन सब प्रश्नों के संदर्भित

उत्तर नई टेक्नॉलॉजी की प्रासंगिकता पर निर्भर करते हैं। इससे सम्बन्धित कुछ बड़े प्रश्न हैं -

1. क्या सूचना क्रान्ति ने समग्र रूप में समाज को लाभ पहुँचाया है?
2. क्या पश्चिम का प्रगत समाज सूचना के भार (Over load) से पीड़ित हैं ?
3. क्या निरक्षर तथा गरीब के लिए कम्प्यूटर शिक्षा संभव है? क्या सूचना टेक्नॉलॉजी तथा नए मीडिया के उपयोग के लिए साक्षरता आवश्यक हैं? परिपाटी में चली आ रही साक्षरता क्या केवल शब्द पढ़ सकती है या विश्व को भी?
4. गरीब वर्ग के महिला एवं बच्चों को इन्टरनेट किस प्रकार प्रभावित कर सकता है? क्या नई टेक्नॉलॉजी अशालीनता तथा अनैतिकता को बढ़ावा दे रही है?
5. क्या सूचना युग में गोपनीयता का अधिकार तथा बौद्धिक सम्पदा का अधिकार प्राप्त हो सकेगा?
6. क्या नई टेक्नॉलॉजी के द्वारा गरीब एवं सम्पन्न के मध्य खाई बढ़ती जायेगी? इसे रोकने के लिए कौन से नए उपाय किए जा रहे हैं?
7. समाज में आधुनिक सूचना टेक्नॉलॉजी की जुगत कितनी महत्वपूर्ण है? जहाँ सूचना का अधिकार केवल कुछ लोगों तक ही सीमित है, यह स्थितियाँ बहुतों की है?
8. गरीब देशों में नई मीडिया टेक्नॉलॉजी का उपयोग किस तरह से होगा, जिससे वहाँ सामाजिक परिवर्तन संभव हो सके।
9. क्या नई टेक्नॉलॉजी के द्वारा बेरोजगारी समाप्त होकर रोजगार के नये अवसरों का सृजन हो सकेगा? याकि फिर पुनः बेरोजगारी को बल मिलेगा और लोग बेरोजगार हो जायेंगे?
10. क्या नया मीडिया टी.वी. एवं फिल्मों में सेक्स तथा हिंसा को कम कर सकेगा?
11. अधिक विज्ञापन जिन्हें बच्चों के लिए नुकसानदेह माना जाता है नया मीडिया उनके साथ किस प्रकार का न्याय कर सकेगा ?
12. बार-बार के दोहराये जाने वाले कमर्शियल्स के द्वारा क्या अनावश्यक मांगों को बढ़ावा नहीं दिया जा रहा है?
13. क्या ये समकालीन समाज को ठीक तरह से प्रतिबिम्बित कर रहे हैं? या कुछ पहलुओं और छवियों को बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत कर रहे हैं?
14. क्या मीडिया व्यवसायिक मनोरंजन के लिए कमर्शियल्स की पूर्व निर्धारित दरों पर चल रहा है?

तथा विचारित असत्य से मुक्त रखा है।

इन प्रश्नों के उत्तर मीडिया विशेषज्ञों निर्णय लेने वालों ने तटस्थ होकर नहीं दिए हैं। समाजशास्त्री तथा आर्थिक विशेषज्ञों ने तीसरे-चौथे विश्व की रचना कर दी। भविष्य में गरीबों का विकास भी सामाजिक, आर्थिक, तथा सांस्कृतिक रूप में मीडिया के उपयोग पर ही निर्भर करेगा ।

20.10 सारांश

वर्तमान युग सूचना का युग है। सूचना से अलग होकर किसी भी प्रकार के विकास की संकल्पना कर पाना कठिन है। इसके लिए आवश्यक है कि संचार माध्यमों का व्यापक स्तर पर उपयोग किया जाए। किन्तु इन जनसंचार माध्यमों का स्वामित्व कुछ खास लोगों के हाथ में सिमट कर रह गया है जिसके कारण सूचना निर्माण और उसके सम्प्रेषण में आम जन की सहभागिता नहीं हो पा रही है।

भारत जैसे परम्परागत समाज में पारंपरिक जनमाध्यम आज भी प्रासंगिक हैं और यदि इसका सूचारू रूप से उपयोग किया जाए तो न केवल जनसहभागिता सुनिश्चित की जा सकती है बल्कि प्रभावी तरीके से जन समस्याओं का निराकरण भी ढूँढा जा सकता है।

20.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Research in mass media - Manoj Dayal
2. Journalism in India - Rangaswami Parthsarathi
3. पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास : डा. अर्जुन तिवारी

20.12 प्रश्नावली

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. सहभागी संचार का लक्ष्य क्या है?
2. सहभागी संचार की प्रक्रिया को बतलाएं।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में सहभागी संचार की क्या स्थिति है?
2. संचार में जनसहभागिता बढ़ाने के उपायों पर चर्चा करें।
3. परम्परागत संचार माध्यम एवं जनसहभागिता पर लेख लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सहभागी संचार का गन्तव्य है -

2. भारत में एफ.एम. रेडियो केन्द्रों की संख्या लगभग है -

क) 100 ख) 150 ग) 200 घ) 300

3. सहभागी संचार माध्यम चयन का आवश्यक घटक है -

क) बजट ख) श्रोता समूह की पहचान ग) माध्यम की उपलब्धि

घ) सभी

उत्तर -

1 (घ) 2 (ग) 3 (घ)

इकाई 21 - विकास एवं कार्यक्रम निर्माण

इकाई की रूप-रेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 अवधारणा

21.3 विकास के मापदण्ड

21.4 सम्पूर्ण विकास अर्थात् सर्वोदय

21.5 विकास समर्थक संचार

- 21.5.1 विकास समर्थक संचार : आरम्भ
- 21.5.2 विकास समर्थक संचार : प्रक्रिया

21.6 कृषि : भारत में कृषि विकास

- 21.6.1 कृषि प्रसार
- 21.6.2 कृषि प्रसार का इतिहास

21.7 कृषि संचार प्रक्रिया

21.8 कृषि प्रसार और संचार माध्यम

- 21.8.1 कृषि प्रसार और समाचार पत्र
- 21.8.2 कृषि प्रसार और रेडियो
- 21.8.3 कृषि प्रसार और टेलीविजन

21.9 स्वास्थ्य

21.10 स्वास्थ्य संचार

- 21.10.1 विकास समर्थक संचार और स्वास्थ्य

21.11 जनसंख्या

- 21.11.1 जनसंख्या नियंत्रण एवं विकास समर्थक संचार

21.12 भविष्य की चुनौतियां

2.13 पर्यावरण

- 21.13.1 आर्थिक विकास एवं पर्यावरण
- 21.13.2 भारत में पर्यावरण की स्थिति

21.14 विकास एवं पर्यावरण

21.14.1 विकास समर्थक संचार एवं पर्यावरण

21.15 सारांश

21.16 शब्दावली

21.17 संदर्भ ग्रन्थ

21.18 प्रश्नावली

21.0 उद्देश्य

विकास मानव स्वभाव का सबसे आवश्यक अंग रहा है। प्रागैतिहासिक काल से आज तक मानव ने निरन्तर विकास की राह पकड़ी है। इस विकास का सीधा सा उद्देश्य उसे अपने जीवन हेतु तमाम सुख-सुविधाओं को जुटाना रहा है। यह विकास आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक, स्वास्थ्य, पर्यावरण, जनसंख्या,कृषि जैसे तमाम मुद्दे को अपने में समाहित किये हैं। विभिन्न संचार माध्यम इस विकास में अपनी भूमिका निभा रहे हैं इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात हम जान सकेंगे ।

1. विकास का सही अर्थ क्या है?
2. विकास समर्थक संचार से क्या आशय है?
3. कृषि स्वास्थ्य, जनसंख्या, पर्यावरण को विकास संचार किस प्रकार लोगों के सामने ला रहा है?

21.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में हम विकास से जुड़े हुए तमाम मुद्दों पर चर्चा करेंगे। साथ ही साथ बदलते समय के साथ विकास की बदलती अवधारणा का अवलोकन करेंगे। दरअसल विकास को आर्थिक उन्नति के साथ जोड़कर देखा जाता है। तात्पर्य यह है कि आर्थिक विकास एक क्रिया है।जिसके द्वारा प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाया जाता है। साथ ही साथ आर्थिक विकास के द्वारा ही संस्थाओं तथा कार्यक्षेत्र में भी बदलाव आता है। उदाहरण के लिए भारत सरकार तमाम विदेशी उद्यमियों को अपने देश में पैसा लगाने तथा व्यवसाय शुरू करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। यदि यह प्रस्ताव विदेशी कम्पनियाँ मान जाती हैं तो इसका परिणाम होगा तमाम लोगों को रोजगार । इसका मतलब रोजगार युक्त लोगों को एक निश्चित आय के साथ-साथ जीवन यापन के अन्य संसाधनों की उपलब्धता।

21.2 अवधारणा

प्रति व्यक्ति आय से आशय सभी नागरिकों की कमाई का पूरी जनसंख्या से भाग

देने पर आता है । अर्थात कम बेरोजगारी बराबर अधिक प्रतिव्यक्ति आय । यदि एक बार व्यक्ति को रोजगार मिल जाता है तो वह निश्चित ही अपनी त्वरित आवश्यकता जैसे रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था कर सकता है। किन्तु विकास का मापन सिर्फ प्रतिव्यक्ति आय ही नहीं है बल्कि उससे आगे मानव मूल्यों की रक्षा हेतु उपलब्ध संसाधनों से भी है। यदि हमारे यहाँ कम बेरोजगारी है तो इसका मतलब है कि कलकत्ता, मुम्बई जैसे महानगरों में फुटपाथ पर सोने वालों की संख्या कम होगी साथ ही साथ यातायात के साधन बढ़ेंगे। साक्षरता दर बढ़ेगी तथा सड़क पर भिखारियों की संख्या में कमी आयेगी। यह सच्चे विकास का मानक है। दरअसल विकास एक क्रिया है जो न सिर्फ आर्थिक ढांचे में बदलाव लाता है बल्कि किसी भी समाज की राजनैतिक,सांस्कृतिक, सामाजिक ताने-बाने से भी जुड़ा रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विकास से आशय सिर्फ आर्थिक विकास या औद्योगीकरण न होकर एक सम्पूर्ण गुणात्मक परिवर्तन है जो पूरे सामाजिक ढांचे में बदलाव लाकर उसे ऊपर उठाता है। यह सार्थक विकास लोगों को आत्मनिर्भर बनाने में मदद करता है।

21.3 विकास के मापदंड

प्रायः लोग विकास का सन्दर्भ आर्थिक विकास से जोड़कर कर लेते है। जिसका तात्पर्य प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के रूप में हमारे सामने आता है। साधारण भाषा में कहें कि इससे आशय सकल राष्ट्रीय आय को कुल जनसंख्या से भाग देने पर जो संख्या प्राप्त होती है वह प्रतिव्यक्ति आय कही जाती है । यह मापदंड राष्ट्र द्वारा 1950 में अपनाया गया था। जिसके द्वारा 200 डालर से कम प्रतिव्यक्ति आय वाले देश को कम विकसित देश की श्रेणी में रखा गया। हालांकि यह एक असंवेदनशील किन्तु मोटा-मोटा तरीका था जिसके द्वारा कम विकसित देशों को आर्थिक सहायता दी जा सकती थी।

हालांकि इस मापदंड की ढेर सारी सीमाएं हमारे सामने आई ।

1. प्रथम, यह राष्ट्रीय आय सांख्यिकी पर आधारित है जो सही आय के एक बड़े भाग को नहीं दर्शाता है । जिस घरेलू कार्यों के योगदान को इस मापदंड में नकारा गया। भारत जैसे देश में जहाँ वस्तु एवं सेवा का एक लम्बा कार्य प्रतिव्यक्ति आय में शामिल नहीं किया जा सकता ।

2. द्वितीय यह मापदंड औसत आय को निर्धारित करती है तथा उत्पादन के ढांचे तथा राष्ट्रीय आय के वितरण पूरी तरह से स्पष्ट नहीं कर पाती। उदाहरणार्थ पश्चिम एशिया के कई देशों जैसे कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात में प्रति व्यक्ति आय खूब होते हुए भी संयुक्त राष्ट्र ने उसे विकासशील देशों की श्रेणी में रखा है।

3. यह मापदंड विकास के सीमित संसाधनों को आधार बनाता है। उदाहरण के लिए खनिज, तेल, लकड़ी इत्यादि जैसे निर्यात आधारित देश कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात, त्रिनिदाद, टोबैगो की प्रतिव्यक्ति आय कितनी भी हो, किन्तु इन्हें विकसित देशों की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। क्योंकि आर्थिक विकास के लिए जिम्मेदार ये संसाधन असीमित नहीं है तथा इनकी समाप्ति के पश्चात् आर्थिक विकास की सारी

गतिविधियाँ रूक सकती हैं अर्थात इस प्रकार का विकास खोखला और अस्थायी साबित हो सकता है।

4. चौथी प्रमुख सीमा जो इस मापदंड के सामने आती है वह है कि प्रतिव्यक्ति आय बढ़ने के पश्चात् भी बेरोजगारी बढ़ सकती है। तकनीकी रूप से अत्यंत विकसित देशों जैसे अमेरिका में मशीनीकरण, कम्प्यूटरीकरण, रोबोट्स, आदि के प्रचलन ने रोजगार के अवसरों को कम किया। भारत जैसे अन्य विकासशील देश भी इस समस्या से अछूते नहीं हैं ।

21.4 सम्पूर्ण विकास-अर्थात् सर्वोदय

इन सीमाओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि विकास का संदर्भ मात्र आर्थिक विकास ही न होकर व्यक्ति, समुदाय एवं समाज के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार भी किया है। दरअसल जीवन के एक भाग का विकास दूसरे विकासों की नींव बनता है अतः आर्थिक, सामाजिक एवं स्वास्थ्य विकास के बीच कोई मान्य अन्तर नहीं हो सकता। इनमें से कोई भी इकाई स्वतंत्र रूप से विकास नहीं कर सकती बल्कि आपसी निर्भरता तथा तालमेल के द्वारा सम्पूर्ण विकास को गति मिलता है।

वस्तुतः आर्थिक विकास ही वह माध्यम है जिसके द्वारा सामाजिक विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है। विकास का सही अर्थों में उद्देश्य मानव को आर्थिक रूप से सक्षम और सामाजिक रूप से संतुष्टि प्रदान करना है। अतः विकास को कृषि, स्वास्थ्य पर्यावरण, जनसंख्या आदि से भी जोड़कर देखना तभी ठीक होगा। साथ ही साथ उपरोक्त के विकास में संचार की भूमिका को भी तय करना होगा जिसे हम विकास संचार की संज्ञा देते है।

21.5 विकास समर्थक संचार

विकास समर्थक संचार से आशय विकास कार्यक्रम से जुड़े सभी ऐसे नियमों जैसे राजनैतिक, निर्णायकों, नियोजकों, विकास प्रशासकों, विषय विशेषज्ञों, कार्यकर्त्ताओं अभिनय निर्माताओं, मीडिया प्रतिनिधियों, शोधकर्ताओं, अभ्यर्थियों तथा श्रोताओं के मध्य संयोजन करने हैं ।

21.5.1 विकास समर्थक संचार : आरम्भ

विकास समर्थक संचार कृषि प्रसार के रूप में गत शताब्दी के पचास के दशक में आया। इस समय तक लगभग सभी विकासशील देशों में कृषि की पद्धति पारम्परिक थी जबकि ज्यादातर जनसंख्या जीविकोपार्जन कृषि आधारित था। भारत में आज भी जुताई, बीज, फसल प्रबन्धन पारम्परिक और मानसून आधारित है। परिणामस्वरूप लघु एवं सीमांत किसान आज भी पर्याप्त उत्पादन कर पाने में खुद को असमर्थ पाता है। इन्हीं समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए यह निश्चित किया गया कि कृषि प्रसार स्वतंत्र तकनीकी ज्ञान द्वारा किसानों में कृषि के प्रति वैज्ञानिक सोच विकसित किया जाए ताकि उन्हें अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके। इसके लिए कृषि में नये आविष्कारों, विचारों,

वुड्स के अनुसार विकास समर्थक संचार की भूमिका इन तीनों इकाइयों को जोड़कर तथा मध्य उपभोक्ता समूहों को साथ लेकर विकास की क्रिया में गति देना है। उनका यह भी मानना है कि सूचना में न सिर्फ लक्ष्य समूहों तक पहुँचाना चाहिए बल्कि उसे पहुँचाने की पद्धति पर भी नजर होनी चाहिए। साथ ही साथ दोतरफा संचार द्वारा लक्ष्य समूहों की बात को भी विकास योजना निर्माण प्रक्रिया में सम्मिलित करना चाहिए। अर्थात विकास समर्थक संचार दोतरफा लोकतांत्रिक सहभागी संचार का अच्छा उदाहरण है जिसके द्वारा स्वास्थ्य, शिक्षा, जनसंख्या नियन्त्रण, पर्यावरण, कृषि आदि के विकास को गति दिया जा सकता है।

21.6 भारत में कृषि विकास

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है और किसी न किसी रूप में कृषि से जुड़ी है। भारत में कृषि की अपनी विशेषता है जो भौगोलिक आधार पर निर्भर करती है। अनाज उत्पादन की अलग-अलग विधियां ऊसर जलप्लावन वाले क्षेत्र, भूमि का कम उपजाऊपन, सूखे की स्थिति, मानसून पर निर्भरता, कीटों का प्रकोप, और कृषि के प्रति पारम्परिक नजरिया जैसे कितने ही कारक आज भी कृषि विकास के रास्ते में बाधा है।

हालांकि कृषि की इस दशा में सुधार हेतु बहुआयामी प्रयास किये जा रहे है। जिसमें ग्राम पंचायतों का गठन, बीज उर्वरकों एवं कृषि रसायनों की सहभागी स्तर पर उपलब्धता, कृषि ऋण विपणन, कृषि शोध एवं उसका खेतों में प्रयोग, फसल बीमा और कृषि प्रसार जैसे उल्लेखनीय प्रयास शामिल हैं जो कृषि के उन्नयन हेतु प्रयासरत हैं । यह कार्य कृषि प्रसार द्वारा ही संभव है।

21.6.1 कृषि प्रसार

कृषि प्रसार से तात्पर्य कृषि कार्य में लगे व्यक्तियों उत्पादन की उन्नत तकनीक, प्रबन्धन अनाज सुरक्षा, और उसका उचित विपणन तथा कृषि आधारित अन्य कार्यों के बारे में व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करना है। साथ ही साथ प्रयोगशाला से निकले कृषि शोध को खेतों तक सफलतापूर्वक पहुँचाना कृषि के प्रति व्यक्ति की सोच और व्यवहार में गुणात्मक परिवर्तन लाना, अनाज का प्रसंस्करण एवं उसका विपणन आदि, ताकि व्यक्ति एवं उसके परिवार समुदाय के जीवन स्तर में सार्थक विकास संभव हो सके।

21.6.2 कृषि प्रसार का इतिहास

कृषि प्रसार का प्रारम्भ भारत में 50 के दशक से माना जाता है। जबकि जन-प्रतिनिधि ग्रामीण अभिकर्ताओं एवं विषय-वस्तु विशेषज्ञों की सहायता से पारम्परिक कृषि के प्रबन्धन पर दृश्य-श्रव्य माध्यमों के द्वारा जोर दिया गया।

कृषि प्रसार में सबसे अधिक सफलता 60 के दशक में मिली। जब जनपदीय सघन कृषि कार्यक्रम (आई.ए.डी.पी.) के द्वारा विकसित शस्य क्रिया उन्नत बीज उर्वरकों, कीटनाशकों, भूमि एवं जल प्रबन्धन और कृषि से जुड़े अन्य विषयों जैसे -

शोध; सूचना, क्रेडिट, भण्डारण, विपणन आदि पर कृषि प्रसार कार्यक्रम को केन्द्रित किया गया। इसी दशक के मध्य में कृषि प्रसार में एक नये आयाम का जुड़ाव हुआ। जिसके अन्तर्गत कृषि की उन्नत तकनीक को खेतों में प्रदर्शन के द्वारा प्रचारित करना था। इस कार्यक्रम की कोशिश थी कि कृषि वैज्ञानिकों एवं किसानों, प्रयोगशाला एवं खेत तथा शोध एवं व्यवहार में संयोजन संभव हो सके तथा कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास विकसित हो। इसमें संदेह नहीं है कि कृषि प्रसार के इन प्रयासों के कारण देश में हरित क्रान्ति का सूत्रपात हुआ और आज भारत खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर है। कृषि प्रसार की इस कड़ी में 'किसान कॉल सेन्टर' की अवधारणा एक अभिनव प्रयोग है। जिसमें कृषि से जुड़ी कोई भी जानकारी किसान फोन के द्वारा विशेषज्ञों से मुफ्त प्राप्त कर सकता है। दरअसल कृषि प्रसार का उद्देश्य किसानों में कृषि से जुड़ी सारी जानकारी को उनके द्वार तक पहुँचाने का है।

21.7 कृषि संचार प्रक्रिया

कृषि विकास हेतु सटीक एवं सामाजिक सूचनाओं का सम्प्रेषण अत्यन्त आवश्यक होता है। इस संचार प्रक्रिया को हम इस प्रकार देख सकते हैं :-

स्त्रोत -

कृषि वैज्ञानिक, आविष्कारक/शोधार्थी, प्रसार कार्यकर्ता, किसान मित्र, विपणन कर्ता इत्यादि ।

संदेश -

नई एवं उन्नत तकनीकी उर्वरक, कीटनाशक, नये कृषि-कर्म, नये कृषि यन्त्र, पशुपालन तथा अन्य विषय ।

माध्यम -

अन्तरवैयक्तिक संचार माध्यम, प्रसार कार्यकर्ता, अभिमत निर्माता, जनसंचार माध्यम जैसे रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, पत्र पत्रिकायें, लोक माध्यम तथा ऑडियो-वीडियो कैसेट्स आदि ।

प्रापक -

कृषि एवं मत्स्य पालन, पशुपालन, कुक्कुड़ पालन, भेड़-बकरी पालन, मधुमक्खी पालन, से जुड़े लोग वानिकी से सम्बन्धित लोग, क्रेडिट कार्य से जुड़े बैंक कर्मचारी, कृषि विभाग के कर्मचारी तथा कृषि कार्य से जुड़े अन्य लोग।

21.8 कृषि प्रसार और संचार माध्यम

21.8.1 कृषि प्रसार और समाचार पत्र -

भारत में कृषि पत्रकारिता का इतिहास अत्यन्त ही प्राचीन है। घाघ और भंडारी की कहावतें आज भी प्रासंगिक हैं । कृषि पत्रकारिता की परिभाषा के अनुसार, जिन

समाचार पत्रों में 40 प्रतिशत से अधिक सामग्री, कृषि, पशुपालन, बीज, खाद, कीटनाशक, पंचायती राज, सहकारिता आदि विषयों पर होगी उसे ही कृषि पत्र माना जायेगा। तात्पर्य यह है कि ग्रामीण विकास सम्बन्धी समाचारों को प्रमुखता देने वाले पत्रों को ही कृषि पत्र माना जाएगा।

भारत में पहला कृषि पत्र 'सुधार' 1914 में और 'कृषि' नामक पत्र 1918 में छपे। इसके पश्चात् 1934-1935 में बंगाल में कृषि सम्बन्धी पत्र पत्रिकाएं बंग्ला भाषा में छपीं। और अंग्रेजी में 1940 में 'फार्मर' तथा 'एग्रीकल्चर गजट' नामक पत्र निकले। इसके बाद तो कृषि शोध और वैज्ञानिक तथ्यों, सम्बन्धी कानूनों, पंचायती राज सहकारिता आदि विषयों के प्रचार-प्रसार हेतु विभिन्न भाषाओं में कृषि पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। इसमें सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही प्रचार के पत्र थे। गेहूँ क्रान्ति या हरित क्रान्ति की शुरूआत होते ही सैकड़ों कृषि पत्रिकाओं की बाढ़ आ गयी। कृषि विश्वविद्यालय, निगमों, राज्य सरकारों, शोध केन्द्रों और भारत सरकार ने किसानों, विकासखण्डों तथा ग्रामीणों के लिए अनेक पत्र और पत्रक निकाले। यह परंपरा आज भी जारी है।

कृषि पत्रकारिता की सफलता को देखते हुए 1970 में दिल्ली में कृषि एवं ग्रामीण पत्रों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी लगाई गयी। जिसमें 23 भाषाओं के 400 से अधिक पत्रों ने भाग लिया, और लगभग 14 पत्रों को पुरस्कार भी दिया गया। 80 के दशक तक कृषि पत्रकारिता की धूम रही। किन्तु उसके पश्चात् कृषि पत्र बन्द होना शुरू हो गये। इन पत्रों के बन्द होने का कारण विषय की अनभिज्ञता सामग्री का अभाव, विज्ञापनों का अभाव गांव में शिक्षा तथा क्रय शक्ति की कमी रहा है। इस समस्या का निदान सरकारी संरक्षण हो सकता है।

21.8.2 कृषि प्रसार और रेडियो

रेडियो जनसंचार का एक सशक्त माध्यम रहा है।रेडियो की सबसे बड़ी ताकत इसकी सुलभता, सस्ता होना, तथा कहीं पर भी ले जाने की सुविधा है। कृषि प्रसार हेतु सर्वप्रथम रेडियो का प्रयोग कनाडा के अनुभव के आधार पर पूना में सन् 1956 में ग्रामीण रेडियो फोरम में प्रायोगिक तौर पर किया गया। इसकी सफलता के साथ ही रेडियो में कृषि कार्यक्रमों का नियमित प्रसारण शुरू हो गया। जनपदीय सघन कृषि कार्यक्रम को प्रचारित-प्रसारित करने हेतु आकाशवाणी के तमाम केन्द्रों में कृषि एवं गृह एकांश की स्थापना की गई । जिसका कार्य कृषि और कृषि-आधारित विषयों पर स्थल एवं स्टूडियो कार्यक्रमों का प्रसारण करना है। रेडियों कृषि प्रसार का एक महत्वपूर्ण माध्यम है तथा इसकी प्रभावशीलता आज भी ग्रामीण श्रोताओं में बनी हुई है।

21.8.3 कृषि प्रसार और टेलीविजन

कृषि दर्शन कार्यक्रम की शुरूआत दिल्ली केन्द्र ने प्रायोगिक तौर पर सन् 1967 में किया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य टेलीविजन कार्यक्रमों के द्वारा कृषि के

आधुनिक तौर तरीकों को प्रचारित करना है। आज दूरदर्शन के स्थानीय एवं छोटे केन्द्रों के द्वारा कृषि दर्शन कार्यक्रम दिखाया जा रहा है। जिसमें कृषि से जुड़ी स्थानीय समस्याओं , जानकारियों आदि पर कार्यक्रम बनाये जा रहे हैं।

कृषि प्रसार में टेलीविजन की महत्वपूर्ण भूमिका होते हुए भी इसकी सीमाएं हैं। मंहगा माध्यम होने के साथ -साथ बिजली की समस्या भी दर्शकों की राह में आड़े आती है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा कृषि कर्म यहाँ का मुख्य व्यवसाय । किन्तु भारतीय कृषि विकास के रास्ते में भौगोलिक, आर्थिक, पारम्परिक अड़चनें सदैव विद्यमान रही हैं, इन समस्याओं के हल हेतु कृषि प्रसार का कार्यक्रम व्यापक पैमाने पर चलाया जा रहा है, जिसके अन्तर्गत कृषि और कृषि आधारित व्यवसायों पर जानकारी लोगों तक पहुँचायी जा रही है। कृषि प्रसार का यह महत्वपूर्ण काम जनसंचार माध्यम कर रहे हैं ।

21.9 स्वास्थ्य

महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है। अतः स्वास्थ्य से अलग विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। दरअसल आर्थिक, सामाजिक एवं स्वास्थ्य विकास में कोई भी अन्तर करना संभव नहीं है। एक के विकास से दूसरे का विकास और इस विकास से ही सर्वोदय की संकल्पना साकार हो सकती है। उदाहरण के लिए सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार की उपलब्धता और बीमारी में कमी स्वास्थ्य जागरूकता से व्यक्ति स्वस्थ रहते हैं और विभिन्न क्षेत्रो में उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है। इतना ही नहीं बच्चों एवं गर्भवती माओं के टीकाकरण, छुआछूत की बीमारी, तथा अन्य संक्रामक बीमारियों जैसे एड्स आदि के बारे में लोगों को जागरूक कर विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा सकता है।

21.10 स्वास्थ्य संचार

भारत जैसे परंपरागत समाज में स्वास्थ्य का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक पहलुओं से जोड़कर देखा जाता है। क्योंकि सामाजिक संरचना उसके मूल्य, रूढ़िवादिता, शिक्षा स्तर में कमी और गरीबी आदि कितने ही कारण स्वास्थ्य संचार की सफलता की राह में आड़े आते हैं।

आज तक स्वास्थ्य योजनाकारों एवं कार्यक्रम निष्पादकों ने जनसंचार एवं अन्तरवैयक्तिक संचार को स्वास्थ्य विकास हेतु प्रयोग किया है। रेडियो, टेलीविजन सिनेमा, पत्र पत्रिकाएं आदि जनसंचार माध्यमों के चलते स्वास्थ्य शिक्षा के प्रसार में काफी सहायता भी मिली है। साथ ही साथ दो चरणीय संचार सिद्धान्त के आधार पर अभिमत निर्माताओं ने भी स्वास्थ्य संचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है किन्तु स्वास्थ्य संचार हेतु अभिमत निर्माताओं के प्रयोग एवं प्रभावशीलता का क्षेत्र सीमित है। जिसके कारण स्वास्थ्य संचार में अपेक्षित परिणाम अभी भी दूर हैं ।

21.10.1 विकास समर्थक संचार और स्वास्थ्य

स्वास्थ्य और विकास संचार न सिर्फ एक-दूसरे से जुड़े हैं बल्कि एक-दूसरे पर निर्भर भी हैं। इसकी सफलता के लिए आवश्यक है कि व्यक्तिगत स्तर अर्थात अन्तरवैयक्तिक संचार के द्वारा लोगों में स्वास्थ्य व्यवहार में सार्थक परिवर्तन लाना संभव है। क्योंकि विश्वसनीय श्रोत के मौखिक संदेश की प्रभावशीलता स्वास्थ्य के क्षेत्र में जनसंचार से अधिक प्रभावशाली होती है। विकास समर्थक संचार हेतु यह भी आवश्यक है कि लक्ष्य समूह को संचारित करने से पूर्व उसकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का पूरा खाका उपलब्ध हो। जिससे लक्ष्य समूह के सामाजिक मूल्यों एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के आधार पर प्रभावी संचार संभव हो सके। वस्तुतः स्वास्थ्य के क्षेत्र में विकास समर्थक संचार का मुख्य उद्देश्य लोगों में जागरूकता लाकर स्वास्थ्य के प्रति उनके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन है। इसके लिए स्वास्थ्य संचारक को निम्न बातों पर गौर करना होता है।

1. लक्ष्य समूह तथा समुदाय की जरूरतों की पड़ताल
2. स्थानीय संसाधनों द्वारा इन जरूरतों की पूर्ति
3. विभिन्न माध्यमों के प्रति लोगों की रूचि एवं अरूचि की जानकारी, तथा
4. इन जानकारियों के आधार पर योजनाकारों एवं निर्णायकों में वैज्ञानिक जानकारी देना ।

स्वस्थ व्यक्ति समाज की नींव होता है जो एक स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण में सहायक बनता है। इसके लिए आवश्यकता होती है स्वास्थ्य के प्रति उसके सोच में सकारात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन की। विकास संचार माध्यम स्वास्थ्य विकास कार्यक्रमों के व्यापक एवं सुचारू प्रचार-प्रसार के द्वारा यह उद्देश्य प्राप्त करने की कोशिश में लगे हैं।

21.11 जनसंख्या

भारत में जनसंख्या के मायने परिवार कल्याण और जनसंख्या नियंत्रण से हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय की 33 करोड़ के अनुपात में आज हमारी जनसंख्या 100 करोड़ की संख्या को भी पार कर गयी हैं। यह आंकड़ा न सिर्फ भयभीत करता है बल्कि आने वाले समय में विकास को भी चुनौती देता दिखाता है ऐसा नहीं है कि इस बढ़ती जनसंख्या में दबाव में समय रहते महसूस न किया गया हो।

मीडिया ने भी समय-समय पर विभिन्न तरीकों से इस मुद्दे पर चर्चा चलाने की कोशिश की है। किन्तु योजनाकारों, सरकारों एवं नीडिया के स्तर पर किया गया यह प्रयास बहुत सार्थक परिणाम देने में असफल ही साबित हुआ। इसके पीछे कारण जहाँ क्रमबद्ध एवं संगठित रूप से व्यक्तियों में परिवार नियोजन के उपायों, दो बच्चों के

अन्तर के बारे में शिक्षित एवं प्रेरित कर पाने में असफलता रही वहीं रूढ़िवादिता तथा जनसंख्या को धर्म से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति भी हावी रही। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक सामाजिक, भौगोलिक आर्थिक भिन्नता वाले, इस समाज में स्थानीय संचार संदेशों, मान्यताओं एवं माध्यमों की अनदेखी ने भी इस कार्यक्रम की असफलता में अपना योगदान दिया।

योजना निर्माण एवं क्रियान्वयन के स्तर पर ऐजेन्सियों को नसबन्दी के रूप में लक्ष्य पूरा करने का जिम्मा सौंप दिया गया और असफल होने पर दण्ड का प्राविधान भी बना दिया गया। जिसके कारण न तो इन एजेन्सियों और न ही लक्ष्य समूहों के बीच स्वास्थ्य संचार संभव हो सका और परिणाम जनसंख्या विस्फोट के रूप में हमारे सामने है। वास्तव में जनसंख्या नियंत्रण को परिवार कल्याण के रूप में देखे जाने की जरूरत है और इसलिए धैर्यपूर्वक लोगों को शिक्षित और प्रेरित करने की आवश्यकता है । इस दिशा में सार्थक संचार हेतु पूर्व की त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए लक्ष्य समूह को धीरे- धीरे शिक्षित एवं प्रेरित करना होगा ।

21.11.1 जनसंख्या नियंत्रण एवं विकास समर्थक संचार

जनसंख्या नियंत्रण प्रयासों में विकास समर्थक संचार प्रारम्भ से ही भटकाव का शिकार रहा है। बिना लक्ष्य समूहों को योजना निर्माण में सम्मिलित अधिनायकवादी नारों जैसे नसबन्दी कराओ, रूपया कमाओ का हश्र हमारे सामने है।

दरअसल परिवार नियोजन हेतु विकास समर्थक संचार ने प्रायः स्थानीय मान्यताओं, सूचनाओं तथा उपलब्ध विशेषज्ञता की उपेक्षा की है। इतना ही नहीं क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तर पर जनसंचार माध्यमों इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिन्ट का भरपूर उपयोग तथा पारंपरिक माध्यमों की अनदेखी भी विकास समर्थक संचार गतिविधियों की असफलता का कारण बना। जबकि प्रारम्भिक संचार माध्यम न केवल स्वीकार्य होता है बल्कि सृजनात्मक और सस्ता भी पड़ता है क्योंकि इस संचार माध्यम के द्वारा संदेश में समय एवं स्थान, लोगों की मानसिकता, मान्यता, सामाजिक-आर्थिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन किया जा सकता है।

21.12 भविष्य की चुनौतियाँ

विकास समर्थक संचार के समक्ष जनसंख्या नियन्त्रण की कई चुनौतियाँ हैं तथा उससे निपटने हेतु उसे विभिन्न उपायों को अपनाना होगा ।

1. मीडिया का विकेन्द्रीकरण तथा देश के सामाजिक, आर्थिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए विकास संचार माध्यमों का चयन आवश्यक होगा।
2. विकास समर्थक संचार की सफलता हेतु आवश्यक होगा कि ग्रामीण क्षेत्र एवं शहर के गरीबों को लक्ष्य दिया जाय तथा माध्यम की उपलब्धता एवं उसके खरीद की क्षमता को भी ध्यान में रखा जाए।

3. परिवार कल्याण हेतु संचार को और अधिक सूचनापरक बनाना होगा तथा उसे विकास से जोड़ते हुए लोगों में आपसी बहस को बढ़ाना होगा।

4. परिवार नियोजन को आर्थिक विकास से जोड़कर देखना होगा ताकि लोग इसके प्रत्यक्ष लाभ से अवगत हो सकें ।

5. परिवार नियोजन नितांत व्यक्तिगत प्रसंग होता है। संचार में लोगों की सहभागिता बढ़ाने हेतु आवश्यक है कि स्थानीयता एवं सामाजिक तत्वों को भी कार्यक्रम नियोजन मे सम्मिलित किया जाए।

विकास समर्थक संचार की सफलता हेतु यह आवश्यक है कि जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम को विकास के अन्य कार्यक्रमों के साथ ही जोड़कर देखा जाना चाहिए। इसमें संदेह नहीं है कि इन प्रयासों के चलते लोगों में परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण के बारे में जागरूकता आई है। आवश्यकता इस बात की है कि जनसंचार, जनसंख्या नियंत्रण में जन की सहभागिता को लोकतांत्रिक तरीकों से सुनिश्चित कर सके।

21.13 पर्यावरण

प्रकृति प्रदत्त सम्पदा अर्थात जल-स्थल वायु - वन जंगल आदि में संतुलन को हम स्वस्थ पर्यावरण कहते हैं। यह संतुलन सदियों की जागरूकता एवं मेहनत से तैयार होती है। इसमें जरा सी लापरवाही पर्यावरण में अपूर्णीय क्षति पहुँचा सकती हैं। भारत में इस पर्यावरण संतुलन को पुरखों, ऋषी, मनीषियों ने धार्मिक अनुष्ठानों से जोड़ दिया था ताकि मानव अपने साथ-साथ प्रकृति जीव-वन आदि के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझ और निभा सके। इसके वैज्ञानिक पहलू भी रहे हैं जो आज भी प्रासंगिक है। जैसे दरवाजे के सामने नीम और आँगन में तुलसी का पेड़ न सिर्फ वायु प्रदूषण को कम करता है बल्कि वातावरण में स्वच्छता, शीतलता और ताजगी का एहसास भी कराता है।

21.13.1 आर्थिक विकास और पर्यावरण

भारत ही नहीं पूरे विश्व में आज पर्यावरण की समस्या को आर्थिक विकास से जोड़कर देखा जाता है। जो बहुत हद तक ठीक भी हैं। हालाँकि स्वतंत्रता पश्चात् भारत में विकास हेतु योजनाबद्ध कार्यक्रम संचालित किया गया जिसे हम पंचवर्षीय योजना का नाम देते है। किन्तु आर्थिक विकास की इस दौड़ में कहीं न कहीं पर्यावरण की उपेक्षा होती गयी। परिणामस्वरूप पर्यावरण असन्तुलन और उससे उपजे ढेर सारे सवाल हमारे सामने उपस्थित हैं ।

दरअसल पूरे विश्व में आर्थिक विकास को प्रारम्भ में यूरोपियन औद्योगिक क्रान्ति से जोड़कर देखा जाता है जिसने प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुन्ध उपयोग, मशीनीकरण औद्योगीकरण और आज के भूमण्डलीकरण को जन्म दिया। इस औद्योगीकरण की प्रवृत्ति ने जहाँ एक ओर सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के बदलाव में भूमिका निभाई वहीं होड़, प्रतियोगिता और लाभ की संस्कृति को जन्म दिया। परिणामस्वरूप चिमनियों से निकलते

धुएं सड़क पर बढ़ती गाड़ियों की तादाद ने ग्रीन हाउस गैसों का वातावरण में एक चादर ही फैला दिया और आज पृथ्वी का प्राकृतिक तापमान बदलाव के दौर से गुजर रहा है। एक वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार 21वी सदी के प्रथम दशक तक तापमान में लगभग 0.3 डिग्री सेल्शियस की बढ़ोत्तरी हो सकती है जो कि पिछले 10,000 वर्षों में बढ़ोत्तरी की तुलना में सर्वाधिक है।

21.13.2 भारत में पर्यावरण की स्थिति

इतना ही नहीं विकासशील देशों जैसे भारत में बढ़ती जनसंख्या के दबाव ने वनक्षेत्र को कम किया है। शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा बेरोजगारी ने झुग्गी-झोपड़ी (स्लम) की संस्कृति का विकास किया है। जो पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। दिल्ली में जमुना नदी का गंदे नाले में परिवर्तन, गंगा का प्रदूषित होता जल इसके ताजे उदाहरण हैं ।

यह भी सच है कि वर्तमान सदी की सबसे बड़ी धरोहर जल होगा। किन्तु औद्योगिक इकाइयों द्वारा भूगर्भ जल का अतिशय प्रयोग, बारिश कम होने से फसलों की सिंचाई हेतु भूमिगत जल का उपयोग तथा जागरूकता के अभाव में जल संरक्षण के न होने से भूमिगत जल स्तर गिरता जा रहा है जो पर्यावरण संतुलन के लिए एक बड़ी चुनौती है।

21.14 विकास एवं पर्यावरण

एक-दूसरे के पूरक विकास एवं पर्यावरण के बीच कोई विरोधाभास न होकर एकरूपता है। न तो विकास की गति को रोका जा सकता है और न ही पर्यावरण के साथ कोई समझौता ही किया जा सकता है । दरअसल पर्यावरण विकास का ही एक अनिवार्य अंग है तथा दोनों में संतुलन का होना अत्यन्त ही आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक इकाई पर्यावरण एवं विकास विश्व आयोग द्वारा 1987 में प्रकाशित रिपोर्ट ''हमारा साझा भविष्य जिसे ब्रन्टलैंड रिपोर्ट भी कहा जाता है में यह स्पष्ट किया कि विकास एवं पर्यावरण का सवाल एक-दूसरे से जुड़ा है। इन रिपोर्ट में निम्न क्षेत्रों को रखा गया ।

1. जनसंख्या एवं खाद्यान्न सुरक्षा
2. प्रजातियों एवं आनुवांशिक संसाधनों का लुप्त होना
3. ऊर्जा
4. उद्योग

इस रिपोर्ट के अनुसार पर्यावरण के साथ कोई भी समझौता आने वाले पीढ़ी के साथ अन्याय होगा। ब्रन्टलैण्ड आयोग ने लगातार विकास एवं पर्यावरण सुरक्षा संतुलन पर जोर दिया ।

21.14.1 विकास समर्थक संचार और पर्यावरण

भारत में पर्यावरण की समस्या बहुकोणीय है। जागरूकता का अभाव इनमें सबसे बड़ा कारण है। बढ़ती आबादी तथा उसकी मौलिक आवश्यकताएं अधिक अन्न उत्पादन हेतु उर्वरकों तथा कृषि रसायनों का अंधाधुंध प्रयोग, सिमटते जंगल, बेरोजगारी की समस्या, शहरीकरण, बढ़ते उद्योग आदि कितने ही पर्यावरण असंतुलन के कारण हैं जो जागरूकता के अभाव में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पर्यावरण को हानि पहुँचा रहे हैं।

संचार का मुख्य कार्य पर्यावरण के प्रति लोगों को सूचित कर उन्हें सहभागी बनाना है। इसके लिए स्थानीय लोगों का सहयोग अपेक्षित होता है। स्थानीय लोगों के सहयोग प्राप्ति हेतु उनका जागरूक होना आवश्यक है। संचार यह कार्य इस प्रकार करता है-

1. स्थानीय समुदाय के साथ पर्यावरण संरक्षण प्रोजेक्ट की जानकारी देना या बाँटना।
2. प्रभावित समुदाय के साथ स्थानीय पर्यावरणीय समस्या पर बहस चलाना।
3. विकास समर्थक संचार के प्रयासों पर जनचर्चा को बढ़ावा देना।
4. प्रस्तावित पर्यावरण समाधान कार्यक्रम पर लोगों की राय और चर्चा में बढ़ावा देना।

21.15 सारांश

उपर्युक्त बातें एक चुनौती बनकर उभरीं हैं। जिसने आर्थिक विकास जैसे औद्योगीकरण, मशीनीकरण, आदि पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। किन्तु न तो विकास, पर्यावरण विरोधी है और न ही पर्यावरण विकास विरोधी। वस्तुतः पर्यावरण से जुड़ी समस्या जागरूकता के अभाव से है। इस समस्या का निराकरण विकास समर्थक संचार द्वारा संचार में जनसहभागिता बढ़ाकर किया जा सकता है।

21.16 शब्दावली

1. विकास समर्थक - विकास में सहायता पहुँचाने वाला
2. प्रसार - जागरूकता

21.17 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कृषि एवं ग्रामीण विकास पत्रकारिता : डा. अर्जुन तिवारी
2. Media and the Third World: Dr. Manekar

3. पंचवर्षीय योजना : रिपोर्ट
4. भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट

21.18 प्रश्नावली

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. सर्वोदय या समग्र विकास का अर्थ बतलाऐं ।
2. कृषि पत्रकारिता से क्या आशय है?
3. आर्थिक विकास और पर्यावरण के सहसम्बन्ध को बतलायें।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. विकास के सही मापदण्ड को बतलायें।
2. कृषि पत्रकारिता में जनसंचार माध्यमों की क्या भूमिका है?
3. भारत में विकास हेतु मीडिया का भरपूर उपयोग होना अभी बाकी है' एक लेख लिखिये ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रति व्यक्ति आय आधारित विकास मापदण्ड अपनाया गया।
   (क) 1940
   (ख) 1945
   (ग) 1950
   (घ) 1990
2. विकास समर्थक संचार का सूत्रपात हुआ -
   (क) साठ के दशक में
   (ख) पचास के दशक में
   (ग) तीस के दशक में
   (घ) इस सदी के आरम्भ में
3. भारत में पहला कृषि पत्र है -
   (क) सुधार
   (ख) कुरूक्षेत्र
   (ग) योजना
   (घ) खलिहान

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1) ग 2) ख 3) क

इकाई 22 - विकास संचार एवं लेखक

इकाई की रूप-रेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 विकास की अवधारणा

- 22.2.1 अवधारणा
- 22.2.2 परिभाषा एवं विचारधारा
- 22.2.3 नोरा की परिभाषा
- 22.2.4 इवरेट एवं रोजर्स की परिभाषा
  - 22.2.4.1 भौतिक माहौल
  - 22.2.4.2 मनोवैज्ञानिक माहौल
- 22.2.5 एफ. रोजैरियो ब्रैड के अनुसार परिभाषा

22.3 विकास संचार की प्रकृति

- 22.3.1 विकास संचार उद्देश्यपरक होता है
- 22.3.2 विकास संचार सार्थक होता है
- 22.3.3 विकास संचार व्यवहारिक है

22.4 विकास संचार के प्राथमिक कार्य

- 22.4.1 परिवर्तन में सहायक की भूमिका
- 22.4.2 समाजोपयोगी भूमिका

22.5 विकास संचार में माध्यमों की भूमिका

- 22.5.1 स्वचिन्तन
- 22.5.2 विस्तार
- 22.5.3 जादुई प्रभाव

22.6 विकास संचार की रणनीति

- 22.6.1 केस स्टडी और अनुभव
  सेवेन्जर्स का इण्डोनेशिया विकास कार्यक्रम
- 22.6.2 साइट प्रोजेक्ट
- 22.6.3 कृषि में होमियोपैथ का सफल प्रयोग

22.7 विकास संचार : लेखन शैली

22.7.1 आँकड़ा संकलन

22.7.2 तथ्यों की जानकारी

22.7.3 लाइब्रेरी की मदद

22.7.4 भाषा की सावधानी

22.7.5 तुलनात्मक अध्ययन

22.8 सार्थक लेख

22.8.1 शंकरगढ़ में सिलिकासैंड खदान का विवाद

22.8.2 उपलब्धिः आठ साल में चांद पर फहरायेगा तिरंगा

22.9 विकास संचार का मुख्य कार्य

22.9.1 सूचना देना

22.9.2 व्याख्या करना

22.9.3 कार्यक्रम को गति प्रदान करना

22.10 विभिन्न माध्यमों के लिए विकास संचार

22.10.1 प्रेस के लिए विकास संचार

22.10.2 रेडियो के लिए विकास संचार

22.10.3 टेलीविजन के लिए विकास संचार

22.11 सारांश

22.12 शब्दावली

22.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

22.14 प्रश्नावली

22.0 उद्देश्य

इस पाठ्य का उद्देश्य विकास संचार उसकी प्रकृति, प्रभावशीलता तथा लेखन शैली को समझना है। विकास की दिशा क्या हो? विकास की प्राथमिकता किस क्षेत्र को मिले। सरकार की विकास सम्बन्धी नीति एवं कार्यक्रम क्या हो? तथा इन कार्यक्रमों के प्रचार-प्रसार में जनसंचार माध्यमों की किस प्रकार भूमिका होगी इससे हम परिचित हो सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

विकास संचार को समझ सकेंगे ।

- विकास संचार की रूपरेखा एवं प्रकृति को समझ सकेंगे ।
- विकास संचार के उद्देश्य से परिचित होंगे ।
- विकास संचार में सूचनाओं एवं संदेशों के लेखन से परिचित हो सकेंगे ।

22.1 प्रस्तावना

विकास संचार में सूचनाओं एवम् संदेशों का लेखन एक विशिष्ट स्थान रखता है जिसमें विकास से जुड़े कार्यक्रमों के नियोजन, क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन पर जनसंचार माध्यमों की सतत् नजर रहती है तथा उस पर सूचनाओं एवं सदेशों के लेखन के द्वारा श्रोताओं से अपेक्षित प्रतिपुष्टि की उम्मीद की जाती है।

22.2 विकास की अवधारणा

22.2.1 अवधारणा

विकास से आशय न सिर्फ आर्थिक विकास से है बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रों में गुणात्मक परिवर्तन से भी है। दरअसल विकास सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को प्रगति पर ले चलने की गतिशील क्रिया है।

संचार इसी विकास की क्रिया को गति प्रदान करता है। सामान्य अर्थो में संचार से मतलब दो व्यक्तियों समूहों या देशों के बीच संवाद से लिया जाता है। इस प्रकार के संचार में चार मूलभूत तत्वों स्रोत, संदेश, माध्यम तथा श्रोता का समावेश होता है। किन्तु विकास संचार में इस क्रिया के द्वारा व्यक्तियों, समूहों के व्यवहार पर इच्छित प्रभाव डालकर अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है। जो कि सम्पूर्ण समाज के लिए हितकर होती है। इस प्रकार विकास संचार में श्रोता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह संचार स्रोत की इच्छानुसार व्यवहार करें। अतः विकास संचार से तात्पर्य व्यक्ति, समाज और देश के सामाजिक और आर्थिक उन्नयन से है। यह दर्शाता है कि जनसंचार माध्यम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से शहरी और ग्रामीण जन की जीवन शैली में गुणात्मक परिवर्तन ला सकता है।

22.2.2 परिभाषा एवं विचारधारा -

विकास संचार को विभिन्न विद्वानों ने स्पष्ट किया है ।

22.2.3 नोरा की परिभाषा

विकास संचार से तात्पर्य स्पष्ट होने से हमें उसकी परिभाषा समझने में आसानी होगी। नोरा क्वेबरल (1975) के अनुसार 'विकास संचार मानव संचार का कला एवं विज्ञान हैं जो किसी देश, व्यक्ति या जन को गरीबी से उठाकर आर्थिक विकास की

क्रिया में शामिल करता है । तत्पश्चात् सामाजिक समानता और मानव क्षमता का सदुपयोग सुनिश्चित् करता है।

नोरा की परिभाषा के अनुस, विकास संचार एक कला है, क्योंकि इसके द्वारा कार्यक्रम निर्माण की रणनीति बनायी जाती है ताकि लक्ष्य समूह तक सार्थक तरीके से संचार क्रिया की जा सके। लक्ष्य समूह या श्रोता तक अपनी बात पहुँचाने के लिए संचारक गीत, नाटक, वार्ता, फिल्म आदि का सहारा ले सकता है। नोरा विकास संचार को विज्ञान भी मानती है क्योंकि यह एक प्रक्रिया तथा व्यवस्था की मांग करता है। उदाहरण के लिए अधिक उत्पादन वाली प्रजाति के चयन की प्रेरणा किसानों को रेडियों से दी जा सकती है यदि किसान को इस बीज से लाभ समझ में आ जाता है तो निश्चित् ही इसका प्रयोग अपने खेतों में करेगा और अधिक अन्न उपजाकर लाभ कमाएगा ।

22.2.4 इवरेट एम. रोजर्स की परिभाषा

इवरेट एम. रोजर्स जैसे प्रसिद्ध संचार विद्वान का मत है कि संचार के द्वारा विकास की भूमिका या माहौल बनाया जा सकता है। यह माहौल दो प्रकार का होता है-

(क) भौतिक माहौल

(ख) मनोवैज्ञानिक माहौल

22.2.4.1 भौतिक माहौल

जब किसी वस्तु के उपयोग तथा लाभ के बारे में विभिन्न माध्यमों से श्रोताओं को जानकारी दी जाती है उसे भौतिक माहौल कहते हैं जैसे किसी विशेष उर्वरक की जानकारी रेडियो, टी.वी., पोस्टर आदि माध्यमों से दी जा सकती है जिसे स्रोता अपनी रूचि एवं आवश्यकतानुसार ग्रहण करता है।

22.2.4.2 मनोवैज्ञानिक माहौल

संदेश लोगों के मस्तिष्क पर प्रभाव डालता है और वह धीरे-धीरे उस नए उर्वरक के प्रति आकर्षित होने लगता है। यदि आवश्यकता हुई तो वह उस उर्वरक का प्रयोग भी कर सकता है। यह मनोवैज्ञानिक माहौल की देन है।

22.2.5 एफ. रोजैरियो ब्रैड के अनुसार परिभाषा

एफ. रोजैरियो ब्रैड के अनुसार विकास संचार प्रबंधन प्रक्रिया का एक आवश्यक तत्व है, जो विकास कार्यक्रमों के योजना निर्माण और उसके क्रियान्वयन से जुड़ा अवगत करा सकते हैं ताकि वह दूसरे सामाजिक मूल्यों की बुराइयों से बच सके।

22.3 विकास संचार की प्रकृति

विकास संचार की प्रकृति कई संदर्भो में संचार से अलग है यह उद्देश्यपरक है, सार्थक है और व्यवहारिक भी है।

22.3.1 विकास संचार उद्देश्यपरक होता है

विकास संचार में श्रोत और श्रोता के बीच में उद्देश्य-परक संदेशों का आदान-प्रदान होता है ताकि लक्ष्य श्रोता पर उपेक्षित प्रभाव पड़ सके। तद्नुसार उसके व्यवहार में परिवर्तन भी परिलक्षित हो। उदाहरण के लिए यदि स्रोत किसी अतिउन्नतशील बीज के बारे में किसान को जानकारी देता है और उसका उपयोग करता है तो यह विकास संचार की श्रेणी में आता है।

22.3.2 विकास संचार सार्थक होता है

विकास संचार में सार्थक मूल्य का होना अनिवार्य होता है। उदाहरण के लिए यदि एक बार किसान ने अधिक उत्पादन देने वाले बीज का चयन कर लिया तो इसका मतलब अधिक उत्पादन, अधिक आय जिसके द्वारा वह किसान जमीन, पशु, या कृषि यंत्रों की खरीद कर सकता है।

22.3.3 विकास संचार व्यवहारिक है

विकास संचार व्यवहारिक है तथा अपने दृढ़ उद्देश्य भी छुपाए रहता है। वास्तव में विकास संचार का उद्देश्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए यदि हम चाहते हैं कि किसान किसी खास प्रजाति का धान रोपाई करे तो विकास संचार की पूर्णता या सार्थकता मात्र प्रेस विज्ञप्ति देने या खेत का भ्रमण करने से पूर्ण नहीं होती । तमाम घटनाओं ने यह सिद्ध किया है कि लगातार संचार मात्र से श्रोताओं के व्यवहार में परिवर्तन रहता है। दूसरे शब्दों में -

विकास संचार विशेषज्ञता को पहचान एवं उसका विकास की प्रक्रिया में भरपूर उपयोग है। जो जमीनी स्तर पर लाभार्थियों की संख्या में बढ़ोत्तरी करता है अतः विकास संचार, सामाजिक सहमति का संचार है। उदाहरण के लिए यदि कोई कम्पनी पुरूष गर्भ निरोधक का विपणन करना चाहती है तो उसके लिए उसे विभिन्न जन माध्यमों जैसे रेडियो विज्ञापन, टेलीविजन, विज्ञापन, होर्डिंग, पोस्टर्स आदि का सहारा लेना पड़ सकता है ताकि लक्ष्य श्रोताओं को उस गर्भ निरोधक की उपयोगिता एवं उपलब्धता को बताया जा सके।

उपरोक्त परिभाषाओं से दो तथ्य सामने उभरकर आते हैं जिसे हम विकास संचार के प्राथमिक कार्यों के तौर पर जानते हैं ।

22.4 विकास संचार के प्राथमिक कार्य

22.4.1 परिवर्तन में सहायक की भूमिका

विकास संचार का प्रमुख लोगों के जीवन में सामाजिक परिवर्तन के द्वारा गुणात्मक बदलाव लाना होता है। यह प्रक्रिया कई तरीकों से पूरी होती है। जैसे कुछ देश बच्चों

के लिए सभी टीकों की उपलब्धता और उसके उपयोग की सूचना देकर कर सकते हैं या अधिक अन्न उपजाने की तकनीक का प्रचार-प्रसार करके अथवा टोने, टोटके जैसे अंधविश्वास के बारे में जन-जागरूकता फैलाकर कर सकते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संचार अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

22.4.2 समाजोपयोगी भूमिका

इसके अन्तर्गत संचार एक ऐसे माहौल की रचना करता है जिसके द्वारा सामाजिक परिवर्तन को सुनिश्चित किया जा सके। हर समाज के अपने कुछ पारम्परिक मूल्य होते हैं इन्हीं मूल्यों के द्वारा व्यक्ति की पहचान और उसके अपनत्व की पहचान बनती है किन्तु बदलते परिवेश में दूसरे समाज के मूल्यों का प्रवेश भी नहीं रोका जा सकता है। विकास संचार के माध्यम से हम श्रोताओं को सामाजिक मूल्यों से मजबूती से जोड़ सकते हैं ।

22.5 विकास संचार में माध्यमों की भूमिका

विकास संचार एक क्रिया है न कि आदर्श। यह एक हथियार या अस्त्र है न कि उत्पाद। विकास संचार किसी उद्देश्य विशेष को ध्यान में रखकर किया जाता है। यह उद्देश्य विशेष व्यक्ति के जीवन में उत्कृष्टता सुनिश्चित करता है।

विभिन्न माध्यमों की भूमिका विकास संचार में बदल जाती है इसे मुख्यतः चार प्रकार की भूमिकाएं निभानी होती हैं ।

1. ज्ञान का प्रचार-प्रसार करती है जिसके द्वारा व्यक्ति को महत्वपूर्ण घटनाओं, अवसरों, खतरों तथा समुदाय, देश और विश्व के बदलाव की जानकारी हो सके।
2. एक फोरम के द्वारा राष्ट्रीय या सामुदायिक जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों को प्रसारित किया जा सके।
3. लोगों को उन विचारों, कलाओं और व्यवहारों से परिचित कराना जो उन्हें अच्छी जिंदगी दे सके।
4. सहमति का माहौल बनाना ताकि राष्ट्र में स्थायित्व बना रहे।

इस भूमिका को निभाने के लिए मीडिया तीन तरीकों से विकास को संचारित करती है ।

22.5.1 स्वचिंतन

संचार विशेषज्ञ डैनियल लरनर (1958) अपनी किताब 'पासिंग आफ ट्रेडिशनल सोसाइटी' में पारम्परिक समाज के आधुनिकीकरण से जुड़ी समस्याओं को देखते है। उनके विचार से शहरीकरण और शिक्षा के प्रचार-प्रसार के द्वारा सम्पूर्ण जागरूकता का माहौल तैयार होता है जो राजनैतिक भागीदारी को सुनिश्चित् करता है। विकास दरअसल

उत्पादन का मुद्दा है। इस उत्पादन को बढ़ाने के लिए व्यक्ति को अपने स्वचिंतन का सहारा लेना पड़ता है। अतः विकास का मुद्दा बहुत कुछ मानव मनोविज्ञान से जुड़ा हुआ है।

डैनियल लर्नर इस पूरी प्रक्रिया को इस प्रकार देखते हैं ।

शहरीकरण -- साक्षरता -- आर्थिक एवं राजनैतिक भागीदारी

--जनमाध्यम अभिव्यक्ति

लर्नर के अनुसार समाज का हर परिवर्तन व्यक्तियों के दिल में प्रारम्भ होता है।व्यक्ति यदि चाहेगा तभी परिवर्तन सम्भव होगा और विकास को गति मिलेगी। आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्तियों को प्रेरित करने के लिए कुछ सफलता के बिन्दु निर्धारित किए जाएं तथा वह बिन्दु उन्हें पसंद भी आएं। इतना ही नहीं लर्नर मीडिया को एक ऐसी मशीन के रूप में देखते हैं जो व्यक्ति को उनकी अच्छी जिन्दगी के लिए प्रेरित कर सकता है।

लर्नर इस बात के प्रबल समर्थक हैं कि आर्थिक उत्पादन और मीडिया के बीच में तगड़ा सहसम्बन्ध है। उदाहरण के लिए धनी राष्ट्रों के पास ज्यादा समाचार पत्र अधिक रेडियो, टेलीविजन तथा अन्य संचार माध्यम उपलब्ध हैं जबकि गरीब राष्ट्रों के पास इनकी संख्या कम है।

22.5.2 विस्तार

इवर्ट एम.रोजर (1983) के अनुसार नए विचारों का प्रसार और उसका व्यवहार आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस मान्यता के अनुसार जनसंचार प्रभाव दो चरणीय प्रवाह प्रक्रिया में दृष्टिगत होती है जिसके द्वारा जनसंचार माध्यम विकास के लिए लोगों में उपयुक्त मानसिकता का निर्माण अन्तः वैयक्तिक सम्बन्ध और विशेष तौर से अभिमत निर्माताओं को तैयार करने में सहायक होता है।

उदाहरण के लिए जब किसी संदेश को प्रसारित किया जाता है समाज का एक हिस्सा इसे अपना लेता है और उसमें इस संदेश के प्रति सकारात्मक प्रवृत्ति जन्म लेती है यह क्रिया उत्पाद, उर्वरक, बीज, विचार, जर्नल इत्यादि किसी के बारे में हो सकता है। जो व्यक्ति इस विचार को पहले ग्रहण करता है वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर से दूसरे लोगों के भी विचार निर्माण में सहायक होता है। यह प्रक्रिया उन स्थानों पर एकदम सटीक रहती है जहाँ साक्षरता का स्तर कम रहता है। साधारण लोग सूचनाओं का संग्रह प्रायः आस-पास से ही करते हैं ।

22.5.3 जादुई प्रभाव

विलवर स्रेम (1964) ने अपनी किताब 'मास मीडिया एण्ड नेशनल डेवलपमेंट' जो कि उन्होंने 'यूनेस्को' के लिए लिखी थी तथा जो विकास संचार की ब्लूप्रिंट बन

गयी, में दिखाया कि विकास के लिए व्यक्ति को सूचित, प्रेरित और शिक्षित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है सूचना का प्रवाह दोतरफ होना चाहिए ताकि व्यक्तियों की जरूरतों को भी समझने में आसानी हो और इस प्रकार राष्ट्र निर्माण में आम व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित् की जा सके। संगठित क्रिया-कलाप को जानने और हुनर सीखने की क्रिया समाज के हर स्तर पर होनी चाहिए ताकि संसाधनों का भलीभाँति उपयोग किया जा सके। यहीं पर जनमाध्यम सूचनाओं के द्वारा व्यक्ति की मानसिकता को प्रभावित कर विकास की क्रिया को गतिशील बनाता है।

स्रेम के अनुसार विकास संचार की इस क्रिया की प्रभावशीलता के लिए ढेर सारी प्रतिपुष्टि की आवश्यकता पड़ती है। लाखों लोगों को भिन्न-भिन्न प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता हर समय पड़ती रहती है तथा इसके लिए पारंपरिक माध्यम सूचनाएं देने में पूरी तरह से सक्षम नहीं होते । अतः स्रेम की दृष्टि में नई तकनीक से लैस जनसंचार माध्यम ही बहुतायत लोगों की सूचनाओं की आवश्यकता को पूर्ण करने में सक्षम है।

22.6 विकास संचार की रणनीति

रणनीति से आशय किसी उद्देश्य को पाने के लिए सावधानीपूर्वक योजना निर्माण से है। चूँकि विकास संचार उददेश्यपरक होता है अतएव इसके निर्माण में सावधानीपूर्वक रणनीति बनाने की आवश्यकता पड़ती है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक से अधिक संचार रणनीति की आवश्यकता भी पड़ सकती है। विकासशील देशों के लिए यह रणनीति लागत और लाभ के अनुरूप तय की जाती है ।इस रणनीति को तय करते समय निम्न कुछ बातों को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

अ) लक्ष्य श्रोता कौन है?

ब) किस माध्यम से श्रोता अच्छे से परिचित हैं ?

स) सन्देश का स्वरूप, तत्व और भाषा क्या होगी, तथा

द) इन सूचनाओं के प्रवाह में कौन सी बाधाएं हैं?

22.6 विकास सचार की रणनीति

22.6.1 केस स्टडी और अनुभव - सेवेन्जर्स का इण्डोनेशिया विकास कार्यक्रम

यह उदाहरण संगठित एवं कुशलतापूर्वक नियोजित संचार रणनीति की सफलता का जीता-जागता नमूना है । इण्डोनेशिया के कुछ अति महत्वपूर्ण नगरों जैसे जकार्ता, वैनडंग, सुरावया इत्यादि में नदियां और नालियां तथा नहरें प्लास्टिक बैग तथा बदबूदार कचड़े से भरी हुई थी। इतना ही नहीं महत्वपूर्ण गलियों की हालत भी कुछ अच्छी नहीं थी। इसके पीछे गाँव से आए तथा शहर में बसे लोगों जिन्हें स्केवेन्जर्स कहा जाता है का हाथ माना गया। इन्हीं लोगों की लापरवाही के चलते इण्डोनेशिया के प्रमुख

शहरों में जल एवं वायु प्रदूषण कभी बढ़ गया था।

इस स्थिति में परिवर्तन लाने एवं स्केवेन्जर्स को उनका हक दिलाने के लिए विदेशी मदद से इण्डोनेशियाई गृह मंत्रालय ने एक गैर सरकारी संगठन के द्वारा जन जागरूकता का कार्यक्रम संचालित किया। इसके अन्तर्गत स्केवेन्जर्स को ही सूचना सम्प्रेषण के हर स्तर पर शामिल करने की कोशिश की गयी ताकि उनके अन्दर आत्मविश्वास, स्वाभिमान और योगदान भी मापना विकसित हो सके। सर्वप्रथम नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से स्केवेन्जर्स के अनुभवों, संस्कृति तथा योगदान को दिखाया गया है। इस नाटक में कथा-पटकथा, संवाद तथा अभिनय को स्केवेन्जर्स ने अपने अनुभवों से सजीव कर दिया जिसके कारण न सिर्फ स्केवेन्जर्स की समस्याओं , पर्यावरणीय कार्रवाइयों का आकलन करने में मदद मिली बल्कि उनके समाधान को भी आसानी से तलाशा जा सका। इतना ही नहीं प्रेस और रेडियो पत्रकारों के समक्ष एक दिवसीय कार्यशाला के माध्यम से स्केवेन्जर्स की जिन्दगी की कठिनाइयों और पर्यावरण के प्रति उनके योगदान को दिखाया गया। इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी सफलता क्षेत्रीय स्तर पर राजनीतिक वार्तालाप के शुरू होने में रही जिसने एक उपेक्षित समुदाय को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने में मदद पहुंचायी साथ ही साथ तेरह कड़ियों में टेलीविजन के द्वारा स्केवेन्जर्स की जिन्दगी तथा पर्यावरण के प्रति उनके योगदान को जनमानस के सामने लाया जा सका ।

22.6.2 साइट प्रोजेक्ट - केस स्टडी

यह भारत का विकास के क्षेत्र में जनसंचार माध्यमों द्वारा किया गया सबसे बड़ा प्रयोग है। इंडो-अमेरिका के सहयोग से चलाया गया यह एक वर्षीय (1975-76) विकास संचार कार्यक्रम 2330 गाँवों 20 जिलों तथा छः प्रदेशों - आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान और गुजरात में फैला था इस कार्यक्रम का उद्देश्य था;

अ- ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयीय शिक्षा का विकास करना ।

ब- शिक्षकों को प्रशिक्षित करना,

स- कृषि, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता तथा उचित पोषाहार के बारे में जागरूकता फैलाना

द- परिवार नियोजन और राष्ट्रीय एकता में सहयोग करना ।

टेलीविजन के द्वारा फैलाया गया यह विकास का संदेश ग्रामीण मानसिकता को विकास के क्रम में भागीदार बनाने में सक्षम रहा है। इस कार्यक्रम के द्वारा यह साबित हुआ था कि रणनीतिक रूप से सक्षम विकास संचार लोगों के मन व मस्तिष्क पर अपेक्षित प्रभाव डालकर उन्हें विकास की क्रिया में शामिल कर सकता है।

22.6.3 कृषि में होमियोपैथ का सफल प्रयोग

इलाहाबाद जनपद के बहरिया एवं कौड़िहार ब्लॉक के कई गाँव में स्वामी परमानंद की अगुवाई में कृषि एवं वानिकी से जुड़ा एक अभिनव प्रयोग किया गया। जिसके द्वारा फसलों, सब्जियों तथा वृक्षों पर होमियोपैथिक दवा के प्रयोग से अत्यन्त कम लागत से अधिक उत्पादन सुनिश्चित् किया गया। इस प्रयोग के द्वारा उर्वरकों तथा कृषि रसायनों के अंधाधुध प्रयोग को प्रभावी ढंग से समाप्त करने में मदद मिली। हालाँकि यह प्रयोग प्रारम्भ में तो इस क्षेत्र के किसानों को आकर्षित कर पाने में असफल रहा तथा गिने -चुने किसानों ने ही इस प्रयोग को अपनाया इसके पीछे कारण पारम्परिक खेती के प्रति रूझान इस क्षेत्र में प्रयोग की प्रवृत्ति से बचने को माना जा सकता है।

किन्तु उत्पादन, गुणवत्ता एवम् लाभ के प्रतिशत को देखते हुए धीरे-धीरे आस -पास के तमाम किसानों ने इस प्रयोग को अपनाना शुरू कर दिया। इस प्रयोग की सफलता एवं प्रचार-प्रसार के लिए दूरदर्शन, इलाहाबाद अपने कृषि दर्शन कार्यक्रम के द्वारा, स्थानीय समाचार पत्रों जैसे अमर उजाला, तथा कृषि विभाग ने संयुक्त रूप से प्रचार-प्रसार का कार्य किया। इस प्रयोग ने जहाँ एक ओर खेती की लागत को एक चौथाई से भी कम कर दिया। वहीं दूसरी ओर उत्पादन की गुणवत्ता को बढ़ाया साथ ही साथ मिट्टी की संरचना, उपजाऊपन और उसकी मजबूती को भी बनाए रखने में सहायता पहुँचायी। इस दवा की सहायता से उत्पादित अनाज, सब्जियों, फलों आदि में गुणवत्ता, टिकाऊपन मिठास और शुद्धता का प्रतिशत तुलनात्मक रूप से अधिक पाया गया । जिसने किसानों के लाभांश में बढ़ोत्तरी की ।

व्यक्तिगत स्तर पर किए गये कृषि विकास के इस कार्यक्रम में संगठित मीडिया सहयोग का यह जीता-जागता उदाहरण है।

22.7 विकास संचार : लेखन शैली

जैसा कि हम जानते हैं कि विकास संचार हेतु विशिष्ट कौशल, तैयारी और खूबियों की जरूरत पड़ती है इसके लिए सबसे आवश्यक होता है कि संचारक के पास विकास कार्यक्रमों की पर्याप्त जानकारी हो ।

विकास ने जहाँ आर्थिक उन्नति को अपनाया है वहीं हवा, जल, भूमि आदि को प्रदूषित भी किया है। साथ ही साथ जंगलों का कम होना, काटा जाना भी इसी विकास का अंग है। इस विडम्बना में हमें एक बार पुनः विकास की परिभाषा एवं उसकी व्याख्या करने पर मजबूर किया है। परिणामस्वरूप विकास मात्र अच्छे खान-पान,स्वास्थ्य, स्वच्छता तक सीमित न होकर पर्यावरणीय सुरक्षा से भी जुड़ गया है। विकास संचार की यह महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है कि वह इन तथ्यों को भी ध्यान में रखे। विकास संचार करते समय एक रिपोर्टर की यह जिम्मेदारी बनती है कि वह उस कार्यक्रम की और उसकी प्रासंगिकता एवं उपयोगिता का तार्किक विश्लेषण करे और निष्पक्ष राय से

अपने श्रोताओं को अवगत कराए। इसके अर्न्तगत उसे निम्नवत कार्य करने पड़ते हैं :-

22.7.1 आंकड़ा संकलन

विकास संचारक की यह पहली जिम्मेदारी होती है कि वह विकास के लिए चुने गये क्षेत्र से उपयोगी आँकड़ों को संलग्न करें। इसके तहत उसे विकास से प्रभावित होने वाले लोगों का साक्षात्कार तथा विकास कार्यक्रमो का नियोजन एवं क्रियान्वयन आदि से जुड़े लोगों का साक्षात्कार शामिल है।

22.7.2 तथ्यों की जानकारी

विकास से जुड़े कार्यक्रमों की रिपोर्टिंग करने से पूर्व तार्किक तथ्यों की पूर्ण जानकारी देना अत्यन्त आवश्यक होता है। जिसका तुरन्त विश्लेषण किया जा सके। हालांकि व्यवहार में यह इतना आसान नहीं होता ।

22.7.3 लाइब्रेरी की मदद

यदि आवश्यक हो तो संचार के पूर्व लाइब्रेरी की सहायता ली जानी चाहिए जहाँ से कार्यक्रम की रूप रेखा नियोजन एवं कार्यक्रम निर्माण की सटीक जानकारी प्राप्त हो सके ।

22.7.4 भाषा की सावधानी

विकास संचार हेतु भाषा अत्यन्त ही व्यवहारिक एवं सरल होनी चाहिए। विकास जनसंख्या, आय इत्यादि का वर्णन टुकड़ों में न करके मूलांक में करना चाहिए।

22.7.5 तुलनात्मक अध्ययन

तुलनात्मक अध्ययन विकास संचार में सर्वथा सहायता करता है। उदाहरण के लिए यदि कृषि में किसी नई तकनीक के विकास एवं उसकी उपयोगिता के बारे में लोगों को जानकारी देनी हो तो सर्वप्रथम पारम्परिक तकनीक से उसकी तुलना और उसके गुणों को बताना जरूरी होता है।

22.8 सार्थक लेख

विकास संचार को सफल एवं प्रभावी बनाने के लिए सार्थक लेख का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रायः हम जापान द्वारा तीस वर्षों में तीव्र विकास का उदाहरण देते हैं। हरित क्रान्ति, द्वारा पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कृषि एवं सम्पूर्ण विकास को भी इसी श्रेणी में रखा जाता है। इन सार्थक लेखों के द्वारा श्रोताओं में सार्थक पहल की कोशिश शुरू की जा सकती है जिसे पढ़कर या देख-सुनकर श्रोता उस

भारत में विकास लेखकों में सुन्दर लाल बहुगुणा और भारत डोंगरा ने टिहरी बाँध से विस्थापित तीस हजार परिवारों के विस्थापन का मुद्दा बहुत ही मजबूती से उठाया था। इसके साथ ही टिहरी डैम की ऊँचाई से जुडे नुकसान का तार्किक एवं वैज्ञानिक तथ्य भी प्रस्तुत किये। प्रसिद्ध प्रत्रकार बी.जी वर्गीज के निर्देशन में संचालित दिल्ली के निकट छतेरा नामक गाँव को हिन्दुस्तान टाइम्स रिपोर्टरों की सहायता से विकास का मानक बनाया गया। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा डा. एम.एस.स्वामीनाथन की सहायता से इस गाँव में कृषि की नई तकनीक से परिचित कराया गया तथा इसके उपयोग और फायदों की रिपोर्टिंग समस्त जनसंचार माध्यमों में की गयी। जन-संचार माध्यमों द्वारा विकास संचार की यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मिसाल है ।

भारत में विकास संचार का जुड़ाव पंचवर्षीय योजनाओं के साथ ही हुआ है। विकास कार्यक्रमों के बारे में समपूर्ण जानकारी देने के लिए उसकी प्रगति से परिचित कराने हेतु योजना आयोग 'योजना' नामक मासिक पत्रिका निकालती है।

22.8 सार्थक लेख

22.8.1 शंकरगढ़ में सिलिका सैण्ड खदान का विवाद

इलाहाबाद जनपद के अन्तर्गत शंकरगढ़ ब्लाक के आस-पास विश्व प्रसिद्ध उच्च गुणवत्ता वाली सैड की खदानें हैं जिसकी खुदाई का कार्य कई वर्षों से पट्टे और ठीके पर किया जाता रहा था किन्तु खुदाई में लगे मजदूरों के हितों की रक्षा नहीं हो पा रही थी। तथा इनका कई स्तरों पर शोषण किया जा रहा था। न तो उन्हें संस्तुत मजदूरी मिलती थी और न ही स्वास्थ्य के प्रति ही कोई सावधानी बरती जाती थी । फलस्वरूप ज्यादातर मजदूर सिलिकोसिस और तपेदिक जैसी घातक बीमारियों के शिकंजों में जकड़ते जाते थे और इलाज के अभाव में काल के गाल में समा जाते थे। जबकि फेस मास्क की उपलब्धता तथा कुछ अन्य सावधानियों के द्वारा उन्हें खदान में उत्पन्न होने वाले धूल से बचा सकता था। इन लापरवाहियों के चलते मजदूरों के परिवारों में हताशा व्याप्त थी। किन्तु न तो ठेकेदारों और न ही श्रम कल्याण विभाग ने ही इस पर कोई गौर किया और न ही इससे निपटने की कोई कारगर योजना ही बनाई। अन्ततः अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र ने इस पर लगातार रिपोर्टिंग करके एक बड़ा विस्फोट किया तथा एक जन आन्दोलन को खड़ा करने में सहायता पहुँचाई। परिणामस्वरूप प्रसिद्ध समाजसेवी स्वामी अग्निवेश तथा महिला सामाख्या जैसी गैर-सरकारी संगठनों के आन्दोलनरत होने से न सिर्फ खदान को बन्द करना पड़ा बल्कि ठेकेदारों तथा सम्बन्धित विभाग के खिलाफ कार्यवाही भी की गयी।

यह उदाहरण है कि सार्थक लेख के द्वारा हम न सिर्फ विकास कार्यक्रमों की रिपोर्टिंग करते हैं बल्कि विकास के रास्ते में आने वाले अड़चनों, लापरवाहियों तथा

कमियों को भी विकास संचार द्वारा जनता के सामने लाया जा सकता है।

22.8.2 उपलब्धि : आठ साल में चाँद पर फहराएगा तिरंगा

अमर उजाला 8 नवम्बर 2006। आठ साल में कोई या कुछ भारतीय चाँद पर नजर आए, तो कोई आश्चर्य नहीं। दिग्गज भारतीय वैज्ञानिकों ने मानव सहित चंद्र अभियान को हरी झंडी दिखा दी है। वैज्ञानिक चाहते हैं कि भारत का नाम विश्व के उन चुनिंदा देशों की फेहरिश्त में शामिल हो जाए, जो मानव को चाँद पर भेजने में सक्षम हैं।

बंगलूर में मंगलवार को आयोजित इंडियन स्पेस रिसर्च आर्गनाजेशन (इसरो) की बैठक के बाद संस्था के चेयरमैन जी. माधवन नायर ने बताया कि चाँद पर मानव सहित अभियान भेजने के मुद्दे पर अहम बैठक हुई, जिसमें विशेषज्ञों ने बढ़ -चढ़ कर सकारात्मक रूप से इस अभियान पर सहमति जताई है। इस अहम बैठक और उसके नतीजे का इन्तजार न केवल वैज्ञानिक बिरादरी, बल्कि राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को भी था। इस अभियान की सलाह प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह भी दे चुके हैं। इसरो में इतनी काबिलियत है कि आठ साल के अन्दर किसी भारतीय को चाँद पर भेज सकता है। अभियान की लागत 10,000 करोड़ रूपये से 15,000 करोड़ रूपये हो सकती है। बैठक में इसरो के प्रमुख नायर ने देश भर के 80 वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों को यह बताया कि भारत कैसे चाँद पर पहुँचेगा। लगभग सभी वैज्ञानिकों ने नायर के इरादे और तैयारी के प्रति सहमति जताई है। नायर के अनुसार - सभी वैज्ञानिक इस अभियान को तार्किक ठहराते हुए इस सपने को साकार करने के लिए हर संभव प्रयास को तैयार है।

बैठक में मशहूर वैज्ञानिक यू.आ.राव, आर. नरसिम्हा, यशपाल के अलावा इसरो, एच.ए.एल., एन.ए.एल., और अंतरिक्ष विज्ञान से जुड़े विशेषज्ञ शामिल हुए। वैज्ञानिकों ने चांद पर जाने वाले यात्री की सुरक्षा पर खास जोर दिया। इस पर इसरो के वैज्ञानिक ने जवाब दिया कि इन मामलों को स्पेस एजेन्सी देखेंगी और किसी तरह की समस्या नहीं आएगी। अब इसरो एक रिपोर्ट तैयार करेगा और दिसम्बर के अन्त तक यह रिपोर्ट केन्द्र सरकार को सौंपी जायेगी। गौरतलब है कि जी. माधवन नायर अपनी योजना के बारे में 17 अक्टूबर को स्वयं प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को विस्तार से बता चुके हैं । प्रधानमंत्री ने ही नायर को सलाह दी थी। मंगलवार को बंगलूर में हुई बैठक प्रधानमंत्री की सलाह का ही नतीजा है। फिलहाल इसरो वर्ष 2008 तक चाँद पर मानवरहित अभियान भेजने की तैयारी में जुटा है । इसरो का वर्तमान बजट काफी कम है। अतः इसरो की कोशिश है कि ग्यारहवीं और बारहवीं योजना में मानव सहित चन्द्र अभियान के लिए बजट की व्यवस्था की जाए। फिलहाल दुनिया में चाँद पर मानव को भेजने की क्षमता केवल अमेरिका, रूस, यूरोपीय स्पेस एजेन्सी और चीन के पास है। ऐसे में अगर भारत चाँद पर पहुँचने में कामयाब होता है तो यह बहुत बड़ी कामयाबी होगी ।

इसरो तीन टन के स्पेस कैप्सूल के निर्माण की तैयारी में लगा है, जिसके अन्दर

जीवन के अनुकूल परिवेश होगा और जिसमें दो अंतरिक्ष यात्री आराम से रह पाएंगे। इसरो के एक वैज्ञानिक के अनुसार चाँद पर पहुँचने में पाँच दिन लगेंगे और लौटने में भी पाँच दिन ।

22.9 विकास संचार का मुख्य कार्य

विकास संचार का मुख्य कार्य सूचना देना, व्याख्या करना और कार्यक्रम को गति देना होता है। इसके अन्तर्गत विकास संचार रिपोर्टर को कार्यक्रम की पूरी जानकारी उसकी उपयोगिता, प्रासंगिकता तथा प्रभावशीलता पर कड़ी नजर रखनी होती है। इसके लिए उसे स्थल भूमि आंकड़ों का संकलन, तथ्यों का विश्लेषण करना होता है। ताकि कार्यक्रम में आने वाली बाधाओं, कमियों आदि की तरफ वह तार्किक ढंग से इशारा कर सके।

22.9.1 सूचना देना

विकास संचार का मुख्य कार्य लक्ष्य श्रोताओं को विकास कार्यक्रम के बारे में सम्पूर्ण जानकारी देना होता है। इसके अन्तर्गत कार्यक्रम की रूप-रेखा उसके क्रियान्वयन, उपयोगिता आदि के बारे में सार्थक सूचनाएं उपलब्ध करायी जाती है। जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति इन कार्यक्रमों के प्रति रूझान महसूस करता है।

22.9.2 व्याख्या करना

विकास कार्यक्रम से जुडे. विभिन्न पहलुओं जैसे कार्यक्रम का प्रारम्भ समयावति, लागत, विशिष्टताओं, प्रासंगिकताओं तथा जन उपयोगिता आदि की व्याख्या विकास संचार के अन्तर्गत अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस व्याख्या के द्वारा विकास कार्यक्रम से जुड़े सम्पूर्ण पहलुओं का पोस्टमार्टम श्रोताओं के सामने प्रस्तुत किया जाता है। जिससे श्रोताओं में विश्वसनीयता का संचार होता है।

22.9.3 कार्यक्रम को गति प्रदान करना

विकास संचार के द्वारा विकास से जुड़े कार्यक्रमों की न सिर्फ पूरी जानकारी दी जाती है बल्कि उसके क्रिन्यान्वयन के विभिन्न चरणों का मूल्यांकन भी श्रोताओं के सामने प्रस्तुत किया जाता है। यह मूल्यांकन विकास कार्यक्रम से जुड़ी एजेन्सियों एवं लाभार्थियों में कार्यक्रम के प्रति लगाव का माहौल तैयार करता है।

22.10 विभिन्न माध्यमों के लिए विकास संचार

22.10.1 प्रेस के लिए विकास संचार

भारत में प्रिन्ट मीडिया सूचना देने का अच्छा माध्यम है। हालांकि विकास से जुड़ी खबरों की रिपोर्टिंग का प्रतिशत अभी भी बहुत कम है। पन्द्रह सौ से भी अधिक समाचार

पत्र 18 भाषाओं में समाचार प्रस्तुत कर रहे हैं। इनमें से कुछ अखबार विकास संचार को अपने पृष्ठ में पूरा स्थान देते हैं। 'द इण्डियन एक्सप्रेस', 'द पायनियर' तथा 'द हिन्दू' जैसे अंग्रेजी अखबार सप्ताह में एक दिन विकास से जुड़ी खबरों को पूरे एक पृष्ठ में छापते हैं। खबरों के साथ-साथ लेख और रूपक भी विकास कार्यक्रमों को स्थान देते हैं। फोटोफीचर तथा विकास कार्यक्रमों के लाभार्थियों का साक्षात्कार भी विकास संचार को गति देता है। इतना ही नहीं सार्थक लेख, विश्लेषणात्मक एव खोजपरक रिपोर्टिंग भी विकास कार्यक्रम में योगदान देती है।

22.10.2 रेडियो के लिए विकास संचार

स्वतंत्रता के समय के छः रेडियो केन्द्रों से बढ़कर आज ऑल इण्डिया रेडियो के दो सौ से भी ज्यादा केन्द्र कार्यरत हैं जो अपने विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा विकास संचार कर रहे हैं । खासतौर से कृषि एवं ग्रामीण एकांश से जुड़े कार्यक्रमों के द्वारा कृषि वानिकी, रोजगार, उद्योग धंधे एवं घरेलू शिल्प को बढ़ावा दिया जा रहा है।

रेडियो के लिए विकास संचार करते समय रिपोर्टर को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि वह आम व्यक्ति से बात कर रहा है । इसके लिए सरल भाषा एवं बोलचाल के लहजे का प्रयोग अत्यन्त सावधनीपूर्वक करना चाहिए ताकि रेडियो वार्ता, रूपक, नाटक, परिचर्चा के द्वारा श्रोताओं से अपनत्व स्थापित किया जा सके। इसके लिए स्थल रिकार्डिग अच्छा प्रभाव डालता है ।

22.10.3 टेलीविजन के लिए विकास संचार

भारत में सर्वप्रथम टेलीविजन का प्रारम्भ सन 1959 में हुआ। चूँकि टेलीविजन मुख्यतः दृश्य माध्यम है अतः प्रासंगिक दृश्यों की बहुलता कार्यक्रम को न सिर्फ सजीवता देती है बल्कि उसे दर्शकों से जोड़ती भी है।

किसी विकास कार्यक्रम को बनाने के लिए प्रस्तुतकर्ता को ढेरों कार्य करने पड़ते हैं। एक अच्छे टेलीविजन लेखन के लिए ज्यादा दृश्य और कम शब्दों का प्रयोग अपेक्षित होता है। इसके लिए सर्वप्रथम कार्यक्रम की पूरी स्क्रिप्ट तैयार करनी चाहिए। विकास संचार हेतु टेलीविजन रिपोर्टर को दूर-दराज के क्षेत्रों का भ्रमण भी करना चाहिए। कभी कभी ऐसे क्षेत्रों में विकास से जुड़े तमाम विषय मिल जाते हैं क्योंकि विकास कागजों तक सीमित न होकर कार्यक्षेत्र में भी दृष्टिगत होता है।

22.11 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि विकास संचार क्या है और वह किस प्रकार आम व्यक्ति को प्रभावित करता है, भारत जैसे पारस्परिक समाज जहाँ आज का स्वास्थ्य पोषण, अंधविश्वास, गरीबी पर्यावरणीय समस्याएं तथा अन्य मुद्दे मुँह बाएं खड़े हैं वहाँ विकास संचार के द्वारा बहुत कुछ किया जा सकता है। इसके लिए जनसंख्या के प्रभावी

माध्यमों जैसे प्रिंट, रेडियो,टेलीविजन तथा पारंपरिक माध्यम का भरपूर उपयोग अत्यंत प्रभावशाली हो सकता है। साथ ही साथ विकास संचार के द्वारा आम लोगों में सार्थक एवं विकासपरक सोच का निर्माण भी किया जा सकता है। चूँकि विकास की गति सिर्फ आर्थिक पहलू तक ही सीमित न होकर बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक मौलिक अधिकारों अर्थात जीवन के हर पहलू को छूता है अतएव विकास संचार का विषय व्यापक दृष्टिकोण के साथ होना चाहिए।

22.12 शब्दावली

सहभागिता : सम्मिलित होना, स्रोत और श्रोता का आपसी ताल-मेल

गुणात्मक : तुलनात्मक रूप से अच्छा

संचार : विचारों का आदान प्रदान

22.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

डा. अर्जुन तिवारी : कृषि एवं ग्रामीण विकास पत्रकारिता

राधेश्याम शर्मा : विकास पत्रकारिता

M.V. Kamath : The Journalist handbook

22.14 प्रश्नावली

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. विकास संचार को स्पष्ट करें ?
2. लक्ष्य श्रोता से क्या समझते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. विकास संचार में संचार माध्यमों की भूमिका बतलाएं ?
2. विकास संचार हेतु संदेश लेखन की शर्तें क्या हैं?
3. विकास संचार की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. विकास से आशय

   क) सिर्फ आर्थिक विकास

   ख) सामाजिक विकास

   ग) राजनैतिक विकास

घ) सभी

2. नोरा के अनुसार विकास

क) विज्ञान है

ख) कला है

ग) दोनों है

घ) इनमें से कोई नहीं है

3. भारत में टेलीविजन की शुरूआत

क) 1857

ख) 1859

ग) 1983

घ) 1959

4. लर्नर के अनुसार समाज का हर परिवर्तन

क) दिल में होता है

ख) दिमाग में होता है

ग) समाज में होता है

घ) होता ही नहीं

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर :

1) घ 2) ग 3) घ 4) क

इकाई - 23 विकास एवं आधी दुनिया

इकाई की रूपरेखा

23.1 उद्देश्य

23.2 प्रस्तावना

23.3 अवधारणा

23.3.1 विकास और आधी दुनिया

23.4 आधी दुनिया का सच

23.4.1 भारतीय समाज और नारी

23.4.2 महिलाओं की वर्तमान स्थिति

23.4.3 महिलायें एवं ग्रामीण जीवन

23.4.4 महिलायें एवं शहरी जीवन

23.5 सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यतायें और महिलायें

23.6 महिलाओं की संवैधानिक स्थिति

23.7 पंचवर्षीय योजनायें और महिला विकास

23.7.1 प्रथम चरण

23.7.2 द्वितीय चरण

23.7.3 वर्तमान चरण

23.7.4 मूल्यांकन

23.8 महिला सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति

23.8.1 नीति का उद्देश्य

23.8.2 क्रियान्वयन नीति

23.9 महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण

23.9.1 गरीबी उन्मूलन

23.9.2 सूक्ष्म ऋण

23.9.3 वृहद स्तर पर अर्थव्यवस्था

23.9.4 कृषि एवं महिलायें

23.9.5 उद्योग एवं महिलायें

23.9.6 समर्थ व कार्य/सेवायें

23.10 महिलाओं का सामाजिक सशक्तीकरण

23.10.1 शिक्षा

23.10.2 स्वास्थ्य

23.10.3 कुपोषण

23.10.4 जल एवं स्वच्छता

23.10.5 आवास/आश्रम

23.10.6 पर्यावरण

23.10.7 विज्ञान एवं तकनीकी

23.10.8 महिला एवं विषम परिस्थितियां

23.10.9 हिंसा

23.10.10 बालिआकों के अधिकार

23.10.11 संचार माध्यम

23.11 महिला विकास में बाधक तत्व : कारक

23.11.1 पारिवारिक कारण

23.11.2 सामाजिक कारण

23.11.3 आर्थिक कारण

23.11.4 शैक्षणिक कारण

23.12 महिला विकास एवं मीडिया

2312.1 मीडिया में महिलाओं का प्रस्तुतीकरण

23.12.2 टेलीविजन और नारी

23.12.3 रेडियो और नारी

23.12.4 पत्र-पत्रिकाओं एवं नारी

23.13. सारांश

23.14 शब्दावली

23.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

23.16 प्रश्नावली

23.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन का उद्देश्य है कि हमारी आधी आबादी अर्थात् नारी जगत की दशा-दिशा क्या है? विकास के हर कार्यक्रम में अपना बहुमूल्य योगदान करने वाली नारी की सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक स्थिति इतनी सोचनीय क्यों है? साथ ही साथ उसके विकास हेतु चलाये गये विविध योजनाओं, कार्यक्रमों का परिणाम क्या हुआ? अन्त में मीडिया नारी विकास में क्या योगदान कर सकता है?

23.2 प्रस्तावना

हमारी आबादी का आधा-हिस्सा महिलाओं का है तथा सम्पूर्ण विकास में उनका योगदान लगभग दो-तिहाई, किन्तु पहचान, मान्यता एवं अधिकार के स्तर पर उनकी स्थिति शदियों से गौण बनी हुई हैं। महिलाओं की यह स्थिति विकास की अवधारणा को घायल करती है। भारत में आजादी के पश्चात् एवं पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारम्भ होने से आज के महिला कल्याणकारी योजनाओं तक के सफर से उनकी स्थिति में बदलाव आया है। किन्तु इस बदलाव से एक खा ही प्रभावित हुआ है। आमजन अभी भी कल्याणकारी योजनाओं के प्रतिफल से दूर ही है। सम्पूर्ण विकास की इस कोशिश में जनमाध्यम अहम भूमिका निभा सकते हैं।

23.3 अवधारणा

विकास के दो पहलू हैं। पहला आर्थिक विका तथा दूसरा सामाजिक विकास। आर्थिक विकास में व्यक्ति अथवा उसके परिवार की आय, आय के साधन, अथवा परिसम्पत्तियों की बात करते हैं जैसे जमीन, जायदाद, दुकान, व्यवसाय, कारखाने तथा उनसे सम्बन्धित आवश्यकताएं व खाने-पीने, रहन-सहन की सुविधाओं के अलावा, उत्पादन अथवा उसके उपयोग सम्बन्धी बातों पर विचार करते हैं। सामाजिक विकास में हम उस व्यक्ति के विकास, उसके रहन-सहन के तौर-तीरेक, उसके जीवन की गुणवत्ता तथा सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक विकास में उसकी भागीदारी अथवा योगदान की बात करते हैं। सामाजिक विकास में पूरा सामाजिक परिवे आ जाता है इन दोनों विकास को हम एकीकृत या सम्पूर्ण विकास की संज्ञा देते हैं।

इस विकास में यह सुनिश्चित किया जाता है कि समाज में आमदनी अथवा उत्पादन के साधनों का बंटवारा कैसा है? इसे सामाजिक न्याय की संज्ञा दी जाती है अर्थात् समाज में बहुत अधिक असमानताएं न हो। सामाजिक न्याय के अन्तर्गत यह भी देखना आवश्यक है कि समाज का कोई वर्ग अत्यन्त पिछड़ा न रह जाए तथा विकास से ओहने वाले लाभांशों तक सबकी पहुंच हो और समाज के कमजोर वर्गों की ये लाभांश सुनिश्चित तरीके से पहुंचे।

23.3.1 विकास और आधी दुनिया

विकास की अवधारणा और भी व्यापक है। इसमें विभिन्न वर्गों तथा समुदाय के बीच के अलावा पुरुष तथा स्त्री की समानता की बात भी आती है। जब तक महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, बराबरी की पहचान नहीं मिलती और उनका समुचित विकास नहीं होता तो सम्पूर्ण विकास की परिकल्पना अधूरी ही रहेगी। इसलिए सामाजिक और आर्थिक विकास के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु महिलाओं का विकास एक आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य शर्त है।

23.4 आधी दुनियां का सच

रायबर्नी के अनुसार 'स्त्रियों ने ही प्रथम सभ्यता की नीव डाली, और उन्होंने ही जंगलों में भटकते हुए पुरुषों का हाथ-पकड़कर एक जीवन स्तर प्रदान किया और एक घर बसाया" यह मात्र कल्पना न होकर सच्चाई है, घर संभालने से लेकर खेत-खलिहान, नौकरी, उद्योग, विज्ञान आदि सभी स्थानों पर महिलाओं की उपस्थिति और योगदान सराहनीय हैं। इसी महिला जगत को आधी दुनिया के नाम से जाना जाता है। जो विकास के मार्ग पर तेजी से पांव बढ़ाते हुए अपनी महत्ता की दस्तक दे रही है। एक सर्वेक्षण के अनुसार महिलायें घर और बाहर के कार्यों में लगभग दो-तिहाई योगदान करती हैं और साथ ही साथ उनमें धैर्य, प्रबन्धन गुण, पुरुषों की तुलना में अधिक होता है किन्तु समाज के स्तर पर उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन कमतर किया जाता है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। आधी दुनियां अर्थात् नारी जगत की इस उपेक्षा के लिए बहुत कुछ हमारा सामाजिक संस्कृति परिवेश जिम्मेदार है। जिसने शदियों तक न सिर्फ महिला के विकास योगदान को नकारा बल्कि उसे विकास की मुख्य धारा से भी दूर रखने का प्रया किया और उसे चूल्हे-चौके तक सीमित कर दिया गया।

23.4.1 भारतीय समाज और नारी

भारतीय समाज में नारी की भूमिका के प्रति अधिक गंभीर चितंन था तथा समाज एवं राष्ट्र विकास में उसके योगदान को पहचान मिलती थी। नारी के विविध स्वरूपों को सम्मानीय तरीकों से देखा जाता था। जैसा कि संस्कृति में कहा गया है 'येनैवलिङगिता कान्ता तेनैवलिङगिता स्कुता:' अर्थात् एक ओर जहां नारी पत्नी रूप में अलिंग्न योग्य होती है वही दूसरी ओर नारी वात्सल्य भावना के होने पर पुत्री का रूप भी होती है। हमारी संस्कृति में नारी को विभिन्न रूपों एवं आदर्शों में चित्रित किया गया है नारी को भक्ति, विद्या, बुद्धि, लक्ष्मी आदि के रूप में पूजने की परम्परा शदियों से रही है।

मध्य काल के आते-आते वाह्य आक्रमणों ने भले ही नारी को चारदिवारों के अन्दर रहने पर विवश कर दिया तथा अनेक सामाजिक बुराइयों विकृतियों को जन्म दिया। किन्तु जब भी आवश्यकता पड़ी वह अपने मान-सम्मान के रक्षार्थ वह खुले मैदान में आने से भी नहीं हिचकी।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी इनकी भूमिका सराहनीय रही है। प्राचीन काल में अपाला, घोस, जबाका, सावित्री, दमयंती आदि स्त्रियों की गौरवशाली, परम्परा, में समय-समय पर अन्य नाम जुड़ते रहे हैं, जिसमें झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, गाइदिल्यू रानी, रानी उदा देवी, दुर्गा भाभी आदि की वीरगाथा हमारे सामने है। किन्तु यह नाममात्र के उदाहरण नारी के प्रति, शोषण, अपमान, दोयम दर्जे के व्यवहार को नहीं ढ़क सकते।

भारतीय समाज का पांचवा हिस्सा समस्त संसाधनों के तीन-चौथाई भाग पर नियंत्रण करता है। वही 95 प्रतिशत लोगों को पच्चीस प्रतिशत संसाधन ही हासिल है। जिसका कारण भौतिकवाद, पूंजीवाद के साथ जातिगत एवं लिंग आधारित गरीबी भी है। चूंकि हमारा समाज प्राचीन काल से ही जातिगत आधार पर विभाजित है एवं संसाधनों पर कुछ खास जातियों का नियंत्रण प्रारंभ से ही रहा है। इस जातिगत गरीबी व लैंगिक गरीबी के कारण भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। प्रत्येक क्षेत्र में लगभग अस्सी प्रतिशत भागीदारी होने के बावजूद उन्हें वह उचित स्थान एवं मान्यता प्राप्त नहीं है, जो सम्मानजनक कहा जा सके। यह पाया जाता है कि जितना अधिक गरीब परिवार होगा महिलाओं की काम में भागीदारी भी उतनी ही अधिक होगी। अर्थात् गरीबी और महिलाओं की भागीदारी का सीधा सम्बन्ध है किन्तु उनके योगदान के पश्चात् भी उनकी स्थिति गौण बनी रहती है।

23.4.3 महिलाएं एवं ग्रामीण जीवन

ग्रामीण महिलाओं की उत्पादक कार्यों जैसे कृषि व दुग्ध उत्पादन में पचासी प्रतिशत से अधिक भागीदारी होने के बावजूद उनके कार्य को उचित मान्यता नहीं मिल रही है तथा इन कार्यों से सम्बन्धित निर्णयों में भी उनकी भूमिका गौण ही रहती है। इतना ही नहीं कृषि क्षेत्र में महिलाओं की मजदूरी पुरुषों की अपेक्षा 30 से 50 प्रतिशत कम है। पंचायती राजव्यवस्था में महिलाओं हेतु आरक्षण का प्रावधान, हालांकि एक अच्छे संकेत के रूप में हमारे सामने है। किन्तु पुरुष वर्ग का स्वामित्व नियोजन एवं निर्णय पर वर्चस्व होने के कारण आज भी घर और समाज के समस्त निर्णय उनके द्वारा ही लिये जाते हैं।

23.4.4 महिलायें एवं शहरी जीवन

गांवों की तुलना में शहरी महिलाओं में शिक्षा, स्वास्थ्य, जागरूकता, रोजगार और आर्थिक विकास के अधिक अवसर हैं। रूढ़िवादिता, लिंगभेद तथा अन्य सामाजिक बुराईयों की स्थिति भी अपेक्षाकृत नियंत्रण में है किन्तु शहरी समाज में भी महिलाओं को पुरुषों के समान, अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं जिसके कारण सम्पत्ति के स्वामित्व में उनकी भागीदारी कमतर है। परिणामत: चाहे सम्पन्न वर्ग हो अथवा पिछड़ा वर्ग दोनों ही वर्गों में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं है।

23.5 सामाजिक - सांस्कृतिक मान्यतायें और महिलायें

हमारी सामाजिक तथा सांस्कृतिक मान्यतायें महिला विरोधी रही हैं तथा पारिवारिक स्तर पर निर्णय की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी न्यूनतम रहती है।

महिलाओं के खिलाफ पारिवारिक हिंसा, कन्याभ्रूण हत्या, ने इनकी दशा को अत्यन्त दयनीय बना दिया है। यह हिंसा न केवल शारीरिक है बल्कि मानसिक, लैंगिक, आर्थिक सभी स्तरों पर दिखाई पड़ता है। वर्ष 1994-95 में 1890 लाख गरीब थे जिनमें 70 प्रतिशत महिलायें थी।

23.6 महिलाओं की संवैधानिक स्थिति

हमारे संविधान के उन्मुख, मौलिक अधिकार, भौगोलिक कर्तव्यों में महिलाओं की समानता को सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया गया है। केन्द्र एवं राज्य सरकारें विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने हेतु प्रयत्नशील है। सरकार द्वारा घोषित राष्ट्रीय महिला नीति भी इस दिशा में सार्थक पहल है। केन्द्र एवं राज्य स्तर पर महिला आयोगों के गठन से उनके हालात में सुधार के संकेत मिल रहे हैं। पंचायती राज्य व्यवस्था में भागीदारी तथा नौकरियों में आरक्षण के प्राविधान से महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक स्थिति के सुधार में पहल किया है। किन्तु विधायिका में महिला आरक्षण हेतु बिल का न पास होना पाना निराशा भी करता है।

इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार तथा माताओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य सुधार के सम्बन्ध में लिये गये हस्तक्षेपों के कारण महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर में सुधार आया है। महिलाओं की जीवन प्रत्याशा जो 1951 में 32 वर्ष थी 1991 में बढ़कर 60 वर्ष हो गयी है। बालिका मृत्युदर तथा मातृ मृत्युदर में भी कमी आयी है। बालिकाओं के शिक्षा स्तर में भी काफी सुधार हुआ है। किन्तु लिंग विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अभी भी महिला एवं पुरुषों के पोषण, शिक्षा एवं रोजगार में एक बड़ा अन्तर है।

23.7 पंचवर्षीय योजनायें और महिला विकास

पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा प्रथम बार गरीबी के कारण महिलाओं की खराब दशा को सुधारने के लिए अनेक उपाय किये गये। साथ ही निर्धनतम परिवारों तथा महिलाओं को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने के कार्य को प्राथमिकता दी गई। इसी राजनीति के तहत महिला एवं बालविकास के अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

23.7.1 प्रथम चरण

योजना के प्रारम्भिक काल में महिलाओं के सम्बन्ध में कल्याणकारी दृष्टिकोण अपनाया गया, और उनके लिए कार्य के अनुकूल वातावरण तैयार करने, सामाजिक सुरक्षा तथा पुरुषों के समान वेतन तथा मजदूरी दिलाने के प्रयास किये गये। तीसरी पंचवर्षीय योजना के तहत उन्हें कल्याणकारी कार्यक्रमों जैसे मातृत्व लाभ, कौशल सुधार आदि कार्यक्रमों से जोड़ा गया जिससे वह समक्ष होकर लाभान्वित हो सकें। 2

अक्टूबर, 1975 को समन्वित बालविकास कार्यक्रम की शुरूआत की गई जिसमें बालविकास की सम्पूर्ण रूपरेखा बनाकर महिलाओं एवं बच्चों को लाभान्वित करने का कार्यक्रम लागू किया गया।

23.7.2 द्वितीय चरण

छठी पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के प्रति विकास का दृष्टिकोण अपनाया गया और उसके फलस्वरूप केन्द्र में महिला एवं बाल विकास विभाग का गठन हुआ तत्पश्चात् इस विभाग का राज्य स्तर पर भी सृजन हुआ। महिलाओं को सशक्त बनाने तथा उन्हें उद्यमिता के माध्यम से विकास की धारा से जोड़ने के लिए महिला विकास निगमों की स्थापना की गई। उन्हें बेहतर सुविधायें प्राप्त करने के लिए संगठित प्रयास किये गये एवं कामकाजी महिलाओं के लिए आवासों, बच्चों के लिए बालवाड़ियों का प्रविधान किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय महिला कोष का गठन किया गया जिससे अधिक से अधिक महिलाओं को वित्त उपलब्ध कराकर उन्हें आर्थिक कार्यक्रमों से जोड़ा जा सके।

23.7.3 वर्तमान चरण

यद्यपि महिला सशक्तीकरण की अवधारण सातवीं पंचवर्षीय योजना में रखी जा चुकी थी परन्तु आठवीं व नवी पंचवर्षीय योजना में इसे अत्यन्त बल मिला एवं अनेक परियोजनाओं जैसे स्वशक्ति, किशोरी शक्ति बालिका समृद्धि, इन्दिरा महिला योजना, आदि आरम्भ हुई। परन्तु महिला सशक्तीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था संविधान में 73वां 74वां संशोधन। जिसके माध्यम से उन्हें ग्राम पंचायतों तथा नगर पंचायतों, जिला परिषदों में आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व का अवसर मिला। इन बदलावों से विकास की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी निश्चित ही सुदृढ़ हुई है एवं महिला विकासोन्मुखी वातावरण तैयार करने में मदद मिली है।

पंचायती राज संस्थाओं को बढ़ती भागीदारी के साथ-साथ महिला नेतृत्व को भी अवसर प्राप्त हुआ कि वह कल्याणकारी एवं विकास योजनाओं के सही क्रियान्वयन द्वारा अपना विकास सुनिश्चित कर सके तथा अभी तक निरंतर प्रयासों के बावजूद विकास की मुख्य धारा से बनी दूरी को मिटा सके।

23.7.4 मूल्यांकन

पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से गरीबी उन्मूलन एवं महिला विकास के अनेकानेक कार्यक्रम चलाये गये। किन्तु इनमें से अधिकतर कार्यक्रम अपेक्षित परिणाम दे पाने में अक्षम सिद्ध हुए। कई कार्यक्रमों या तो बंद करना पड़ा अथवा उसके स्वरूप में परिवर्तन करना पड़ा। दरअसल हमारे नीति विशेषज्ञों को गरीबी उन्मूलन में एवं महिला विकास हेतु ऊपर से पूर्व निर्धारित प्रयासों पर अधिक विश्वास था। उनका मत

था कि अर्थव्यवस्था में तेज विकास के फलस्वरूप सर्वांगीण विकास संभव होगा और उसका प्रभाव निचले स्तर भी होगा तथा गरीबी पर प्रभावी रोकथाम संभव हो सकेगी। लेकिन वास्तविक अनुभव बिल्कुल भिन्न है।

वस्तुत: आर्थिक विकास के लाभों से गरीब तबका पूर्वत: वंचित रहा है। अर्थव्यवस्था के तेज विकास ने पहले से ही सम्पन्न लोगों को लाभ पहुंचाया है। नतीजन न सिर्फ गरीबी और अमीरी के मध्य की खाई और चौड़ी हुई बल्कि हासिये पर खड़ा वर्ग भी गरीब की श्रेणी में आ गया।

पिछले अनुभवों से यह भी स्पष्ट है कि गरीब वर्ग विशेषकर महिलायें अत्यन्त असंगठित हैं। जिसके परिणामस्वरूप ये विकास कार्यक्रमों का पूरा लाभ नहीं उठा सक रही हैं। उनमें पर्याप्त क्षमता भी नहीं है कि वह अकेले तेजी से बदलती अर्थव्यवस्था में अपने को एक आर्थिक इकाई के रूप में स्थापित कर सकें।

इस समस्या के निराकरण हेतु आवश्यक है कि पूर्व निर्मित कार्यक्रमों के स्थान पर सूक्ष्म स्तर पर अर्थात् सामुदायिक स्तर पर महिलाओं द्वारा स्वयं चुने गये कार्यक्रम चलाये जाए जिससे आधी दुनिया को विकास की प्रक्रिया का सक्रिय भागीदार बनाया जा सके और उन्हें लाभान्वित किया जा सके। जब तक नीति निर्माण एवं कार्यान्वयन में महिलाओं की भागीदारी और हिस्सेदारी नहीं होगी ये कार्यक्रम सफल नहीं होंगे।

23.8 महिला सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति

भारत सरकार ने महिला सशक्तीकरण हेतु सन् 2001 में एक व्यापक नीति बनाई। नीति का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति, विकास एवं उनका सशक्तीकरण सुनिश्चित करना है।

23.8.1 नीति का उद्देश्य

1. सम्पूर्ण महिला विकास हेतु अनुकूल आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों का निर्धारण करते हुए समुचित वातावरण सृजित करना जिससे महिलाएं अपने अन्दर विद्यमान क्षमताओं का उपयोग करने में सक्षम हो सकें।

2. राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में पुरुष तथा महिलाओं को समस्त मानवाधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रता प्रदान करने हेतु कानूनी कदम उठाना।

3. राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में समानता के आधार पर महिलाओं की निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करना।

4. समानता के आधार पर महिलाओं की पहुंच तथा सभी स्तरों पर गुणवत्तायुक्त स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, समान मजदूरी, कार्यक्रम स्थल पर सुरक्षा एवं

5. कानूनी व्यवस्था को सुदृढ़ करना ताकि महिलाओं के प्रति किसी भी प्रकार के भेद भावों की समाप्ति हो सके।

6. पुरुष एवं महिलाओं की सहभागिता को बढ़ावा देना जिससे जेण्डर सम्बन्धी सामाजिक सोच एवं सामुदायिक व्यवहारों में समुचित परिवर्तन लाया जा सकें।

7. महिलाओं के दृष्टिकोण को विकास प्रक्रिया में समाहित करना।

8. महिला तथा बालिका के प्रति सभी प्रकार की हिंसा, भेदभाव को समाप्त करना।

9. महिलाओं, पुरुषों, विद्यार्थियों, कार्यकर्त्ताओं, संस्थाओं, संस्थानों, विभागों व महिला संगठनों की सहभागिता से महिलाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने का विशेष प्रयास करना।

23.8.2 क्रियान्वयन नीति

वैधानिक न्याय एवं कानून व्यवस्था को महिलाओं के प्रति संवेदनशील बनाया जायेगा ताकि इनके विरुद्ध हिंसा को रोका जा सके तथा वे अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में भयमुक्त जीवन जीने का अधिकार प्राप्त कर सकें। हिंसा के अन्तर्गत न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक यौगिक, आर्थिक रूप से दमन शोषण व वंचना भी शामिल है। किसी भी प्रकार की धमकी देने व अधिकारों के हनन को भी हिंसा में शामिल किया जायेगा।

1. समुदाय, धार्मिक नेता व समाज के सभी वर्ग/समूह से विस्तृत चर्चा कर व्यक्तिगत कानून जैसे - विवाह, तलाक, गुजारे, छोटे बच्चों का संरक्षण इत्यादि में इस प्रकार संशोधन लाना जिससे महिलाओं की स्थिति को सुधार लाया जा सके एवं उनके विरुद्ध भेदभावों को समाप्त किया जा सके।

2. पितृसत्ता व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पत्ति का अधिकार महिलाओं की स्थिति बिगाड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राष्ट्रीय महिला नीति के अन्तर्गत महिलाओं के वैवाहिक एवं पैतृक सम्पत्ति कानून में विस्तृत चर्चा के उपरान्त आवश्यक संशोधन इस आशय से करना जिससे वे जेण्डर हित में हों।

3. सभी स्तर पर महिलाओं की सत्ता एवं निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी को बढ़ावा देना जैसे - विधायिका न्यायपालिका, कार्यपालिका, कार्पोरेट संस्थान, आयोग, समिति, बोर्ड एवं ट्रस्ट इत्यादि में महिला हेतु आरक्षण (कोटा) निश्चित करने पर भी सरकार विचार करे।

4. विकास प्रक्रिया में जेण्डर दृष्टिकोण का समावेश - विकास प्रक्रिया में महिला दृष्टिकोण को समाहित करने हेतु अभिनव कार्यक्रम निर्धारित किये जायेंगे जिससे महिलाएं उत्प्रेरक भागीदार एवं लाभार्थी की भूमिका अपना सकें।

23.9 महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण

23.9.1 (क) गरीबी उन्मूलन

चूंकि ज्यादार महिलाएं गरीबी रेखा से नीचे या उनमें बहुत-सी अत्यन्त गरीब की श्रेणी में आती हैं इसके कारण घर के अन्दर तथा समाज में वह भेदभाव की शिकार होती हैं। ऐसी महिलाओं की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को ध्यान में रखते हुए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है। वर्तमान गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम जो महिला लाभार्थी को प्रोत्साहित करते हैं के क्रियान्वयन में सुधार लाया जाय।

23.9.2 (ख) सूक्ष्म ऋण (माइक्रोक्रेडिट)

महिलाओं की पहुंच संस्थागत ऋण स्रोतों से उनके उपभोग तथा उत्पादन हेतु ऋण आवश्यकता की पूर्ति करना। सूक्ष्म ऋण संस्थाओं को सूक्ष्म ऋण प्रदान करने हेतु चुस्त एवं दुरुस्त करना ताकि वृहद स्तर से महिलाओं की ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

23.9.3 (ग) वृहद स्तर पर अर्थव्यवस्था

आर्थिक विकास के संदर्भ में उच्च स्तर पर आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों को महिलाओं के हित के परिप्रेक्ष्य में जाना जायेगा तथा आर्थिक प्रक्रिया में उनकी सहभागिता सुनिश्चित की जायेगी। सामाजिक और आर्थिक विकास के क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका उत्पादक तथा कार्यकर्ता के रूप में (औपचारिक तथा अनौपचारिक) को उभारा जायेगा। साथ ही उनके रोजगार तता कारखानों की विषम परिस्थितियों को सुविधाजनक बनाने हेतु आवश्यक नीतियों का निर्धारण किया जायेगा। आर्थिक क्षेत्र में बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीयकरण का असर महिलाओं के रोजगार तथा रोजगार के गुणात्मक पक्षों पर सीधा प्रभाव डालती है। इस परिप्रेक्ष्य में रोजगार सम्बन्धी नीतियों में आवश्यक सुधार लाने की आवश्यकता है। आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीयकरण सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव से निपटने हेतु महिलाओं की क्षमता में विकास तथा सशक्तीकरण हेतु नीति बनायी जायेगी।

23.9.4 (घ) कृषि एवं महिलाएं

चूंकि कृषि के क्षेत्र में उत्पादक के रूप में महिला की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है अत: यह आवश्यक है कि वे प्रशिक्षण कृषि विकास एवं अन्य कार्यक्रमों समुचित लाभ उठा सकें। कृषि के क्षेत्र में जैसे भूमि संरक्षण, सामाजिक वनीकरण, दुग्ध विकास मुर्गीपालन, मछली पालन इत्यादि में प्रशिक्षण तथा इसी क्षेत्र से जुड़ी योजनाओं को महिलाओं हेतु विस्तारित करना।

23.9.5 (ङ) उद्योग एवं महिलाएं

उद्योग जैसे इलेक्ट्रानिक्स, इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी, खाद्य संस्करण कपड़ा तथा कृषि आधारित उद्योगों के विकास में महिलाओं की महत्वपूर्ण भागीदारी रही है विभिन्न उद्योगों के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने हेतु सरकार समर्थनकारी सहयोग देने पर विचार रही है जैसे सामाजिक संरक्षण, श्रमिक कानून इत्यादि।

23.9.6 (च) समर्थन कार्य/सेवायें

सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने हेतु सरकार समर्थनकारी सेवाओं का विस्तार करेगी जैसे बाल विकास सेवाएं कार्यस्थल पर शिशुगृह की व्यवस्था तथा शैक्षिक संस्थाओं में शिशु पालन केन्द्र (क्रेच) की व्यवस्था।

23.10 महिलाओं का सामाजिक सशक्तीकरण

23.10.1 शिक्षा

समानता के आधार पर समस्त महिलाएं एवं वालिकाओं की पहुंच शैक्षिक संस्थाओं में स्थापित करना। महिलाओं के प्रति भेदभाव अशिक्षा की समाप्ति तथा जेण्डर संवेदनशीलता पर आधारित शैक्षिक तंत्र के निर्माण हेतु विशेष प्रयास किये जायेंगे। साथ ही बालिकाओं के नामांकन एवं ठहराव शिक्षा के गुणवत्ता में बेहतरी के भी प्रयास किये जायेंगे जिससे जीवन पर्यान्त शिक्षाण हेतु वातावरण तैयार किया जा सके तथा उनमें तकनीकी कौशल का विकास संभव हो सके। उच्च प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा में जेण्डर भेद तथा सामाजिक भेद को समाप्त करने हेतु प्रयास करना तथा जेण्डर संवेदीकरण पर आधारित पाठ्यक्रम सभी शैक्षिक स्तरों पर लागू करना।

23.10.2 स्वास्थ्य

स्वास्थ्य का तात्पर्य समग्र स्वास्थ्य से है। इसमें न केवल शारीरिक व मानसिक वरन् सामाजिक पहलू भी शामिल है और इसमें सम्पूर्ण जीवनकाल, भूणअवस्था से वृद्धावस्था तक स्वास्थ्य का माना जाता है। महिला के स्वास्थ्य को मातृत्व के परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्णता से जोड़ा जाना चाहिए। शिशु मृत्युदर तथा मातृत्व मृत्युदर के लक्ष्यों को प्राप्त करने पर सरकार समुचित बल देगी। स्वास्थ्य से सम्बन्धित राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 में वर्णित विभिन्न रणनीतियों का प्रभावी रूप से क्रियान्वयन करने हेतु सरकार ठोस कदम उठायेगी।

23.10.3 कुपोषण

चूंकि महिलाओं में कुपोषण की समस्याएं शिशु, बालिका स्तर, किशोरावस्था तथा गर्भावस्था में अत्यन्त गंभीर होती है अत: सूक्ष्म तथा वृहद स्तर पर गर्भावस्था मातृत्वकाल में कुपोषण की समस्याओं को दूर करने हेतु कदम उठाये जायेंगे गृह स्तर पर पोषण सम्बन्धी महिलाओं एवं बालिकाओं के प्रति भेदभाव को दूर करने हेतु विशेष रणनीति बनाई जाए। साथ ही पोषण शिक्षा का भी विस्तार किया जायेगा।

23.10.4. जल एवं स्वच्छता

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में महिलाओं को स्वच्छ जल की आवश्यकता शौचालय एवं स्वच्छता इत्यादि को ध्यान में रखते हुए इन सुविधाओं का विस्तार इस प्रकार किया जायेगा ताकि ये सुविधाएं महिलाओं के पहुंच के अन्दर हों और वे इन सुविधाओं का भूरपूर लाभ उठा सकें।

23.10.5 आवास/आश्रम

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में आवास नीतियों, आवासीय योजनाओं को विकसित करते समय महिला परिप्रेक्ष्य का ध्यान रखा जायेगा। अकेली महिला, महिला मुखिया वाले परिवार कामकाजी महिला, छात्राओं हेतु, सुरक्षित आवास की व्यवस्था करने पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

23.10.6 पर्यावरण

पर्यावरण संरक्षण तथा पर्यावरण विकास में महिलाओं की स्थिति पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। पर्यावरण के विकास तथा संरक्षण में महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित की जायेगी गैर-व्यावसायिक ऊर्जा के स्त्रोतों पर जैसे गोवर जलावन की लकड़ी, फसलों की जड़ें इत्यादि पर ऊर्जा हेतु महिलाओं की निर्भरता को कम करने हेतु सरकार महिलाओं के लिए गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्त्रोतों के विकास पर बल देगी।

23.10.7. विज्ञान एवं तकनीकी

सरकार विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने का प्रयास करेगी। बालिकाओं को विज्ञान एवं तकनीकी उच्च शिक्षा में पढ़ाने हेतु भी उन्हें प्रोत्साहित किया जायेगा। महिलाओं की आवश्यकता के अनुसार उनके कामकाज के बोझ को कम करने हेतु उपयुक्त तकनीकी विकास को भी बढ़ावा दिया जायेगा।

23.10.8 महिला एवं विषम परिस्थितियां

विषम परिस्थितियों में रहने वाली महिलाएं जैसे अत्यन्त गरीबी की स्थिति निस्सहाय महिलाएं अपाहिज महिलाएं, वृद्ध महिलाएं, अकेली महिलाएं, बाढ़ तथा सूखे से प्रभावित महिलाएं, परित्यक्ता, नौकरी से निष्कासित महिलाएं, विस्थापित महिलाएं तथा वेश्याओं के सहायतार्थ सरकार विशेष सहायता योजना बनायेगी तथा वर्तमान में चल रही योजनाओं को प्रभावी क्रियान्वयन हेतु प्रयास किया जायेगा।

23.10.9 हिंसा

सरकार महिला जिसमें कन्या भूषण से लेकर वृद्ध भी शामिल हैं, के जन्म तथा अस्तित्व अधिकारों के लिए वचनबद्ध है। देश में एक ऐसे वातावरण का सृजन किया जायेगा जिसमें महिलाओं के प्रति किसी भी प्रकार की हिंसा पर कड़ी रोक लगायी जायेगी ताकि महिलाएं अपने निजी तथा सार्वजनिक जीवन में भयमुक्त जीवन जीने का अधिकार प्राप्त कर सकें। हिंसा के अन्तर्गत न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक, यौनिक, आर्थिक दमन, शोषण एवं वंचना भी शामिल हैं। साथ ही किसी भी प्रकार की धमकी देने व अधिकारों के हनन को भी हिंसा में शामिल किया जायेगा। दहेज कार्यस्थल पर यौन प्रताड़ना तथा महिलाओं पर हिंसा करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की जायेगी।

23.10.10. बालिकाओं के अधिकार -

बालिकाओं के प्रति किसी भी प्रकार की हिंसा या उनके अधिकारों का हनन, परिवार में या समाज में समाप्त करने हेतु तथा इसकी रोकथाम हेतु सरकार प्रभावी कदम उठायेगी। बाल-विवाह, बालिका भूषण हत्या वाल वेश्यावृत्ति के विरुद्ध कठोर कानूनी कदम उठाये जायेंगे। बालिकाओं के पोषण, स्वास्थ्य शिक्षा, व्यावहारिक शिक्षा आदि के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य किये जायेंगे बाल मजदूरी को समाप्त करने से सम्बन्धित कार्यक्रमों को भी गति प्रदान की जायेगी।

23.10.11 संचार माध्यम -

संचार माध्यमों को बालिकाओं एवं महिलाओं का मानवीय सम्मान एवं आदर पर आधारित छवि प्रदर्शित करने हेतु उत्साहित किया जायेगा।

23.11 महिला विकास में बाधक तत्व : कारक

महिलाओं के सम्पूर्ण विकास के रास्ते में पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक कारण मुख्य अवरोध के रूप में उभरे हैं।

23.11.1 पारिवारिक कारण -

भारत जैसे पारंपरिक समाज में परिवार का निर्णय पुरुष ही लेते हैं। महिलाओं का हस्तक्षेप लगभग नगण्य होता है। पुरुषवादी सोच के चलते महिलाओं को अपनी इच्छा दबानी पड़ जाती है और प्राय: देखा गया है कि उन्हें अपने, व्यवसाय, शिक्षा और कभी-कभी तो नौकरी के साथ भी समझौता करना पड़ता है।

23.11.2 सामाजिक कारण -

जिस समाज में हम रहते हैं उसमें स्त्री एवं पुरुषों के लिए अलग-अलग मापदंड हैं। इसी मापदण्ड के अनुरूप उसे अपने कार्यक्षेत्र का चुनाव एवं सम्मान प्राप्त होता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण महिलाओं को घर की चारदीवारी में सीमित कर देना है जहां उनकी पहुंच विकास परक सूचनाओं तक नहीं हो पाती है। लिंग भेद, रूढ़िवादिता, पिछड़ान तथा महिलाओं के प्रति समाज के दोहरे मापदण्ड के चलते विकास की क्रिया वाधित हो रही है।

23.11.3 आर्थिक कारण

अर्थ विकास का महत्वपूर्ण स्रोत तथा उपलब्धि दोनों ही है। चूंकि उनकी भी सम्पत्ति के स्वामित्व उसके प्रबंधन तथा लाभ का व्यावहारिक हक महिलाओं को नहीं प्राप्त है। साथ ही साथ घरेलू आमदनी में उनका अच्छा-खासा योगदान होते हुए भी आमदनी में भागीदार कमतर है। संयुक्त राष्ट्र संघ के संगठन खाद एवं कृषि संगठन के एक अनुमान के अनुसार विश्व के कुल खाद्यान्न उत्पादन का 50 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं के योगदान से होता है तथा तीन-चौथाई कृषि कार्य महिलाओं द्वारा सम्पादित होते हैं। किन्तु विपणन और लाभांश रखने का कार्य पुरुष ही करते हैं। परिणाम स्वरूप महिलाएं गरीब ही बनी रहती हैं।

23.11.4 शैक्षणिक कारण

महिलाओं के विकास में सबसे बड़ी बाधा उनमें शिक्षा स्तर का कम होना है। शुरूआत से ही लड़कियों को पराया धन मान लिया जाता है जिसके कारण उन्हें उच्च शिक्षा मिलने से वंचित रहना पड़ता है। शिक्षा के अभाव के कारण महिलाओं में जागरूकता सक्रियता, निर्णय की क्षमता आदि का पूरा विकास नहीं हो पाता और वह विकास की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाती।

23.12 महिला विकास एवं मीडिया

गरीबी उन्मूलन तथा महिला विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत शामिल किये गये अनेकानेक हस्तक्षेपों का विश्लेषण करने से अनेक प्रश्न उपजते हैं। जैसे इन

कार्यक्रमों का पूरा लाभ लक्षित वर्ग के लोगों को क्यों नहीं मिल पा रहा है? इनकी क्षमता विकास के लिए क्या उपाय किये जाएं ताकि वे लगातार किये जा रहे अवसरों का सही दोहन कर सकें? साथ ही साथ गरीबी उन्मूलन एवं महिला विकास कार्यक्रमों में लोगों की सक्रिय भागीदारी को कैसे बढ़ाया जाए और वैसे इन कार्यक्रमों से अधिक से अधिक महिलाओं को लाभान्वित किया जाय? इन सभी प्रश्नों का उत्तर तलाशने में मीडिया सहायक हो सकती है जो सूचना देकर, जागरूक बनाकर लोगों को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने की प्रेरणा दे सकती है।

23.12.1 मीडिया में महिलाओं की प्रस्तुतिकरण

कई अध्ययनों से यह पता चलता है कि मीडिया आधी दुनियां के सच से बहुत दूर है। इलेक्ट्रानिक मीडिया पर प्राय: महिलाओं की छवि से खिलवाड़ करने अश्लीलता और कामुकता को बढ़ावा देने का आरोप लगता है। प्राय: सीरियलों, सिनेमा आदि कार्यक्रमों में महिलाओं को सहायक एवं निष्क्रय तरह की भूमिका में दिखाया जाता है। उन्हें मां, बहन, पत्नी आदि की भूमिका में पुरुषों एवं परिवार की सेवा में रत दिखाया जाता है।

जबकि वास्तविक जीवन में महिलाओं को घर परिवार के साथ अन्य जिम्मेदारियों को निर्वहन करना होता है। ग्लैमर से दूर उन्हें अपनी जिन्दगी की जद्दोजहद जीनी होती है। जिस पर मीडिया की शायद ही नजर पड़ती है।

23.12.2 टेलीविजन और नारी

टेलीविजन सजीवता एवं दृश्य-श्रव्य माध्यमों के कारण परिवार का सबसे चहेता माध्यम बन गया है। इसके कार्यक्रमों में विविधता एवं रंग इसकी अन्य विशेषताएं हैं। किन्तु इसमें दिखाये जाने वाले सीरियाल एवं कार्यक्रमों में उच्चवर्गीय तथा उच्च मध्यमवर्गीय शहरी महिलाओं का ही चित्रण किया जाता है जो सारी वास्तविक समस्याओं से दूर चमक-दमक की दुनिया में रची-बसी रहती है। इन कार्यक्रमों के द्वारा वास्तविकता से दूर फंताशी की एक ऐसी दुनिया का निर्माण किया जाता जहां सबकुछ अच्छा होता है। गांव एवं खेल खलिहान तथा गरीब महिलाओं का चित्रण शायद ही देखने को मिलता हो। कृषि कार्यक्रमों में भी पुरुष किसानों को ही लक्ष्य करके कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है।

महिला अधिकार, रोजगार, शिक्षा स्वास्थ्य आदि जाने ही कितने मुद्दे हैं जिन पर टेलीविजन को अभी बहुत कार्य करने हैं तथा ग्रामीण महिलाओं के लिए उसे और सूचनापरख कार्यक्रम बनाने होंगे।

23.12.3 रेडियो और नारी

रेडियो सच्चे अर्थों में जनमाध्यम है। इसकी सहजता, सुलभता, सस्तापन एवं व्यापक पहंच इसकी विशेषतायें हैं। आज लगभग शत प्रतिशत जनसंख्या रेडियो का

लाभ उठा सकती है। आकाशवाणी अपने सभी केन्द्रों के द्वारा शहरी एवं ग्रामीण महिलाओं हेतु सप्ताह में चार दिन विशेष कार्यक्रम प्रसारित करता है। इनमें परिवार कल्याण, पोषण और महिलाओं की अन्य दैनन्दिन आवश्यकताओं से जुड़े कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं। किन्तु रेडियो की महिलाओं की आधुनिक आवश्यकताओं जैसे शिक्षा विकास एवं रोजगार जागरूकता से जुड़े कार्यक्रमों पर और भी बल देना होगा।

23.12.3 पत्र-पत्रिकायें एवं नारी

पत्र-पत्रिकाएं अपने व्यापक विषय-वस्तु, विचार, विश्लेषण एवं जनमत निर्माण के लिए जाने जाते हैं। प्राय: महिलाओं से जुड़ी खबरों में बलात्कार, दहेज उत्पीड़न शोषण, आदि की बहुलता होती है। हालांकित शिक्षा के प्रसार से महिलाओं के कैरियर, रोजगार से जुड़े लेख एवं खपत भी छप रहे हैं। किन्तु पत्रिकाओं में यहां तक कि महिलाओं की पत्रिकाओं में भी घर रसोई तथा परिवार से जुड़े विषयों की प्रधानता रहती है और अर्थपूर्ण तथा विकास परक लेखों का अभाव झलकता है। हालांकि पत्रकारिता में महिलाओं के आगमन से इस दिशा में सार्थक पहल की उम्मीद जगी है जो महिला और उनकी जरूरतों को अच्छे से समझ सकती है और उसे अभिव्यक्ति दे सकती है।

23.13 सारांश

समाज में महिलाओं की सम्मान जनक स्थिति के अभाव में समग विकास की अवधारणा निरर्थक है। सभी विकासशील देश महिलाओं अर्थात आधी दुनिया को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने हेतु प्रयत्नशील है। भारत में भी उनकी स्थिति में उत्तरोत्तर सुधार लाने के अनेकों प्रयास किये जा रहे हैं। अनुभवों से यह स्पष्ट हो गया है कि जब तक महिलायें संगठित होकर साझी कार्यवाही नहीं करेगी उनका टिकाऊ एवं दीर्घजीवी विकास संभव नहीं होगा। आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में स्वालम्बन ही उनके सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त कर सकेगा। इस हेतु समाज में अनुकूल वातावरण तैयार करना आवश्यक है जिसने समाज के विभिन्न वर्गों की सोच में सकारात्मक परिवर्तन आ सके। यह महत्वपूर्ण जिम्मेदारी मीडिया के कंधों पर है।

23.14 शब्दावली

(1) आधी दुनिया : महिलायें, नारी संसार

(2) सशक्तीकरण : मजबूती, अनुकूल अवसरों की उपलब्धता

23.15 संदर्भ ग्रन्थ

(1) महिला सशक्तीकरण एवं समग्र विकास : प्रेम नारायण शर्मा एवं अन्य

(2) विकास पत्रकारिता : राधेश्याम शर्मा

(3) योजना पत्रिका

(4) कुरुक्षेत्र पत्रिका

23.16 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न -

(1) सामाजिक विकास क्या है?

(2) महिला विकास में कौन से बाधक तत्व हैं?

(3) क्या टेलीविजन महिला विकास में सहायक है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

(1) महिलाओं के सम्पूर्ण विकास में मीडिया के योगदान को बतायें।

(2) महिला विकास हेतु अब तक चलाये गये कार्यक्रमों एवं योजनाओं की असफलता के क्या कारण हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. कृषिक्षेत्र में महिलाओं का योगदान है - पुरुषों की तुलना में

क कम ख - ज्यादा ग - बराबर घ - नहीं मालूम

2. पंचवर्षीय योजनाओं के प्रथम चरण में महिलाओं के प्रति कौन-सा रूख अपनाया गया?

क - सुधारात्मक ख - नकारात्मक

ग - सुधारात्मक घ - भेदभावपूर्ण

3. महिला सशक्तीकरण हेतु राष्ट्रीय नीति बनी है।

(क) सन् 2001 ख - सन् 2002

ग - सन् 1999 घ - सन् 2005

वस्तुनिष्ठ प्रश्न के उत्तर

1. ख

2. ग

3. क

इकाई - 24 विकास संचार तथा राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मुद्दे

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

24.1 प्रस्तावना

24.2 विकास एवं विभिन्न मुद्दे : अवधारणा

- 24.2.1 विकास संचार और विकासशील दुनिया
- 24.2.2 विकास संचार बनाम विकसित एवं विकासशील दुनिया

24.3 विकास एवं जनसंचार

24.4 विकास संचार एवं राजनीति

- 24.4.1 भारतीय राजनीति
- 24.4.2 संचार, सत्ता और जनमत का संबंध
- 24.4.3 प्रिंट मीडिया का प्रभाव
- 24.4.4 इलेक्ट्रानिक मीडिया का प्रभाव

24.5. विकास संचार एवं अर्थ जगत

- 24.5.1 भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास
- 24.5.2 मिश्रित अर्थव्यवस्था का दौर
- 24.5.3 उदारीकरण का दौर
- 24.5.4 विकास संचार की भूमिका

24.6 विकास संचार एवं संस्कृति

- 24.6.1 संस्कृति पर संचार का प्रभाव
- 24.6.2 सांस्कृतिक संचार और प्रिंट मीडिया
- 24.6.3 सांस्कृतिक संचार और इलेक्ट्रानिक मीडिया

24.7 विकास संचार एवं सामाजिक मुद्दे

- 24.7.1 उपभोक्ता एवं विकास संचार
- 24.7.2 विकास संचार की भूमिका

24.8 विकास संचार एवं बाल श्रम

- 24.8.1 बाल श्रम एक राष्ट्रीय समस्या
- 24.8.2 बाल श्रम उन्मूलन कार्यक्रमों की दिशा व रणनीति
- 24.8.3 सरकारी योजनाओं की सीमायें, समस्यायें व समाधान
- 24.8.4 चुनौतियां व निराकरण
- 24.8.5 विकास संचार की भूमिका

24.9 सारांश
24.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
24.11 प्रश्नावली

24.0 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् हम आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मुद्दों को समझ सकेंगे तथा उसमें विकास संचार की भूमिका का भी अवलोकन कर सकेंगे साथ ही साथ भविष्य में इन मुद्दों और मीडिया के बीच क्या सह-सम्बन्ध स्थापित होगा। इसकी भी जानकारी हमें हो सकेगी।

24.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग सूचना का युग है। ये सूचनायें हमें जनमाध्यमों से ही उपलब्ध होती हैं। विकास के विभिन्न क्षेत्रों जैसे राजनीति, अर्थ, संस्कृति एवं समाज का जनमाध्यमों से गहरा सरोकार होता है यही सरोकार जब उत्तरदायी संचार के रूप में हमारे सामने आता है तो उसे हम विकास संचार का विभिन्न मुद्दों के प्रति योगदान के रूप में आंकते हैं।

24.2 विकास एवं विभिन्न मुद्दे

अवधारणा - विकास का अर्थ मात्र आर्थिक उन्नति ही न होकर और भी व्यापक है। इसमें मानव जीवन से जुड़े तमाम मुद्दे अर्थात् राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास भी आता है। आशय यह कि मनुष्य के चतुर्मखी विकास या सम्पूर्ण विकास को ही सच्चे अर्थों में विकास की संज्ञा दी जा सकती है संचार इस सम्पूर्ण विकास को प्राप्त करने में एक कारगर हथियार के तौर पर प्रयोग किया जा सकता है।

यह विकास संचार देश काल और परिस्थितियों के साथ परिवर्तनशील होता है। अर्थात् विश्व के विभिन्न भागों के लिए विकास संचार का उद्देश्य उस भाग की आवश्यकता के अनुरूप होता है और समसामयिक मुद्दों के साथ अपना सरोकार स्थापित किये रहता है।

24.2.1 विकास संचार और विकासशील दुनिया

सूचना क्रांति के इस युग में सूचना दरअसल वास्तविक पूंजी बन गयी है। अत: अधिकाधिक सूचनाओं पर आधिपत्य या एकाधिकार को लेकर खींचातानी रही है। विशेष रूप से विकसित देशों, विकासशील देशों एवं तीसरी दुनिया के देशों के बीच स्वार्थ की गहरी खाई खींच दी है। परिणाम स्वरूप विकास की दिशा में आज भी

व्यापक और प्रत्यक्ष असंतुलन बना हुआ है। विकासशील दुनिया पूंजीवादी और साम्यवादी महाशक्तियों से अलग अपनी निर्धनता की सीमाओं में घिरी है। जिनके पास न तो पर्याप्त उद्योग शक्ति है और न ही अर्थशक्ति। गरीबी, अशिक्षा और बीमारियों के अभिशाप से जूझती इस दुनिया के पास अभी भी सूचना संसाधनों का भारी अभाव है। अपने सूचना तंत्र के कमजोर होने से इन देशों को महाशक्तियों के सूचना तन्त्र पर बहुत कुछ निर्भर करना पड़ रहा है। जिसके कारण ढेर सारे विरोधाभास भी सामने आ रहे हैं।

24.2.2 विकास संचार बनाम विकसित एवं विकासशील दुनिया

विकसित देशों खासतौर से पश्चिमी देशों ने मुक्त सूचना प्रवाह का नारा देकर विकासशील दुनिया के बारे में तमाम नकारात्मक एवं भ्रामक तथ्य प्रसारित किये हैं। विकासशील दुनिया के देशों का प्राय: आरोप होता है कि विकास की दिशा में किये गये उनके सभी प्रयासों को अनदेखा कर पश्चिमी महाशक्तियां उनकी कमजोरियों एवं असफलताओं को ही उजागर करती हैं।

उदारवादी प्रजातांत्रिक परिकल्पना के तहत ये राष्ट्र अपने बाजार मार्ग में आये किसी भी राष्ट्र को अप्रजातांत्रिक, अमानवीय और असांस्कृतिक कहकर तिरस्कृत करने से भी नहीं हिचकते। संगठित और समृद्ध सूचना तंत्र के बलबूते इन राष्ट्रों का सूचना पर साम्राज्य बना हुआ है। और अपने सूचना संजाल के द्वारा ये विकासशील दुनिया को कई तरह प्रभावित कर रहे हैं। हरबर्ट शिलर का मत है कि पश्चिमी देशों विशेषकर अमेरिका मुक्त सूचना प्रवाह की आड़ में विकासशील देशों में मुक्त बाजार और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के व्यावसायिक हितों को संरक्षण देता है। सन् 1999 की मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार भी सूचना क्रान्ति कुछ ही देशों में सीमित है। और अधिकतर विकासशील राष्ट्र इसके लाभ से प्राय: वंचित हैं। भारत भी इसका अपवाद नहीं है और संचार क्रान्ति का विकासोन्मुख लाभ अभी मिलना शेष है।

24.3 विकास और जनसंचार

वर्तमान औद्योगिक और तकनीकी समाज की विशेषता है जनसंचार, जिसके लक्ष्य श्रोता छोटे-छोटे समूहों में स्थानीयता के आधार पर बिखरे हुए हैं। आज तकनीकी क्रान्ति के बल पर इन समूहों तथा समुदायों को संदेश प्रेषित कर पाना संभव है। व्यापक रूप से उत्पादित ये संदेश प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रानिक मीडिया से प्रसारित किये जाते हैं और विकास की क्रिया को गतिशील बनाते हैं। भारत में ग्रामीण संचार के पारम्परिक माध्यम लोककथा, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकनाट्य आदि सूचना संप्रेषण और मनोरंजन का सशक्त माध्यम रहे हैं। गतिशीलता और निरंतरता इनकी विशेषता है तथा इसकी प्रकृति विकासात्मक होती है।

24.4 विकास संचार एवं राजनीति

विश्व की तमाम राजनैतिक पद्यतियां जनमत की आधारशिला पर ही टिकी हैं। जनमत की उपेक्षा राजनैतिक उथल पुथल और सत्ता परिवर्तन का कारण बनी हैं। प्रजातंत्र में जनमत के सच को भांपने एवं अपनी बात सही अर्थों में जनता तक पहुंचाने के लिए सशक्त संचार व्यवस्था अनिवार्य है।

24.4.1 भारतीय राजनीति

भारतीय राजनीति का अपना लम्बा इतिहास रहा है। महाभारत काल से लेकर स्वतंत्रता पूर्व एवं आज तक राजनीति के विभिन्न रूप हमारे सामने आते रहे हैं। कभी यह राजनीति सत्ता को पोषित एवं जनमत को उपेक्षित करती हुई दिखी तो कभी जनमत निर्माण हेतु कारगर हथियार के रूप में उपस्थित हुई। दरअसल राजनीति को आज के विचलन एवं अनैतिकता से जोड़कर देखा जाता है जबकि राजनीति तो वह पवित्र आधार होता है जिसकी सहायता से किसी राष्ट्र राज्य की शासन व्यवस्था संभाली जाती है और जनमत को साथ लेकर विकास की मजबूत नींव पड़ती है। इसी राजनीति को पुष्पित-पल्लवित करने और जनमत को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए विकास संचार की हमें आवश्यकता है।

24.4.2 संचार, सत्ता और जनमत का सम्बन्ध

राजनैतिक प्रक्रिया पर गुणात्मक एवं मात्रात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में संचार उपकरण सदा ही सफल रहे हैं। स्वतंत्रता के पूर्व निरक्षरता की दर बहुत अधिक होने पर भी पारम्परिक संचार माध्यम गीत, नाटक, नौटंकी और प्रिंट माध्यम समाचार पत्र पम्फलेट आदि ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध इतना प्रबल जनमत तैयार कर लिया था कि उसकी अवहेलना असंभव हो गयी थी। इसी प्रकार 1977 के आम चुनावों में जनता ने आपातकाल के विरोध में अपना आक्रोश जनमत के रूप में प्रकट किया था। निरक्षरता, सड़क परिवहन मार्गों की न्यूनता एवं निर्धनता के बाद भी भारत का विराट जनसमुदाय देश की राजनैतिक प्रक्रिया का सक्रिय भाग रहा है। यद्यपि पिछड़े इलाके आज भी संचार रिक्तता या संचार शून्यता से गुजर रहे हैं। इन संचार शून्य क्षेत्रों में राजनैतिक उथल पुथल के प्रति उदासीनता की भावना दिखाई देती है पर वे सभी क्षेत्र जहां प्रिंट या इलेक्ट्रानिक संचार साधनों की पहुंच है राजनैतिक प्रभाव को जनसंचार माध्यम स्थापित करने में सफल रहे हैं। विभिन्न चुनावों के समय तो इन माध्यमों से लोगों का जुड़ाव और भी बढ़ जाता है। सन् 1984 के लोकसभा चुनावों में 20 मिनट की वीडियो फिल्म 'माँ' जो इंदिरा गांधी के जीवन पर आधारित थी। लोगो को प्रभावित करने में खासी सफल हुई थी। सन् 1989 के चुनावों में तो सभी राजनैतिक दल अपने एजेन्डों और संदेशों के लिए कैसेटों की सहायता लेने लगे। भ्रष्टाचार के खिलाफ

मुहिम छेड़ने एवं विश्वनाथ प्रताप सिंह को सत्तासीन करने में जितना योगदान प्रिंट मीडिया का रहा है वह अपने आप में राजनीति एवं संचार सम्बन्ध का मजबूत उदाहरण है। आज ग्राम पंचायतों स्थानीय निकायो, विधान सभा, लोकसभा आदि के चुनावों में हाईटेक संचार माध्यमों का प्रयोग आम बात हो गई है।

24.4.3 प्रिंट मीडिया (प्रेस) का प्रभाव

भारत में प्रेस ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका स्वतंत्रता संग्राम में योगदान देकर निभाई है। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण से बीसवीं सदी के मध्य तक भारतीय प्रेस निरंतर अभिव्यक्ति के अधिकारों के लिए झूझते हुए विभिन्न प्रतिबन्धों का सामना करता रहा है। सेंसरशिप, जुर्मानों और पत्रकारों को कारावास की सजा उन दिनों आम बात थी। जहां-जहां बौद्धिक जागरुकता व्याप्त हो चुकी थी वहीं बुद्धिजीवियों ने अखबार को ब्रितानी शासकों के विरुद्ध हथियार की तरह प्रयुक्त किया। बंगाल रहा हो या महाराष्ट्र या फिर गुजरात और मद्रास हर प्रांत में हर दल के नेता का अस्त्र उसका अपना अखवार था। ब्रितानी दमनचक्र का सामना करते हुए भी जलियांवाला बाग कांड, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन और बाद में भारत छोड़ो आन्दोलन की तमाम खबरें देश भर में प्रसारित करने का श्रेय राष्ट्रीय प्रेस को है। गांधी इरविन समझौता, क्रिप्स मिशन का लाला लाजपत राय द्वारा विरोध, लाठियों के प्रहार से उनकी मृत्यु एवं दैनंदिन की घटनाएं तत्कालीन प्रेस ने जनता तक पहुंचाई और एक पूर्व जागृत जनमत निर्मित कर ब्रितानी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह का बिगुल फूंका था। राजनैतिक चेतना ही नहीं, बल्कि हर सामाजिक आन्दोलन का प्रवक्ता भी प्रेस रहा है। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर आदि की विचारधाराएं भी अखबारों से छनकर जन-जागरण करती रही हैं। आजादी के पश्चात् प्रेस की भूमिका बदल चुकी थी। खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक विकास में योगदान उसका मुख्य उद्देश्य बन गया। हरित क्रान्ति, जयप्रकाश का आन्दोलन, सर्वोदय, भूदान आन्दोलन आदि में प्रेस का योगदान अत्यन्त सराहनीय रहा है। आपात काल का विरोध तथा पंचवर्षीय योजनाओं के प्रसार में भी प्रेस की अपनी महती भूमिका रही है। आज भी साक्षर समुदाय के बीच समाचार पत्रों के राजनैतिक समाचार और राजनैतिक पत्रिकाएं ही अधिक पढ़ी जाती हैं पठन-पाठन की यह प्रक्रिया और चर्चा जनमानस को प्रभावित करती है।

24.4.4 इलेक्ट्रानिक मीडिया का प्रभाव

इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों में रेडियो और टेलीविजन राजनैतिक संचार के प्रमुख उपकरण हैं। राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, राजनैतिक समाचार, समाचार विश्लेषण राजनेताओं के वक्तव्य जनमत को प्रभावित करते हैं।

ग्रामीण समुदाय की राजनैतिक चेतना तो आज भी रेडियो प्रसारणों से जागृत होती है। राजनैतिक सभायें, मंत्रियों की सभायें या चुनावी सभाओं के संपादित अंश

को सुनकर लोग राजनैतिक सूचनाओं को बटोरते हुए उन्हें आपस में बांटते हैं। गांवों के मेले हाट-बाजार भी राजनैतिक सूचनाओं के आदान-प्रदान के केन्द्र होते हैं। स्थानीय राजनीति पर होने वाली चर्चाएं जनमत को प्रभावित करती हैं। गांवों में पंचायती राज व्यवस्था के लागू होते ही देश की राजनैतिक हलचलों का लघुतम रूप गांवों में भी लक्षित होने लगा है। राजनैतिक दल, चुनाव मतदान की प्रक्रिया, दूर दराज तक पहुंच चुकी है। अर्थात् रेडियो एक सशक्त माध्यम के रूप में ग्रामीण जनमानस में अपनी पैठ बना चुका है। टेलीविजन दृश्य श्रव्य संचार के संयुक्त माध्यम के रूप में जनसंचार का अति लोकप्रिय माध्यम बन गया है। प्रिंट मीडिया की पहुंच केवल साक्षर समुदाय तक सीमित है जबकि रेडियो के पास दृश्य शक्ति का अभाव है। किन्तु टेलीविजन सूचना शिक्षा, जागरुकता, वैज्ञानिक चेतना जगाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण माध्यम बन कर उभरा है। चित्रों और रंगों से सजी टेलीविजन स्क्रीन, संवाद और संवादकर्ताओं से दर्शक सरलता से सम्पर्क स्थापित कर लेता है। आज रात-दिन चलने वाले समाचार चैनलों पर राजनैतिक मुद्दे प्रमुखता से हावी रहते हैं।

टेलीविजन के प्रति लोगों में रुचि और आर्थिक दशा में सुधार के चलते इसके दर्शक गांवों में भी बढ़ रहे हैं। जिससे स्थानीय से लेकर क्षेत्रीय राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक मुद्दों पर लोगों की समझ बढ़ रही है।

सूचना आज समाज की ताकत बनकर उभरा है और यह सूचना संप्रेषण का कार्य मीडिया कर रही है। किन्तु राजनैतिक मुद्दों पर धन-बल बाहुबल को ग्लैमराइज करने, राजनैतिक वितंडा को तूल देने और अपने राजनैतिक आकाओं के हितों की रक्षा हेतु पक्षपातपूर्ण व्यवहार का आरोप भी मीडिया पर लगता रहता है। स्ट्रिंग ऑपरेशन इसके उदाहरण हैं। पर कुल मिलाकर आमजन में राजनैतिक समझ के विकास में जनसंचार माध्यमों का योगदान प्रसंशनीय है। अक्टूबर 2005 को सूचना अधिकार बिल के पारित होने तथा प्रस्तावित नई सूचना नीति के क्रियान्वयन से इस दिशा में और भी सफलता मिलने की उम्मीद है।

24.5 विकास संचार एवं अर्थजगत

अर्थ या धन विकास का केन्द्र है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में धन के बिना कोई भी कार्य करना संभव नहीं है। धन सम्बन्धित क्रियाकलापों को उजागर करने के लिए आर्थिक संचार का महत्वपूर्ण स्थान है समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं एवं टेलीविजन और रेडियो के द्वारा अर्थ सम्बन्धी खबरें, मुद्रा बाजार, पूंजी बाजार, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आय, वस्तु बाजार, पंचवर्षीय योजना, आम बजट ग्रामोद्योग आदि से जुड़े मुद्दे पाठकों एवं श्रोताओं को अत्यधिक आकर्षित करते हैं।

24.5.1 भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास

यूरोप और जापान की तुलना में भारत में अर्थव्यवस्था का बाजारीकरण विलम्ब से हआ है जहां एक ओर विकसित देशों में आर्थिक पत्रकारिता तीव्र गति से

विकसित हुई। वहीं दूसरी ओर विकासशील देशों तथा सोवियत यूनियन व पूर्वी यूरोप की नियंत्रित अर्थव्यवस्था में इसका विकास शिथिल पड़ गया।

24.5.2 मिश्रित अर्थव्यवस्था का दौर

भारत में स्वतंत्रता पश्चात् प्रथम दो दशक आर्थिक गतिविधियों की शिथिलता के रहे हैं। क्योंकि आर्थिक विकास की रूपरेखा सोवियत यूनियन पद्धति से प्रभावित रहा है। अर्थव्यवस्था पूर्व रूप से नियंत्रित थी सरकारी क्षेत्र फल-फूल रहे थे जबकि निजी क्षेत्रों में कुछ औद्योगिक घरानों को छोड़कर और कोई नाम नहीं उभर पा रहा था। अर्थात् निजी क्षेत्रों में अनिश्चितता एवं शिथिलता का वातावरण बना हुआ था। आर्थिक विकास किसी क्षेत्र की क्षमता और सफलता पर आधारित न होकर किन्हीं मुद्दों पर आधारित था जिसे हम पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा तय करते थे। ऐसे में पूरा जोर अर्थव्यवस्था की समाज सुधार छवि को बनाने के लिए दिया जा रहा था। लक्ष्य निर्धारण के विषय में कोई ठोस नीति नहीं थी। अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए निजी क्षेत्र किसी न किसी रूप में सरकार की निगाहों में चढ़े रहने की कोशिश में रहते थे। प्रत्येक औद्योगिक घराना अधिक से अधिक लाइसेंस हथिया लेने के चक्कर में रहता था। चूंकि ऐसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन कभी भी जरूरत से अधिक नहीं हो सका और न ही पूंजी बाजार अपने को प्रतियोगिता के लिए तैयार कर सका फलस्वरूप धन और अर्थव्यवस्था रुक सी गई।

24.5.3 उदारीकरण का दौर

सन् 1980 में अचानक आर्थिक गतिविधियों में परिवर्तन आया। चीन ने खुली अर्थव्यवस्था की नीति अपनाई तथा विदेशी पूंजी निवेश का स्वागत किया। प्रथम बार भारत ने भी हवा के बदलते रुख को पहचाना और अर्थव्यवस्था को नया रूप देने का निर्णय लिया, फलत: भारत की अर्थव्यवस्था में पहली बार उदारवादी नीति को अपनाने का क्रम शुरू हुआ लेकिन पंजाब और काश्मीर की बिगड़ती स्थिति के राजनैतिक दबावों के कारण इस आर्थिक सुधार नीति को धक्का पहुंचा। सन् 1984 में सत्ता में आने के बाद राजीव गांधी ने स्पष्ट संकेत दिया कि अब भारत का आर्थिक परिदृश्य बदलना होगा। इस बदले वातावरण में निजी क्षेत्रों को भी उचित महत्व दिया जायेगा और व्यापार को विश्वव्यापी मानदंडों पर खरा उतरना होगा। पर लोकसभा चुनावों में पार्टी की हार एवं सोवियत यूनियन के पतन ने एक बार फिर से अर्थव्यवस्था में सुधार की मंशा को पूरा नहीं होने दिया।

किन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था में वास्तविक और ठोस परिवर्तन सन् 1991 में हुआ। वह सारा आर्थिक ढांचा जो नियमों, पूर्व नियंत्रण, लाइसेंस, परमिट आदि पर आधारित या तोड़ दिया गया। यह उदारीकरण का दौर कहलाया। पूरी अर्थव्यवस्था बाजार पर टिक गई। कार्पोरेट क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण हो गया। सरकार ने विदेशी कम्पनियों एवं पूंजी निवेश से नियंत्रण हटा लिए। बाहर की पूंजी और तकनीक को

आकर्षित करने के लिए सीमा शुल्क में भारी कमी कर दी गई आज इस परिवर्तन को हम आर्थिक सुधार, उदारीकरण, भूमण्डलीयकरण, मुक्त बाजार आदि के नाम से जानते हैं।

24.5.4 विकास संचार की भूमिका

आर्थिक पत्रकारिता आर्थिक गतिविधियों के फलस्वरूप ही पनपती है। फलस्वरूप भारत में भी आर्थिक संचार का प्रारम्भ 1961 में हुआ इससे पूर्व भारत में कोई आर्थिक समाचार पत्र नहीं था। हालांकि स्वतंत्रता पूर्व भी बाजार में अनेक पत्रिकाएं विद्यमान थी जो आर्थिक गतिविधियों और व्यापार सम्बन्धी सूचनाएं पाठकों तक पहुंचाती थी। इन सबमें 'कामर्स' नामक पत्रिका महत्वपूर्ण थी किन्तु इसका स्वरूप व्यावसायिक कम और शैक्षणिक अधिक था। जहां तक आर्थिक समाचार पत्रों के आगमन का प्रश्न है 'इकोनामिक टाइम्स' और 'फाइनेन्शियल एक्सप्रेस' नामक दो पत्र मार्च 1961 में प्राय: एक साथ ही बाजार में आये। 1975 में कलकत्ता से 'बिजनेस स्टैडर्ड' का प्रकाशन शुरू हुआ तथा 'द हिन्दू' समाचार पत्र 'बिजनेस लाइन' नामक आर्थिक समाचार पत्र निकाल रहा है। अस्सी के दशक के अन्त तक बाजारों का विस्तार प्रारम्भ हो चुका था। ऐसे में बाजार से जुड़ी खबरों के लिए लोगों को आर्थिक समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं का सहारा लेना पड़ा परिणामस्वरूप बाजार नये पत्र-पत्रिकाओं से आबाद हो गया। 'मनी फाईनेन्शियल विजार्ड', 'दलाल स्ट्रीट जर्नल' जैसे अनेक पत्रों का इस दौर में प्रवेश हुआ। सन् 1991 में अर्थव्यवस्था में हुए व्यापक परिवर्तन ने न सिर्फ अर्थव्यवस्था में विस्तार किया बल्कि पाठकों की रुचि भी कार्पोरेट क्षेत्र के बारे में बढ़ गई। अब समय था कि अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ भारतीय भाषाओं में भी पत्रों का प्रकाशन हो। इसका सफल प्रयोग अहमदाबाद से सन् 1991 में फाइनेन्शियल एक्सप्रेस ने गुजराती में पत्र निकालकर किया। आज पूर्ण आर्थिक समाचार पत्रों के साथ ही साथ अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों में अर्थ जगत की खबरों के लिए पृष्ठ निर्धारित रहते हैं। भारत सरकार भी योजना आयोग की आर्थिक पत्रिका 'योजना' का प्रकाशन कर रही है। पत्रिकाओं के साथ ही टेलीविजन और रेडियो भी आर्थिक खबरों के सार्थक संवाहक रहे हैं। रेडियो समाचार के द्वारा अर्थजगत, बजट, शेयर बाजार, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था आदि से पाठकों को परिचित कराता आ रहा है। इसके अतिरिक्त अर्थ चर्चा परिचर्चा तथा विश्लेषण के द्वारा लोगों को आर्थिक विकास की गतिविधियों से जोड़ने का कार्य रेडियो भी बखूबी कर रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि, ग्रामोद्योग रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि से जुड़े कार्यक्रमों को रेडियो नियमित प्रसारित करता है।

टेलीविजन को भारत में परिवर्तन का वाहक मानकर ही प्रवेश दिया गया था। साक्षरता का प्रभार कृषि की आधुनिक तकनीक से परिचय, स्वास्थ्य, शिक्षा की आधारभूत जानकारियों का प्रसार टेलीविजन की प्राथमिकता मानी गयी थी। दूरदर्शन अपने समाचार प्रसारण के साथ ही अर्थजगत से जुड़ गया था और समाचार के हर

अंक में अर्थजगत की खबरों का होना अनिवार्य था। चैनलों के प्रवेश एवं विस्तार ने तो आर्थिक संचार का स्वरूप ही बदल दिया है। आज समाचार चैनलों के साथ-साथ कई ऐसे भी चैनल हैं जो रात-दिन अर्थजगत से जुड़ी जानकारियां अपने दर्शकों को उपलब्ध करा रहे हैं। शेयर बाजार, निवेश आदि से जुड़ी सजीव खबरों, विश्लेषणों के आधार पर रोज करोड़ों का व्यापार हो रहा है। भारत में आर्थिक विकास संचार अपने ऊंचाई के मुकाम पर पहुंच गया है। अर्थव्यवस्था के बाजीरकरण के कारण विश्व के विनियोजनकर्ताओं की रुचि भारत में उद्योगों में बहुत बढ़ गयी है। इसके साथ ही शेयर खरीदने वालों की संख्या में भी अत्यधिक वृद्धि हुई है। लोग कम्पनियों की योजनाओं, उनकी नीतियों बजट और पूंजी बाजार की हलचल को विस्तार से जानना चाहते हैं। विकास संचार के द्वारा विभिन्न माध्यम इन जानकारियों को लोगों को उपलब्ध करा रहे हैं। हालांकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की तरफ जनसंचार माध्यमों का रुझान अभी औपचारिक ही बना हुआ है। इसे हमें दूर करना होगा।

24.6 विकास संचार एवं संस्कृति

संस्कृति एक बोध है, एक दृष्टि है, जो हमें जीवन के प्रति संवेदनशीलता का पाठ पढ़ाती है। संस्कृति से तात्पर्य भाषा, मूल्यों, विश्वासों, आदतों तथा व्यवहार के संगम से है जो परंपरा से एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को सौंपती चलती है। इसे हम धरोहर के रूप में स्वीकार करते हैं तथा यह संस्कृति सभ्यता के रूप में हमारे सामने आती है जो संस्कारों से पोषित होती है। भारतीय संस्कृति अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध रही है। भाषा के स्तर पर संस्कृति जैसी वैज्ञानिक भाषा, उदार एवं कल्याणकारी मूल्य, जियो और जीने दो का दार्शनिक विश्वास तथा सर्वे भवन्तु सुखिनः का मूल मंत्र हमारी संस्कृति की पहचान रही है। जिसने सदियों से न केवल हमारी जीवन शैली को प्रभावित किया बल्कि आक्रमणकारी मुगलों, अंग्रेजों आदि को भी इस संस्कृति का कायल बनाया। वही समृद्धिशाली, मजबूत, अडिग संस्कृति आज अपसंस्कृति के चंगुल में फंसती जा रही है। मीडिया के कंधे पर सवार होकर पश्चिमी संस्कृति बाजार के द्वारा हमारे मनो मस्तिष्क को प्रदूषित कर रही है यह एक प्रकार का सांस्कृतिक आक्रमण है।

24.6.1 संस्कृति पर संचार का प्रभाव

पत्रकारिता ने सामाजिक मनुष्य को मार्ग दिखाया है यह एक बड़ी सच्चाई है। प्रखर विचारों की पोषक पत्रकारिता ने एक दिव्य चेतना एवं लोकमत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मनुष्य की ज्येष्ठता एवं श्रेष्ठता को उजागर किया है पर आज उसी मनुष्यता को एक बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया है। मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना शून्य हो गयी है। शरीर से आत्मा को अलग करने की साजिश रची जा रही है। टेलीविजन के पर्दे और पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठों पर वह जो कुछ झांक रहा है इस

मुद्रा में उसे यह बोध ही नहीं रह गया है कि क्या सही है और क्या गलत? आजकल अर्धसत्य पत्रकारिता का साथ बनकर उभर रहा है। यह एक ऐसी विकृत सोच है जिसने पत्रकारिता को तो प्रदूषित किया ही है। व्यक्ति की सोच चिन्तन मनन की आदत को भी बेचकर रख दिया है। फलस्वरूप आज न तो संचार मार्गस्थ हुआ है और न ही संचार मीडिया और न ही दर्शक, पाठक और श्रोता ही।

24.6.2 सांस्कृतिक संचार और मुद्रित माध्यम

भारत में सांस्कृतिक संचार का इतिहास बहुत पुराना रहा है यहां संचार अंत: वैयक्तिक स्वनिरीक्षण, स्वचिंतन व स्वमूल्यांकन की पद्धति पर आधारित रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य आत्मदीपों भव: अर्थात् प्रथम स्वयं को प्रकाशित कर समाज को आलोकित करने का था। इसीलिये ऋषियों, मुनियों द्वारा स्थापित मूल्य आज भी हमारे बीच प्रासंगिक बने हुए हैं स्वतंत्रता पूर्व की पत्रकारिता भी मूल्य परख थी। समाज एवं लोगों को एक जुट कर देश को आजाद कराना पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य था स्वतंत्रता पश्चात् भी विभिन्न क्षेत्रों में देश को आत्मनिर्भर बनाने की कोशिशों में पत्रकारिता ने अपना बहुमूल्य योगदान किया। साथ ही साथ निर्गुट आन्दोलन पंचशील उद्देश्यों भाई-चारे एवं शान्ति संदेशों को संचार माध्यमों ने पूरे जोर-शोर से न सिर्फ देश में बल्कि विश्व में प्रसारित करने का कार्य किया किन्तु आपातकाल की काली चादर ने पत्रकारिता में बहुत हद तक मूल्य हीनता, चाटुकारिता, प्रलोभन एवं स्वार्थ सिद्धि की नींव रख दी। सरकारी माध्यम रेडियो और दूरदर्शन सरकारी भोंपू बनकर उभरे तथा समाचार पत्रों में व्याप्त भय और कुंठा ने उसे सरकार के आगे झुकने पर मजबूर कर दिया। फलस्वरूप पत्रकारिता में मूल्यहीनता का दौर शुरू हो गया।

24.3.1 सांस्कृतिक संचार और इलेक्ट्रानिक माध्यम

टेलीविजन का जन्म आजाद भारत में हुआ था। और इसकी मनमानी पन पर कभी कोई ठोस नियंत्रण लगाने की कोशिश भी नहीं हुई। विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बहाने हिंसा, नग्न, अर्धनग्न चित्र, भड़काऊ एवं अश्लील चित्र अब दर्शकों की संख्या में बढ़ोत्तरी करने के मूल मंत्र बन गये हैं। कला के नाम पर फैशन और मूल्य के नाम पर भोड़ापन संस्कृति के नाम पर पश्चिमी सोच फैलाने का आरोप प्राय: टेलीविजन पर लगता रहता है फटाफट संस्कृति बाजार वाद विज्ञापनों के मायाजाल ने भारतीय जनमानस को भ्रमित कर रखा है।

रेडियो बहुत कुछ अर्थों में आज भी जनमाध्यम बना हुआ है। अपनी पारम्परिक सोच मूल्यों के प्रति लगाव तथा ग्रामीण पृष्ठभूमि के कार्यक्रमों के चलते रेडियो आज भी समाज के एक बड़े तबके का मित्र बना हुआ है। किन्तु व्यवसायिकता के बढ़ते दबाव तथा अन्य माध्यमों से मिल रही चुनौतियों के कारण यह माध्यम कब तक अपनी सांस्कृतिक छवि कायम रख पायेगा कहा नहीं जा सकता।

पत्रकारिता के इस पीत तेवर ने साहित्य के लिए एक गहरा संकट खड़ा कर दिया है रचना धर्मिता के लिए ऐसी चुनौती कभी नहीं आई जीवन समाज और साहित्य के अनिवार्य प्रश्नों से आज पत्रकारिता का कोई सरोकार नहीं रह गया है। अब तो पत्रकारिता आर्थिक हितों की लड़ाई में कूद पड़ी है जिसके कारण पत्रकार और संपादक मूल्यों की सृष्टि करने के अपने मूल धर्म से हटकर किसी भी स्वार्थी प्रलोभन के समक्ष नत-मस्तक हो गया है। सुविधा भोगी हुई पत्रकारिता समाज सुधार व्यक्तित्व विकास राष्ट्रीय एकता और आम आदमी की हितों की खबर से बेखबर है, पत्रकारिता ने मनुष्यता के गुरू गौरव पर बड़ा प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया है। सच्चाई की लाज, आज चौराहे पर है। मक्खन रोटी की चिंता का सवाल सर्वोपरि है। पत्रकारिता की आज भी एक गौरवशाली भूमिका हो सकती है क्योंकि सूचना और ज्ञान की भूख आज भी महत्वपूर्ण है। जनसंघर्ष का आज भी महत्व है, भ्रष्टाचार को आज भी चुनौती दी जा सकती है ताकि देशभक्ति और मानवतावाद के उज्जवल पथ पर चलकर पत्रकारिता नव-निर्माण का बिगुल बजा सके।

24.7 विकास संचार एवं सामाजिक मुद्दे

हर समाज की अपनी विशेषता होती है और यही विशेषता उसकी पहचान भी होती है। यही पहचान सम-सामयिक मुद्दों के निराकरण हेतु चिन्तन मनन और उसके मूल्यांकन की रूपरेखा भी तय करती है। अर्थात् गतिशील समाज में देश-काल और परिस्थितियों आधारित सामाजिक मुद्दे सामने आते रहते हैं। तथा इनका समाधान भी समाज के अन्दर ही खोजा जाता है।

वर्तमान में पर्यावरण, आधी दुनिया, उपभोक्ता नग्नता (मूल्यहीनता) बालश्रम जैसे मुद्दे विचारणीय है। इनमें से कुछ मुद्दों पर विस्तार से चर्चा पूर्व के अध्ययनों में हो चुकी है। इस अध्याय में हम उपभोक्ता एवं बालश्रम पर चर्चा करेंगे।

24.7.1 उपभोक्तावाद एवं विकास संचार

उपभोक्तावाद जागरुक नागरिकों एवं सरकार के संगठित प्रयासों से क्रेता के अधिकारों की सुरक्षा करना है। उपभोक्ता वह है जो किसी वस्तु को खरीदकर उसका उपयोग करता है। यह परिभाषा अब और भी व्यापक हो चुकी है तथा इसके अन्तर्गत सेवा क्षेत्र, चिकित्सा क्षेत्र आदि को भी शामिल कर लिया गया है। वर्तमान युग बाजार वाद से पूर्वत: प्रेरित है। मांग और आपूर्ति का सम्बन्ध इसका शाश्वत सत्य बनकर उभरा है। विक्रय हेतु वस्तु या सेवा का प्रचार-प्रसार अनिवार्य हो गया है। राष्ट्रीय एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की एक लम्बी श्रृंखला एवं विकल्प से बाजार भरा पड़ा है ऐसे में क्रेता या ग्राहक के हितों की रक्षा का मुद्दा हमारे सामने खड़ा हो जाता है। हर ग्राहक चाहता है कि उसे उत्पाद या सेवा में दी गई जानकारियों का पूरा-पूरा लाभ मिल सके और उसके द्वारा चुकाये गये मूल्य की भरपाई हो सके। किन्तु

शिक्षा एवं जागरुकता के अभाव में प्राय: क्रेता का हित प्रभावित होता है फलस्वरूप क्रेता-विक्रेता एवं उत्पादक के मध्य अविश्वास उत्पन्न होने लगता है। इसी अविश्वास को दूर करने तथा क्रेता एवं विक्रेता के मध्य स्वस्थ एवं विश्वसनीय सम्बन्ध स्थापित करने हेतु संचार की आवश्यकता पड़ती है।

24.7.2 विकास संचार की भूमिका

1. संचार के विभिन्न माध्यमों तथा पत्र-पत्रिकायें, टेलीविजन, रेडियो आदि उपभोक्ता को जागरूक करने का कार्य करते हैं।

2. संचार माध्यमों के द्वारा उपभोक्ता एवं उत्पादक के मध्य आपसी विश्वास हेतु वार्तालाप स्थापित करना ताकि दोनों एक दूसरे की जरूरतों से अवगत हो सकें।

3. मीडिया का यह भी कार्य है कि विक्रय हेतु वस्तु के गुण, मूल्य तथा उपलब्धता के बारे में लोगों को सही जानकारी दें।

4. हालांकि विज्ञापन जनसंचार माध्यमों की जीवन रेखा बनकर उभरा है। किन्तु उनकी यह भी जिम्मेदारी है कि विभाजित वस्तु में कही गयी बातों के सच-असच की जांच पड़ताल पहले से कर लें।

5. उपभोक्ता को उनके अधिकारों, जरूरतों, हितों, तथा उनकी सुरक्षा हेतु कानूनी उपायों की जानकारी देना और जागरुक करना मीडिया का महत्वपूर्ण कार्य है।

इस भूमिका को पत्र-पत्रिकाएं कुछ हद तक निभा भी रही है। नियमित स्तम्भ लेख खोज परख खबरों के द्वारा प्रेस इस कार्य को संगठित तरीके से कर सकता है। टेलीविजन खासतौर से दूरदर्शन अपने 'जागो ग्राहक जागो' द्वारा उपभोक्ता जागरूकता का कार्यक्रम दिखा रहा है। रेडियो भी 'कानून और हम' तथा 'उपभोक्ता संरक्षण' पर कार्यक्रम प्रसारित कर रहा है। 'भोपाल गैस काण्ड' एवं 'गैट' के मुद्दे पर भारतीय मीडिया ने आम जन को जागरूक कर इसके खिलाफ जनमत बनाने में सफलता पाई थी। किन्तु अभी भी गरीबी अशिक्षा और उदासीनता से जूझ रही बड़ी आबादी को उपभोक्ता अधिकारों से परिचित कराने का कार्य जनसंचार माध्यमों को करना है।

24.8 विकास संचार एवं बालश्रम

बच्चे किसी भी समाज व राष्ट्र के लिए एक अति महत्वपूर्ण घटक होते हैं। यह न सिर्फ देश का भविष्य होते हैं वरन कई मायनों में इनका वर्तमान भी काफी मायने रखता हैं। अगर सिर्फ परम्पराओं के संचरण की बात करें तो अपनी संस्कृति पर गर्व करने वाला भारत देश की सांस्कृतिक विविधता आज बची न होती यदि इसे बचपने से ही सींचा न गया होता या सीधे शब्दों में कहें तो बच्चों ने इसे अपनाया न होता। बच्चों के महत्व को देश का संविधान भी स्वीकार करता है। संविधान ने बच्चों के बचपन की रक्षा करने का निर्देश दिया है। संविधान के अनुच्छेद 39 में बचपन को बचाने तथा उसके कल्याण किये जाने का उल्लेख है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी कई

व्यवस्थायें दी हैं, जिसके तहत बच्चों को संरक्षण प्राप्त करने से लेकर तमाम अधिकार दिये गये हैं। बच्चों से उनके बचपन को छीनकर उनसे कार्य कराना, उन्हें जीविकोपार्जन के लिए बाध्य करना निहायत ही घृणित कार्य है। यह अलग बात है कि कई बार जानबूझकर तो कई बार मजबूरी में यह कार्य समाज में कराया जा रहा है! बालश्रम के नाम से जानी जाने वाली यह प्रवृत्ति समाज व राष्ट्र दोनों के लिए खासी नुकसानदायक है। बचपन से ही काम में जुटा दिये जाने से बच्चों का न तो शारीरिक विकास ठीक से हो पाता है न ही मानसिक व बौद्धिक विकास। कई बच्चे इन दुश्वारियों के बीच अपराध की दुनिया की ओर मुड़ जाते हैं इससे समाज व राष्ट्र अच्छे नागरिकों से वंचित रह जाता है तथा दिनों दिन कमजोर पड़ता जाता है। इन स्थितियों से बचने के लिए बाल श्रम उन्मूलन कार्यक्रम देश के कई-कई जिलों में चलाया जा रहा है।

24.8.1 बालश्रम एक राष्ट्रीय समस्या

देश में विश्व के बाल श्रमिकों का करीब बीस प्रतिशत हिस्सा निवास करता रहा है। 1971 की जनगणना के अनुसार देश में बालश्रमिकों की संख्या 1 करोड़ सात लाख थी, 1981 में यह एक करोड़ 11 लाख हो गयी। 1986 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्थान द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार यह एक करोड़ 73 लाख बतायी गयी। 1991 की जनगणना में एक करोड 42 लाख बताये गये। वर्ष 2001 की जनगणना में एक करोड़ 25 लाख बाल श्रमिक दर्ज किये गये।

इन आंकड़ों में घरों व होटलों में काम करने वाले बच्चे शामिल नहीं है।

राष्ट्रीय श्रम संस्थान के ताजा आंकड़ों के अनुसार 6 से 14 वर्ष के कुल 22 करोड़ बच्चे विद्यालयों में अध्ययनरत हैं। करीब ढाई करोड़ बच्चे विद्यालयों के बाहर हैं।

निजी संस्थानों के आंकड़े इससे कहीं ज्यादा गंभीर हैं। इसके अनुसार देश में पांच से सात करोड़ के बीच बाल श्रमिक हैं, जिसमें अधिकांश पूर्णकालिक बाल श्रमिक हैं। इनमें घरों व होटलों आदि में काम करने वाले बच्चे भी शामिल हैं।

24.8.2 बाल श्रम उन्मूलन कार्यक्रमों की दिशा व रणनीति

राष्ट्रीय बालश्रम उन्मूलन परियोजनाएं आमतौर पर दो समस्याओं को ध्यान में रखकर बनायी गयी हैं। इसमें बच्चों को बाल श्रम में न प्रवृत्त करने के लिए दंडात्मक उपाय किये गये तो साथ ही छुड़ाये गये बच्चों के पुनर्वास के लिए भी व्यवस्था की गयी। बच्चों के पुनर्वास के लिए विशेष श्रम विद्यालय खोलना कार्यक्रम की सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिकता रही है। इसके तहत बालश्रम प्रभावित क्षेत्रों में विशेष विद्यालय खोले गये। इनमें बच्चों को उनके उम्र के हिसाब से शिक्षा देकर बाद में परंपरागत विद्यालय में जाने के लिए तैयार करने का कार्य किया गया। बड़े बच्चों के मामले में रोजगार परक शिक्षा उपलब्ध कराकर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने की कवायद की जा रही है। मां-बाप बच्चों को आय उपार्जन के लिए दबाव न डालें इसके लिये

उन्हें समझाने, बच्चों को वजीफा देने आदि के कार्य भी किये जा रहे हैं।

24.8.3 सरकारी योजनाओं की सीमायें, समस्यायें व समाधान

बाल श्रम उन्मूलन को लेकर संचालित योजनाओं की अपनी सीमायें हैं। बालश्रम में अधिकांश अवसरों पर बच्चा मां बाप की सहमति से ढकेला जाता है इसमें परिजनों की गरीबी व आजीविका की समस्या उन्हें कुछ करने को मजबूर करती है। परिवार का कहना रहता है कि कम से कम बच्चा दो वक्त की रोटी तो खा सकेगा। कई मामलों में पिता के कुछ न करने के चलते या फिर नशे आदि में लिप्त होने के चलते बच्चों को श्रम करने पर मजबूर होना पड़ता है। इन परिस्थितियों में बच्चे को श्रम से मुक्त कराकर विशेष विद्यालय तक पहुंचाना खासा मुश्किल भरा कार्य होता है। बच्चों को श्रम करने के लिए बाध्य करने वाले माता-पिता पर अंकुश लगाना खासा कठिन कार्य होता है। मां-बाप के लिए या परिवार के कम से कम एक सदस्य के लिए योग्य रोजगार की व्यवस्था करके इस समस्या का समाधान तो किया जा सकता है पर अभी इसके लिए कोई व्यवस्था नहीं है। रोजगार गारन्टी योजना से जरूर आगे ऐसी व्यवस्था उपलब्ध होने की संभावना है। इसी प्रकार श्रम विद्यालय से निकलकर बच्चों का आगे न पढ़ना भी एक बड़ी समस्या है। श्रम विद्यालय में सब कुछ नि:शुल्क रहता है। परम्परागत विद्यालय में तो शुल्क व खर्च आता ही है। इससे बड़ी संख्या में बच्चे बाहर हो जाते हैं। इस समस्या से निपटने के लिए श्रम विभाग ने बाल श्रमिकों को अब तीन साल पढ़ाने के बाद ऐसे ही छोड़ देने के स्थान पर आगे भी उनका ध्यान रखने की योजना बनायी है। इसमें विशेष श्रम विद्यालय से जुड़े लिंक विद्यालय चयनित किये गये हैं। यह सभी पूर्व माध्यमिक विद्यालय हैं। इन विद्यालयों में भी श्रम विद्यालयों की तर्ज पर मुफ्त पाठ्य पुस्तकें, मुफ्त शिक्षा आदि देने की व्यवस्था की गयी है। माना यह जा रहा है कि इसमें बच्चे इन विद्यालयों में आसानी से टिक सकेंगे। बच्चों की विद्यालयों में अभिरुचि बढ़ाने के लिए उच्च प्राथमिक विद्यालयों में भी नि:शुल्क व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जा रही है।

24.8.4 चुनौतियां व निराकरण

(1) सर्वमान्य परिभाषा का अभाव -

अभी तक बच्चों के सम्बन्ध में एक सर्वमान्य परिभाषा विकसित नहीं की जा सकी है। अलग-अलग एक्ट में इसके लिए अलग-अलग उम्र निर्धारित की गयी है। चाइल्ड लेबर एक्ट में 14 वर्ष या उससे कम आयु वालों को बच्चा माना गया है जबकि आई. पी. सी. में 16 वर्ष या इससे कम आयु वाले व महिला एवं बाल विकास मंत्रालय में 18 वर्ष या इससे कम को बच्चा माना गया है। संयुक्त राष्ट्र 18 वर्ष से कम आयु वाले श्रमिकों को बाल श्रमिक मानता है। भारतीय संविधान 5 से 14 साल वाले श्रमिकों को बाल श्रमिक मानता है।

यह विरोधाभास मूल समस्या से लडने में कठिनाई पैदा रह रहे हैं।

(2) गरीबी -

दूसरी सर्वप्रमुख समस्या गरीबी व बेरोजगारी की है। देश की एक-तिहाई आबादी अभी भी गरीबी रेखा के नीचे है। इनके लिए समुचित रोजगार के अवसरों का निरंतर अभाव है। इलाहाबाद जिले में ही गरीबों की भारी संख्या है। ऐसे में जब परिवार दो वक्त की रोटी तक का मोहताज हो तब बच्चे व बचपन किसी को दिखायी नहीं देते। सभी को अपना पेट भरने के लिए कुछ न कुछ करना पड़ता है बच्चे भी इसी के तहत काम में लगा दिये जाते हैं।

इन सबके बीच रोजगार गारन्टी योजना काफी आशा लेकर आई है। 200 जिलों में वर्ष 2006 से रोजगार गारंटी कार्यक्रम लागू होने से कुछ फायदा होने की उम्मीद है। माना यह जा रहा है कि अभिभावकों को रोजगार मिलने से उनकी समस्यायें कुछ कम हो सकेंगी तथा वह बच्चों को विद्यालय भेजने की ओर प्रवृत्त हो सकेंगे।

24.8.5 विकास संचार की भूमिका

बालश्रम की समस्या से जूझने में संचार माध्यमों की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। यह कार्य जनसंचार माध्यम दो तरह से कर सकता है।

1. सूचना देना - बालश्रम उन्मूलन हेतु जनसंचार को दो दुतरफा भूमिका अदा करनी है। बाल मजदूरों के नियोक्ताओं को बालश्रम कानून की जानकारी देकर तथा बालश्रमिकों के अभिभावकों को बाल कल्याण हेतु संचालित विभिन्न कार्यक्रमों के संचालन के बारे में सूचना देकर।

2. शिक्षित करना -

दूसरे चरण में अभिभावकों के साथ-साथ पूरे समाज को बाल अधिकारों, उनकी जरूरतों, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आदि के बारे में शिक्षित करना होगा। बालश्रम के उन्मूलन की यह महती जिम्मेदारी जनसंचार माध्यमों के कंधों पर है यह कार्य जनसंचार माध्यम, सरकार, विभिन्न एजेंसियों, बाल मजदूरों एवं उनके अभिभावकों के बीच संवाद स्थापित कर सकता है। प्रेस यह कार्य खबरें, लेख, सार्थक कहानी छापकर कर सकता है जबकि इलेक्ट्रानिक माध्यम, नाटक, सीरियल, समाचार, डाक्यूमेन्टरी आदि के द्वारा यह विकास संचार कर सकता है।

24.9 सारांश

विकास किसी भी उन्नत समाज का आदर्श होता है इसके लिए आर्थिक एवं सामाजिक विकास में संतुलन का होना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। इस संतुलन को साधने एवं विकास को गति देने हेतु तथा आम जन की भागीदारी को सुनिश्चित करने का कार्य विकास संचार के जिम्मे होता है। जो मुद्रित एवं इलेक्ट्रानिक माध्यमों के द्वारा यह कार्य संपादित करती है।

किन्तु राजनैतिक एवं आर्थिक मुद्दों को यदि छोड़ दिया जाय तो सांस्कृतिक

एवं सामाजिक मुद्दों पर मीडिया की भूमिका बहुत कुछ आशा से विपरीत है। खासतौर से टेलीविजन ने हमारी प्राचीन मान्यताओं एवं मूल्यों को दरकिनार कर एक नई संस्कृति को जन्म दिया है जहां मूल्यों का ह्रास, एकाकीजन, स्वार्थ, नग्नता और परंपरावाद अपने पूरे चरम पर है। उपभोक्ता हितों की रक्षा एवं बालश्रम दो और ऐसे मुद्दे हैं जिस पर विकास संचार को अभी बहुत कुछ करना है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि भारत में अभी भी विकास संचार संक्रमण कालीन दौर से गुजर रहा है तथा इसे एकाग्र होकर विकास में सहायता पहुंचाने में कुछ समय और लग सकता है।

24.10 संदर्भ ग्रन्थ

डा. अर्जुन तिवारी - पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास

Dr. Manekar - Media and the Third World

- योजना पत्रिका

24.11 प्रश्नावली

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. सांस्कृतिक पत्रकारिता से क्या तात्पर्य है?
2. विकासशील देशों की संचार स्थिति को बतायें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. आपातकाल को मीडिया जगत में काले अध्याय के रूप में क्यों देखा जाता है?
2. आर्थिक संचार के विकास को बतलायें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. भारत में आर्थिक पत्रकारिता का प्रारम्भ हुआ।

(i) 1950 (ii) 1960 (iii) 1991 (iv) 1961

2. बाल श्रम समस्या का कारण है

(i) अशिक्षा (ii) गरीबी (iii) बढ़ती जनसंख्या (iv) सभी

3. 1991 की मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार सूचना क्रान्ति का लाभ हुआ -

(i) सभी देशों को (iii) कुछ देशों को (iii) भारत को (iv) किसी को भी नहीं

4. 20 मिनट की फिल्म 'मां' दिखाई गई

(i) 1984 में (ii) 1991 में (iii) 2000 में (iv) 2006 में

उत्तर - 1. (iv) 2. (iv) 3. (ii) 4. (i)

Notes

Notes

Notes